प्रस्तावना ।

महाशयो ! विचारकरके देखिये तो इस असार संसारमें शिवाय "श्रीरामचरित" के और कुछभी सार नहीं है. और इस लोक तथा परलोकमें सुख सम्पादन करनेका इसके अतिरिक्त अन्य साधनभी नहीं है. यह बात सुज्ञ महाशयगण भली भांति जानते हैं. और यही विचारकर लोकोपकारपरायण, उदारचित्त वेदव्यासादि महर्षियोंने श्रीमन्महाभारत, आदि इतिहास तथा श्रीमद्भागवतादि अष्टादश पुराण तथा श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणादि ग्रंथोंमें उक्त विषयकोही बड़े विस्तारपूर्वक वर्णन किया है. महर्षिवेदव्यासविरचित उन्ही अष्टादश पुराणोंके अन्तर्गत यह "ब्रह्माण्डपुराण" भी है. इसीके अन्तर्गत यह तरणतारायण "अध्यात्मरामायण" भी है, जिसमें महर्षिवेदव्यासजीने जगतके मातापिता श्रीशिवपार्वतीके संवादद्वारा श्रीरामकथाप्रसंगसे ऐसे अध्यात्मज्ञानका निरूपण किया है; कि जिसके श्रवणमात्रसे जीवन्मुक्तपुरुषोंको परमानन्द प्राप्त होता है. और मुमुक्षुपुरुषोंके अन्तःकरणविषे विवेकरूप भास्करका उदय होकर अज्ञानरूप महान्धकारका नाश होजाता है. और ब्रह्मानन्दका अनुभव भली भांति होने लगता है. तथा जन्म-मरणादिदुःखरूप संसार निवृत्त होजाता है. और इन्द्रियसम्बन्धी विषयोंका अनुभव करनेवाले विषयीपुरुषोंके भी श्रोत्र, इन्द्रिय तथा मनको निरतिशय आनन्द प्राप्त होता है. अर्थात् कर्णपुटोंद्वारा इस श्रीरामचरितसम्बन्धी ज्ञानामृतका पानकरके विषयी पुरुषोंको भी ब्रह्मसुखका अनुभव होने लगता है. सारांश यह है कि यह "श्रीरामचरित" बालकसे लेके वृद्धपर्यंत सबको परमप्रिय है. इसप्रकार यद्यपि यह अध्यात्मरामायणमें निरूपित "श्रीरामचरित" सर्व साधारणके लिये परमोपयोगी है; तथापि संस्कृत भाषा और कठिन विषय होनेके कारण बहुतसे हमारे सहयोगी अल्पज्ञ महाशयगण इस परमानन्दसे वञ्चित रहते

थे. उन लोगोंकोभी सुज्ञमहाशयोंकी भांति इसकी प्राप्ति होनेके लिये हमने हमारे परममित्र, मुरादाबादनिवासी श्रीपंडित रामस्वरूप शर्माद्वारा इस ग्रंथका सुललित, सरल हिन्दी भाषामें परममनोहर भाषान्तर निर्माण कराया. और सुमेरुपुरनिवासी श्रीपंडित रघुवंशशर्माद्वारा बड़े परिश्रमसे शुद्ध करायके श्वेत, सुपुष्ट, सचिक्कण कागजपै सुवाच्य टाइपके अक्षरोंमें छापके प्रसिद्ध किया है.

आशा है कि गुणग्राही सज्जनपुरुष एक बार अद्योपान्त अवलोकन करके इस हमारे अपार परिश्रमको सफल करेंगे. और दृष्टि दोषसे रहेहुये प्रमादोंको सदयहृदय होकर क्षमा करेंगे. इत्यलं विज्ञेषु ।

हरिप्रसाद भगीरथजी

ठि०—कालिकादेवीरोड़—रामवाड़ी

बम्बई.

अथ अध्यात्मरामायण भाषाकी अनुक्रमणिका.

सर्गाङ्क. विषय. पृष्ठाङ्क.

अनुक्रमणिका ।

श्रीः।

अध्यात्मरामायणभाषा।

बालकाण्ड।

श्रीयुत पंडितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मणाविरचित

जिसमें

रामलक्ष्मणादिजन्म, अहल्याउद्धरण, विश्वामित्रमख-
रक्षण, जानकीस्वयंवरआदि कथा सुविस्तर लिखी हैं.

वही

रामकथाभिलाषियोंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजीने

'गुजराती प्रिंटिंग' प्रेसमें छपवायके
प्रसिद्ध किया.

ज्येष्ठ सं० १९५२ शके १८१८

॥ बालकाण्ड १ ॥

दोहा-बालकथा सम चित्तहर, अन्य नहीं कोउ होय ॥
बालकाण्डके मध्यमें, सो बान्चहु सब कोय ॥ १ ॥

दोहा-द्वितिय चित्तहर जगतमें, शुभ विवाह कहलाय ॥
सो विस्तृत इस काण्डमें, बांचत सुख उपजाय॥३॥

दोहा-तीन पापपहाड़ नित, बालकाण्ड सुखदाय ॥
रामकथा सुनतके पिये, भवबाधा कट जाय ॥ ४ ॥

दोहा-बालकाण्डके कथनकी, महीमा कही नजाय ॥
जो बांचै नित प्रेमकर, सो भवदुःख नशाय॥२॥

श्रीः।

अथ अध्यात्मरामायणभाषा।

बालकाण्ड।

श्लोक—योच्छिनच्छरपूगेण दशकन्धरकन्धराः।
तम्भजे जानकीजानिं रामं कामातिसुन्दरम्॥१॥

दोहा—विघ्नहरणमंगलकरण, गणनायकसुखदैन॥
चरणकमलतिनकेशुभग, सुमरौंहियदिनरैन॥१॥
गौरीगौरीपतिभजों, रिद्धिसिद्धिदातार॥
भवभयनाशनभक्तगति, मंगलमुदकरतार॥२॥

श्रीगणेशाय नमः॥ अप्रमेय अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणीकरकै जाननेमें अशक्य जो त्रय अर्थात् माया, जीव और ईश्वर इनसे पर, निर्म्मल ज्ञान स्वरूप, मन और वाणीके अविषय जो दक्षिणामूर्ति सदाशिव हैं उनके अर्थ नमस्कार है॥ १॥ शौनकादि ऋषियोंके प्रति सूतजी बोले कि, किसी समय सम्पूर्ण लोकोंकेविषैं विचरते हुए योगक्रियामें प्रवीण श्री नारदजी ब्रह्मलोकनिवासी पुरुषोंके हितकी इच्छा करकै ब्रह्मलोककेविषैं आये॥ २॥ तहां मूर्तिमान् वेदोंकरके चारौं ओरसे स्तुति करते हुए, बालसूर्यकी समान कान्तिकरके सभास्थानको प्रकाशित करते हुए, मार्कण्डेय आदि ऋषियोंकरके वारंवार स्तुति करते हुए, भूत भविष्य और वर्त्तमान जो सम्पूर्ण पदार्थ तिनके ज्ञाता, सरस्वतीकरके युक्त, और भक्तोंके इच्छाके अनुसार फल देनेवाले, तथा जगत्को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजीको देख भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके श्रीनारदजी स्तुति करने लगे॥ ३॥ ४॥ ५॥ तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ परम भागवत नारदमुनिसे बोले कि—हे मुने! तुह्मारी क्या प्रश्न करनेकी इच्छा है, सो प्रश्न करो. मैं तुह्मारे अर्थ उसका उत्तर कहूँगा॥ ६॥ इसप्रकार तिनके वचनको सुनकर नार-

दमुनि ब्रह्माजीसे बोले—कि मैंने आपसे प्रथमही सम्पूर्ण सत् और असत् कर्म्म तथा उनके फल श्रवण करे ॥ ७ ॥ हे देववर्य! इस समय एकही वार्त्ता श्रवण करनेकी शेष रही है, सो यदि आपका मेरेऊपर प्रेम है तो उस गुप्त वार्ताकोभी मेरेअर्थ वर्णन करिये॥ ८ ॥ कि घोर कलियुगके प्राप्त होने-पर सम्पूर्ण मनुष्य पुण्यहीन होंगे, दुराचारमें तत्पर होंगे और सत्यवार्तासे विमुख अर्थात् निष्प्रयोजनही मिथ्या भाषण करनेवाले होंगे ॥ ९ ॥ पराई निन्दा करनेमें तत्पर होंगे और पराई हिंसा करनेमें तत्पर होंगे पराये द्रव्यकी इच्छा करनेवाले होंगे. परस्त्रीकेविषैं मन लगानेवाले होंगे ॥ १० ॥ देहके विषैही आत्मदृष्टि करनेवाले होंगे, मूढ होंगे, नास्तिक होंगे, पशुबुद्धि अर्थात् आहारविहारमात्रमें तत्पर होंगे, मातापितासे द्वेष करनेवाले होंगे, स्त्रीही है देवता कहिये पूज्य जिनकी अर्थात् स्त्रियोंके वशीभूत और कामदेवके भृत्य होंगे ॥ ११ ॥ और ब्राह्मण लोभरूपी पिशाचसे ग्रसे हुए होंगे, वेदादि शास्त्रोंको बेंचकर जिविका करनेवाले होंगे, धनकी प्राप्तिके अर्थही विद्याभ्यास करनेवाले होंगे; मदकरके अन्य पुरुषोंका अपमान करनेवाले होंगे ॥ १२ ॥ और क्षत्रिय तथा वैश्यभी अपने धर्मको स्वभावसेही त्यागनेवाले होंगे. अपनी जातिके कर्मको त्यागनेवाले और प्रायः अन्य पुरुषोंको ठगवाले होंगे॥ १३ ॥ तिसीप्रकार जो कोई शूद्र होंगे वह ब्राह्मणोंका आचार करनेमें तत्पर होंगे; और स्त्रियें प्रायः भ्रष्ट तथा पतिका अपमान करनेमें निःशंक होंगी ॥ १४ ॥ और श्वशुरसे द्रोह करनेवाली होंगी इसमें कोई सन्देह नहीं है. इन नष्टबुद्धि-योंको स्वर्गलोककी प्राप्ति किस प्रकार होयगी. ॥ १५ ॥ इस चिन्ताकरके मेरा चित्त निरन्तर व्याकुल हो रहा है. अब स्वल्प उपायकरके इनकी परलोकगति होय ॥ १६ ॥ सो उस उपायको आप कहिये क्यों कि आप सब जानते हैं इस प्रकार नारदऋषिके वाक्यको सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले ॥१७॥ कि हे साधो! तुमने बड़ा सुन्दर प्रश्न करा. अब मैं कहता हूँ सो तुम आदरपूर्वक श्रवण करो पूर्वकालमें भक्तोंकेऊपर कृपा कर-नेवाली पार्वतीजी श्रीरामतत्वको जाननेकी इच्छा करके विनयपूर्वक त्रिपुरारि शिवजीमहाराजसे प्रश्न करती हुई. और शिवजीमहाराज तिन

पार्वतीकेअर्थ वह गूढ़ रामतत्व स्वयम् वर्णन करते हुए ॥ १८ ॥ १९ ॥ अनादि और परमोत्तम श्रीमदध्यात्मरामायणका उपदेश करते हुए. उस अध्यात्मरामायणको जगत्जननी पार्वतीजी पूजन करके रात्रिदिन विचार करती हुई इस समयभी निजानन्दकेविषैं मग्न हैं. प्राणियोंके भाग्यवशासे यदि उस अध्यात्मरामायणका मनुष्यलोककेविषैं प्रचार होजायगा तो ॥ २० ॥ २१ ॥ उस अध्यात्मरामायणके पाठ करनेमात्रसेभी पुरुष सद्गतिको प्राप्त होंगे. हे नारद! ब्रह्महत्यादि पाप संसारमें तबतकही गर्ज रहे हैं और तबतकही कलियुग निःशंक होकर बड़े उत्साहसे संसारमें प्रवृत्त होता है, जबतक अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ जबतक जगत्में अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होता है. तबतक यमके वीर (दूत) निर्भय संसारमें विचरते हैं ॥ २४ ॥ जबतक अध्यात्मरामायणका जगत्में उदय नहीं होता है. तबतकही सम्पूर्ण शास्त्र परस्पर विवाद करते हैं ॥ २५ ॥ तबतकही श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप शास्त्रज्ञ पुरुषोंकोभी दुर्बोध है. जबतक जगत्में अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होता है ॥ २६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! अध्यात्मरामायणके कीर्तन और श्रवणके फलको पूर्ण रीतिसे वर्णन करनेको मैंभी समर्थ नहीं हूं ॥ २७ ॥ तथापि हे निष्पाप! तिस अध्यात्मरामायणका किंचिन्मात्र माहात्म्य जो कि पूर्वकालमें शिवजीने मेरे अर्थ वर्णन करा था सो वर्णन करता हूं तुम चित्त लगाकर श्रवण करो ॥ २८ ॥ अध्यात्मरामायणका एक श्लोक अथवा आधा श्लोकभी जो भक्तियुक्त होकर पढै वह तत्क्षणमात्रमें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होता है ॥ २९ ॥ जो पुरुष प्रतिदिन अनन्य चित्त होकर अध्यात्मरामायणका अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक पाठ करै वह जीवन्मुक्त कहता है ॥ ३० ॥ जो पुरुष सावधान होकर भक्तिपूर्वक अध्यात्मरामायणका पूजन करता है, हे मुने! उस पुरुषको प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ करनेका फल होता है ॥ ३१ ॥ अपनी इच्छाके अनुसार अनादरसे भी जो पुरुष अन्यसे अध्यात्मरामायणको श्रवण करै वह भी पातकसे मुक्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष समीपसे अध्यात्मरामायणको नमस्कार करता है, वह निःसन्देह सम्पूर्ण देवताओंके पूजन

करनेके फलको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष अध्यात्मरामायणकी सम्पूर्ण पुस्तकको लिखकर श्रीरामचन्द्रके भक्तोंके अर्थ देता है, उसका फल श्रवण करो ॥ ३४ ॥ वेद, शास्त्र और व्याकरणादिके अध्ययन करनेपरभी जो फल दुर्लभ होता है वह फल अध्यात्मरामायणकी पुस्तक देनेवालेको होता है ॥ ३५ ॥ जो श्रीरामचन्द्रजीका भक्त श्रेष्ठ पुरुष एकादशीके दिन उपवास करके सभाकेविषैं अध्यात्मरामायणकी कथाको कहता है तिसके पुण्यका फल कहताहूं हे विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजी! तुम श्रवण करो ॥ ३६ ॥ कि प्रत्यक्षर गायत्रीके पुरश्चरण करनेका फल उसको प्राप्त होता है श्रीरामनवमीके दिन उपवासका व्रत करके रात्रिमें जागरण कर चित्त जगाकर जो पुरुष अध्यात्मरामायणका पाठ करै या श्रवण करै उसके पुण्यको वर्णन करता हूं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कुरुक्षेत्र आदि सम्पूर्ण तीर्थोंकेविषैं सूर्यग्रहणके समय जलमें स्थित होकर व्यासजीकी तुल्य ब्राह्मणोंके अर्थ अपने बराबर धन देकर जो फल होता है, वही फल उस पुरुषको होता है, यह मैं सत्य सत्य कहताहूँ इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो पुरुष प्रेम करके रात्रिदिन अध्यात्मरामायणका गान करता है, उस पुरुषकी आज्ञाको इन्द्रादि देवता प्रतीक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥ तत्पर होकर प्रतिदिन अध्यात्मरामायणको पढ़ता हुआ पुरुष जो जो कार्य करता है वह करोड़गुणा होजाता है ॥ ४२ ॥ तिस अध्यात्मरामायणकेविषै श्रीरामहृदयको जो पुरुष सावधान होकर पढ़ै, वह ब्रह्महत्यारा हो तोभी तीन दिनमेंही पवित्र होजाता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष श्रीरामहृदयको हनुमान्‌जीकी प्रतिमाके समीपमें तीनवार मौन होकर पढ़ता है, वह सम्पूर्ण अभिलषित फलोंको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ यदि तुलसी और पीपलके समीप श्रीरामहृदयको पढ़ता हुआ प्रदक्षिणा करै तो प्रत्यक्षर ब्रह्महत्याको दूर करता है ॥ ४५ ॥ हे मुने! श्रीरामगीताके सम्पूर्ण माहात्म्यको श्रीशिवजी जानते हैं, और उसका आधा पार्वती जानती हैं, और तिसका आधा मैं जानता हूँ ॥ ४६ ॥ सो तुम्हारे अर्थ किंचिन्मात्र वर्णन करूंगा, क्योंकि सम्पूर्ण नहीं कहाजासक्ता. जिसको जानकर पुरुष तत्क्षण चित्तशुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ हे नारद! जिस पापको

श्रीरामगीता नहीं नष्ट करती हैं, वह पाप कभीभी किसी तीर्थमें भी नष्ट नहीं होताहै ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उपनिषद्रूपी समुद्रको मथकर निकाली हुई और प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मणजीके अर्थ अर्पण करीहुई श्रीरामगीतारूपी अमृतको पीकर परमानन्दको प्राप्त होय ॥ ४९ ॥ जमदग्निके पुत्र परशुरामजी पूर्वकालमें कार्त्तवीर्यके वधकी इच्छा करकै धनुर्विद्याका अभ्यास करनेके निमित्त सदाशिवके समीपमें निवास करते हुए, प्रयत्नपूर्वक पार्वतीजीकरके पढ़ी हुई रामगीताको श्रवण करकै, शीघ्रही उसको ग्रहण कर पढ़ते हुए नारायणकलाको प्राप्तहुए ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यदि ब्रह्महत्या आदि पापोंसे उद्धार होनेकी इच्छा होय तो पुरुष एक मासपर्यन्त रामगीताका पाठ करकै मुक्त होता है ॥ ५२ ॥ कुत्सित दान लेना, और कुत्सित भोजन करना, और निन्दित आलाप करनेसे उत्पन्न हुए पापको रामगीताका पाठ करनेसे विनष्ट कर देती है ॥ ५३ ॥ शालिग्रामकी शिलाके आगे, और तुलसी तथा पिप्पलके समीपमें और संन्यासियोंके सन्मुख जो पुरुष रामगीताको पढ़ै वह उस फलको प्राप्त होता है जिसका कथन नहीं हो सक्ता, जो पुरुष भक्तिपूर्वक रामगीताको पढ़ता हुआ श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करावै, ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उसके वह सम्पूर्ण पितर विष्णुभगवान्के परंपद अर्थात् वैकुण्ठको प्राप्त होते हैं, एकादशीके दिन निराहार करकै द्वादशीके दिन अगस्त्य वृक्षकी जड़में खड़ा होकर जो रामगीताको पढै. वह साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीका रूप होकर देवताओंकरके पूजा जाता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ दानके विना ध्यानके विना, और तीर्थ स्नानके विनाही पुरुष रामगीताको पढ़कर अनन्त दान ध्यानादिके फलको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ हे नारद! यहाँ बहुत कहनेसे क्या है अर्थात् अधिक कहना निरर्थक है. अब तुम तत्व सुनो कि श्रुति स्मृति पुराण इतिहास और सैंकड़ों शास्त्र यह सब अध्यात्मरामायणकी स्वल्पकलाकोभी नहीं पाते हैं ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजीकरके नारदमुनिके निमित्त कहे हुए इस अध्यात्मरामायणको जो मनुष्य श्रद्धाकरके पढ़ै अथवा श्रवण करै वह देवताओंसे पूजित होता हुआ विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

इति श्रीब्रह्मांडपुराणे उत्तरखण्डे अध्यात्मरामायणे बालकाण्डे भारद्वाज-

गौत्रोद्भवभोलानाथात्मजमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितया भाषाटीकया सहितः प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

जो चैतन्यस्वरूप अविनाशी श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त देवताओंके प्रार्थना करनेपर पृथ्वीतलकेविषे सूर्यवंशमें मायाकरके मनुष्यरूपसे उत्पन्न हुए, और परिवारसहित रावणका वध करके, तथा लोकोंके पापोंको हरनेवाली स्थिर कीर्तिको त्रिलोकीकेविषैं स्थापन करके फिर निरुपाधिक ब्रह्मभावको प्राप्त होगए, तिन जानकीपति रामचन्द्रको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥ संसारकी उत्पत्ति–स्थिति–और प्रलयके मुख्य हेतु, मायाके आश्रय, और मायाकरके रहित, अचिन्त्यमूर्ति, आनन्दघन, निर्म्मल, निजबोधरूप, और जाना है अपना ज्ञानस्वरूप जिन्होंने ऐसे सीतापति श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ जो पुरुष चित्त लगाकर शुभ फलदायक, सम्पूर्ण पुराणोंके मापनीय अध्यात्म रामायणको पढ़ते हैं, अथवा श्रवण करते हैं, वह पुरुष निष्पाप होकर हरिकोही प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ यदि संसाररूपी बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा करै तो नित्य अध्यात्मरामायणकाही पाठ करै, जो पुरुष नित्य अध्यात्मरामायणको श्रवण करै वह पुरुष सहस्रों और करोड़ों गौओंके दानका फल पावै ॥ ४ ॥ शिवजीरूप पर्वतसे उत्पन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीरूप समुद्रसे मिलीहुई यह अध्यात्मरामायणरूप गङ्गा त्रिलोकीको पवित्र करती है ॥ ५ ॥ कैलासपर्वतके शिखरकेविषैं सैकड़ों सूर्योंकी समान प्रकाशवान् मंदिरकेविषैं रत्नजटित सिंहासनपर बैठेहुए, ध्यानमें तत्पर, सिद्धसमूहोंकरके सेवित, निर्भय, आनन्दकन्द श्रीशिवजीमहाराजसे वामभागमें स्थित हिमालयकुमारी श्रीपार्वतीजी भक्तिपूर्वक नम्र होकर एक समय सम्पूर्ण दोषोंके हरनेवाले इस वाक्यको बोली ॥ ६ ॥ पार्वती बोली–कि हे देव! हे जगदाधार! हे सबको आत्मदृष्टिसे अवलोकन करनेवाले! आप सर्वथा समर्थ हैं. और आपभी सनातन हैं इसकारण आपसे सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ जो श्रीरामचन्द्रजी तिनके निरुपाधिक तत्वको

हूँ॥७॥ जो अत्यन्त गुप्त रखने योग्य है, और जो भक्तसे अन्यकेअर्थ कहने योग्य नहीं है, और जिस तत्वको महात्मा पुरुष भक्तोंके अर्थ वर्णन करते हैं, सो आप मेरेअर्थ वर्णन करिये क्योंकि हे देव! मैं तुह्मारी भक्त हूँ. और आप मेरे प्रिय हैं ॥ ८ ॥ जिस ज्ञानकेद्वारा पुरुष संसारको तर जाते हैं, अर्थात् संसारबंधनसे छूटकर मुक्त होजाते हैं, तिस निदिध्यास-के परिपाकसे उत्पन्न होनेवाले अपरोक्ष ज्ञानकरके सहित और भक्ति तथा वैराग्यकरके युक्त विशेषकरके प्रकाशवान् तथा स्वल्प शब्दोंकरके सहित आत्मज्ञानको उत्पन्न करनेवाले वाक्योंको इसप्रकार वर्णन करिये. जिसप्रकार मैं स्त्रीभी आपके कथनको जान लूं ॥ ९ ॥ हे कमलनेत्र! और भी एक परमगुप्तवार्ता पूंछती हूँ; उसको आप प्रथम कहिये, जिससे सम्पूर्ण त्रिलोकीमें सारभूत जो श्रीरामचन्द्रजी तिनकेविषैं हम दोनोंकी दृढ़ भक्ति प्रसिद्ध होयगी ॥ १० ॥ यद्यपि संसाररूपी बंधनसे मुक्त करनेकेनिमित्त भक्तिरूपही साधन प्रसिद्ध है, अन्य नहीं. तथापि आप निर्मल वचनोंकरके मेरे हृदयके संदेहरूप बंधनके भेदन करनेको योग्य हो ॥ ११ ॥ हे भगव-न्! ऋषिगण श्रीरामचन्द्रजीको प्रकृतिसे पर, अद्वितीय, और सबका कारण तथा त्यागा है मायाके सत्वादिगुणोंका कराहुआ रागद्वेषादिका प्रवाह जि-न्होंने ऐसे वर्णन करते हैं, और सावधान होकर रात्रिदिन भजन करते हैं तथा तिस भजनकेद्वाराही सिद्ध होकर परम पदको प्राप्त होजाते हैं ॥ १२ ॥ और कोई ऋषि इसप्रकार कहते हैं कि मायासे परभी श्रीरामचन्द्रजी अप-नी मायाकरके आवृत ब्रह्मस्वरूप अपने रूपको नहीं जानते हैं, इसकारण परब्रह्मबोध होनेपर ईश्वररूप निज तत्वको जानते हैं ॥ १३ ॥ यदि पर-ब्रह्मरूप निजस्वरूपको जानते होते तो यह मायासे पर रामचन्द्रजी सीताके निमित्त विलाप क्यों करते, और यदि आत्मस्वरूपको नहीं जानते हैं, तो सम्पूर्णजीवसमूहोंके समान होकरभी जीवोंकरके किसकारण सेवन करे जाते हैं; ॥ १४ ॥ इस विषयमें आपने क्या उत्तर जान रक्खा है, वह संशयको नष्ट करनेवाला वाक्य कहिये ॥ १५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वति! तू धन्य है, और भक्त है. जो ब्रह्मस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके नि-

रुपाधिक रूपको जाननेकी तेरी इच्छा हुई पहिले इस परम गुप्त रहस्यके वर्णन करनेको मुझे किसीनेभी प्रेरणा नहीं करी ॥ १६ ॥ आज तूने भक्तिपूर्वक मुझे प्रेरणा करी है, सो रामचन्द्रजीको प्रणाम करके तेरेअर्थ वर्णन करूँगा, श्रीरामचन्द्रजी तो निश्चयकरके ब्रह्मस्वरूप मायाके संसर्ग करके रहित, अनादि, अद्वितीय, और आनन्दस्वरूप तथा सम्पूर्ण जीवोंकी अपेक्षासे श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ जो श्रीरामचन्द्रजी अपनी मायाकरके इस सम्पूर्ण विश्वको रचकर आकाशकी समान भीतर और बाहर वर्तमान हैं, और गूढरूपसे सबके विषयें स्थित होकरभी अपनी मायाकरके रचे हुए इस संसारको देखते हैं ॥ १८ ॥ जिसप्रकार चुम्बक मणिके समीपमें लोहा स्वयं घूमताहै तिसीप्रकार जिन श्रीरामचन्द्रजीके समीपमें नित्य ब्रह्माण्ड घूमते रहते हैं, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके निरुपाधिक शरीरको जो पुरुष अपनी उपाधिभूत अविद्याकरके मोहित अन्तःकरणवाले हैं, वही विमूढ चित्तनहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ जो पुरुष मायाको दूर करनेवाले शुद्ध बुद्ध स्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रकेविषें अपने अज्ञानको आरोपण करते हैं, अर्थात् अपने अज्ञानसे श्रीरामचन्द्रजीको मायाके वशीभूत जानते हैं, वह पुरुष निश्चयकरके, पुत्रादिकेविषे आसक्त हो, अनेक यज्ञादि कर्म्म करते हुए, इस संसारके विषेंही वारंवार घूमते रहते हैं ॥ २० ॥ अज्ञ पुरुष जिसप्रकार कण्ठकेविषें धारण करे हुए सुवर्णके आभूषणको नहीं स्मरण रखते हैं, तिसीप्रकार हृदयकेविषें स्थित श्रीरामचन्द्रजीको नहीं जानते हैं, जिसप्रकार ज्योतिःस्वरूप सूर्यकेविषें अन्धकार नहीं होता है, तिसी प्रकार, विशुद्ध, ज्ञानधन उत्कर्षोंसेभी उत्कृष्ट श्रीरामचन्द्रके विषें अविद्याका सम्बध किसप्रकार हो सक्ता है? ॥ २१ ॥ जिसप्रकार दोषकरके नष्ट हुई बुद्धि जिसकी ऐसे पुरुषको नेत्रके भ्रमसे पृथ्वी घूमती हुईसी प्रतीत होय है, तिसीप्रकार अज्ञपुरुष देह इंद्रिय अन्तःकरण तथा जीवात्माके करे हुए कर्मको मायासे पर जो आत्मा तिसकेविषै आरोपण करकै मोहको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार केवल प्रकाश स्वरूपके भगवान् सूर्यको किसी कालमें भी दिन और रात्रि नही होती है,

न रात्रि होती है, तिसीप्रकार ज्ञान और अज्ञान दोनों शुद्ध चैतन्यघन श्रीरामचन्द्रजीकेविषैं किसप्रकार स्थित होसकै हैं ॥ २३ ॥ तिसकारण सर्वोपर्यानन्दमय, विज्ञानरूप, अज्ञानके साक्षी, अरविन्दलोचन श्रीरामचन्द्रजीकेविषैं अज्ञान नहीं हो सकै है, और मोहका कारण मायाका संबन्धभी नहीं है ॥ २४ ॥ इस विषयमें गुप्त रखने योग्य अत्यन्त दुर्लभ मोक्षका साधन श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी तथा वायुपुत्र हनुमानजीका संवाद कहताहूँ ॥ २५ ॥ पूर्वकालमें रामावतारके समय श्रीरामचन्द्रजी, देवद्रोही रावणको संग्राममें पुत्र और सेना तथा वाहनों सहित मारकर॥ २६ ॥ श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी तथा सुग्रीव और हनुमान् आदि वानरोंकरके सहित रणमें श्लाघाको प्राप्त हो अयोध्या नगरीकेविषैं पहुँचे ॥ २७ ॥ और राज्याभिषेकको प्राप्त होकर वसिष्ठजी आदि महात्माओंकरके युक्त, कोटिसूर्यकी समान कांतिमान् रामचन्द्रजी सिंहासनपर विराजमान थे ॥ २८ ॥ तिससमय महामति हनुमानजीको हाथ जोड़ेहुए सन्मुख स्थित, कृतकृत्य, विषयभोगकी अभिलाषारहित केवल ज्ञानकीही अपेक्षायुक्त देखकर॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजीसे यह वचन बोले कि-हे सीते ! हनुमानजीके अर्थ मेरा निरुपाधिक स्वरूप वर्णन करो, यह निष्पाप और तत्त्वज्ञानका अधिकारी तथा हमारेविषें भक्ति करनेवाला है ॥ ३० ॥ संसारको मायास्वरूपकरके मोहित करनेवाली जनककुमारी श्रीसीताजी रामचन्द्रजीके कथनको अंगीकार करकै, निरुपाधिक स्वरूपको जाननेका निश्चय करकै शरणागत आएहुए श्रीहनुमानजीके अर्थ वर्णन करनेलगी ॥ ३१ ॥ श्रीसीताजी बोली. कि हे हनुमन् ! श्रीरामचन्द्रजीको सच्चिदानन्दस्वरूप, अद्वितीय, सब प्रकारकी उपाधिशून्य, सत्स्वरूप, और मन तथा वाणीके अगोचर परब्रह्मरूप जानो ॥ ३२ ॥ और आनन्दस्वरूप, रजोगुणशून्य, शान्तस्वरूप, षड्भाव विकारशून्य अविद्याकरके रहित, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्य्यामी, स्वप्रकाश,

---

जायते १ अस्ति २ वर्द्धते ४ विपरिणमते ४ अपक्षीयते ५ नश्यति ६ इति षड्भावविकाराः ।

और निष्पाप जानो ॥ ३३ ॥ मुझे सृष्टि-स्थिति-और प्रलयकी करनेवाली मूल प्रकृति जानो, तिनरामचन्द्रजीके सम्बन्धमात्रसे इस विश्वको मैं सावधान होकर रचतीहूं ॥ ३४ ॥ तिन सर्वथा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव रामचन्द्रजीके सम्बन्ध मेरा रचाहुआ जगत् अज्ञानी पुरुषोंकरके परमात्माकेविषें आरोपण कराजाय है, तिन मुक्तस्वभाव श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यानगरीके विषें अतिनिर्म्मल रघुकुलमें जन्म ॥ ३५ ॥ और विश्वामित्रजीका सहायक होना, तदनन्तर यज्ञकी रक्षा करना, अहल्याके शापको दूर करना, महादेवजीके धनुषको तोडना, ॥ ३६ ॥ मेरे साथ विवाह, पीछे परशुरामजीके दर्पको नष्ट करना, और मेरे साथ बारह वर्षपर्य्यन्त अयोध्याके विषें निवास करना, ॥ ३७ ॥ दण्डकारण्यको जाना, विराधका वध करना, मायावी मारीचको मारना, तथा मायाकी सीताजीका हरण होना, ॥ ३८ ॥ जटायूको मोक्षकी प्राप्ति होना तथा कबन्धकी मुक्ति होना, शबरीका पूजन करना,पीछे सुग्रीवसे समागम होना॥ ३९॥ वालिका वध, तदनन्तर सीताका अन्वेषण,समुद्रमें सेतुका बांधना,और लंकापुरीको घेरना,॥ ४०॥ युद्धकेविषें पुत्रसहित दुष्टात्मा रावणका वध, विभीषणको राज्य देना, तदनन्तर मेरेसहित ॥ ४१ ॥अयोध्याको आना,तदनन्तर राज्याभिषेक,इत्यादि कर्म्म मेरेही करेहुए निर्विकार, सर्वान्तर्य्यामी इन श्रीरामचन्द्रजीकेविषें मूढ पुरुष आरोपण करते हैं॥ ४२॥वास्तवमें श्रीरामचन्द्रजी न चलते हैं, न स्थित होते हैं, न पश्चात्ताप करते हैं न किसीवस्तुकी आकांक्षा करते हैं, न किसीवस्तुका त्याग करते हैं और न कुछ कर्म्म करते हैं, किन्तु आनंदमूर्ति हैं, सर्वदा एकरस हैं, परिणामहीन हैं, अचल (कूटस्थ) हैं, तथापि मायाके गुणोंमें प्रविष्ट होकर तिन तिन सांसारिक अवस्थाओंको प्राप्तहुएसे प्रतीत होते हैं, ॥ ४३ ॥ श्रीशिवजी महाराज बोले—कि हे पार्वति ? फिर जीव और ईश्वर आदिका तत्त्व जाननेकी इच्छा करनेवाले हनुमानजीसे श्रीरामचन्द्रजी स्वयं बोले कि हे हनूमान् ? अब मैं आत्मा (ईश्वर), और अनात्मा (चिदाभासजीव), तथा परात्म (शुद्ध चैतन्य) के तत्त्वको वर्णन करता हूँ तुम श्रवण करो॥ ४४॥ जिस प्रकार एकही आकाशके तीनभेद देखनेमें आवे हैं, जैसे कि एक तो

महाकाश (जो सर्वत्र व्यापक है), और दूसरा वही महाकाश जब जलाशयमें होय है तब जलाशयावच्छिन्न आकाश कहलावे है, तथा तीसरा प्रतिबिम्बाकाश जो कि जलमें मेघोंके प्रतिबिम्ब पडनेसे प्रतीत होय है, इसप्रकार तीन भेदोंसे आकाशका व्यवहार होय है, तिसीप्रकार चैतन्य भी तिनप्रकारका है, एक तौ बुद्ध्यवच्छिन्नपूर्ण चैतन्य (अर्थात् सम्पूर्ण बुद्धियोंकी समष्टिरूप मायामें प्रतिबिम्बित होकर सकलविश्वमें व्याप्त ईश्वर) और दूसरा आभासचैतन्य अर्थात् (तिनतिन बुद्धियोंकेविषैं प्रतिबिम्बित-जीव,) तथा तीसरा बिम्बचैतन्य (अर्थात् शुद्ध चैतन्य ब्रह्म) इनमें प्रथमके दो, एक तौ बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्य और दूसरा आभास चैतन्य उपाधिके सम्बन्धसे मिथ्याभूत हैं, और तीसरा शुद्ध चैतन्य ब्रह्म सत्यस्वरूप है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अज्ञ पुरुष, अविच्छिन्न (अर्थात् भेद शून्य), अविकारी, साक्षी परमात्माके विषैं, "मैं देखता हूँ—मैं जानता हूँ—मैं चलता हूँ" इत्यादि आभासयुक्त बुद्धिके धर्म्म भ्रान्तिकरके आरोपण करैं हैं, अर्थात् आभास और बुद्धि तथा इनके कार्य्य मिथ्या हैं, इसकारण मैं देखता हूँ—मैं जानता हूँ इत्यादि व्यवहारभी मिथ्या है, सो मिथ्या व्यवहार सत्यस्वरूप परमात्माकेविषैं नहीं घट सकै है; इसी प्रकार जीव सत्य है नित्य है इत्यादि लौकिक व्यवहारसे सत्यस्वरूप परमात्माकेविषैं अज्ञ पुरुष जीवपना आरोपण करै है, सोभी विचारदृष्टिसे मिथ्या होनेके कारण परमात्माके विषैं नहीं घटसकै है ॥ ४७ ॥ और आभासदृष्टिसे जीव तौ मिथ्या होनेके कारण नित्य नहीं हो सक्ता, और बुद्धि अविद्याका कार्य्य होनेसे दर्पणके विषैं प्रतिबिम्बित मुखकी समान सत्य और नित्य नहीं है, और जो ऊपर चैतन्यके तीन भेद कहे हैं सो वास्तविक नहीं हैं, क्योंकि चैतन्यरूप परब्रह्म तो अविच्छिन्न कहिये, विच्छेद जो भेद तिसकरके रहित है. तहां कहैं हैं कि तव तौ चैतन्यके तीन भेदोंका वर्णन करना निरर्थक हो जायगा? तहाँ समाधान करैं हैं कि चैतन्यमें जो त्रैविध्य (तीन प्रकारका भेद) है सो उपाधिके अध्यासका करा हुआ है, इसीप्रकार जीवोंका परस्पर भेदभी उपाधिके अध्यासकाही करा हुआ है ॥ ४८ ॥ वास्तविक भेदरहित उपाधिके

अध्यासकृत भेदवाले आभासयुक्त चैतन्यका ईश्वरके साथ "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंकरके एकत्व प्रतिपादन कराजाय है, सो कल्पित भेदके विना नहीं हो सकै है, अर्थात् यदि सर्वथा भेद नहीं माना जाय तव तौ "तत्त्वमसि" आदि वेदवाक्योंकी असङ्गति होयगी, और यदि वास्तविक भेद माना जायगा तो अनर्थ हो जायगा, इस कारण कल्पित भेद माना है ॥ ४९ ॥ जव "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंके द्वारा जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान होय है, अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" इसप्रकार ज्ञान हो जाय है, तव अविद्या अपने कार्य्यरूप प्रपञ्चोंकरकेसहित नष्ट हो जाती है ॥ ५० ॥ हे हनूमान्? मेरा भक्त इस तत्त्वको जानकर फिर संसारके विषैं जन्ममरणादिरूप बन्धनको नहीं प्राप्त होता है, और जो पुरुष मेरी भक्ति न करकै मेरी भक्तिके प्रतिपादन न करनेवाले शास्त्ररूपी गढ़ोंके विषैं, मोहको प्राप्त हो रहे हैं, उन पुरुषोंको सैंकड़ों वर्षोंमेभी ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ५१ ॥ हे निष्पाप? हनूमान्? मैंने यह परम गुप्त रखने योग्य और इन्द्रके राज्यसेभी अधिक, तथा मुझ चेतनरूपका हृदय, अथवा मेरे हृदयमें रहनेवाला (इस कारणही यह रामहृदयनामसे प्रसिद्ध है) ज्ञान मैने स्वयं तुमसे कहा है, इसको तुम मेरी भक्तिकरके हीन दुष्ट पुरुषके अर्थ न देना ॥ ५२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति? हे देवि? अत्यन्तही गुप्त, हृदयको आनन्द देनेवाला, अत्यन्त पवित्र, और पापोंको नष्ट करनेवाला श्रीरामहृदय मैने तेरेअर्थ वर्णन करा ॥ ५३ ॥ यह सम्पूर्ण वेदान्तका तत्त्वरूप संग्रह श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं अपने मुख कमलसे वर्णन करा है, इसको जो पुरुष निरन्तर भक्तिपूर्वक पढ़ै वह मुक्त हो जाता है, इसमे कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५४ और अनेक जन्मोंमें करे हुए ब्रह्महत्यादि पाप निःसन्देह नष्ट होजाते हैं, यह श्रीरामचन्द्रजीने कहा है ॥ ५५ ॥ जो पुरुष अपनी जातिसे च्युत हो, अति पापी हो, अन्य पुरुषोंके धन तथा स्त्रीमें प्रीति करनेवाला हो, सदा चोरी करनेमें तत्पर हो, ब्रह्म हत्यारा हो, मातापिताका वध करनेवाला हो, और योगियोंके समूहका तिरस्कार करनेवाला हो, तौभी रामहृदयको भक्तिपूर्वक पूजन करकै यदि पाठ करै तो योगिराजोंकोभी अलभ्य,

सम्पूर्ण देवताओंके पूजनीय पदको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ इत्याध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भव गौड़ वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथतनूजपण्डितरामस्वरूपशर्म्मणा विरचितया भाषाटीकया सहितः प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

श्रीपार्वती बोलीं कि हे भगवन् ! आज मैं धन्य हूं और कृतकृत्य हूं, हे जगत्प्रभो ! आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह करा, आज आपके अनुग्रहसे मेरी हृदयकी महासन्देहरूप ग्रंथि नष्ट होगई ॥ १ ॥ परन्तु हे देव ! आपके मुखसे निकलेहुए संसाररूपी रोगके नष्ट करनेवाले इस रामतत्त्व (रामहृदय) रूप मधुर रसायनको पान करनेसे मेरे मन तृप्त नहीं होय है ॥ २ ॥ मैने आपसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथा संक्षेपसे श्रवण करी, परन्तु अब मेरी ऐसी इच्छा है कि तिस श्रीरामचरित्रको विस्तरपूर्वक श्रवण करूं, सो आप स्पष्ट रीतिसे मेरे अर्थ वर्णन करिये ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले-कि हे पार्वति ! संसारमें सम्पूर्ण वार्त्ताओंसेभी गुप्त जो श्रीरामचन्द्रजीका आध्यात्मिक चरित्र है सो मैं तुम्हारे अर्थ वर्णन करताहूं तुम श्रवण करो, जो चरित्र पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं मेरे अर्थ वर्णन करा है ॥ ४ ॥ तीनो तापोंके नष्ट करनेवाले जिस श्रीरामचरित्रको श्रवण करके प्राणी अज्ञानसे उत्पन्न हुए महाभयदायक संसारसे मुक्त होजाय है, और परम ऐश्वर्य्य तथा दीर्घायु पुत्रपौत्रादि सन्ततिको प्राप्त होय है, तिस रामचरित्रकोही अब तुम्हारे अर्थ वर्णन करताहूं सो सुनो ॥ ५ ॥ जब पृथ्वी, रावण आदि सम्पूर्ण राक्षसोंके भारसे अत्यन्त पीडाको प्राप्त हुई,तब प्रथम गौका रूप धारणकर देवता और ऋषियोंकरके सहित ब्रह्मलोकको गई और तहां नेत्रोंमें जल भरकर अपना सम्पूर्ण दुःख ब्रह्माजीसे कहती भई, तब सर्वान्तर्यामी ब्रह्माजीने मुहूर्त्तमात्र ध्यान करके अपने मनमें सम्पूर्ण वार्त्ता जानली ॥ ६ ॥ और ब्रह्माजी देवताओंको तथा पृथ्वीको साथ लेकर तहांसे क्षीर समुद्रके तट पर गए, तहां पहुँचतेही भक्तिकी अधिकताके कारण ब्रह्माजीके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंका निर्म्मल प्रवाह बहनेलगा, और पुराणोंकेविषैं वर्णन करे हुए वेदानुकूल और निर्मल पदोंकरके रचे हुए अनेक स्तोत्रोंकरके

गद्गदवाणीसे सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी निर्विकार—सर्वज्ञ—भक्तोंके दुःखों को दूर करनेवाले जो विष्णु भगवान् तिनकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ तब प्रकाशवान् सहस्रों सूर्य्योंकी समान कान्तिवाले विष्णु भगवान् पूर्व दिशाके विषैं अन्धकारको दूर करते हुए प्रकट हुए ॥८॥ चित्तको वशमें न करनेवाले पुरुषोंको जिनका दर्शन परम दुर्लभ है ऐसे इन्द्रनील मणिकी समान श्याम वर्ण; किञ्चित् हास्ययुक्त मुखवाले, पद्मनेत्र, मुकुट—हार—केयूर (बाजूबन्द)—कुण्डल—और कटक (खंडुए) आदि करकै शोभाय मान श्रीवत्स और कौस्तुभ मणिकी कान्तिकरके जिनका शरीर शोभाय-मान है, स्तुति करतेहुए सनक—सनन्दनादि तथा पार्षद जिनके चारों ओर खड़े हैं. शंख—चक्र—गदा—पद्म—और वनमाला करकै अति मनोहर, सुवर्णके यज्ञोपवीतको धारण करे हुए, सुवर्णकी समान देदीप्यमान पीताम्बरको पहिने हुए, लक्ष्मी और भूमि करकै सहित, और गरुड़के ऊपर विराजमान श्रीविष्णु भगवान्को ब्रह्माजीने अतिकठिनसे देखा और गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले—कि हे भगवन्! प्राण बुद्धि मन और इन्द्रियों करके आपके चरणकमलोंमें प्रणाम है, जिन आपके चरणोंका कर्मरूपी फांसीसे मुक्त होनेके इच्छा-करनेवाले योगी पुरुष निरन्तर हृदयके विषैं ध्यान करते हैं ॥ १४ ॥ हे भगवन्! तुम त्रिगुणमयी मायाकरकै जगत्को उत्पन्न करोहो, पालन करो हो, और संहार करो हो, परंतु तुम आनंदरूप जो अनुभव तद्रूप हो इस कारण सृष्टिकी रचना आदि कर्मोंकरकै लिप्त नहीं होओहो अर्थात् मैं सृष्टिका करनेवाला हूं इस प्रकारका अभिमान आपको नहीं होय है ॥ १५ ॥ विषयासक्तिकरकै अथवा अज्ञानकरकै अथवा अन्यकारणों करकै जिनके अन्तःकरण मलिन हो रहे हैं तिन पुरुषोंकी आपके चारि-त्रोंके विषैं भक्ति करनेसे जिसप्रकार शुद्धि होती है, तिस प्रकार शुद्धि अनेक दान—वेदपाठ और बहुतसे यज्ञ करनेसेभी नहीं होय है ॥ १६ ॥ इसकारण भक्ति करनेवाले मुनिजनोंकरके अन्तःकरणके विषैं नित्य ध्यानकरे हुए आपके चरणकमलका जो मुझै दर्शन हुआ है सो मेरे अन्तःकरणके

रणके दोषोंको शीघ्रही दूर करै ॥ १७॥ कैसे चरण हैं कि जिन चरणोंका पूर्व कालमें हम ब्रह्मादिकोंने अपने कार्य्यकी सिद्धिके अर्थ सेवन करा है अर्थात् जब किसी कार्यमें हमारे ऊपर विपत्ति पड़ती है तब यह आपके चरणकमलही रक्षक होते हैं, जिन चरणोंका ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ ज्ञानी पुरुष हृदयकेविषैं ध्यान करते हैं ॥ १८ ॥ हे भगवन्! लक्ष्मी आपके वक्षःस्थलमें स्थानको प्राप्त होकरभी आपके चरणोंकी पूजाके विषैं निर्माल्यरूपको प्राप्त हुई तुलसीकी मालाके साथ सपत्नीकी समान स्पर्धा (हिर्स) करै है ॥ १९ ॥ तुह्मारे चरणकमलोंकी भक्ति करने वाले भक्तोंपर तुह्मारा प्रेम लक्ष्मीसेभी अधिक है, इसकारण सारको जान-नेवाले भक्त पुरुष आपके चरणोंकेविषैं भक्ति होनेकी ही इच्छा करते हैं, अन्य किसीभी वस्तुकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ २० ॥ इस कारण आपके चरणकमलकेविषैं सदा मेरी भक्ति होय, क्योंकि संसार-रूपीरोगसे दुःखित हुए पुरुषोंकी औषधि केवल आपकी भक्तिही है॥ २१ ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्माजीसे विष्णु भगवान् बोले कि तुह्मारा क्या कार्य्य है जिसको मैं करूँ, इसप्रकार विष्णुभगवान्‌के कहनेसे अति प्रसन्न हुए ब्रह्माजी बोले ॥ २२ ॥ कि हे भगवन्! परम पराक्रमी पौल-स्त्य ऋषिका पुत्र रावण सदा लोकपालोंसहित सम्पूर्ण संसारको पीड़ा देताहै, क्योंकि वह राक्षसपति मेरे दिये हुए वरदानसे बड़ा गर्वयुक्त हो रहाहै. हे विश्वका कल्याण करनेमें समर्थ भगवन्! मैंने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथसे रचीहै ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसकारण हे प्रभो! आप मनुष्यका रूप धारण करकै उस देवताओंके शत्रुका नाश करो, इसप्र-कार कहनेपर श्रीविष्णु भगवान् बोले कि हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें कश्यप ऋषिने तपस्या करकै मुझे प्रसन्न करा तब मैंने उसे वरदान दियाहै॥ २५॥ वह वरदान यह है कि तिस कश्यप ऋषिने मुझसे ऐसा वर मांगा कि "तुम मेरे पुत्ररूपसे उत्पन्न होओ" और मैंने "तथास्तु" कहकर उसको अं-गीकार करलिया सो इस समय वह कश्यपऋषि पृथ्वीतलकेविषैं "दश-

रथ" नाम राजा होकर स्थितहै ॥ २६ ॥ मैंने तिस कश्यपऋषिके पुत्र होनेका जिसप्रकार संकल्प कराहै तिसप्रकारही कश्यपके अवतार राजा दशरथकी स्त्री कौसल्या तथा अन्य दोनों स्त्रियोंकेविषैं अर्थात् राजा दशरथकी कौसल्या आदि तीनों रानियोंकेविषैं शुभ समयमें मैं अलग २ चार अवतारोंको ग्रहण करूंगा ॥ २७ ॥ और उससमय योगमायाभी राजा जनकके यहाँ सीतानाम करकै उत्पन्न होयगी, तिस सीताकरके सहित मैं सम्पूर्ण कार्य्योंको पूर्ण करूंगा ॥ २८ ॥ इसप्रकार कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्द्धान होगए, तब ब्रह्माजी देवताओंसे कहने लगे, ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओं! विष्णु भगवान् मनुष्यरूपकरके रघुकुलकेविषैं अवतार लेंगे ॥ २९ ॥ सो तुम सबभी अपने अपने अंशोंकरके वानरोंकेविषैं अवतार लो और जबतक विष्णु भगवान् पृथ्वीतलमें रहैं तबतक उनकी सहाय करो ॥ ३० ॥ इस प्रकार देवताओंको आज्ञा देकर और पृथ्वीको आश्वासन देकर ब्रह्माजी अपने स्थानको चलेगए और निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक स्थितहुए ॥ ३१ ॥ इधर सम्पूर्ण देवता पर्वत और वृक्षरूपी शस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले महापराक्रमी वानरोंका रूप धारणकरकै तिन सर्वज्ञ सर्वसमर्थ ईश्वरकी वाट देखने लगे और उनकी सहाय करनेके निमित्त पर्वत और अरण्य आदि भिन्न भिन्न स्थानोंके विषैं निवास करने लगे ॥ ३२ ॥ इत्यध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे द्वितीयसर्गस्य मुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपशर्म्मणाकृतासान्वयभाषाटीकासमाप्ता ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति! पूर्वकालमें अयोध्यानगरीकेविषैं सत्य बोलनेको परम धर्म्म माननेवाला, महापराक्रमी, इसकारणही सम्पूर्ण संसारकेविषैं प्रसिद्ध, और परमऐश्वर्य्ययुक्त दशरथनामवाला एक राजा होताभया ॥ १ ॥ सन्तानके न होनेके दुःखकरके पीड़ित वह राजा दशरथ एकसमय अपने कुलके आचार्य्य तथा उपदेश करनेवाले गुरु वसि-

टको प्रणाम करकै इसप्रकार कहने लगे ॥ २ ॥ कि हे गुरो! किस उपायके करनेसे मुझे सम्पूर्ण शुभलक्षणोंकरकेयुक्त पुत्र प्राप्त होंगे, पुत्रके न होनेसे इस सम्पूर्ण राज्यसेभी सुख नहीं होताहै उलटा दुःखही होताहै ॥ ॥ ३ ॥ इसप्रकार राजा दशरथके कहनेपर वसिष्ठजी बोले कि हे राजन्! गाम्भीर्य्य आदि गुणोंके देखनेसे लोकोंको मनुष्यका रूप धारण करेहुए लोकपालोंकी समान प्रतीत होनेवाले चार पुत्र तुह्मारे होंगे ॥ ४ ॥ सो तुम शान्ताके पति महातपस्वी ऋष्यशृङ्गको बुलाकर हम सबकरके सहित पुत्रेष्टियज्ञको शीघ्र करो ॥ ५ ॥ राजा दशरथने इसप्रकार वसिष्ठजीके कथनको स्वीकार करकै मन्त्रियोंकेद्वारा ऋष्यशृङ्गको बुलावा लिया, और पवित्र होकर महात्मा ऋषियोंकरके सहित यज्ञ करनेका प्रारम्भ करा ॥ ६ ॥ तदनन्तर भक्तिपूर्वक अग्निकेविषैं हवन करनेपर अग्निकरके तपाए हुए सुवर्णकी समान कान्तिवाला साक्षात् अग्नि देवता हाथमें सुवर्णके पात्रमें स्थित पायस (खीर) को ग्रहणकरकै बोला ॥ ७ ॥ कि हे राजन्! देवताओंकरके उत्पन्न करेहुए इस परमदुर्लभ पुत्रके देनेवाले दिव्य पायसको ग्रहण करो, निःसंदेह इसके प्रभावसे परमात्मारूप पुत्रको प्राप्त होओगे ॥ ८ ॥ इस प्रकार कहकर और राजाको पायस देकर वह अग्निदेव अन्तर्धान होगए, तब पूर्ण हुआ है मनोरथ जिनका ऐसे राजा दशरथने वसिष्ठजी और ऋष्यशृंगको प्रणाम करा ॥ ९ ॥ तदनन्तर वसिष्ठ और ऋष्यशृंगकी आज्ञाके अनुसार राजा दशरथने प्रयत्नसे उस चरुके दो भाग करकै एक भाग कौसल्याको दिया, और एक भाग कैकेयीको दिया ॥ १० ॥ तदनन्तर पुत्रके देनेवाले चरुके ग्रहण करनेकी इच्छा करती हुइ सुमित्रा तहां आई, तब कौसल्याने परम प्रसन्न होकर अपने भागमेंसे आधाभाग सुमित्राको दिया ॥ ११ ॥ और कैकेयीनेभी प्रसन्नतापूर्वक अपने भागमेंसे आधा चरु सुमित्राको दिया, इसप्रकार तीनों रानी तिस चरुको भक्षण करकै गर्भवती हुईं ॥ १२ ॥ वह तीनों रानी राजमन्दिरकेविषैं अपने तेजकरके देवताओंकी समान शोभित हुईं,

तदनन्तर दशमें मासमें कौसल्याने अद्भुत पुत्रको उत्पन्न करा ॥ १३ ॥ यह अवतार, चैत्रशुद्ध नवमी, पुनर्वसु नक्षत्र, शुभकारक कर्क लग्नके समय हुआ इस समय रवि, मंगल, गुरु, शुक्र और शनि यह पांचों ग्रह अपने अपने उच्च स्थानोंकेविषैं स्थित थे ॥ १४ ॥ और मेषराशिपर सूर्य्य था; तब जगत्पति अविनाशी परमात्माने अवतार धारण करा; उससमय देवताओंने आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा करी ॥ ॥ १५ ॥ कौसल्याके ऊपर अनुग्रह करके भगवानने जन्मसमयमें जो स्वरूप धारणकरा तिसका वर्णन करैं हैं कि भगवानकी इस मूर्त्तिका नीलकमलके दलकी समान नीलवर्ण था; पीताम्बरको धारणकरेहुएथे, चार भुजा थीं, नेत्रोंके कोए लाल कमलकी समान रक्तवर्ण थे, देदीप्यमान कुण्डलोंको धारण करे हुएथे, हजारोंसूर्य्योंकी समान प्रकाश था, किरीटको धारण करेहुए, और घुंघराली अलकोंकरके शोभित होरहेथे, चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, और कण्ठमें वनमालाको धारण कर रहेथे, हृदयकेविषैं स्थित जो भक्तोंके ऊपर अनुग्रहरूप चन्द्रमा उसको सूचित करनेवाली जिनकी मन्दमुसक्यानरूप चांदनी थी, करुणा रससे भरेहुए जिनके कमलकी समान चौड़े नेत्र थे, और श्रीरामचन्द्रजी श्रीवत्स,हार,बाजूबन्द,नूपुरआदि आभूषणों धारण करेहुएथे, तिन साक्षात्परमात्माको देखकर कौसल्या बड़े आश्चर्य्यमें होगई और नेत्रोंमें आनन्दके आँसुओंका प्रवाह भरकर प्रणाम करा, और हाथ जोडकर बोली॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ कौसल्या बोली कि हे देवदेव! हे शंख, चक्र, गदाके धारण करनेवाले भगवन्! आपके अर्थ नमस्कार है आप देवताओंकोभी दिव्यज्ञान देनेवाले हो, आप अपने स्वरूपसे कदापि च्युत नहीं होते हो, तुह्मारे गुण अनन्त हैं, आपको कोई "अमुक समय अमुक देशमें रहते हैं" ऐसा नहीं कहसक्ता इसकारण आप सर्वव्यापक हो, और सम्पूर्ण जीवोंसे श्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ वेदके ज्ञाता पुरुष आपके स्वरूपको इसप्रकार वर्णन करते हैं; कि तुम वाणी-बुद्धि-और मन आदि-

करके जाननेमें नहीं आओहो, इन्द्रियोंकरके आपका बोध नहीं होयहै केवल सत्तामात्रही आपका रूपहै, और एक ज्ञानमात्रही आपका शरीर है ॥ २१ ॥ तुम सत्व-रज-तम-इन तीन गुणोंकरके युक्त जो ब्रह्मा-विष्णु-महेश नामक देवता तिनके अवतारोंको धारणकरकै मायाके यो-गसे जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-और प्रलय करोहो, परन्तु वास्तवमें तुम तुरीय अर्थात् त्रिगुणात्मक ब्रह्मादि तीनों मूर्तियोंसे अलग हो, तुम्हारे विषें मायासे उत्पन्न हुए कोई दोष नहीं लगसकैंहैं ॥ २२ ॥ तुम मायाके गुणोंके योगसे अनेक प्रकारकी क्रिया करते हुएसे दीखोहो, परन्तु वास्तवमें कुछ कार्य्य नहीं करोहो और गमन करते हुएसे प्रतीत होओहो परन्तु गमन नहीं करोहो, श्रवण करते हुएसे प्रतीत होओहो परन्तु वास्तवमें श्रवण नहीं करोहो, देखतेहुएसे प्रतीत होओहो परन्तु वास्तवमें नहीं देखोहो ॥ २३ ॥ वेदोंने इसप्रकार वर्णन कराहै कि आत्मस्वरूपकेविषैं प्राण नहीं हैं, मन नहीं हैं, और परमात्मा निर्मल अर्थात् मायाकल्पित रागद्वेषादिकरके रहित है. और हे भगवन् ! सत्तारूपकरके सम्पूर्ण पदार्थों केविषैं स्थितभी तुम जिन पुरुषोंके अन्तःकरणोंकेविषैं अज्ञानरूपी अन्ध-कार छारहाहै उनको प्रतीत नहीं होतेहो, केवल ज्ञानी पुरुषोंकोही आप-के स्वरूपका अनुभव होताहै, और अनन्तकोटिब्रह्माण्ड आपके उदर (पेट) में परमाणुओंकी समान उड़तेहुए दीखतहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ सो तुम "मेरे उदरसे उत्पन्नहुए" इसप्रकार लोकोंको दिखातेहो, इस कारण हे रघुवीर ! आज मैंने तुम्हारा भक्तोंके वशमें होना देखलिया, अर्थात् तुम सदा भक्तोंके वशमें रहतेहो इस कारण यह क्रीड़ा आपको करनी पड़ीहै ॥ २६ ॥ संसाररूपी समुद्रकेविषैं पति-पुत्र-धनआदि तर-ङ्गोंकेविषैं घूमती हुई मैं आज आपके चरणकमलोंके समीप प्राप्तहुई हूँ इस कारण मैं धन्य हूँ ॥ २७ ॥ अब तुमसे मेरी यह प्रार्थना है कि हे देव ! तुह्मारा यह रूप सदा मेरे मनमें स्थितरहै, और सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली माया मुझे कदापि मोहित नहीं करै ॥ २८ ॥ हे सर्व व्या-

एक ब्रह्मानन्द स्वरूप ईश्वर ! कभीभी लोकोंके दृष्टिगोचर नहीं होनेवाले इस अपने अद्भुतरूपको दूर करके अतिशय कोमल वालरूपको दिखाओ ॥ २९ ॥ मैं तिस आपके वालरूपसे प्रेमपूर्वक आलिङ्गन और भाषणकरके इस प्रचण्ड अज्ञानरूप संसारको तरजाऊंगी, श्रीभगवान् बोले-कि हे मातः ! तेरे मनमें जो जो अभिलाषा है वह सब तेरे चित्तके अनुसारही होयगी ॥ ३० ॥ "पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त रावण का वध करो" इस कार्य्यके निमित्त ब्रह्माजीने पहिले मुझसे प्रार्थना करीथी इस कारण मैंने मनुष्यरूप धारण कराहै ॥ ३१ ॥ और पूर्वकालमें तू और राजा दशरथ दोनोंने मिलकर तपकरके मुझे प्रसन्न कराथा, तब तुमने मुझको पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेकी प्रार्थना करीथी, सो मैंने तुह्मारा मनोरथ पूर्ण करदिया अर्थात् इस कारण मैं तुह्मारे पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआहूँ ॥ ३२ और तुझे यह जो मेरे इस रूपका दर्शन हुआ है, सो पूर्वजन्मके तपका फल है, क्योंकि मेरा दर्शन पुण्यहीन पुरुषको नहीं होता है, और मोक्षकी प्राप्ति होना मेरे दर्शनका फल है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष इस हमारे संवादको पढ़ैगा अथवा सुनैगा उसको मुझ सरीखा स्वरूप प्राप्त होयगा, अर्थात् मोक्षकी प्राप्ती होजायगी, और अन्तमें मेरा स्मरण होयगा ॥ ३४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार मातासे कहकर तत्काल वालरूप धारण करके रुदन करने लगे, तिस वालस्वरूपका वर्ण देखनेमें इन्द्रनीलमणिकी समान था, विशाल नेत्र थे, स्वरूप परम सुन्दर था और बालसूर्य्यकी समान कान्ति थी, तिन श्रीरामचन्द्रजीके अवतार धारण करनेसे इन्द्रादि सम्पूर्ण लोकपालोंको परमानन्द हुआ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने जब "पुत्र हुआ है" यह आनन्दकी वार्त्ता सुनी तब तौ आनन्दके समुद्रमें मग्न हो गए, और तत्काल गुरु वसिष्ठको साथ लेकर सूतिगृहमें आये ॥ ३६ ॥ कमलके दलकी समान सुन्दर नेत्रवाले तिस बालकको देखतेही राजा दशरथके नेत्र आनन्दके आंसुओंसे भरगए और गुरु वसिष्ठसे उस समय करनेयोग्य सम्पूर्ण जातक कर्म्म करवाए ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कमलकी समान मुखवाली कैकेयीके भरत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और तदनन्तर पूर्ण-

चन्द्रमण्डलकी समान मुखवाले दो पुत्र सुमित्राके उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ तदनन्तर राजा दशरथ प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको सहस्र ग्राम देता भया करा, और सुवर्णके आभूषण-रत्न-वस्त्र-तथा सुन्दर गौ दीं ॥ ३९ ॥ ज्ञान-करके अज्ञानका नाश होय, इसकारण जिनकेविषैं मुनिजन रमण करते हैं, तिस ईश्वरके मुख्य अवतारका वसिष्ठमुनिने " राम " यह नाम रक्खा ॥ ४० ॥ और कैकेयीके पुत्र दूसरे बालकका " भरत " नाम धरा; क्योंकि वह सम्पूर्ण प्रजाका भरण अर्थात् पोषण करैगा ऐसा ज्योतिःशास्त्रानुसार विचारमें आया, और तीसरे सुमित्राके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुन्दर लक्षण युक्त होनेके कारण " लक्ष्मण " रक्खा. और चौथे सुमित्राके छोटे पुत्रका नाम " शत्रुघ्न " रक्खा. क्योंकि यह शत्रुओंका नाश करैगा ऐसा ज्योतिः-शास्त्रानुसार विचारमें आया ॥ ४१ ॥ यह चारों पुत्र चरुके अंश भक्षण करनेसे उत्पन्न हुए ऐसा पहिले कह आए हैं, जब राजा दशरथने चरुका विभाग करा तब सुमित्रा समीपमें नहीं थी इसकारण उसको चरुका कोइ भाग नहीं मिला, परन्तु पीछेसे कौसल्याने और कैकेयीने अपने अपने भागमेंसे आधा आधा भाग सुमित्राको दिया, इसप्रकार सुमित्राको चरुका भाग दूसरी दोनो रानियोंकी अपेक्षासे दुगुना मिला , इस कारण सुमित्राके दो पुत्र हुए; तिस सुमित्राके दोनो पुत्रोंमें जो पुत्र जिस पायसके भागसे उत्पन्न हुआथा वह उस पायससे उत्पन्न हुए बालकके साथही अधिकतर रहताथा, अर्थात् लक्ष्मण रामचन्द्रजीके साथ और शत्रुघ्न भरतजीके साथ; इसप्रकार वह दो दो मिलकर फिरतेथे ॥ ४२ ॥ रामचन्द्रजी जिधरको जातेथे उधरकोही उनके साथ लक्ष्मणजी जातेथे. तिन श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण दोनोंने नाना प्रकारकी बाललीला करकै अर्थात् घुटुओं चलना आदि नाना प्रकारकी चाल और तोतली बोली आदि नाना प्रकारके भाषण करकै मातापिताको परम आनन्द दिया ॥ ४३ ॥ ललाटके विषैं मोतियोंसे गुँथे हुए सुवर्णके पीपलके पत्राकार भूषणको धारण करे हुए, और कण्ठकेविषैं जिसके मध्यमें व्याघ्रके नख पुए हुए हैं ऐसे अनेक रत्न और मणियोंके हारको धारण करे हुए ॥ ४४ ॥ और दोनों

कर्णोंकेविषैं अर्जुन वृक्षके कच्चे फलकी समान रत्नजटित स्वर्णके आभूषणको धारण करे हुए, और रमणीय शब्द करनेवाली घण्टिकाओंकरके युक्त कन्धनी और बाजूबन्दोंको धारण करे हुए, ॥ ४५ ॥ और छोटे छोटे दाँतोंकरके युक्त मुखसे मुसकुराते हुए, इन्द्रनीलमणिकी समान कान्तिमान्, गौओंके बछड़ोंके पीछे पीछे पूँछका सिरा पकड़कर आँगनमें चारोंओर फिरते हुए तिन श्रीरामचन्द्रजीको देखकर राजा दशरथ और कौसल्या परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥ राजा दशरथने भोजन करनेके निमित्त बैठतेही परम आनन्द और प्रेमसे श्रीरामचन्द्रजीको "हे राम आओ भोजन करो" इस प्रकार अनेकवार बुलाया परंतु वह श्रीरामचन्द्रजी खेलमेंही लगे रहे आए नहीं ॥ ४७ ॥ तब राजा दशरथने कौसल्यासे कहा कि इसको पकड़कै लेआओ, तब वह कौसल्या पुत्रको पकड़नेके निमित्त हँसती हँसती पीछे भागी परन्तु श्रीरामचन्द्रजी हाथ नहीं आए, योगीजन अनेक जन्मों पर्य्यन्त योगसाधन करते हैं, तब कहीं उन योगियोंके मनकी दौड़ तिन श्रीरामचन्द्रजी पर्य्यन्त पहुँचती है, फिर वह परमात्मा कौसल्याके हाथ किस प्रकार आते? कौसल्या उनके पकड़नेको समर्थ नहीं हुई यह ठीकही है ॥ ४८ ॥ फिर यदि इच्छा हुइ तो कींचमें हाथ सने सनाए हँसते हुए श्रीरामचन्द्रजी स्वयं आए और एक ग्रास लेके फिर चले गए ॥ ४९ ॥ तिन श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्या प्रत्येक महीनेमें श्रीरामचन्द्रजीको स्नान कराकर और आभूषण पहिनाकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको नाना प्रकारके वायने देतीथी ॥ ५० ॥ वह कौशल्या जब श्रीरामचन्द्रजीका प्रतिवर्ष जन्मदिन आता था, तब पूए—लड्डू—कर्णशष्कुली—कर्णपूर आदि नाना प्रकार भोजन बनाकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको वायना देतीथी ॥ ५१ ॥ इन श्रीरामचन्द्रजीकी बालस्वभावकी चपलताके कारण तिस कौसल्याने घरके काम करना छोड़दिये, एक समय यह श्रीरामचन्द्रजी माताके समीप गए, और मातासे कहने लगे कि ॥ ५२ ॥ हे मातः! मुझे भोजन दे, परन्तु इस श्रीरामचन्द्रजीके कथनको किसी कार्यमें तत्पर होनेके

कारण कौसल्याने नहीं सुना, तिससे श्रीरामचन्द्रजीको क्रोध आगया, सो हाथमें लकड़ी लेकर बरतन भाँडे फोड़ने लगे ॥ ५३ ॥ सो छींकेपर धरे हुए दूध—दधि—और माखनको गिरालिया, और वह दुग्धादि प्रथम लक्ष्मणको दिया, फिर क्रमसे भरतजीको दिया ॥ ५४ ॥ पीछेसे शत्रुघ्नकोभी वह दधि और दुग्ध दिया, यह वार्त्ता देखकर जब रसोय्येने कौसल्यासे कही तब श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए भागगए ॥ ५५ ॥ फिर जब कौसल्या आई तौ देखतेही सब भागगए, तब कौसल्याभी पकडनेको उनके पीछे भागने लगी, परन्तु अतिकठिनसे पदपदपर गिरगिरकर अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पकड़ लिया, परन्तु कुछ कहा नहीं, रामचन्द्रजीभी छोटे बालककी समान हौलेहौले रुदन करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर माताने उन सबको हृदयसे लगाकर यत्नसे चुपाया, श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण आनन्दोंके समूह हैं, और सम्पूर्ण जगत्को आनन्द देतेहैं, तिन श्रीरामचन्द्रजीने मायाके योगसे बालरूप धारण करके इसप्रकार तिन कौसल्या और दशरथ दोनोंको आनन्द दिया, तदनन्तर कुछ कालके व्यतीत होनेपर वह चारों भ्राता कुमार अवस्थाको प्राप्तहुए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ तदनन्तर वसिष्ठ मुनिने उनका उपनयन संस्कार करा, चारों भ्राता विद्यामें प्रवीण हुए, और शस्त्रविद्यामें तौ अत्यन्तही प्रवीण हुए, और उन चारोंमें प्रत्येकने सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वार्थसहित अभिप्रायको जाना, इन्होंने लीलाकरके मनुष्यरूप धारण कराथा, वास्तवमें वह सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी थे, तिनमें लक्ष्मणजी सदा आदर पूर्वक श्रीरामचन्द्रकी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करते थे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ तिसीप्रकार शत्रुघ्न सेव्यसेवकभावकरके भरतजीकी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करते थे, श्रीरामचन्द्रजी महापराक्रमी हुए, वह श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीकरके सहित हाथमें धनुष और बाण और पींठपर तरकस धारण करकै तथा घोड़ेपर चढ़के प्रतिदिन शिकार खेलनेको वनमें जातेथे, और अनेक दुष्ट पशुओंका वध करकै सम्पूर्ण वृत्तान्त पिताके अर्थ वर्णन करतेथे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तिन श्रीरामचन्द्रजीका नित्यका क्रम ऐसा था कि

प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर तथा स्नानसन्ध्यादि करके और नम्रतापूर्वक मातापिताको प्रणाम करके नगरके मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य्य पूर्ण करतेथे ॥ ६४ ॥ तदनन्तर सब भ्राताओंसहित प्रतिदिन विद्वान् और विचारशील ब्राह्मणोंको साथ लेकर भोजन करतेथे, और भोजनके अनन्तर धर्म्मशास्त्रमें के रहस्यों (गुप्तवार्त्ता ओं) को श्रवण करतेथे. और उनका व्याख्यान करतेथे, यह श्रीरामचन्द्रजीका नियम कदापि नहीं टलताथा ॥ ६५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार मनुष्यका रूप धारण करके मनुष्यकी समान यह सम्पूर्ण लीला करीं, वास्तविक विचार करनेमें वह कुछ कार्य्य नहीं करतेहैं. क्योंकि वह साक्षात् परमात्मा हैं, उनको किसीप्रकारका विकार नहीं होताहै इसकारण उनके स्वरूपमें किसीप्रकार परिणाम नहीं होताहै ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपविरचितया भाषाटीकया सहितस्तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति ! एकसमय अग्निसमान तेजकरके देदीप्यमान विश्वामित्र मुनि, परमेश्वरने अपनी मायाकरके रामावतार धारण करा है, यह जानकर, उनके दर्शन करनेके निमित्त अयोध्यानगरीकेविषैं आए ॥ १ ॥ तिन विश्वामित्रऋषिको देखतेही सन्मान करनेकेनिमित्त राजा दशरथ तत्काल उठ खड़े हुए, और तिन राजा दशरथने वसिष्ठजीकी सम्मतिके अनुसार विश्वामित्रऋषिका पूजन करके विधिपूर्वक सत्कार करा ॥ २ ॥ राजा दशरथ हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक अपनी बुद्धिको विश्वामित्रऋषीके चरणोंमें नम्र करा, और प्रणाम करके विश्वामित्रजीसे बोले कि हे तपोधन! आपका शुभागमन हुआ, इसकारण मैं कृतार्थ हुआहूँ ॥ ३ ॥ आपसरीखे महात्मा जिस स्थानमें जाते हैं, तहाँ सम्पूर्ण सम्पत्तियें आजाती हैं, हे मुने ! आप जिस कार्य्यकेनिमित्त यहाँ आए हैं, सो मेरेअर्थ आज्ञा

करिये, मैं उस कार्य्यको अवश्यही करूँगा ॥ ४ ॥ इसप्रकार राजा दशरथके कथनको श्रवण करके महाबुद्धिमान् विश्वामित्रऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए, और राजा दशरथसे बोले कि—हे दशरथ! मैं पौर्णिमा अथवा अमावास्याके आनेपर पर्वकाल देखकर जिसजिससमय देवता और पितरोंकी आराधना करनेके उद्देशसे यज्ञकर्म्मका प्रारम्भ करताहूँ, उस समयमें मारीच—सुबाहु—तथा और उनके सेवक जो राक्षस हैं सो सदा विघ्न करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इसकारण उनका वध करनेके निमित्त तुह्मारे ज्येष्ठपुत्र श्रीरामचन्द्रजी और उनके साथ उनके छोटे भ्राता लक्ष्मण इन दोनोंको मुझै देओ, तिससे तुह्मारा कल्याण होयगा ॥ ७ ॥ विश्वामित्रजीके इस वचनको श्रवण करके राजा दशरथ बड़ी चिन्तामें पडगए, और विषयमें गुरु वसिष्ठजीसे सम्मति करी, तब वसिष्ठजीने एकान्तमें राजा दशरथसे कहा कि यदि इच्छा होय तो देदो ॥ ८ ॥ तब दशरथ बोले कि हे गुरो! क्या करूँ! मेरा मन रामचन्द्रजीके छोड़नेको नहीं करता है, अनेक सहस्रवर्षके अनन्तर महाकष्टसे यह चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ९ ॥ उनके गुणमें कहाँलौं वर्णन करूँ, वह चारोंए देवताओंकी समान हैं, तिनमें रामचन्द्र तौ मुझै अत्यन्तही प्रिय हैं, रामचन्द्रजीके यहाँसे चले जानेपर सैंकड़ों उपाय करनेसेभी मैं नहीं जी सकूँगा ॥ १० ॥ और यदि विश्वामित्र ऋषिसे रामचन्द्रके देनेको नहीं करदूँगा तो ऋषि निःसन्देह शाप देदेंगे, इस विषयमें मैं किसरीतिसे बचारहूँ, और कल्याण होय, तथा कथनभी असत्य नहीं होय? ॥ ११ ॥ इसप्रकार राजा दशरथके कथनको श्रवण करके वसिष्ठ मुनि बोले कि—हे राजन्! देवताओंकी एक गुप्त वार्त्ता तुमसे कहताहूँ सो श्रवण करो, यह प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, हे राजन्! रामचन्द्र मनुष्य नहीं हैं, यह जन्ममरणरहित साक्षात् परमेश्वरका अवतार हैं, ॥ १२ ॥ हे राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त इनकी प्रार्थना करी थी, इस कारण यह तुह्मारे यहाँ कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं, यह तुह्मारे पूर्व जन्मके पुण्योंका फल है ॥ १३ ॥ हे राजन्! तुम पूर्वजन्ममें ब्रह्माके पुत्र कश्यपनामक प्रजापति थे, और कौसल्या उससमय अदिति नामवाली

देवमाताथी, जिसका सुयश सर्वत्र प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ तुम दोनोंने उस जन्ममें अनेक वर्षोंपर्य्यन्त तीव्र तप करा, और तुम दोनोंने आहारविहारादि ग्राम्य सुखका उपभोग त्याग दिया, और विष्णुभगवान्‌के पूजन तथा ध्यान करनेमें शरीर और मनको एकाग्र होकर लगादियाथा ॥ १५ ॥ तिससमय वरदान देनेवाले तथा भक्तोंपर कृपा करनेवाले ईश्वर तुम दोनोंके तपसे प्रसन्न होगए, और "वर मांगो" इसप्रकार कहा, तब तुमने जगत्‌की सृष्टि–स्थिति और प्रलय करनेवाले परमात्मासे "हे निर्मलस्वरूप ईश्वर तुम हमारे पुत्र होओ" ऐसा वर मांगा, ॥ १६ ॥ तब परमात्मा "तथास्तु" कहकर वरदान दिया, वही परमात्मा इससमय तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लेकर उत्पन्न हुए हैं, और लक्ष्मण शेषजीका अवतार हैं, सो रामचन्द्रजीके पीछेही आए हैं, और भरत तिन शंखचक्रगदाधारी भगवान्‌के चक्रका अवतार हैं, और शत्रुघ्न गरुडका अवतार हैं, इसप्रकार देखकर योगमायाभी सीता नामकरके जनककी पुत्री हुई है ॥ १७ ॥ १८ ॥ और विश्वामित्रमुनिभी तिस सीतानामक योगमायाको रामचन्द्रसे शरीरसम्बन्धका योग करनेके निमित्त लेनेको यहाँ आए हैं, हे राजन्! यह वार्त्ता अत्यन्त गुप्त है, इसकारण किसीसे कहना योग्य नहीं है, और विश्वामित्रऋषिकी सन्तुष्ट अन्तःकरणसे पूजा करो और लक्ष्मणसहित लक्ष्मीपति रामचन्द्रको उनके साथ भेजदो ॥ १९ ॥ २० ॥ जब वसिष्ठजीने इस प्रकार कहा तब तौ राजा दशरथके मनमें अत्यंत हर्ष हुआ, और अपनेको कृतकृत्य माना ॥ २१ ॥ और हे राम! हे राम! हे लक्ष्मण! इसप्रकार आदरपूर्वक राम लक्ष्मणको बुलाकर हृदयसे लगाया, और मस्तककेविषैं सूँघकर दोनोंको विश्वामित्रजीको अर्पण किया ॥ २२ ॥ तब राम और लक्ष्मणके मिलनेसे विश्वामित्रजी परम आनंदको प्राप्त हुए, और परम ज्ञानी प्रभावशाली विश्वामित्रऋषिने राजा दशरथको अनेक आशीर्वाद दिये और गौरव करा, और धनुषबाण तथा तरकस धारण करनेवाले आए हुए श्रीरामलक्ष्मणको साथ लेकर चलदिये, कुछ मार्ग चलकर विश्वामित्रऋषिने परम भक्तिपूर्वक रामचंद्रजीको समीप बुलाकर उन्हे देवताओंकी रची हुई बला

(शारीरक सामर्थ्य देनेवाली), और अतिबला (मनोवाञ्छित कार्य्यकी सिद्धि करनेवाली) नामक दो विद्या दीं, जिन विद्याओंके ग्रहण करनेमात्रसे क्षुधाके कारण क्षीणता और संतापकी प्राप्ति नहीं होती है॥ २३ ॥ २४॥ २५ ॥ तदनंतर वह तीनों भागीरथीको उतरकर ताडकाके वनमें गए, रामचंद्रजीके हाथसे हुए कार्य्यमें कदापि अपयश नहीं होगा, ऐसा विचारकर उससमय विश्वामित्रऋषि श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ २६ ॥ हेराम ! इस स्थानमें एक ताडका नामवाली राक्षसी रहती है, वह अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करकै सम्पूर्ण लोकोंको पीडा देती है, सो तुम मनमें किसीप्रकारका विचार न करकै उस राक्षसीका वध करो ॥ २७ ॥ श्रीरामचंद्रजीने " तथास्तु—बहुत अच्छा " कहकर धनुष हाथमें लिया और उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर टङ्कार शब्द करा, उस शब्दसे सम्पूर्ण वन भरगया ॥ २८ ॥ और ताडिकाके कानमें पहुंचा परन्तु ताडिका उसको सह न सकी, सुनतेही क्रोधमें भरगई और भयंकर रूप धारण करकै मेघकी समान गरजती हुई श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख दौड़ी ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने तत्कालही उसके वक्षःस्थलमें एक बाणका प्रहार करा, उस बाणके लगतेही वह ताड़िका मुखसे अत्यन्त रुधिर गिराती हुई वनमें गिरपडी ॥ ३० ॥ तदन्तर वह ताड़िका सुन्दर स्वरूपवती सम्पूर्ण अङ्गोंमें आभूषण धारण करेहुए एक यक्षिणीके रूपमें दिखाई दी, यह शापके कारण राक्षसयोनिको प्राप्त हुईथी, सो श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे इससमय शापसे छूटगई ॥ ३१ ॥ और उसने प्रणाम करकै श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करी, और तिन श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे स्वर्गलोकको चली गई ॥ ३२ ॥ यह प्रभाव देखकर विश्वामित्रजीको परम आनन्द हुआ और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाकर मुनिने मस्तकमें सूँघा, और मैं इनका गुरु होउंगा तो अन्तमें मेरी मुक्ति होजायगी ऐसा क्षणमात्र विचार करकै परम प्रसन्नतासे श्रीरामचन्द्रजीको रहस्यमन्त्रोंसहित सम्पूर्ण अस्त्रविद्याका उपदेश करा ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद

वास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजरामस्व-रूपविरचितयाभाषाटीकया सहितश्चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमःसर्गः

श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजीने जहाँ ताड़िकाका वध करा उसे कामाश्रम अर्थात् कामदेवका आश्रम कहते हैं, (जहाँ कि शिवजीने कामदेवको भस्म करा था) तिस रमणीय वनमें अनेक मुनि रहते हैं, तहाँ वह तीनों एक रात्रि निवास करके प्रभात होतेही हौले हौले चलदिये ॥ १ ॥ और कुछ कालके अनन्तर तिन दोनो राजकुमारों करके सहित विश्वामित्रऋषि अपने सिद्धाश्रममें पहुँचे, तिसस्थानका "वामनाश्रम " नाम है, जहाँकि सिद्धचारणादि देवयोनि प्रेमपूर्वक निवास करैं हैं तहां निवास करनेवाले मुनियोंने विश्वामित्र ऋषिकी आज्ञासे तत्काल श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीका परम सत्कार करा. तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी विश्वामित्रजीसे बोले कि—हेमुने! अब आप यज्ञ करनेका प्रारम्भ करिये ॥ २ ॥ ३ ॥ और हे ज्ञानसम्पन्न ! महाभाग ! वह दुष्ट राक्षस कहाँहैं मुझे दिखाय्ये, इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर विश्वामित्रजीने " बहुत अच्छा " कहकर मुनियोंकरकेसहित यज्ञ करनेका प्रारम्भ करा, ॥ ४ ॥ तब मध्याह्न कालकेसमय यथेष्ट रूपधारण करनेवाले वह सुबाहु और मारीच नामक दोनो राक्षस रुधिर और हड्डियोंकी वर्षा करते हुए दीखे ॥ ५ ॥ परमबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीनेभी तत्काल धनुष हाथमें लेकर उसमें दो बाण चढ़ाए, और प्रत्यश्चाकों कानोपर्य्यन्त खैंचकर वह बाण दोनोंपर अलग अलग छोड़े ॥ ६ ॥ उनमेंसे एक बाणने तौ मारिच चारसौ कोशपर्य्यंत घुमाकर समुद्रमें लेजाकर डालदिया, यह परम अद्भुतसा चरित्र हुआ ॥ ७ ॥ दूसरे अग्निरूप बाणने क्षणमात्रमें सुबाहुका प्राणांत करदिया, और उन दोनोंके अनुचर जो अन्य राक्षस थे उनको लक्ष्मणजीने तत्काल यमपुरीको पहुँचादिया ॥ ८ ॥ तिस समय श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके ऊपर देवताओंने पुष्पोंके गुच्छोंकी वर्षा करी, स्वर्गमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे, और सिद्ध चारण तिन दोनोंकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ इस पराक्रमको

देखतेही विश्वामित्रजीके नेत्रोंमें आनंदके आँसूँ भर आए और उन्होंने पूज्य-रामचंद्रजीका भक्तिपूर्वक पूजन करा, और गोदमें बैठाकर हृदयसे लगाया ॥ १० ॥ और पक्कफल आदि मंगाकर लक्ष्मणसहित रामचंद्रजीको भोजन करनेके निमित्त दिये, और मधुर मधुर पुराणोंकी कथा कहकर तिस आश्रमके विषैं तीन दिन विताए ॥ ११ ॥ चौथे दिन विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीसे बोले कि—हे परमानंददायक श्रीरामचंद्रजी! अब हम एक बड़े यज्ञका आरम्भ देखनेनिमित्त विदेहदेशकी राजधानीको चलते हैं, तहाँ महात्मा राजा जनकके यहाँ श्रीशिवजीने अपना "माहेश्वर" नामक धनु रक्खा है, ॥ १२ ॥ १३ ॥ तिस प्रचण्ड धनुषका तुह्मै दर्शन होयगा, और राजा जनकभी तुह्मारा पूर्ण सत्कार करेगा, विश्वामित्र मुनि श्रीलक्ष्मणसे इसप्रकार कहकर, और तिन दोनोंको तथा ऋषियोंकी मण्डलीको साथ लेकर चलदिये, और गङ्गाके तटपर गौतमऋषिके पवित्र आश्रममें पहुँचे, जहाँकि अहल्याने तप कराथा, तहां सुन्दर सुन्दर पवित्र फल और पुष्पोंकरके युक्त अनेक वृक्ष लग रहे थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ परन्तु तहां पशुपक्षी बिलकुल नहीं थे, तथा वनके अनेक प्रकारके क्षुद्र जीवजन्तुभी नहीं थे, इसप्रकारकी दशा देखकर कमलनेत्र सर्वैश्वर्य्यसंपन्न श्रीरामचन्द्रजी विश्वामित्रमुनिसे बोले ॥ १६ ॥ हे मुने! यह जो आगे विस्तीर्ण सुन्दर आश्रमस्थान दीख रहा है, सो किसका है, मुझे यह स्थान परम रमणीय प्रतीत होय है, यहां पत्र पुष्प और फल तो बहुत दीखैं हैं, परन्तु किसीप्रकारके श्वापद अथवा जीवजन्तु नहीं रहते दीखते हैं ॥ १७ ॥ यहां आनेसे मेरे अन्तःकरणको परम आनन्द होता है, सो हे भगवन्! इसका कारण मेरे अर्थ यथावत् वर्णन करिये ॥ १८ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि—हे रामचन्द्र! पूर्वकालका वृतान्त कहताहूं सो सुनो, अपना धर्म्माचरण करनेवाले सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ एक गौतम नामक मुनि थे, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण जगत्में प्रसिद्ध है, वह मुनि परमेश्वरकी आराधना करनेहीमें अपना समयको व्यतीत करते थे ॥ १९ ॥ तिन गौतमऋषिका तीव्र ब्रह्मचर्य्यव्रत देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न होगए, और उनको अपनी अहिल्या नामक परमरूपवती कन्या दी, उसने गौतमऋषिकी अत्यन्त सेवा

करी ॥ २० ॥ वह महा तपस्वी गौतममुनि तिस अहिल्याके साथ यहां रहते थे, अहिल्याके पतिव्रता धर्म्मको खण्डित करनेकी इच्छासे इन्द्रदेव प्रतिदिन ऐसा समय देखते रहते थे कि गौतममुनि इस स्थानमें न हों॥ २१॥ एकसमय जब गौतमऋषि आश्रमसे बाहर गए, सोई इन्द्र गौतमऋषिकी समान वेष धारण करके गौतमऋषिके आश्रममें आया और अहिल्याके पतिव्रता धर्म्मको खण्डित करके बाहर निकला कि इतनेहीमें गौतम मुनिभी लौटकर आगए ॥ २२ ॥ अपने समान वेषधारी पुरुषको आतेहुए देखकर गौतममुनिको बड़ा कोप आया, और उससे बोले कि—रे दुष्ट! अरे नीच! मेरीसरीखा स्वरूप धारण करनेवाला तू कौन है? ॥ २३॥ सत्यबताओ, नहीं तौ निःसंदेह मैं तुझे भस्म करदूँगा, तब वह पुरुष बोला, कि मैं देवताओंका राजा इंद्र हूँ, महाराज! कृपाकरके मेरे अपराधको क्षमा करिये, मैं कामदेवके वशीभूत होगया था ॥ २४ ॥ तिससे मेरे हृदयमें पापका अङ्कुर उत्पन्न होकर मेरे हाथसे निंदित कर्म्म होगया, इसप्रकार सुनकर गौतम मुनिको इतना क्रोध आया कि नेत्र लाल होगए, और इन्द्रको शाप दिया॥ २५॥ कि रे दुष्ट! तू इतना योनिलम्पट हुआ इसकारण तेरे शरीरमें सहस्रभग होंगी, इसप्रकार इन्द्रको शाप देकर शीघ्रही आश्रममें गए ॥ २६ ॥ तहां अहल्या कांपती हुई हाथ जोड़ खड़ी थी, तिसको देखतेही गौतमऋषि बोले कि रे दुष्टे! तैने दुराचरण करा है इसकारण तू शिलाकेविषै गुप्तरूप होकर मेरे आश्रममें रह, और निराहार होकर रात्रिदिन तपश्चर्य्या करती हुई धूप वायु और वर्षाआदिका सहन कर और हृदयकेविषैं स्थित सब कार्य्यमें समर्थ जो श्रीरामचन्द्रजी तिनका एकाग्रमनसे ध्यान कर, आजसे मेरे आश्रममें कृमिकीट आदि नहीं होंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसप्रकार अनेक सहस्रवर्ष व्यतीत होनेपर दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भ्राताकरके सहित यहाँ आवेंगे ॥ ३० ॥ और जिससमय वह अपने चरणसे तेरे निवास करनेकी शिलाको आक्रमण करैंगे उससमयही तेरे पाप नष्ट होजायँगे तब तू भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करैंगी, और प्रदक्षिणा करके नमस्कार

करती हुई स्तुति करैगी, तब शापसे मुक्त होयगी, तब फिर तू पहिलेकी तुल्य मेरी सेवा करनेके योग्य होयगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि–हे रामचन्द्र! गौतम ऋषि इसप्रकार कहकर परम पवित्र हिमालय पर्वतपर चलेगए, और उस दिनसेही अपने इस पवित्र आश्रमके विषै अहल्या अदृश्यरूप होकर आपके चरणोंकी धूलिके स्पर्शकी इच्छा करती हुई निवास कर रही है, हे रामचन्द्र! वह अहिल्या अब भी केवल वायु भक्षण करके परम तपकर रही है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ और इसकारणही हे रामचन्द्र! मैं तुमसे इतना कहताहूँ कि तुम ब्रह्मकन्या और गौतम ऋषिकी स्त्री जो अहल्या तिसको पवित्र करो, इसप्रकार कहकर परम तपस्वी विश्वामित्र ऋषिने रामचंद्रजीका हाथ पकड़कर शिलाके विषै गुप्तरूपसे परम उग्र तपस्या करती हुई अहल्याको दिखाया, और श्रीरामचंद्रजीने उसको चरणसे स्पर्श करा कि वह महा तपस्विनीरूप दीखी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दर्शन करतेही श्रीरामचंद्रजीने अहल्याको प्रणाम करा, और "मैं रामचंद्र हूँ" इसप्रकार कहा, उससमय अहल्याने श्रीरामचंद्रजीको पीताम्बर पहिने हुए, चतुर्भुज और शंख चक्र गदा पद्म धारण करेहुए तथा हाथमें धनुषबाण लियेहुए, लक्ष्मणजीकरके सहित मंद मंद मुसकुराते हुए कमलकी समान नेत्रवाले तथा वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करेहुए और इंद्रनीलमणिकी समान श्यामवर्ण शरीरकी कांतिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए देखा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करतेही अहल्याके नेत्र आनंदके जलसे भरगए, तदनंतर गौतम ऋषिके कथनका स्मरण होतेही अहल्याने रामचंद्रजीको पूर्णरीतिसे जान लिया कि यह सबके अंतर्यामी परमात्मा हैं ॥ ४० ॥ तदनंतर तिस पवित्र अहल्याने अर्घ्यआदिके द्वारा रामचंद्रजीका विधिपूर्वक पूजन करके दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ और उठकर उस कमलनयन सुंदर मूर्तिका फिर दर्शन करा, तब अहल्याके सम्पूर्ण अङ्गपर रोमाञ्च खड़े होगए, और गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगी ॥ ४२ ॥ अहल्या बोली कि–हे जगदाधार! श्रीरामचंद्र! मैं तुह्मारे चरण-

कमलोंकी धूलिके स्पर्शसे कृतकृत्य होगई, ब्रह्मा और शिवआदि देवताओंके अन्तःकरणोंके विषै जब जब संकट प्राप्त होते हैं तब तब वह जिस आपके चरणोंकी धूलिको ढूँढ़ते हैं, तिस आपके चरणोंकी धूलिका आज मुझे स्पर्श हुआ. हे भगवन्! इसकारण मैं धन्य हूँ ॥ ४३ ॥ हे राम! तुह्मारे चरित्र परम विलक्षण हैं, वेदोंकेविषैं तुह्मारे स्वरूपका इसप्रकार वर्णन करा है कि, तुम चरणादि अवयवोंकरके रहित हो तथापि तुम सम्पूर्ण जगत्में विचरते हो, मायाकरके मोहित सांसारिक पुरुष तुह्में मनुष्यरूप माने हैं, तुम परिपूर्ण आनंदस्वरूप होकरभी सम्पूर्ण मायावी पुरुषोंकी अपेक्षाचतुर हो ॥ ४४ ॥ भागीरथी गङ्गाका प्रवाह जिनके चरणकमलोंकी रजके स्पर्शसे पवित्र होकर शिव और ब्रह्मा आदिकोभी पवित्र करता है, वह तुम साक्षात् रूपसे मेरे दृष्टिगोचर हुए, यह मेरे पहिले अनेक जन्मोंके पुण्योंका प्रभाव है ॥ ४५ ॥ हे भगवन्! भक्तोंके दुःखोंको दूर करना यह तुह्मारा व्रत है, इस कारण तुमने इस मृत्युलोकमें मनुष्यरूप धारण करा है, तुह्मारी यह कमलवत् नेत्रवाली रामावतारकी मूर्ति परम रमणीय है, मैं तुह्मारे धनुष धारण करनेवाले इस स्वरूपकाही सदा भजन करूँगी; अन्य किसीका कदापि भजन नहीं करूंगी ॥ ४६ ॥ वेद जिनके चरणकमलके रजको ढूंढ़ते हैं, ब्रह्माजी जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं और भगवान् शिवजीभी जिनके नामका रस बड़े प्रेमसे ग्रहण करते हैं, तिन श्रीरामचंद्रजीका मैं हृदयमें सदा ध्यान करती हूं ॥ ४७ ॥ सत्यलोककेविषैं नारदादि साधु और शिव तथा ब्रह्माआदि देवता जिनके अवतारोंके चरित्रोंका गान करते हैं, और जिनकी लीलाओंका वर्णन करतेसमय नेत्रोंसे आनंदके आंसुओंका प्रवाह निकलनेके कारण सरस्वतीके स्तनोंका अग्रभाग भीज जाता है, तिन श्रीरामचंद्रजीकी मैं शरण हूं ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! तुम प्रत्यक्ष सबके अन्तर्यामी पुरातन पुरुष हो, स्वतःसिद्धज्ञानही आपका स्वरूप है, आपके आनन्दस्वरूपका कदापि अंत नहीं होय है, और सबके आदिकारण हो, तथा मुझसरीखे भक्तोंपर अनुग्रह करनेकेनिमित्त लोकोंको परम मोह देने-

वाले स्वरूपको मायाकेद्वारा धारण करकै यहां प्राप्त हुए हो ॥ ४९ ॥ हे भगवन्! तुम अपनी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलय करनेके निमित्त अपनी मायाके सत्व—रज—तम—इन गुणोंमें प्रतिबिम्बित होकर ब्रह्मा—विष्णु—और शिव ऐसे भिन्न भिन्न नामोंको धारण करते हो, वास्तवमें तुम स्वतंत्र—सर्वव्यापक—तथा सर्वान्तरर्यामी हो ॥ ५० ॥ हे श्रीरामचंद्र! जिन तुह्मारे चरणोंको लक्ष्मी प्रेमपूर्वक हृदयकेविषैं धारण करकै लालन करै है. तथा जिस तुह्मारे एकही चरणने वामनावतारमें त्रिलोकीको व्याप्त करलिया, और जिन तुह्मारे चरणोंको प्रथम अभिमानका त्याग करनेवाले मुनिजनही ध्यान करसकै हैं, तिन तुह्मारे चरणोंको तथा तुह्मारे अर्थ नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे भगवन्! तुम जगत्के आदिकारण हो, यह जगत् तुह्मारा स्वरूप है और जगत्के आश्रयभी तुमही हो, और वास्तवमें देखाजाय तो आश्रयआश्रयीभावसम्बंध तुह्मारेविषैं नहीं है क्यों कि तुम तो सम्पूर्ण प्राणियोंकेविषैं आसक्तिरहित हो, हे परमेश्वर! इसप्रकार तुम अपने अद्वितीय स्वरूपकरके सदा विराजमान रहते हो ॥ ५२ ॥ हे श्रीरामचंद्र! त्रिगुणात्मक ब्रह्मा विष्णु शिव स्वरूप ओंकार मन्त्रकरके तुह्मारा वर्णन करा है, तथापि उसका ऐसा तात्पर्य्य नहीं है कि तुम सगुण हो, क्योंकि तुह्मारा ब्रह्मस्वरूप वाणीके वर्णन करनेका विषय नहीं है, ओंकारकरके तुह्मारे स्वरूपको वर्णन करा है, ऐसा कहनेका तात्पर्य्य यह है कि—प्रतिपादन करनेका विषय और प्रतिपादक वचन इस भेदकी कल्पनाके द्वारा तुम जगत्स्वरूप होरहे हो ॥ ५३ ॥ हे श्रीरामचंद्र! तुम एक हो; परंतु तुह्मारी मायाके अनेक रूप हैं और तिस मायाकरकेही तुम महत्तत्त्व अहङ्कारादिकार्य्य—मूलप्रकृतिरूप कारण क्रिया स्वर्ग नरकआदि फल, और तिन फलोंके साधनरूप यज्ञ, इन भेदोंसे भिन्न भिन्न अनेकरूप प्रतीत होते हो ॥ ५४ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! तुम मायाको स्वाधीन रखनेवाले परमेश्वर हो, परंतु तुह्मारी मायाने जिनकी बुद्धिको मोहित कर लिया है वह पुरुष तुह्मारे सत्यस्वरूपको नहीं जान-

सक्के हैं, और वह अज्ञ पुरुष तुह्मै मनुष्य माने हैं ॥ ५५ ॥ हे भगवन्? तुम आकाशकी समान सर्वत्र सृष्टिके बाहर और भीतर व्याप्त हो रहे हो, तुह्मारेविषैं कोई दोष नहीं है, तुह्मारा किसीसे सम्बंध नहीं है. तुम कोई क्रिया नहीं करते हो. तुह्मारे स्वरूपको आदि नहीं हैं, वह आपका पवित्र स्वरूप ज्ञानात्मक होकर सत्तारूपसे अनुभवमें आता है. और उस स्वरूपका कदापि नाश नहीं होय है ॥ ५६ ॥ हे सर्वव्यापक ईश्वर! मैं तमोगुणसे व्याप्त अज्ञ स्त्री हूँ, सो तुह्मारे सत्यस्वरूपको मैं किसप्रकार जानसकूँ हूँ अर्थात् कदापि नहीं जानसक्ती, इसकारण हे श्रीरामचंद्र? मैं अनन्य भावसे तुह्मारेअर्थ शतशः प्रणाम करती हूँ ॥ ५७ ॥ हे देव? मैं तुमसे एक याचना करती हूँ कि मैं जहां कहींभी होऊँ तहाँ मेरी तुह्मारे चरणकमलोंकेविषैं सदा भक्ति होय ॥ ५८ ॥ हे संपूर्ण जीवोंके साक्षिरूप ईश्वर तुह्मारे अर्थ नमस्कार है. हे भक्तोंपर दयाकरनेवाले तुह्मारेअर्थ नमस्कार है, हे इंद्रियोंके नियन्ता तुह्मारे अर्थ नमस्कार है, हे सम्पूर्ण प्राणियोंके विषैं वास करनेवाले (नारायण) तुह्मारे अर्थ नमस्कार है ॥५९॥ संसाररूपीभयसे दूर करनेमें समर्थ—अद्वितीय—करोड़ों सूर्य्योंकी समान प्रकाशवान्—धनुषबाण हाथमें लिये हुए—कृष्णवर्ण मेघमण्डलकी समान कान्तिमान्—सुवर्णकीतुल्य देदीप्यमान पीताम्बर धारण करे हुए-रत्नजड़ित कुण्डलोंको पहिने हुए और कमलकी समान विशालनेत्र—छोटे भ्राताकरके सहित श्रीरामचंद्रजीकी मैं स्तुति करती हूँ ॥ ६० ॥ श्रीशिवजी बोले कि—हे पार्वति? अहल्याने प्रत्यक्ष खड़ेहुए श्रीरामचंद्रजीकी इसप्रकार स्तुति करी, तदनन्तर प्रदक्षिणा करकै नमस्कार करा, और श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा लेकर तत्काल पति (गौतमऋषि) के समीप चली गई ॥६१॥ जो पुरुष भक्तियुक्त अन्तःकरणसे अहल्याकी करी हुई इस स्तुतिका पाठ करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ ६२॥ वंध्याभी पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त अंतःकरणमें श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करती हुई इस स्तोत्रका पाठ करे तो उसको सुंदर पुत्रकी प्राप्ति

होती है ॥ ६३ ॥ और श्रीरामचंद्रकी कृपासे उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ ६४ ॥ मनुष्यने ब्रह्महत्या करी होय, गुरुके स्त्रीकेपास गमन कराहोय, चोरी करी होय और मद्यपान करा होय, माताका अथवा भ्राताका वध करा होय, और सदा विषयभोगमात्रमेंही आसक्त रहा हो तौभी यदि अन्तःकरणकेविषैं निवास करनेवाले श्रीरामचंद्रजीका स्मरण और ध्यान करता हुआ भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका नित्य पाठ करै तो देखो उस पुरुषकोभी मोक्षकी प्राप्ति होती है फिर स्वधर्म्माचरण करनेवाला पुरुष यदि इस स्तोत्रका पाठ करै तो उसके मुक्त होनेमें संदेहही क्या है? ॥६५॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसपण्डितभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकया सहितः पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीसूतजी बोले कि–हे ऋषियों ? तदनन्तर लक्ष्मणजीसहित रामचंद्रजीसे विश्वामित्र मुनि बोले कि हे पुत्र! अब हम मिथिला नगरीको चलते हैं, तहाँ राजा जनक राज्य करता है ॥ १ ॥ तहाँ शीघ्रही यज्ञका प्रारम्भ होनेवाला है उसको देखकर तुम अयोध्याको जाना, इसप्रकार कहकर और रामलक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्र मुनि गङ्गाके परलीपार जानेके निमित्त नाविक (मलाह) के पास गए परंतु नाविकने श्रीरामचंद्रजीको नावपर चढ़नेको निषेध करा ॥ २ ॥ नाविक बोला कि–हे महाराज ? मैं प्रथम तुह्मारे चरणकमलोंको धो लूं, क्योंकि पाषाण और काष्ठमें कोई भेद नहीं है, और आपके चरणोंमें पाषाणको मनुष्य करदेनेवाला चूर्ण है ऐसी कथा प्रसिद्ध है॥ ३ ॥ इसकारण मैं प्रथम तुह्मारे चरणोंको धोकर स्वच्छ कर लूं तदतन्तर तुमको परलेपार लेजाउंगा, मैं ऐसा न करूँ तो यदि तुह्मारे चरणोंकी धूलिके लगनेसे यह नौका सुंदर स्त्रीरूप होगई तो हे महाराज! मेरे छोटे २ बालक भूंखे मरने लगैंगे, और सम्पूर्ण कुटुम्बका नाश होजायगा, सो आप विचार देखिये ॥ ४ ॥ तिस नाविकने इस प्रकार कहकर श्रीरामचंद्रजीके चरणोंको धोया, तब सब परलेपार गए, तदनंतर राम

लक्ष्मणकरकेसहित विश्वामित्र मुनि मिथिलाके मार्गको चलदिये ॥ ५ ॥ और प्रातःकालकेसमय वह सब राजा जनककी नगरी (मिथिला) में जाय पहुँचे, तहाँ ऋषियोंके ठहरनेके निमित्त अलग मठ बनवाया हुआ था; वहाँ यह सब जाकर ठहरे, "विश्वामित्र आए हैं" यह वार्त्ता सुनतेही राजा जनकको परमानन्द हुआ ॥ ६ ॥ और पूजाकी सामग्री लेकर उपाध्याय करकेसहित आया, तथा साष्टाङ्ग नमस्कार करकै विश्वामित्रमुनिका पूजन करा ॥ ७ ॥ राजा दशरथने रामलक्ष्मणको समीपमें देखकर विश्वामित्रजीसे बूझा कि—हे मुनिश्रेष्ठ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवकुमारोंकी समान यह दोनों कुमार किसके हैं? एनके शरीरपर सम्पूर्ण शुभलक्षण प्रतीत होते हैं, इनके तेजसे सम्पूर्ण दिशा प्रकाशित हो रही हैं, इससे मुझै प्रतीत होता है कि यह दूसरे चंद्रसूर्य्य हैं, इनको देखकर इस समय मेरे मनमें अत्यन्त प्रीति उत्पन्न होय है, सो हे महाराज! कहीं यह नरनारायण तो नहीं हैं? ॥ ८ ॥ ९ ॥ यह प्रश्न सुनतेही विश्वामित्र मुनिको परम सन्तोष हुआ, और राजाको प्रसन्न करनेके निमित्त उत्तर दिया कि—हे राजन् ! यह राम लक्ष्मण दोनो भ्राता हैं और राजा दशरथके पुत्र हैं ॥ १० ॥ मैं यज्ञकी रक्षा करनेके निमित्त इनको इनके पिताकी राजधानीसे लायाथा, यह रामचंद्र महापराक्रमी हैं इन्होंने आते आते मार्गमें मेरे कहनेसे जगत्‌को दुःख देनेवाली ताड़का राक्षसीका एक बाणसेही वध करदिया, तदनन्तर मेरे आश्रममें आकर, मेरे यज्ञको नष्ट करनेवाले सुबाहु आदि राक्षसोंको मारकर मारीचको समुद्रमें फेंक दिया, तदनन्तर भागीरथीके तीरपर गौतम मुनिके शुभकारक पवित्र आश्रममें जाकर तहाँ शिलारूपकरके निवास करनेवाली गौतमकी स्त्रीको चरणकमलके स्पर्शसे मनुष्य रूप करदिया ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अहल्याको देखतेही इन्होंने उसे प्रणाम करा, और अहल्यानेभी इनकी विधिपूर्वक पूजा करी, इससमय इनके मनमें तुम्हारे घरमें धरे हुए शिवजीके धनुषको देखनेकी इच्छा है ॥ १५ ॥ इन्होंने ऐसा सुना है कि तुम्हारे घर वह धनुष पूजा करकै धरा हुआ है, और आजपर्य्यन्त सम्पूर्ण राजा उसका दूरसेही दर्शन

करके चलेगए; परन्तु किसीनेभी उसकी प्रत्यञ्चा (रोदा) नहीं चढ़ाई, इसकारण हे राजन्! वह अत्युत्तम शिवजीका धनुष इनको दिखाओ, यह देखकर पिताका दर्शन करनेके निमित्त अयोध्याको जायँगे ऐसी इनकी इच्छा है ॥ १६ ॥ विश्वामित्रमुनिके इसप्रकार कहतेही राजा जनकने विचारा कि यह दोनो राजकुमार पूजन करनेयोग्य हैं, इसकारण हमें इनका सत्कार करना चाहिये, सो धर्म्मशास्त्रको जाननेवाले राजा जनकने विधि-पूर्वक तिन दोनोंका पूजन करा ॥ १७ ॥ और धनुष लानेके निमित्त अपने परम बुद्धिमान् मंत्रीको भेजा, राजा जनक बोले कि-हे मंत्रिन्! शिवजीका धनुष शीघ्र लाओ और श्रीरामचन्द्रजीको दिखाओ ॥ १८ ॥ तदनन्तर वह मुख्य मन्त्री धनुष लेनेको गया, और राजा जनक विश्वामित्रजीसे बोले कि हे मुने? यदि रामचंद्रजी धनुष हाथमें लेकर कोटीपर प्रत्यञ्चा चढ़ा देंगे तो मैं अपनी कन्या सीता देदूँगा, विश्वामित्रनेभी श्रीरामचंद्रजीकी ओरको हँसते हँसते देखकर " बहुत अच्छा है " इसप्रकार कहा ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर रामचंद्रजी महाप्रभावशाली हैं, तुम वह प्रचण्ड धनुष इनको शीघ्र दिखाओ, इसप्रकार विश्वामित्र मुनि कह रहेथे कि इतनेहीमें धनुषको उठानेवाले पाँच सहस्र शक्तिमान् पुरुष धनुषको लेकर तहां आए, तिस धनुषमें सैंकडों घण्टे लगरहेथे, और रत्न हीरा आदिके जड़ावसे वह धनुष परम शोभायमान था, तदनन्तर सम्पूर्ण मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ राजा जनकके प्रधान मन्त्रीने श्रीरामचंद्रजीको धनुष दिखाया, तिस धनुषको देखतेही श्रीरामचंद्रजीके मनमें परम आनन्द हुआ, और दृढ कमर बांधकर अनायाससेही वामहाथमें धनुषको तोलकर थाम लिया, और सम्पूर्ण राजाओंके सन्मुख उस धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ रामचंद्रजीकी शक्ति कितनी होगी क्या ऐसी कल्पना कोई करसक्ता है? सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके अन्तःकरण इकट्ठे हों तबभी रामचंद्रजीके बलकी कल्पना नहीं हो सक्ती, जिन्होंने दाईं हाथसे थोड़ीसी प्रत्यञ्चा खैंचकर धनुषके दो टुकड़े करदिये

उस टूटनेके शब्दसे दिशा भरगई ॥ २५ ॥ केवल पूर्व–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण यह दिशाही नहीं किंतु अवांतर दिशा (ईशान्य–आग्नेय–नैर्ऋत्य–वायव्य) स्वर्ग–मृत्यु–और पाताल आदि सब तिस शब्दसे भरगए, तिस समय देवता स्वर्गमेंसे इस सब चरित्रको देखकर परम आश्चर्य्यमें हुए २६ देवताओंने पुष्पोंकी वृष्टिकरके श्रीरामचंद्रजीको ढकदिया, और अनेक स्तोत्रोंसे श्रीरामचंद्रजीकी स्तुति करी, स्वर्गमें दुन्दुभी बजीं, अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे ॥ २७ ॥ धनुषके दो टुकड़े होगए यह देखतेही राजा जनकको बड़ा आश्चर्य्य हुआ, और रामचंद्रजीको हृदयसे लगाया, सीताकी माता यह चरित्र देखनेके निमित्त रणवासके आंगनमें आगई और उसकोभी यह चरित्र देखकर परम आश्चर्य्य हुआ ॥ २८ ॥ इससमयमें सीताने दाहिने हाथमें सुवर्णकी माला ली, जिन सीताजीका मुख किञ्चित् हास्यकरके युक्त था, शरीरका वर्ण सुवर्णकीसमान था और सम्पूर्ण आभूषणोंको धारण करेहुए थीं, कण्ठमें मोतियोंका हार और कानोंमें कर्णफूल तथा पैरोंमें पायजेवैं धारण करेहुए थीं, दुपट्टा ओढ़े हुएथीं, वस्त्रमेंको उनके स्तनोंका आकार प्रतीत होताथा, तिन श्रीजानकीजीने रामचंद्रजीके गलेमें माला डाली, उससमय इतना आनन्द हुआ कि वह शरीरमें नहीं समाया, तिन श्रीजानकीजीका मुख हास्यकरके प्रफुल्लित दीखने लगा, श्रीरामचंद्रजीका स्वाभाविक स्वरूपही सबजगत्को मोहित करनेवाला था, तिसपरभी जब उनके ऊपर माला डालीगई तब तौ अत्यन्तही शोभायमान दीखने लगा, रणवासकी सम्पूर्ण रानियें झरोखोंके छिद्रोंमेंको श्रीरामचंद्रजीको देखकर परम आनन्दित हुई तदनन्तर सर्वशास्त्रप्रवीण राजा जनक विश्वामित्रजीसे बोले ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! विश्वामित्रजी महाराज! आप शीघ्रही पत्र देकर दूतोंको भेजो, अब राजा दशरथको पुत्रोंकी और स्त्रियोंको साथ लेकर मंत्रियोंकरके सहित पुत्रोंका विवाह करनेनिमित्त शीघ्र आना चाहिये, मुनिने "बहुत अच्छा" इसप्रकार कहकर शीघ्र चलनेवाले दूतोंको भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तिन दूतोंने अयोध्यामें जाकर श्रेष्ठ राजा दशरथसे श्रीरामचंद्रजीके भाग्योदयकी वार्ता कही, श्रीरामचंद्रजीने

प्रचण्ड धनुषको तोड़ डाला यह सुनतेही राजा दशरथको परम आनन्द हुआ ॥ ३५ ॥ और मिथिला नगरीको शीघ्रही जानेकेलिये मंत्रियोंको आज्ञा दी, राजा दशरथ बोले—हस्ती, घोड़े, रथ, पैदल, आदि सबकोही मिथिला नगरीको रवाना करो ॥ ३६ ॥ और मेरा रथ शीघ्र लाओ, आजही जाना है सो किञ्चिन्मात्रभी विलम्ब मतकरो परम ज्ञानी हमारे गुरु वसिष्ठ मुनिको स्त्री और अग्नियोंको साथ लेकर आगेचलैं, और उनकेही साथ रामचंद्रकी माताओं (कौसल्या—कैकेयी—सुमित्रा) को जाने दो, राजा दशरथ इसप्रकार सब मण्डलीके चलनेका बंदोबस्त करके अपने आपभी एक रमणीय रथपर बैठकर बहुत सारसेनाको साथ लेकर चलदिये राजा दशरथ आए ऐसा सुनतेही राजा जनकको परम आनंद प्राप्त हुआ, और राजा जनक अपने कुलगुरु शतानन्दको साथ लेकर लिवानेको गया, भेट होतेही उन्होंने तिन पूजनीय राजा दशरथका सत्कार करकै विधिपूर्वक पूजन करा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ रामलक्ष्मणने मिलतेही तत्काल पिताके चरणोंमें प्रणाम करा, पुत्रोंको देखतेही राजा दशरथ परम प्रसन्न हुए और श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे राम! खिलेहुए कमलसरीखा तुम्हारा मुख आज मैंने देखा यह बड़े आनन्दकी वार्त्ता है, विश्वामित्र मुनिकी कृपासे मेरा सर्वथा कल्याण हुआ ॥ ४२ ॥ इसप्रकार कहकर राजाने रामचंद्रजीका मस्तक सूंघ लिया और वारंवार हृदयसे लगाया, उस समय वह राजा जिसप्रकार कोई योगी समाधिकेविषें ब्रह्मानंदमें निमग्न होय है तिसप्रकार आनंदके समुद्रमें निमग्न हुआ ॥ ४३ ॥ तदनंतर राजा जनकने रानी और पुत्रोंकरके सहित राजा दशरथको एक सुन्दर मंदिरमें ठहराया, तिस मंदिरमें सम्पूर्ण उपभोगकी सामग्री उपस्थित थी, तिस स्थानको देखकर राजा दशरथ सुखी हुए ॥ ४४ धर्म्मशास्त्रको जाननेवाले राजा दशरथ श्रेष्ठ दिन देखकर शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त्तमें सब भ्राताओंकरके सहित श्रीरामचंद्रजीको बुलवालिया, तिन राजा दशरथने जो विवाहके निमित्त सम्पूर्ण शुभवस्तुओंसे शोभायमान विशाल मण्डप बनवाया था उसमें रत्नोंके खम्भे लगेहुए थे, सुंदर छत्त छई हुईथी, बंदरवालैं बंधी हुई थीं,

मोतियोंकी झालरैं—पुष्पोंकी माला—और फलोंके गुच्छे लटके हुए थे, तहाँ वैदिक ब्राह्मणोंका बड़ा समाज बैठा था, सौभाग्यवती स्त्रियें इधर उधर फिर रहीं थीं, ब्राम्हण अङ्गोंपर सुवर्णके आभूषण पहिने हुए थे, और स्त्रियें कण्ठमें पचलड़ा आदि सुवर्णके आभूषण पहिने हुए थीं, नगाड़े और नफीरियोंके शब्दसे तथा नृत्य और नागके शब्दसे मण्डप गुञ्जार रहाथा, तिस मण्डपमें राजा जनकने महामूल्यके रत्नोंकरके जटित सिंहासनपर रामचन्द्रजीको बैठाया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ शतानन्द उपाध्याय (राजा जनकके पाधा और पुरोहित) ने वसिष्ठ और विश्वामित्र इन दोनोंको रामचंद्रजीके दोनो ओर बैठाकर क्रमसे पूजन करा ॥ ४९ ॥ स्त्रीसहित राजा जनकने तिस मण्डपमें अग्निकी स्थापनाकरके विधिपूर्वक हवन करा, तदनन्तर सीताके अङ्गोंपर आभूषण पहिनाकर सुशोभितकर तहां लाए और कमलकी समान नेत्रवाले रामचंद्रजीके पास आए, राजा दशरथने विधिपूर्वक रामचंद्रजीके चरण धोए और उस धोए हुए जलको मस्तकपर धारण करा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उस जलका माहात्म्य कहाँतक वर्णन करें जिसको शिवजीने ब्रह्माने तथा मुनियोंने मस्तकपर सदा धारण करा है, तदनन्तर प्रथम राजा जनकने श्रीरामचंद्रजीके हाथमें अक्षतयुक्त जल दिया, फिर सीताका हाथ पकडकर सन्तोषपूर्वक विवाहकी विधिके अनुसार सीतारामचंद्रजीको अर्पण करी, कन्यादान करतेसमय राजा जनक रामचन्द्रजीसे बोले कि—हे रामचंद्र ! सुन्दर रूपवती कमलकी समान नेत्रवाली और अङ्गोंपर सुवर्ण मोती आदिके आभूषण पहिने हुए यह सीतानामवाली अपनी कन्या तुम्हें देताहूँ, हे रघुवीर ! तुम सन्तुष्ट होकर इसे ग्रहण करो, राजा जनकने इसप्रकार कहकर प्रसन्न चित्तसे जानकीका हाथ रामचंद्रजीके हाथमें दिया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ पूर्वकालमें क्षीरसमुद्रने विष्णुभगवान्‌को लक्ष्मी दीथी तिससमय क्षीरसमुद्रको जैसा आनन्द हुआथा, तैसाही आनन्द इससमय राजा जनकको हुआ तदनन्तर राजा जनकने अपनी औरस कन्या ऊर्म्मिला परम आनन्दसे लक्ष्मणजीको दी ॥ ५५ ॥ तिन राजा जनकके भ्राताकी माण्डवी और श्रुतकीर्ति दो

कन्या थीं, उनमेंसे माण्डवी भरतको दी, और श्रुतकीर्ति शत्रुघ्नको दी॥ ५६ ॥ सम्पूर्ण शुभलक्षणोंकरके युक्त चारों भ्राता विवाह होनेके अनन्तर कान्तिसे लोकपालोंकी समान शोभायमान हुए ॥ ५७॥ तदनन्तर मिथिला नगरीके स्वामी राजा जनकने नारद मुनिका कहा हुआ अपनी कन्याका वृत्तान्त वसिष्ठसे और विश्वामित्रजीसे कहा ॥ ५८ ॥ राजा जनक बोले—हे मुने! मैं यज्ञकेनिमित्त भूमि शुद्ध करनेकेलिये हलसे खोद रहा था, तब फालकी खुदी हुई लकीरमेंसे एक शुभलक्षणोंकरके युक्त कन्या उत्पन्न हुई॥ ५९ ॥ उसका मुख शरत्कालके चन्द्रमाकी समान था, उसको देखतेही मेरे मनमें 'यह मेरी कन्या है' ऐसी भावना हुई और आजपर्य्यन्त उसपर वैसाही प्रेम रखता आया हूँ, फिर उस कन्याको मैंने अपनी स्त्रीके अर्पण कर दिया ॥ ६० ॥ एकसमय मैं एकान्तमें बैठा हुआ था कि इतनेहीमें नारदमुनि अपनी महती नामक वीणाको बजाते हुए और सर्वव्यापक नारायण भगवान्‌के गुणोंका कीर्त्तन करते हुए मेरेसमीप आए ॥ ६१ ॥ मैंने आसन देकर उनका सत्कार करा, तिससे नारदमुनि परम प्रसन्न हुए और स्वस्थ होकर मुझसे बोले कि मैं तेरे समीप एक गुप्तवार्त्ता कहनेको आया हूँ तिससे तेरा अभ्युदय होनेवाला है इसकारण तू श्रवण कर ॥ ६२ ॥ इन्द्रियोंके नियामक परमेश्वर भक्तोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे और रावणका वध करके देवताओंका कार्य्य सिद्ध करनेके निमित्त रामनामका अवतार धारण करके पृथ्वीपर आए हैं, परमेश्वरने अपनी मायाकरके यह एक मनुष्यका रूप धारण करा है, राजा दशरथके चारों पुत्र तिन परमात्माकाही अवतार है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ और योगमायाने सीता नामकरके तुम्हारे घर अवतार लिया है, तिसकारण तू जिसप्रकार हो सकै तिसप्रकार यत्नकरके सीता रामचन्द्रजीकोही दे ॥ ६५ ॥ अन्य किसीको सीता नहीं देनी चाहिये, यह सीता तिस आनन्ददायक परमेश्वरकी अनादिकालसे भार्य्या (शक्ति—योगमाया) है, इसप्रकार कहकर देव ऋषि नारदजी उससमय स्वर्गलोकको चलेगए ॥ ६६ ॥ तबसेही मैंने 'सीता' विष्णुभगवान्‌की लक्ष्मीका अवतार है ऐसा निश्चय करलिया है, यह शुभलक्षणा जानकी राम-

चंद्रको किसप्रकार दी जाय, ऐसे सन्देहमें पड़ा था कि इतनेहीमें एक युक्ति विचारमें आई कि यह धनुष मेरे पितामह (दादा) के समयसे आजपर्य्यन्त धरोड़ रक्खा है, शिवजीने पूर्वकालमें त्रिपुरासुरके पुर भस्म करदिये, तदनन्तर यह धनुष हमारे यहां धरदिया है सो मैं इस धनुषका सीताके विवाहके निमित्त पण लगाऊँ, ऐसा विचारमें आया सो वैसाही करा, सीतासे विवाह करनेके निमित्त सम्पूर्ण राजा आए, परन्तु सब अपनी कीर्त्तिको नष्ट करकै चले गए, हे मुने ! आपकी कृपासे कमलकी समान विशाल नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजी धनुष देखनेके निमित्त यहां आए और मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ हे रामचंद्र ! आज मेरे जन्म सफल हुआ, जो तुमको सीताकरके सहित एक आसनपर बैठे हुए देख रहाहूँ, तुम्हारी मूर्त्ति सूर्य्यकी समान देदीप्यमान दीख रही है, सृष्टिके चक्रको चलानेवाले ब्रह्माजी तुम्हारे चरणरूपी तीर्थके जलको मस्तकपर धारण करते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ आपके चरणकमलोंके जलके स्पर्शसेही राजा बलीको इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई, और तुम्हारे चरणकमलोंकी रजके स्पर्शसेही अहल्यापति (गौतमऋषि) के शापसे तत्काल छूट गई ॥ ७३ ॥ सो तुमसे दूसरा ऐसा रक्षा करनेवाला कौन है ? अर्थात् आपकी समान रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ७४ ॥ सम्पूर्ण योगी पुरुष तुम्हारे चरणकमलोंकी रजपर परम प्रेम करते हैं, इसकारणही देखो कालचक्रको स्वाधीन कर लेते हैं, और कालचक्रके स्वाधीन होनेपर फिर उनको संसारका किसीप्रकारका भय नहीं रहता है, देवताभी तुम्हारेही नामका कीर्त्तन करते हैं, इसकारणही उनके दुःख और शोक नष्ट हो जाते हैं, इसकारण हे रघुवीर ! मैं तुम्हारी सदा शरणागतहूँ ॥ ७५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि-हेपार्वती ! जनकराजाने उस समय श्रीरामचंद्रजीकी इसप्रकार स्तुति करी, और तिन महात्मा रामचंद्रजीको सौ करोड़ मोहरैं, दशसहस्र रथ, दशलक्ष घोड़े, छःसौ हाथी, एक लक्ष पैदल, और तीनसौ दासी, इतना दहेज दिया ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ सीताके ऊपर राजा जनककी बड़ी प्रीति थी,

इसकारण राजाने सीताको प्रेमपूर्वक सुन्दर सुन्दर दिव्य वस्त्र तथा मोती और रत्नोंके प्रकाशवान् हार दिये ॥ ७८ ॥ तदनन्तर वसिष्ठआदि मुनीश्वरोंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनको यथेष्ट दक्षिणा दी; तिसीप्रकार लक्ष्मणजीको भरतजीको और शत्रुघ्नकोभी यथोचित दहेज दिया, तदनन्तर रीतिके अनुसार राजा दशरथका यथोचित सत्कार करा ॥ ७९ ॥ और तिन रघुकुलमें श्रेष्ठ राजा दशरथकी बिदा करी, श्वसुरके यहाँ जाते हुए सीताजीके नेत्रोंमें जल भरआया, तब सीताकी माताके नेत्रोंसेभी आँसुओंकी धारा बहनेलगी, तिससमय माताने सीताको हृदयसे लगाया, और सासके यहाँ कैसा वर्त्ताव करना चाहिये सो उपदेश करा ॥ ८० ॥ कि हे पुत्रि! सासकी सदा सेवा करती रहो, और रामचंद्रजीकी सेवामें सदा तत्पर रहो तथा पातिव्रताधर्म्मका पालन करके अपने समयको सुखपूर्वक व्यतीत करो ॥ ८१ ॥ श्रीशिवजी बोले कि—हे पार्वती! जब रामचंद्रजी जनकपुरीसे चले उस समय नौबत, मृदंग, तासे, तूर्यआदि बाजे बजनेलगे, उन बाजोंके शब्दमें स्वर्गके देवताओंके बजाए हुए दुंदुभि, झाँझ, घण्टा आदि बाजोंका शब्द मिलगया, तिससे ऐसा महाशब्द उत्पन्न हुआ कि प्राणियोंको उससे भय लगने लगा ॥ ८२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे-उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यभोलानाथात्मजरामस्वरूपकृतभाषाषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

सूतजी बोले कि-हेऋषियों! तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी जब मिथिला राजधानीसे चलकर तीन योजन (१२ कोश) पहुँचगए, तब राजा दशरथने महाभयंकर अपशकुन देखे ॥ १ ॥ तब राजाने वसिष्ठजीको प्रणाम करके पूँछा कि-हेमुने! यहां चारों ओर अपशकुन होते दीख रहे हैं यह क्या कारण है ॥ २ ॥ तिसपर वसिष्ठजी बोले कि-हेराजन्! यहांसे आगे चलकर कोई भय प्राप्त होगा ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु फिर शीघ्रही तुझको कुशलकी प्राप्ति होयगी ॥ ३ ॥ यह देख हरिण तेरे दक्षिण होकर

जा रहे हैं, यह तेरे कल्याणको सूचित करते हैं, वसिष्ठजी इसप्रकार कह रहेथे कि इतनेहीमें बड़े वेगसे वायु चलनेलगा ॥ ४ ॥ तिस वायुमेंसे धूलिकी वृष्टि होनेलगी, सबकी दृष्टि बन्द होगई, और सब पुरुषोंको महादुःख हुआ, फिर आगे जाते जाते अपनी ओरको आताहुआ तेजका समूह राजा दशरथकी दृष्टिगोचर हुआ ॥ ५ ॥ कुछ कालके अनन्तर वह महाप्रतापी राजा दशरथको तहाँ जमदग्निके पुत्र तेजःसमूह परशुरामजी दीखनेलगे, उनकी कान्ति करोड़ों सूर्य्योंकेसमान और बिजलीके ढेरकी समान थी ॥ ६ ॥ कृष्णवर्णमेघकी समान है शरीरकी कान्ति जिनकी और शिरपर जटाओंके समूहसे शोभायमान तथा हाथमें धनुष और फरसा लियेहुए वह परशुरामजी देखनेवालोंको सबका संहार करनेवाले साक्षात् मृत्युकी समान दीखतेथे ॥ ७ ॥ कार्त्तवीर्य्यका वध करनेवाले और मदोन्मत्त क्षत्रियोंके गर्वको दूर करनेवाले वह परशुरामजी राजा दशरथके सामने आकर साक्षात् कालमृत्युकी समान खड़े होगए ॥ ८ ॥ तिनको देखतेही राजादशरथ अत्यन्त भयभीत होगए, और अर्घ्यपाद्य आदि सामग्रीसे परशुरामजीके पूजनकोभी भूलकर त्राहि त्राहि (रक्षा करो-जीवनदान दो) इसप्रकार कहने लगे ॥ ९ ॥ तिन परशुरामजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करकै बोले कि—'मेरे पुत्रका प्राणदान दो' परन्तु परशुरामजी राजा दशरथकी ओर और राजाके भाषणकी ओर कुछ ध्यान न देकर, रघुवीर रामचंद्रजीको कठोर वचन कहने लगे, उससमय क्रोधकेमारे उनकी इन्द्रियें (सम्पूर्ण अङ्ग) थरथर कांपने लगीं, और रामचन्द्रजीसे बोले कि—रे क्षत्रियाधम ! तू मेरे नामकी समान 'राम' इस नामको धारण करके पृथ्वीपर विचरता है, इसकारण तू मेरा शत्रु है ॥ १० ॥ ११ ॥ यदि तू पूर्ण क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करनेको तयार हो, उस बहुतकालके धरेहुए धनुषको तोडकर अपनी झूँठी प्रशंसा करता फिरता है ॥ १२ ॥ हे रघुकुलमें जन्म लेनेवाले रामचन्द्र ! यदि तू इस (मेरे पासके) विष्णुके धनुषपर प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ा देगा तो मैं तुझे पराक्रमी और अपने साथ युद्ध करनेके योग्य समझूंगा,

और तबही तुझसे युद्ध करूंगा ॥ १३ ॥ यदि इस धनुषपर तुझसे रोदा नहीं चढ़ा तो मैं सबका वध करडालूंगा, क्योंकि क्षत्रियोंका वध करना यह तो मेरी प्रतिज्ञा है, इसप्रकार परशुरामजी कहरहेथे कि इतनेहीमें बड़े वेगसे भूकम्प (हलाचला) हुआ ॥ १४ ॥ और सबके नेत्रोंके सामने अन्धकार आगया, इधर तिन महापराक्रमी दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीने परशुरामजीकी ओरको क्रोध दृष्टिसे देखा ॥ १५ ॥ और उनके हाथसे धनुषको छीनकर लेलिया, और सहजमेंही प्रत्यञ्चा चढ़ादी और तर्कसमेंसे बाण निकालकर चढ़ालिया और रोदा खैंचकर परम पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी परशुरामजीसे बोले कि—अरे ब्राह्मण! मेरे कहनेकी ओरको ध्यान दे, इस चढ़ाएहुए बाणको कहां छोड़ूँ वह लक्ष्य (निशाना छोडनेका स्थान) दिखा क्योंकि मेरा बाण कदापि निरर्थक नहीं होता है, अर्थात् जिस लक्ष्यपर पड़ता है उसका नाशही करडालता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ मैं तुझे आज्ञा करताहूं कि शीघ्र बोल, इस बाणसे तेरी परलोक गतिको बन्द करूं, या तेरे दोनो चरणोंको काटडालूं, जिससे तू इस लोकमें तीर्थादिपर नहीं फिर सके, और परलोकमेंभी नहीं जासके ॥ १८ ॥ ऐसीही तेरी दशा करनी चाहियें, शीघ्र बोल, तेरे कोनसे लोकको नष्ट करूं, इसप्रकार श्रीरामचन्द्र जीके कहतेही परशुरामजीका मुख अत्यन्त कान्तिहीन (उतराहुआ) हो गया ॥ १९ ॥ और उनको अपना पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण होगया और वह रामचंद्रजीसे इसप्रकार कहनेलगे कि—हे आनन्ददायक श्रीराम-चन्द्र! तुम महापराक्रमी हो, मैंने तुमैं पूर्णरीतिसे जानलिया कि तुम परमे-श्वर हो ॥ २० ॥ अनादि, सबके शरीरोंमें वास करनेवाले, विष्णु तुमही हो, मैंने बाल्यावस्थामें विधिपूर्वक तपश्चर्य्याकरके विष्णुभगवान्को प्रसन्न करनेकेनिमित्त पुण्यकारक चक्रऽतीर्थके विषें जाकर प्रतिदिन अनन्य भावसे तिन सर्वव्यापी महासमर्थ नारायणको तपश्चर्य्या करकै प्रसन्न कर लिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ हेरघुवीर! तब एक दिन वह देवाधिदेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए, जिनके हाथोंमें शंख-चक्र-गदा यह आयुध थे, और मुख-

कमलपर प्रसन्नताका चिन्ह स्पष्ट दीखताथा ॥ २३ ॥ वह षड्गुणैश्वर्य्य सम्पन्न भगवान् बोले कि-हे ब्राह्मण ! उठ तपश्चर्य्या करनेको समाप्तकर, यह मैं जानताहूं कि कार्त्तवीर्य्यने तेरे पिताका वध करा, तिसकारण अब मैं तुझे अपनी चैतन्य शक्तिका अंश तुझे देताहूं तिससे तू तिस हैहयकुलमें श्रेष्ठ पुरुषश्रेष्ठ (कार्त्तवीर्य्य) का वध कर, तदनन्तर इक्कीसवार भूमण्डलमें फिरकर क्षत्रियोंका नाश करके सम्पूर्ण भूमि कश्यपऋषिको दे, इसप्रकार करनेसे तेरा चित्त शान्त होगा, मेरे स्वरूपका उत्पत्ति आदि विकार नहीं होय है, परन्तु मैं त्रेतायुगके आरम्भमें दशरथकुमार रामचन्द्रका रूप धारण करके अवतार लूंगा, तिस अवतारमें मेरी तेरेविषें रखी हुई चेतनशक्तिसे अधिक शक्ति होयगी, तिस रामरूपका तुझे दर्शन होयगा, तब मैं इससमय तुझे दिये हुए अपने तेजको फिर लेलूँगा ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ तबसे लेकर तू ब्रह्माके एक दिनभर (चारहजार युग) पृथ्वीपर तप करता रहियो, इसप्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान होगए, सो मैंने उनके कहनेके अनुसारही सम्पूर्ण वर्त्ताव करा ॥ २८ ॥ हे रामचंद्रजी ! तुम वही विष्णु भगवान् हो, ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेसे तुमने रामावतार धारण करा है, मेरेविषें स्थित अपना तेज इससमय तुमने खैंचलिया ॥ २९ ॥ हे परमेश्वर ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, क्योंकि देखो ब्रह्मादि देवताओंको भी जिनका दर्शन नहीं होता है, तिन परम पूजनीय आपका आज मुझे दर्शन हुआ, तुम्हारा दर्शन दुर्लभ होनेमें कारण यह है कि तुम मायासे पर हो ॥ ॥ ३० ॥ अज्ञानके कारण उत्पन्न होनेवाले जन्म आदि छः विकार (जायते १ अस्ति २ वर्द्धते ३ विपरिणमते ४ अपक्षीयते ५ नश्यति ६) आपके विषें नहीं हैं, क्योंकि तुम ज्ञानसे परिपूर्ण हो, तुम्हारे स्वरूपमें कोई विकार नहीं है, तुम गमन आदि कोई क्रिया नहीं करते हो ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि अबही मैंने तेरा तेज खैंचलिया यह क्रिया करी, फिर मैं निष्क्रिय किसप्रकार हो सक्ताहूं सो हे भगवन्! श्रीरामचंद्र! जिसप्रकार निर्म्मल जलमें आघात करनेसे फेनका समूह उत्पन्न होजाताहै, और अग्निके

विषें गीले इन्धनके कारण धूम दीखताहै, तिसीप्रकार मायारूपउपाधि कर-
के तुम्हारेविषें क्रिया प्रतीत होतीहै, लोकोंको तुम्हारे स्वरूपकी प्रती-
ति न होने देनेवाली, और तुम्हाराही है आधार जिसको ऐसी मायाही
कार्य्योंको उत्पन्न करतीहै ॥ ३२ ॥ जबतक लोक मायाकरके ठके हुए
रहतेहैं, तबतक तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं, यह अविद्या अति प्राचीन
कालसे चली आवैहै, और ज्ञानको उत्पन्न नहीं होने देयहै [illegible] ॥
यह शरीर, इन्द्रियें, आदि सम्पूर्ण संघात अविद्याकाही रचाहुआ है. इस
संघातकेविषें प्रतिबिम्बरूपसे स्थितज्ञान शक्तिको इस जीवलोकमें.
'जीव' कहते हैं ॥ ३४ ॥ जबतक जीवको देह-धन-प्राण-बुद्धि-आदिके
विषें मैं हूँ और मेरा है ऐसा अभिमान रहताहै, तबतक जीवको कर्तृत्व,
भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदि भोगने पड़तेहैं ॥ ३५ ॥ मैं कार्य्य करताहूँ,
मुझे उसका फल भोगना चाहियें, इस प्रकारके अभिमानसे उत्पन्न होनेवाला
यह संसार आत्माको बिलकुल नहीं लगता है, और बुद्धिको ज्ञान नहीं
होयहै, क्योंकि बुद्धि अचेतन जड़ है, परन्तु यह जीव अज्ञानसे
आत्माकेविषें संसारका और बुद्धिकेविषें ज्ञानका अभिमान करै
है, और मैं कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ, संसारी जीव हूँ इसप्रकार व्यवहार करै है ॥
॥ ३६ ॥ चैतन्यके संसर्गसे जड़ पदार्थकेविषें चैतन्यका धर्म्म प्रतीत होने
लगे है, और जड़के सम्बन्धसे चेतनकेविषें जड़का धर्म्म भासने लगे है, जैसे
कि जलका और अग्निका संयोग है, अर्थात् जिसप्रकार जल जड़ होकरभी
अग्निके सम्बन्धसे बिजलीरूप करके प्रकाशित होता है, और बिजलीका
प्रकाश जलके सम्बन्धसे अपने स्वरूपको त्यागकर अप्रकाश होजाता है,
तिसप्रकार यद्यपि बुद्धि जड़ है तथापि आत्माके सम्बन्धसे उसकी चेतन
रूपसे प्रतीति और 'चित्त' नामकरके व्यवहार होता है, और आत्मा
चेतन (ज्ञान) रूप होनेपरभी जड देहादिके सम्बन्धसे अपनेको अज्ञानी
मानने लगे है ॥ ३७ ॥ मनुष्यको जबतक तुम्हारे चरणोंकी भक्ति करने-
वाले साधुके समागमका सुख नहीं मिले है, तबतक वह संसाररूप दुःखके

प्रवाहसे कदापि नहीं छूटता है ॥ ३८ ॥ सत्पुरुषोंका समागम होतेही मनुष्योंके अन्तःकरणोंमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न होजाती है, और तिस भक्तिकरके तुम्हारी उपासना करने लगते हैं, तब उनके पाससे माया होले होले दूर होने लगती है, और उत्तरोत्तर क्षीणताको प्राप्त होती है॥ ३९ ॥ तदनन्तर जिसको तुम्हारे स्वरूपका पूर्ण यथार्थ ज्ञान हुआ है ऐसे सद्गुरु उसको मिलते हैं, फिर तुम्हारी कृपासे तिन गुरुसे उसको 'तत्त्वमसि' महावाक्यका अर्थ ज्ञान होताहै और मूक होजाताहै॥ ४० ॥ इससे यह वार्त्ता सिद्ध होती है कि जिसमनुष्यके अन्तःकरणमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न नहीं हुई, इसको अन्य साधनोंकरके, सैकड़ों कोटिकल्पोंकरकेभी क्या मुक्तिकी प्राप्ति होयगी? अर्थात् निःसन्देह उसको कदापि तत्वज्ञानकी और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होयगी, तथा सुखकी प्राप्तिभी नहीं होयगी ॥ ४१ ॥ इसकारण हे देव ! मैं तुमसे यह याचना करताहूँ कि जन्म जन्ममें तुम्हारे चरणोंमें मेरी भक्ति होय, और मुझै तुम्हारे भक्तोंका सङ्ग मिलै, क्योंकि भक्तिकरके और भक्तोंके सत्सङ्गकरके मनुष्योंका अज्ञान नष्ट होताहै ॥ ४२ ॥ जगत्केविषें तुम्हारी भक्ति करनेमें तत्पर रहनेवाले और उपदेशकरके तुम्हारे तत्त्वज्ञान रूप अमृतकी वर्षा करननेवाले पुरुष संपूर्ण संसारको पवित्र करसक्ते हैं, और अपने वंशकोंको पवित्र कर सक्तेहैं, इसमें तो कहनाही क्याहै? ॥ ॥ ४३ ॥ हे त्रिलोकीके स्वामी तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, हे भक्तिकरके वशमें होनेवाले देव ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, हे कृपासागर! हे अनन्त! हे श्रीरामचन्द्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ४४ ॥ हे देव! लोकोंको जीतनेकी इच्छाकरके मैंने जो जो पुण्य कियाहै; वह सम्पूर्ण तुम्हारे बाणके लक्ष्य होओ, अर्थात् तेरे अमोघबाणसे नाशको प्राप्त होओ, हे रामचंद्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ४५ ॥ परशुरामके इस प्रकार स्तुति करनेपर वह दयालु, षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ, तेरे मनमें जो कुछ है, वह मैं सब अभिलषित तुझको देताहूँ, इसमें तुम कुछ सन्देह मत करो, यह सुनकर परशुरामभी प्रसन्न

अन्तःकरणसे श्रीरामचंद्रजीसें कहने लगे ॥ ४६ ॥ ४७॥ कि हे मधुदैत्यका वध करनेवाले विष्णुरूप रामचंद्र ! यदि तुम्हारी मेरे ऊपर कृपा है तो तुम्हारे भक्तोंका सङ्ग और तुम्हारे चरणोंकी दृढ़भक्ति, यह दोनो मुझे सदा प्राप्तहो ॥ ॥ ४८ ॥ और मेरे करेहुए इस स्तोत्रका भक्तिहीन मनुष्यभी यदि पाठ करे तो उसको तुम्हारी भक्ति, ज्ञान, और अंतमें तुम्हारा स्मरण प्राप्तहो, इस मेरी इच्छाको पूर्ण करो ॥ ४९ ॥ रामचंद्रजीने इसपर " तथास्तु कहकर परशुरामका पूजन करा, और उनको जानेकी आज्ञा दी, तब परशु-रामजीभी रामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा करके और नमस्कार करके महेन्द्रपर्वतपर चलेगए ॥ ५० ॥ परशुराम चलेगए, ऐसा देखतेही राजा दशरथको " राम-चंद्रका द्वितीय जन्म हुआ " ऐसा प्रतीत हुआ, और हर्ष हुआ, और रामचंद्रजीके समीप आतेही वारम्वार हृदयसे लगाया, और नेत्रोंसे आन-न्दके आंसुओंका प्रवाह वहने लगा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर राजा दशरथका चित्त प्रसन्न हुआ, और स्वस्थ चित्त होकर अयोध्या नगरीको गए, और वह देवताओंकी समान चारों राम-लक्ष्मण-भरत-और शत्रुघ्न अपनी अपनी स्त्रीको लेकर अपने अपने मन्दिरोंमें आनन्दसे रहने लगे, उनके मातापिता भी आनन्दसे कालको व्यतीत करनेलगे, सीताके सङ्ग रामचंद्रजीभी परम प्रसन्न रहे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार वैकुण्ठलोककेविषें विष्णुभग वान् लक्ष्मीके साथ आनन्दमें रहतेहैं, तिसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सीता-जीकरके सहित अपने महलमें परम प्रसन्न रहे, एक समय युधाजित् नाम-वाला कैकेयीका भ्राता अर्थात् भरतजीका मामा प्रेमकरके भरतजीको अपने राज्यमें लेजानेके निमित्त अयोध्यामें आया, दशरथसे उसका वड़ा प्रेम (स्नेह) था, इस कारण शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले तिस-राजाने युधाजितका सत्कार करकै उसके साथ भरत और शत्रुघ्न इन दोनो को भेज दिया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार देवताओंकी माता अदि-ति इन्द्राणी सहित इन्द्रकरके शोभायमान होतीहै, तिसप्रकार सीता सहि-त रामचन्द्रजीकरके कौसल्या शोभाको प्राप्त हुई ॥ ५६ ॥ श्रीरामचं-

रजी सीताकरके सहित अयोध्या नगरीमें रहने लगे; उनके अनेक गुण इन्द्रादि लोकपालोंमें और पृथ्वीतलके राजाओंमें प्रसिद्ध थे, उनकी कीर्त्तिका लोक प्रेमपूर्वक गान करतेथे. उनकी मूर्त्ति ऐसी थीकि उसके देखतेही सम्पूर्ण दर्शन करनेवाले पुरुषोंके अन्तःकरणमें आनन्द भरजाताथा, उनका ऐश्वर्य्य अखण्ड था, उनमें किसीप्रकारका विकार नहीं था, उनके ऐश्वर्यकी मर्यादा नहीं थी, उन्होने माया शक्तिको अपने वास्तविक स्वरूपसे दूर कर रक्खी है, वह सत्ता और स्फूर्ति रूपकरके मायाके सब कार्य्योंमें व्यापक रहेहैं, और वास्तवमें सदा ज्ञानसम्पन्न और सम्पूर्ण जगत्के प्रेरक होकरभी मनुष्यकी समान प्रतीत होतेहैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादावास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसपण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूप शर्म्मणाविरचितभाषासप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ इस बालकाण्डमें ३६० श्लोक हैं.

इति बालकाण्ड समाप्त ।

श्रीः।

अध्यात्मरामायणभाषा।

अयोध्याकाण्ड।

श्रीयुत पण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मणाविरचित
कैकेयीवरयाचन, सीतालक्ष्मणसहितराम वनगमन, गुहसम्मी-
लन, भरद्वाजाश्रमगमन, पुत्रशोकाद्दशरथस्वर्ग
गमनादि कथा सुविस्तर लिखीहैं

वही

रामकथाभिलाषियोंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजीने

'गूजरातीप्रिंटिंग' प्रेसमें छपवायके

प्रसिद्ध किया.

आषाढ सं० १९५२ शाके १८१८

॥ अयोध्याकाण्ड २ ॥

दोहा—सीताराम विलास करि, पुनि वन कीन पयान ॥
राजगमन सुरराजपुर, अवधकाण्डमें जान ॥ १ ॥

दोहा—छांड़ि कुसङ्ग सुसङ्ग मैं, जो यह सुनहिं प्रसङ्ग ॥
अङ्गअङ्गमें भक्ति है, आशु तासु भवभङ्ग ॥ २ ॥

दोहा—सुनी सुनाई नहिं कथा, जिन यह सुधासमान ॥
ते शरीर धरि शोच वृथा विचरहिं गधासमान ॥ ४ ॥

दोहा—जो रामायण की करै, पारायण चित लाय ॥
सो तारायण होत है, नारायणवर पाय ॥ ३ ॥

अयोध्याकाण्डम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमहादेवजी बोले कि-हे पार्वति ! एकसमय श्रीरामचंद्रजी अपने रणवासके आंगनमें रत्नजटित सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठेथे, और शरीरपर सम्पूर्ण आभूषण धारण करेहुएथे ॥ १ ॥ अङ्गकी कान्ति नीलकमलके पत्रकी समान श्यामवर्ण थी; कण्ठमें कौस्तुभमणि लटक रहीथी, सीता अपने हाथमें रत्नजटित दण्डीका चमर लियेहुए वायु कररहीथी, ॥ २ ॥ और ताम्बूल भक्षणादि भोग सामग्रीकरके श्रीरामचंद्रजी सीताजीको विनोदित कररहेथे उससमय नारदमुनि तिन रामचंद्रजीका दर्शन करनेके निमित्त तहाँ आकाशमार्गसे उतरकर आए ॥ ३ ॥ नारदमुनि आरहे हैं, यह वार्त्ता श्रीरामचंद्रजीके ध्यानमें और मनमें बिलकुल नहींथी, एकाएकी शरत्कालके चन्द्रमाकी समान देदीप्यमान, और स्फटिकमणिकी समान उज्ज्वल दिव्य पुरुष नारदजी तहाँ आकर खड़े होगए ॥ ४ ॥ नारदमुनिको देखतेही सीताजीसहित श्रीरामचंद्रजी प्रीतिपूर्वक एक साथ उठकर खड़े होगए और हाथ जोडकर भक्तिपूर्वक पृथ्वीपर मस्तक टेककर नमस्कार करा ॥ ५ ॥ इससमय श्रीरामचंद्रजीको अत्यन्तही आनन्द हुआ, और नारदजीसे बोले कि—हे मुने ! संसारी पुरुषोंको आपका दर्शन दुर्लभ है, तिनमेंभी हे नारद ! जिसका मन विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होरहा है ऐसे मुझसरीखे पुरुषोंको तो अत्यन्तही दुर्लभ है ॥ ६ ॥ आज मेरे पूर्व जन्मोंमें करेहुए शुभफलदायक कर्म्मोंका उदय हुआ, क्योंकि जो हे नारद ! संसारमें पडेहुएभी मुझे साधुओंका समागम होता है ॥ ७ ॥ इसकारण हे मुनीश्वर ! मैं केवल आपके दर्शनसेही कृतकृत्य होगया, अब मुझे आपका क्या कार्य्य करना चाहिये, सो कहिये उसको मैं करूं ॥ ८ ॥ तदनन्तर नारदमुनिभी तिन भक्तवत्सल रामचंद्रजीसे बोले—कि हे रामचंद्र !

लोकचारके अनुसार वाक्योंको कहकर क्या मुझेभी मोहित करतेहो ? ॥ ॥ ९ ॥ और हे प्रभो ! मैं जानताहूँ कि " ऐसा जो आपने कहा सो सत्य है, क्योंकि यद्यपि तुम अन्य प्राणियोंकी समान संसारी नहींहो, तथापि त्रिलोकीरूप गृहकेविषें आप प्रधान गृहस्थ हो, और सम्पूर्ण जगत्की आदिकारण जो माया सो आपकी गृहिणी (स्त्री) है ॥ १० ॥ आपके सम्बन्धसे तिस मायारूप स्त्रीकेविषें ब्रह्मा–शिव आदि सन्तान उत्पन्न होती है, सत्व–रज–तम–इन तीन गुणोंकरके युक्त जो माया वह तुम्हारे आधारसे भिन्न भिन्न रूपमें प्रतीत होय है, वह माया सदा शुक्ल–कृष्ण–और रक्तवर्ण प्रजाको उत्पन्न करती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे सर्वान्तर्यामिन् ! आप विशुद्ध पुरुष हैं और सीता पराप्रकृति है, प्रकृति पुरुषसे अन्य संसारमें कुछ पदार्थ नहीं है, तुम विष्णु हो और सीता लक्ष्मी है, तुम महादेव और सीता पार्वती हैं, तुम ब्रह्मा हो और सीता सरस्वती हैं, तुम सूर्य्य हो और सीता प्रभा (सूर्यकी स्त्री) हैं, तुम चन्द्रमा हो और सीता सुन्दर लक्षणों करके युक्त रोहिणी हैं, तुम इन्द्र हो और सीता इन्द्राणी हैं, तुम अग्नि हो और सीता स्वाहा (अग्निकी स्त्री) हैं, ॥ १३ ॥ १४ ॥ और हे प्रभो! मृत्युस्वरूप यम तुमही हो औ उसकी संयमिनी शक्ति जानकी हैं, और हे जगन्नाथ ! तुम निर्ऋति हो और शोभनरूपजानकी तामसी (निर्ऋतिकी स्त्री) हैं, हे रामचन्द्र तुम वरुण हो और शुभलक्षणा जानकी भार्गवी हैं, हे रामचन्द्र तुम वायु हो और जानकी सदागति (वायुकी स्त्री) हैं इसप्रकार सर्वज्ञपुरुष कहते हैं, हे रामचन्द्र! तुम कुबेर हो और जानकी सर्व सम्पत्तिरूप कुबेरकी स्त्री हैं इस प्रकार शास्त्रोंनें वर्णन करा है जानकीका "रुद्राणी" नाम है और तुम सम्पूर्ण लोकोंके संहार करनेवाले रुद्र हो ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ जगत्में स्त्रीवाचक (स्त्रीलिङ्ग) जो कुछ वस्तु है वह सबही सुन्दर लक्षणोंसे युक्त जानकी हैं, और पुरुषवाचक (पुल्लिङ्ग) सम्पूर्ण पदार्थ हे रामचन्द्र तुम हो ॥ १८ ॥ इस कारण हे देव त्रिलोकीकेविषें तुम दोनो (प्रकृति–पुरुष) से भिन्न कोई वस्तु नहीं है ॥ ॥ १९ ॥ तुम्हारे आभास (सम्बंध) के योगसे सृष्टिकी रचना करनेमें

प्रवृत्त हुआ जो अज्ञान वह अव्याकृत (प्रकृति) नामसे कहाजाय है, तिस अव्याकृतसे महत्तत्त्व होय है, तिस महत्तत्त्वसे अहङ्कार होय है, और तिस अहंकारसे सर्व कार्य्यस्वरूप लिङ्गशरीर उत्पन्न होय है ॥ २० ॥ अहंकार (मन), बुद्धि, सूक्ष्म पञ्चमहाभूत (इनकेही अन्तर्गत पाँच कर्म्मेन्द्रिय हैं) पञ्चप्राण, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, इन सबकी समष्टिको विद्वान् सर्व कार्य्यरूप लिङ्गशरीर कहते हैं, इस लिङ्गशरीरको मृत्यु–सुख–दुःख आदि विकार होते हैं ॥ २१ ॥ इस लिङ्गशरीरका अभिमानी सर्व जगत्स्वरूप (समष्टिरूप) जो हिरण्यगर्भ उसका " जीव " नाम है वह ब्रह्मस्वरूप निर्विकार होकरभी उपाधिके कारण संसारका कारण प्रतीत होय है, वह उपाधि अविद्या (अज्ञान) है, उसके स्वरूपका निश्चयात्मक वर्णन नहीं होसकै है, और उसकी उत्पत्ति नहीं होय है अर्थात् सनातन कालकी है ॥२२॥ स्थूलशरीर (विराट्), सूक्ष्मशरीर (लिंग शरीर) और कारण शरीर (अन्तर्य्यामी ईश्वर), यह तीन चैतन्यकी उपाधि हैं, इन उपाधियोंकरके युक्त चैत्यन्यको " जीव" कहते हैं, और उपाधिरहित चैतन्य परमेश्वर है ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण संसारका जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति इन तीन संज्ञाओंके भीतर अन्तर्भाव है जिसमें इन्द्रियोंका व्यापार चलता रहे ऐसे जागनेके कालको जाग्रत अवस्था कहते हैं और जिसमें इन्द्रियोंका व्यापार न चले केवल अन्तःकरणकी वासनाके अनुसार भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न हो उसे स्वप्नावस्था कहते हैं, और जिसमें इन्द्रिय अथवा मन आदि किसीकीभी वृत्ति नहीं चलती है उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं हे रामचंद्र ! तुम तिन अवस्थारूप संसारसे भिन्न हो और उसको साक्षी (देखनेवाले) हो ॥ २४ ॥ हे राम! यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे प्रकाशसे उत्पन्न हुआ है, और तुम्हारेविषें ही स्थित है, तथा, अन्तकालमें यह सब तुम्हारेविषें ही लीन होताहै, इसकारण इस सम्पूर्ण सृष्टिके कारण तुमही हो ॥ ॥ २५ ॥ जिसप्रकार रस्सीको सर्प माननेसे पुरुषको भयकी प्रतीति होती है, तिसीप्रकार आत्माको जीव माननेसे भयरूप संसार भोगना पड़ता-

है, फिर जब "मैं परमेश्वर हूँ" ऐसा ज्ञान होतेही प्राणी संसाररूप भयसे और दुःखोंसे छूट जाता है ॥ २६ ॥ तुम केवल ज्ञानरूप तेजकरके सबके शरीरोंमें सम्पूर्ण बुद्धियोंको प्रकाशित करतेहो, इसकारण तुम सबके आत्मा हो ॥ २७ ॥ जिसप्रकार अज्ञानसे रस्सीमें सर्पकी प्रतीति होने लगै है. तिसीप्रकार तुम्हारे स्वरूपकेविषें सम्पूर्ण जगत्का आरोप अज्ञानकाही कराहुआ है, तुम्हारा ज्ञान हुआ कि यह सम्पूर्ण प्रपञ्च लीन होताहै, इसकारण ज्ञानका नित्य अभ्यास करे ॥ २८ ॥ तुम्हारे चरणोंकी भक्ति करनेवालोंको क्रमसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञानकी प्राप्ति होती है, भक्तिके शिवाय ज्ञानकी प्राप्तिका अन्य उपाय नहीं है, इसकारण जो पुरुष तुम्हारी भक्ति करनेवाले हैं वहही मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ २९ ॥ मैं तुम्हारे भक्तोंके भक्तोंका और उनकेभी भक्तोंका दास हूँ हे प्रभो! मेरे ऊपर उपकार और मुझे मोहित नहीं करो ॥ ३० ॥ हे प्रभो! तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, तिससे हे श्रीरामचंद्रजी मैं तुम्हारा पौत्र (पोता-नाती) हूँ, इसकारण मुझदासकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ ऐसे कहकर नारदने रामचन्द्रजीको अनेकवार प्रणाम करा, और नारदजीके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा, तदनन्तर रामचंद्रजीसे फिर बोले कि– हे रामचंद्रजी! मुझे ब्रह्माजीने तुम्हारे पास सन्देशा कहनेके निमित्त भेजा है ॥ ३२ ॥ हे रघुकुलमणि रामचंद्रजी! तुमने रावणका वध करनेके निमित्त अवतार धारण करा है अब राज्यकी रक्षा करनेके निमित्त पिता तुमको अभिषेक करेंगे ॥ ३३ ॥ यदि तुम राज्याभिषेकको प्राप्त होकर राज्यकार्य्योंमें आसक्त होजाओगे तो तुमसे रावणके वधका कार्य नहीं होयगा और हे रामचन्द्र! तुमनें रावणका वध-करके पृथ्वीका भार दूर करनेकी प्रतिज्ञा करी है ॥ ३४ ॥ उसको सत्य करो, हे राजेन्द्र! तुम निःसन्देह सत्यप्रतिज्ञ (प्रतिज्ञा करके उसके अनुसार कार्य्य करनेवाले) हो, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है, इसप्रकार नारदजीके कहनेको सुनकर श्रीरामचंद्रजी मुसकुराते हुए नारदजीसे बोले ॥ ३५ ॥

हे नारद ! सुनो जो मुझे मालूम न हो ऐसी कोई वस्तु क्या कहीं है ? अर्थात् मुझे सर्वत्रका सब वृत्तान्त विदित है, मैंने जो प्रतिज्ञा करी है, उसके अनुसार सब कार्य्य करूंगा, इसमें कुछ सन्देह मत करो ॥ ३६ ॥ परंतु यह सब वार्ता समयके अनुसार है, दैत्योंका प्रारब्धकर्म्म क्षीण होनेपर मैं क्रमक्रमसे उनका नाश करके पृथ्वीका भार दूर करूंगा ॥३७॥ रावणका वध करनेके निमित्त कलको दण्डकारण्यकेविषें जानेवाला हूं, तहाँ मुनिवेष धारण करके चौदह वर्ष रहूंगा ॥ ३८ ॥ और सीताके मिषसे मैं उस दुष्टका कुटुम्बसहित नाश करूंगा, इसप्रकार रामचंद्रजीके प्रतिज्ञा करनेपर नारदजीको परम आनन्द हुआ ॥ ३९ ॥ तदनन्तर नारदमुनिने श्रीरामचंद्रजीको तीन प्रदक्षिणा करके साष्टांग नमस्कार करा, और रामचंद्रजीकी आज्ञा पाकर स्वर्गलोकको चलेगए ॥ ४० ॥ जो मनुष्य मुनिवर नारदजीके और श्रीरामचंद्रजीके इस संवादको प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पढ़े, श्रवण करे, अथवा विचारै तो उसको प्रथम वैराग्यकी प्राप्ति होती है, और तदनन्तर क्रमसे ब्रह्मस्वरूपकेविषें एकतारूप मोक्षको प्राप्त होता है, जो मोक्ष देवताओंकोभी दुर्लभ है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डभाषाप्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितियःसर्गः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! इधर राजा दशरथ एकान्तमें बैठे थे, सो अपने कुलगुरु जो वसिष्ठ तिनको बुलवाकर इसप्रकार कहनेलगे ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! नगरकेविषें निवास करनेवाले प्रजाके लोग व्यापारी और वेदको जाननेवाले विद्वान्, तथा वृद्ध वृद्ध मंत्री तो विशेषकरके रामचंद्रकी वारंवार प्रशंसा करते हैं, वह सबको प्यारा है ॥ ॥ २ ॥ तथा वह सर्व गुणसम्पन्न और मेरे सब पुत्रोंमें बडा है, इस कारण हे मुनिवर ! मैं तिस कमलनेत्र रामचंद्रको राजाभिषेक करूंगा, क्यों कि मेरीभी वृद्धावस्था होगई है ॥ ३ ॥ शत्रुघ्नकरके सहित भरत अपने मामासे मिलनेको गए हैं, और मैं शीघ्र कलकोही अभिषेक करना चाँह-

ताहूं आप इसमें सम्मति दीजिये ॥ ४ ॥ " वसिष्ठजी बोले कि—हे राजन्‌! यदि आपकी इच्छा है बडी सुन्दर वार्त्ता है, " अब तुम सामग्रियें इकट्ठी करो, रामचंद्रजीके समीप जाकर उनके कानमेंभी यह वार्त्ता डालदो, अनेक वर्णकी पताकाएँ नगरमें इधर उधर टँगवादो, ॥ ५ ॥ सोनेकी और मोतियोंकी चित्रविचित्र बन्दरवालें बंधवादो, इसप्रकार वसिष्ठजीके कहने पर राजा दशरथने अपने मंत्रियोंमें मुख्य सुमंत्रनामक मंत्रीको बुलवाकर कहा कि ॥ ६ ॥ वसिष्ठजी जो जो आज्ञा करें वह वह सामग्री लाकर दो, कलको मैं रामचंद्रजीको युवराजपदका अभिषेक करूंगा ॥ ७ ॥ सुमन्त्र आनन्दपूर्वक राजा दशरथसे " बहुत अच्छा " इसप्रकार कहकर वसिष्ठजीसे बोले कि महाराज! मैं क्या करूं सो आज्ञा दीजिये, तब महातेजस्वी श्रेष्ठ ज्ञानी वसिष्ठमुनि उससे बोले कि ॥ ८ ॥ कल प्रातः-कालके समय बीचके द्वारपर सुवर्णके आभूषणोंको धारण करेहुए सोलह कन्या स्थित रहैं, और ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुआ, चार दाँतोंवाला हस्ती सुवर्ण और रत्न आदिके आभूषणोंमें शोभायमान करके तहां खडा करो, अनेक तीर्थोंके जलोंकरके पूर्ण भरेहुए सुवर्णके सहस्रों कलश लाकर रक्खो, और नौ अथवा तीन व्याघ्रके चर्म्म लाओ रत्नजटित हैं दण्डे जिनके ऐसे मोती और रत्नोंकी झालरोंवाला उत्तम श्वेतच्छत्र, उत्तमपुष्प, वस्त्र, तथा बहुमूल्यके आभूषण यह सब सामग्री इकट्ठी करनी चाहिये, और मुनिगणोंको सत्कारपूर्वक बुलाओ, वह हाथोंमें दर्भ (कुश) लेकर तहाँ खडे रहैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ नाँचनेवाली वेश्याएँ, गवय्ये, बांसुरी बजानेवाले, तथा औरभी नानाप्रकारके बाजे बजानेमें कुशल अनेक बाजंदरी राजमन्दिरके आंगनमें बाजोंको बजावैं ॥ १३ ॥ अपने अपने शस्त्रोंकरके सहित हाथी—घोडे—रथ—और पैदल—इस चतु-रङ्ग सेनाको तहां बाहर खडी करो, और नगरमें जो जो देवताओंके मन्दिर हैं उनमें पूजा करनेका प्रारम्भ कराओ, तिन देवताओंके प्रिय नानाप्रका-रके बलि दो, राजाओंको बुलावे भेजो कि वह नानाप्रकारकी भेंट (नजर)

लेकर शीघ्रही यहांआवैं॥ १४ ॥ १५॥महातेजस्वी वसिष्ठमुनि राजाके सुमन्त्र-नामक मंत्रीको इसप्रकार आज्ञा देकर अपने आप श्रीरामचंद्रजीके मन्दिरमें गए, वह श्रीरामचंद्रजीका मन्दिर अति रमणीय था॥ १६ ॥त्रिकालकी वार्त्ताको जाननेवाले श्रेष्ठ वसिष्ठमुनि रथमें बैठकर रामचंद्रजीके समीप आए और तिस मन्दिर ड्यौढियोंको उल्लंघन करके रथसे भूमिपर उतरे ॥ १७ ॥ वसिष्ठजी अपने (श्रीरामचंद्रजीके) कुलगुरु थे इसकारण श्रीरामचंद्रजीके मन्दिरमें जानेका उनको निषेध (मनादी) नहींथा, वह रामचंद्रजी मन्दिरमें थे सो 'गुरु आए हैं' ऐसा सुनतेही हाथ जोडकर सन्मुख आए; और अन्तःकरणमें गुरुकी पूर्ण भक्ति होनेकेकारण गुरुको साष्टाङ्ग प्रणाम किया, इधर जानकीजी सुवर्णके पात्रमें शीघ्रही जल लाईं ॥ १८ ॥ १९ ॥ और सीतासहित रामचंद्रजीने वसिष्ठजीको रत्नोंके आसनपै बैठाकर भक्तिपूर्वक चरण धोये, और उस चरणोंको जलको मस्तकपर धारण करा, और कहने लगे कि महाराज! आज आपके चरण कमलोंके जलको धारण करनेसे मैं धन्य हूँ, श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकारके कथनको श्रवणकरके वसिष्ठमुनि हँसते हुए बोले कि हे राम! आज आपके चरणकमलके जलको धारण करके साक्षात्पार्वतीपति शिव धन्य हुए, और मेरे पिता ब्रह्माजीभी आपके चरणोंके जलसे निष्पाप हुए ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ और मुझसे जो तुम इसप्रकार वार्त्तालापकरके मेरा गौरव कर रहेहो, इसका यह तात्पर्य्य प्रतीत होता है कि ब्राह्मणोंको पूज्य माननेके निमित्त लोकोंको उपदेश करतेहो, और मैं तो आपके सत्य स्वरूपको जानताहूँ, तुम सर्व शक्तिमान् ईश्वरने लक्ष्मीकरके सहित यहां अवतार लिया है ॥ २३ ॥ हे श्रीरामचंद्र देवताओंका कार्य्य सिद्ध करनेकेलिये, और भक्तोंको भक्तिका फल देनेके लिये, तथा रावणका वध करनेकेनिमित्त तुमने अवतार धारण करा है, यह मैं जानताहूँ ॥ २४ ॥ तोभी देवताओंका कार्य्य सिद्ध होनेके निमित्त मैं यह गुप्त वार्त्ता किसीके सामने प्रकट नहीं करताहूँ, हे रामचंद्रजी! जिस प्रकार मायाकरके तुम सम्पूर्ण कार्य्य करते हो, तिसकेही

अनुसार मैंभी आपके साथ वर्त्ताव करता हूँ इस कारण जब तुम अपनेको मेरा शिष्य कहकर वर्त्ताव करते हो. तो मैंभी अपनेको तुम्हारा गुरु कहकर वर्त्ताव करता हूँ, और वास्तवमें हे देव! तुम सम्पूर्ण गुरुओंके गुरु और पितरोंके पितामह (अर्थात् सबकी अपेक्षासे महान्) हो ॥ २५ ॥ २६ ॥ तुम सबके अन्तर्य्यामी (हृदयमें प्रेरक) होकर जगत्के मार्गको चलाते हो तुम्हारा स्वरूप नेत्र आदि इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आवे है. इससमय धारण कराहुआ तुम्हारा यह शरीर शुद्ध सत्वगुणात्मक (रजोगुण और तमोगुणके लेशकरके रहित) है, जन्मको धारण करना तुह्मारे स्वाधीन है ॥ २७ ॥ तुम अपनी योगमायाके योगसे इस लोकमें मनुष्यकी समान प्रतीत होते हो, हे रामचन्द्र! मैं जानता हूँ कि पाधाई पुरोहिताईका कार्य्य निन्दित है. और इस वृत्तिसे निर्वाह करनेमें दोष लगता है, परन्तु इक्ष्वाकुके वंशमें परमात्मा रामचन्द्ररूपसे अवतार धारण करेंगे, ऐसा मुझे पहिलेसेही मालूम था, क्योंकि मुझसे ब्रह्माजीने कहा था, इसकारण मैंने तुह्मारे सम्बन्धकी इच्छाकरके यह निन्दितभी पाधा पुरोहितका कार्य्य मैंने स्वीकार कर लिया, क्योंकि मुझे यह आशा थी कि मैं तुम्हारा गुरु होऊँगा, ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे रामचंद्र! वह मेरा मनोरथ आज पूरा हुआ, हे देव! सम्पूर्ण लोकोंको मोहनेवाली माया तुम्हारे स्वाधीन है ॥ ॥ ३१ ॥ हे रघुकुलोद्धारक श्रीरामचंद्र! मेरी आपसे इतनी प्रार्थना है कि वह माया मुझे किञ्चिन्मात्रभी मोहित न करे, ऐसा करो, यदि तुम्हारे मनमें "गुरुके ऊपर कोई प्रत्युपकार करना योग्य है" ऐसी इच्छा होय तो मेरी इस याचनाको पूर्ण करिये ॥ ३२ ॥ कहनेका प्रसंग आगया इस कारण मैने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा है, अन्यत्र कहीं यह वृत्तान्त कहने योग्य नहीं है, और मैं कहूँगाभी नहीं ऐसा विश्वास रक्खो, और हे रामचंद्र! आज मुझे दशरथराजाने तुम्हारे पास भेजा है, कारण यह है कि कल तुमको राज्याभिषेक करेंगे, यह वार्त्ता कहनेकेलिये मैं आयाहूँ, इस कारण हे रामचंद्र! शास्त्रमें कही हुई रीतिके अनुसार तुम आज सीता-

करके सहित उपवास करो, पवित्र रहो, भूमिपर शयन करो, इन्द्रियोंको वशमें रक्खो, हेरामचंद्र ! अब मैं राजाके समीप जाताहूँ, तुम प्रातःकाल आओगेही ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार कहकर वह राजगुरु वसिष्ठजी रथमें बैठकर वहांसे तत्काल चलेगए, रामचंद्रजीभी लक्ष्मणजीकी ओरको देखकर हँसते हँसते इसप्रकार बोले॥ ३६ ॥कि हे लक्ष्मण ! कल मुझको यौवराज्याभिषेक होगा,इस सम्पूर्ण चरित्रका मैं केवल निमित्तमात्र हूं वास्तवमें सब कार्य्य करनेवाले और भोगनेवाले तुमही हो ॥ ३७ ॥ निःसन्देश तुम मेरे बाहरके प्राण हो, (अर्थात् जिसप्रकार शरीरके भीतरके प्राण मुझको अत्यन्त प्रिय हैं, तिसीप्रकार बाहर तुम अत्यन्त प्रिय हो) श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे इसप्रकार वार्त्तालाप करके वसिष्ठजीकी आज्ञाके अनुसार उसदिन व्रत धारण करा, ॥ ३८ ॥ वसिष्ठजीनेभी राजा दशरथके समीप जाकर उनको कराहुआ सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया, राजा दशरथने वसिष्ठजीके आगे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी वार्त्ता फिर चलाई ॥ ३९ ॥ उस समय नगरके एक पुरुषने वह वार्त्ता सुनली और जाकर रामचन्द्रजीकी माता जो कौसल्या तिससे और सुमित्रासे कह दी ॥ ४० ॥ तिस वार्त्ताको सुनकर दोनों रानियोंको बड़ा आनन्द हुआ, और उस कहनेवाले पुरुषको उत्तम हार पारितोषिका (इनाम) दिया, तदनन्तर तिस पुत्रकेविषे वात्सल्यभाव रखनेवाली कौसल्याने मनमें प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीका कार्य्य (राज्याभिषेक) सिद्ध होनेके निमित्त लक्ष्मी देवीका पूजन किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ राजा दशरथ सत्य बोलनेवाले है, जो प्रतिज्ञा करते हैं, उसके अनुसारही कार्य्य भी करतेहैं, परन्तु कामी होनेके कारण किञ्चिन्मात्र कैकेयीके वशमें हैं, इसकारण कोन जाने क्या करेंगे, ऐसा विचार करके कौसल्या मनमें व्याकुल हुई और संकट दूर करनेवाली दुर्गा देवीका पूजन किया॥ ४३ ॥इस अन्तरमें ही देवताओंने दिव्यरूप सरस्वतीको प्रेरणा करी कि हे देवि ! प्रयत्नपूर्वक लोकमें अयोध्या नगरीकेविषें जा, और रामचंद्रजीको जो राज्याभिषेक होनेवाला है, उस कार्य्यमें ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार विघ्न कर, प्रथम

मन्थराके शरीरमें प्रवेश कर तदनन्तर कैकेयीके देहमेंभी प्रवेश कर॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ हे शुभकारिणि ! फिर विघ्नोंके प्रकट होतेही तू लौटकर स्वर्गलोकको आओ. वाग्देवता (सरस्वती) ने " तथास्तु-बहुत अच्छा " इसप्रकार कहकर वैसाही किया, अर्थात् उसने मन्थराके शरीरमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ व कुबड़ी और कमर, छाती, तथा कण्ठ इन तीन स्थानोंमें टेढ़ी थी, वह मन्थरा उससमय राजमन्दिरके ऊपर चढ़ी, तो सम्पूर्ण नगर चारोंओर सजाहुआ देखा, जिधर तिधर सैंकड़ों वन्दनवारेंभी बँधीं थीं पताकाओंसे उनकी अत्यन्तही शोभा होरही थी, सर्वत्र अनेक प्रकारके उत्सव होरहेथे, यह देखतेही मन्थराको बड़ा आश्चर्य्य प्रतीत हुआ, और नीचे उतर आई,॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ धाईसे बूझने लगी कि-हे मातः ! इस समय नगरके सजनेका क्या कारण है ? कौसल्या आज अनेक प्रकारके उत्सव करनेमें तत्पर होकर परम प्रसन्न दीख रही है और श्रेष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नानाप्रकारके वस्त्र देरही है, यह वार्त्ता क्या है ? इसपर धाईने उससे कहा कि हे मन्थरे ! कल रामचंद्रजीको राज्याभिषेक होयगा, इसकारण आज सम्पूर्ण नगर सजा है, यह सुनतेही मन्थराने एकान्तमें चुप्प पलँगपर लेटीहुई विशालनयना कैकेयीसे कहा ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ कि हे हतभागिनी! अरी मूर्खे! क्या अबभी निश्चिन्त ही बैठी है, नहीं जानती कि बड़े संकटका समय आपहुँचा, तू अपनेको अतिसुन्दर मानकर बड़े गर्व (घमण्ड) से चलती है, परन्तु तुझको अबभी सत्यवार्त्ता मालूम नहीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अरी राजा दशरथकी कृपासे कल रामचन्द्रजीको राज्याभिषेक होयगा, कैकेयीका कहना मधुर और स्वभाव सरल था, सो मन्थराकी यह वार्त्ता सुनतेही कैकेयीने एक साथ उठकर उसको महामोलका रत्नजडित सुवर्णकी पायजेवोंका जोड़ा पारितोषिक (इनाम) दिया. और कहने लगी कि अरी मन्थरे! यह तो आनन्दकी वार्ता है, जिसपर भी तू " बडे संकटका समय आपहुँचा " ऐसा मुझसे कहती है, इसमें क्या कारण है, ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ रामचन्द्रजीका भाषण तो बडा मधुर है, वह मुझ भरतकी अपेक्षा अधिक प्रियकार्य्य करनेवाले

प्रतीत होतेहैं, कौसल्याको और मुझे दोनोकोही वह एकसा मानतेहैं, और एक भाव करकेही निरन्तर सेवा करते हैं ॥ ५६ ॥ अरी मूर्ख ! रामचंद्रसे तुझे क्या भय प्राप्त हुआ है सो मुझसे कह श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! वागूदेवता (सरस्वती) का शरीरमें प्रवेश होनेके कारण उसके मनमें बड़ा वैरभाव उत्पन्न होरहाथा, सो इसप्रकार कैकेयीके कथनको सुनतेही उस मन्थराके चित्तमें बड़ा खेद हुआ, और कहने लगी कि-हे देवि ! मेरे कहनेकी ओर ध्यान दे, यह मैं यथार्थ कहती हूँ कि तुझे बड़े भारी संकटका समय आपहुँचा, राजा दशरथ तुझे सन्तुष्ट करनेके निमित्त मधुर वचन बोलते हैं, वास्तवमें वह कामी और असत्य बोलनेवाले हैं, तुझको केवल मधुर वचनों मात्रसेही सन्तुष्ट करते हैं; और रामचंद्रकी माता (कौसल्या) के बड़े २ कार्य्य करते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ यह संकेत मनमें विचार करही उन्होने तेरे पुत्रको (मामाके यहां) भेज दिया है, हे कैकेयि ! छोटे भ्राताकरके सहित भरतको मामाके यहाँ भेजनेका कारण यहही है ॥ ६० ॥ और सुमित्राका कार्य्य तो निःसन्देह ठीक होजायगा, क्योंकि लक्ष्मण सदा रामचंद्रजीके चित्तके अनुसार वर्त्ताव करते हैं, सो उनको तो राज्यका उपभोग मिलैगाही ॥ ६१ ॥ केवल भरतकीही इसमें दुर्दशा होयगी; या तो उनको रामचंद्रजीके सामने सेवककी समान रहना पड़ैगा, अथवा नगरसे बाहर जाना पड़ैगा, अथवा शीघ्रही प्राणोंका त्याग करना पड़ैगा ॥ ६२ ॥ और तुझे तो दासीकी समान नित्य सेवा करनीही पड़ैगी, और सपत्नीसे प्राप्त हुए अपमानको सहनेकी अपेक्षा तो मरण होजाय तो श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ इसकारण तू आजही शीघ्र यह यत्न कर कि भरतको राज्याभिषेक होय, और रामचन्द्रको नौ और पाँच (चौदह) वर्ष पर्य्यन्त वनवास होय ॥ ६४ ॥ हे देवि! ऐसा होयगा तबही तेरा पुत्र(भरत) निर्भयपदको प्राप्त होयगा, इसका उपाय मैंने पहिलेही विचार रक्खा है, सो कहती हूँ ॥ ६५ ॥ पूर्वकालमें देवताओंका और दैत्योंका युद्ध हो रहा था; उस समय इन्द्रने राजा दशरथको सहाय करनेके निमित्त बुलायाथा.

क्योंकि यह धनुर्धारी और महाशूर प्रसिद्ध हैं ॥ ६६ ॥ उस समय राजा तुझ साथ लेकर बडे सेनादलके साथ गयेथे. हे सुन्दरमुखवाली! धनुर्धारी महाराज दशरथ राक्षसोंसे युद्ध करनेमें तत्पर होगए ॥ ६७ ॥ इधर रथके धुरेकी कील टूट कर गिर पड़ी यह वार्त्ता महाराजको नहीं मालूम हुई परन्तु तैंने उसको देखा और बड़े धीरजसे उस कीलके छिद्रमें हाथ डालकर बैठ गई ॥ ६८ ॥ हे कैकेयी! उससमय तेरे नेत्रोंके कोए कृष्णवर्ण होगए, यद्यपि तुझसरीखी कोमल स्त्रियोंको यह कार्य्य करना महाकठिन है, परन्तु तैंने पतिके प्राण बचानेके निमित्त ऐसा किया, शत्रुओंका नाश करनेवाले राजा दशरथने सम्पूर्ण दैत्योंका नाश किया, तदनन्तर उनकी दृष्टी तेरी ओरको पड़ी, ॥ ६९ ॥ उस समयकी तेरी दशा और कार्य्यको देखतेही उनको बडा आश्चर्य्य और आनन्द हुआ, उन्होंने तुझे आलिङ्गन करके कहा कि—हे प्रिये! तेरे मनमें जो अभिलाषा हो सो वर माँग मैं वर देनेको समर्थ हूँ ॥ ७० ॥ 'दो वर माँग ले' ऐसा महाराजने अपने आप कहा, तब तैंने वरदान देनेमें समर्थ जो राजा दशरथ तिनसे कहा कि—हे महाराज यदि मुझे आपने दो वर दिये हैं तो वह वर बहुतकालपर्य्यन्त आपके पासही धरोहड रक्खे रहैं, हे निष्पाप! हे महाराज! जब मैं माँगू तब आप मुझे तत्काल दे दैं, यह मेरी प्रार्थना है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ राजाने इस वार्त्ताको स्वीकार कर लिया, और कहा कि—हे पतिव्रते! अब संग्राममेंसे मन्दिर (शिबिर) को जाओ, सो हे कैकेयी! यह वृत्तान्त मैंने पहिले तुझसे सुनाथा वह मुझे अब याद आगया ॥ ७३ ॥ इसकारण अब शीघ्र क्रोधमें होकर, और सम्पूर्ण आभूषणोंको उतारकर तथा इधर उधर डालकर कोपभवनमें चलीजा ॥ ७४ ॥ और भूमिपर शयन कर, जबतक सत्य प्रतिज्ञाकरके तेरा इच्छित कार्य्य करै, तबतक मौनपडी रह॥ ७५ ॥ शिवजी बोले कि हे पार्वति! तिस दुष्टाकी सङ्गतिसे कैकेयीकी बुद्धि चलायमान होगई, तिस कुबडीने जो जो वार्त्ता कही वह सब कैकेयीको सत्यही मालूम हुआ॥ ७६ ॥ और अब कैकेयीके मनमें दुष्टभाव छागया, और मन्थरासे कहने लगी कि

अरी मन्थरे! तुझे ऐसी बुद्धि कहाँसे आई, वास्तवमें तौ तू टेडी बेडी है, परन्तु इससमय मुझे बड़ी सुन्दर लगै है, मुझे नहीं मालूम था कि तुझमें ऐसी बुद्धि है ॥ ७७ ॥ मेरा प्रियपुत्र भरत यदि राजा होयगा तौ मैं तुझे सौ ग्राम इनाम देउंगी, तू मुझे प्राणोंकी समान अत्यन्त प्यारी लगै है ॥ ७८ ॥ इतना कहकर कैकेयी एकसाथ क्रोधमें भरगई, शरीरपैके सम्पूर्ण आभूषण उतारकर क्रोधसे चारोंओरको अस्तव्यस्त फेकदिये ॥ ७९ ॥ भूमिपर लोटकर उसने अपना शरीर मलिन कर लिया, फटे, मैले वस्त्र धारण कर लिये और मन्थरासे कहने लगी कि—अरी मन्थरे! कुब्जे! वक्रे? मेरी प्रतिज्ञाको सुन, रामचंद्रके वनको जानेपर्य्यन्त मैं ऐसेही पड़ी रहूंगी, अथवा अपने प्राणोंको त्याग दूँगी, यह मेरा निश्चय है, और तू मेरा हित चाहनेवाली है, तेरा भला होय कैकेयीके इसप्रकार कहनेके अनन्तर कुबड़ी (मन्थरा) अपने घरको चलीगई, और कैकेयीने वैसाही वर्त्ताव करना प्रारम्भ किया ॥ ८० ॥ ८१ ॥ शिवजी बोले कि—हे पार्वती! दुष्टोंके संगका परिणाम कैसा भयंकर होता है, देखो मनुष्य कितनाही गम्भीर होय, अत्यन्त दयालु होय, सुन्दर गुण और आचार करके युक्त होय, नीतिशास्त्रमें चतुर होय, शास्त्रोपदेश करनेवाले गुरुकी सेवामें तत्पर होय, और अधिक क्या कहैं यदि ब्रह्मविद्याका विचारकरनेवाला होय, तौभी वह यदि दुष्टोंको नित्य समागम रक्खै तो उस दुष्टकी बुद्धिपर पापोंका अधिक संस्कार होनेके कारण उसकी बुद्धिके सम्पर्कसे देखो उस श्रेष्ठ पुरुषकी बुद्धिभी नष्ट होजाती है, और धीरे धीरे वह पुरुष उसकी समान दुष्ट बनजाता है, यह वार्त्ता कैकेयी और मन्थराके उदाहरणसे प्रकटही है, ॥ ८२ ॥ इसकारण दुष्टोंका संग बिलकुल त्याग देय, यह राजकन्या कैकेयी, वास्तवमें सुशील होकर भी दुष्ट मन्थराके समागमसे बिगड़गई; तिसीप्रकार दुष्टोंका संग करनेवाला पुरुष कुकर्म्ममें फँस जाताहै और अपने कार्य्यसे भ्रष्ट होजाता है, जैसे कैकेयी ॥ ८३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि-हे पार्वति ! इधर राजा दशरथ रामचंद्रजीके अभिषेकके कारणसे उत्सव करनेके निमित्त मन्त्रियोंको और प्रजाओंको आज्ञा देकर प्रसन्न होते हुए राजमन्दिरमें आए ॥ १ ॥ तहाँ उनकी प्रिया (कैकेयी) कहीं नहीं दीखी, तिससे विह्वल होकर राजा दशरथ विचारने लगे कि यह क्या वार्त्ता है, जो सुन्दरी राजमन्दिरमें मेरे प्रवेश करनेही सदा हँसती हँसती सामने आतीथी, वह आज नहीं दीखती इसका क्याकारण है, इसप्रकार अपने आप चिन्ताकरके राजा मनमें बड़ा खिन्न हुआ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ कैकेयीकी अनेक दासी राजमन्दिरमें चिन्तामें खड़ीथी, उनसे महाराज दशरथने बूझा कि-हे दासियों ! जिसको देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द होताथा, वह मेरी प्रिया और तुम्हारी सुशीला स्वामिनी पहिलेकी समान आज मेरे पास क्यों नहीं आती है ? ॥ ४ ॥ वह दासियें बोलीं कि-हे महाराज ! वह कोपभवनमें गई है, इसमें कारण क्या है सो हमें मालूम नहीं, आप अपने जाकर इसका निश्चय करलीजिये ॥ ५ ॥ इस प्रकार दासियोंने कहा तब राजा बड़े भयभीत हुए, और कैकेयीके समीप जाकर बैठे, और धीरे धीरे उसके शरीरपै हाथ फेरते हुए बोले ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! तू पलंग और आसन आदि सबको छोड़कर भूमिपर क्यों लोटरही है, अरी डरपोक ! तू मुझसे बोलती भी नहीं इससे मुझे बड़ा खेद होता है, इस तेरे आचरणमें क्या कारण है सो प्रतीत नहीं होता ॥ ७ ॥ आभूषण क्यों फेंकदिये हैं ? और मलीन वस्त्र धारण करके पृथ्वीपर क्यों लोट रही है? तुझे क्या होगया सो तौ मुझसे कह तेरे मनमें होयगा सो सब करूंगा ॥ ८ ॥ तेरा अपकार करनेवाला पुरुष हो अथवा स्त्री हो मैं उसको दण्ड दूँगा; अथवा उसको मरवादूँगा, इसको तू निश्चय जान ॥ ९ ॥ हे देवि! तेरे मनको जिससे सन्तोष होय, वह बात मेरे सामने अवश्य कह, क्यों ही वह कितनीही दुर्लभ होय तोभी मैं अभी क्षणभरमें सिद्ध करदूंगा ॥ १० ॥ तू मेरे मनको जानती है, तेरा मेरे ऊपर प्रेम है,

मैभी तेरे अत्यन्त वशमें हूं, यह जानकरभी तू मुझे खेद देय है, यह तेरा वृथा परिश्रम है ॥ ११ ॥ कौनसे दरिद्री मनुष्यको जिसने तेरे मनकी समान कार्य्य कऱ्या होय ताको धनवान् करदूं अथवा कौनसे धनवान् पुरुषको जिसने तेरा अपकार किया हो उसको दरिद्री करदुं ? ॥ १२ ॥ किस पुरुषको मरवादू, अथवा किस मरवाने योग्य अपराधीको छोडदूं, सो बतला, मैं वैसाही करूंगा, अधिक क्या कहूं, हे प्रिये ! यदि चाहिये तौ मैं तेरे निमित्त प्राणभी दे दूं ॥ १३ ॥ कमलनयन रामचन्द्र मुझे प्राणोंसेभी अधिक प्रिय है मैं उनकी शपथ करके तुझसे कहताहूं, कि जिसमें तेरा हित होय मैं वही कार्य्य करूंगा, परन्तु तू जरा कह दे ॥ १४ ॥ रामचन्द्रकी शपथ करके राजा ऐसा कह रहेहैं, यह देखकर कैकेयीने अपने नेत्र पूंछे, और धीरेधीरे बोलनेका प्रारम्भ किया ॥ १५ ॥ कि हे महाराज ! यदि प्रतिज्ञा सत्य करनेका तुम्हारा व्रत है और यदि शपथ करते हो तौ मेरी याचनाको शीघ्रही सफल (पूर्ण) करो ॥ १६ ॥ पूर्वकालमें देवता और दैत्योंके युद्धमें मैंने आपकी रक्षा करी थी, तिस समय आपने चित्तमें प्रसन्न होकर मुझ दो वर दियेथे ॥ १७ ॥ वह दोनों वर मैंने तुम्हारे पास धरोहड़की समान रखदिये थे, क्योंकि मुझको पूर्ण विश्वास था औरहै कि आपका दृढ़ व्रत है अर्थात् एकवार देदिया सो देदिया यह आपका व्रत है, सो उन दोनोंमेंसे मैं एक वर मांगकर यह मांगती हूं कि मेरे प्रिय पुत्र भरतको शीघ्रही इस इकठी करी हुई सामग्रीसे यौवराज्य (वली अहदी) का अभिषेक करो, और दूसरा वर यह मांगती हूंकि रामचन्द्र शीघ्रही दण्डकारण्यमें जाय, ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह मुनिका वेष धारण करके अपने शरीरको शोभित करैं, जटा और वल्कलके आभूषण पहिनैं, और कन्द मूल फल खाकर चौदह १४ वर्ष वहां व्यतीत करैं ॥ २० ॥ वह फेर चौदह वर्षके अनन्तर आवैं, अथवा तहांसे आनेकी इच्छा नहीं होयतौ खुशीसे वनमे रहैं, कल प्रातःकाल कमलनयन रामचन्द्रको वनमें जाना चाहिये ॥ २१ ॥ यदि उन्होने जानेमें कुछभी विल-

न्ब किया तौ मैं आपके आगे प्राण त्याग दूंगी आप अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करिये, यही मेरी खुशी है ॥ २२ ॥ कैकेयीके इन कठोर वाक्योंको सुन तेही राजा दशरथके शरीरपर रोमाञ्च खड़े होगए,और जिसप्रकार वज्रका प्रहार लगनेसे पर्वत गिरपड़ताहै, तिसीप्रकार राजा दशरथ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २३ ॥ कुछ कालके अनन्तर होसमें होकर राजाने धीरे धीरे नेत्र खोले, अपने नेत्रोंमें आंसू आएहुए देखकर, बड़ेभयभीत होकर आंसू पूंछे उस समय राजाको ऐसा प्रतीत होने लगाकि क्या मैंने कोई इससमय खोटा स्वप्न देखा है? ओहो मैं खूब जागरहाहूं, कहीं मेरे चित्तमें भ्रम तो नहीं होरहा है? ॥ २४ ॥ ऐसा विचार मनमें कररहाथा कि इतनेहीमें व्याघ्रीकी समान आगे स्थित रानीपर राजाकी दृष्टि गई, तब उससे बोले कि-अरी कैकेयी! तू सुशील होकर यह ऐसे वचन क्यों कहती है? इससे मेरे प्राण जाते रहेंगे ॥ २५ ॥ कमलनयन रामचन्द्रने तेरा कौनसा अपराध किया है? तू तो मेरे आगे रामचन्द्रके रमणीय गुण वर्णन करा करतीथी, ॥ २६ ॥ कौसल्या और मुझे दोनोको एक समान मानकर रामचन्द्र मेरी नित्य सेवा करते हैं, ऐसा पहिले तूही कहतीथी, और अब उलटी बातैं करे है ॥ २७ ॥ तू अपने पुत्रको राज्य ले, परन्तु रामचंद्रको घरहीमें रहनेदे, इतनी मुझपर कृपाकर, हे सुन्दरि! रामचंद्रजीसे तू किसी प्रकारका भय मत करै ॥ २८ ॥ इसप्रकार कहते हुए राजा दशरथके नेत्रोंमेंसे आंसुओंकी धारा वह रहीथी, और दुःखित होकर कैकेयीके चरणोंमें गिरपडा, परन्तु कैकेयीको दया नहीं आई, और उलटा उसने अपने नेत्रोंको लाल लाल करके राजाको उत्तर दिया कि ॥ २९ ॥ हे महाराजाधिराज, क्या आपको कुछ भ्रम होगया है, जो पहिले वचन दिये और अब लौटे जातेहो, यदि अपनी प्रतिज्ञाको असत्य करोगे तो तुम्हें नरकमें जाना पड़ैगा ॥ ३० ॥ कल प्रातः यदि रामचंद्र कृष्णाजिन (कृष्णमृगका चर्म्म) और वल्कल अंगपर धारण करकै वनको नहीं जायंगे तो मैं अपने गलेमें फांसी लगाकर अथवा विष खाकर तुह्मारे सामने

प्राणोंको त्याग दूंगी ॥ ३१ ॥ इस लोकमें सभाकेविषैं अपनेको, मैं सत्यप्रतिज्ञा करनेवाला हूं" ऐसा कहकर बात मारतेहो, तुमने अबहीं मेरा इच्छित कार्य्य करनेकेलिये रामचन्द्रकी शपथ उठाई है. और थोडा काल वीताही नहीं वह अपनी प्रतिज्ञा असत्य करनेको तयार होगए, तिससे अब यह तुह्मारे लिये नरकका मार्ग है, और क्या कहूं? ॥ ३२ ॥ प्रिय स्त्रीने जब इसप्रकार कहा, तब राजा दशरथ दीन होकर दुःखके समुद्रमें मग्न होगए और मूर्छा आगई, तथा मृतककी समान अचेतन होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३३ ॥ ऐसे दुःखके कारण उनको वह रात्रि पूरे वर्षभरकी समान मालूम पडी, अरुणोदय होनेके समय गानेवाले स्तुतिपाठक (भाट) गानेलगे, ॥ ३४ ॥ परन्तु कैकेयीको क्रोध आरहाथा, इसकारण उसने उन सबका गाना बन्द करदिया, तदनन्तर प्रातःकालके समय बीचकी ड्योढीपर लोग जमा होने लगे ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋषि, कन्या, छत्र, चामर, दिव्य हत्ती, घोडा, तथा नगरकी मुख्य वेश्याएँ, नगरके पुरुष, और अन्य देशोंके रहनेवाले पुरुषभी आए. जैसी वसिष्ठ मुनिने आज्ञा दी थी उसके अनुसार सब यथास्थित तयारी होगई ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ स्त्री बालक, और वृद्ध किसीको भी रात्रिमें निद्रा नहीं आई, क्योंकि सबको ऐसी उत्सुकता होरहीथी कि पीताम्बरधारी रामचन्द्र हमारे दृष्टिगोचर कब होंगे ॥ ३८ ॥ सबका रामचन्द्रकेविषैं एकसा ध्यान लगरहाथा, कि शरीरपर सम्पूर्ण आभूषण मस्तकपर मुकुट, और हाथोंमें कड़े, धारण करेहुए, तेजके समूहकी समान दीखतेहुए कण्ठमें कौस्तुभ मणिकी समान आभूषण धारण कियेहुए, मेघकी समान श्यामवर्ण, सैंकड़ों कामदेवकी समान सुन्दर, राज्याभिषेकको प्राप्त होकर, मुसकरानयुक्त, हाथीपर आतेहुए श्रीरामचन्द्रजीको, और हाथमें श्वेत चमर लेकर उनके समीपमें खडेहुए सुलक्षणोंकरके युक्त लक्ष्मणजीको कब देखैंगे, और कब प्रभात होगा, सम्पूर्ण नगरके निवासी इसप्रकार उत्सुक होरहेथे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इस समयपर्य्यन्त महा-

राज शयन करके क्यों नहीं उठे, ऐसी चिन्ता करताहुआ, सुमन्त्र मन्त्री धीरे २ जहाँ राजा दशरथ थे तहाँ गया ॥ ४२ ॥ और जयजयकार करके राजा दशरथको शिरसे प्रणाम करा; परन्तु राजा अत्यन्त खिन्न दीख रहेथे, इसकारण सुमन्त्रने कैकेयीसे पूँछा ॥ ४३ ॥ कि हेराजरानी कैकेयी ! तुम्हारा उत्कर्ष (जय) होय, महाराज आज रोजकी समान नहीं दीखैंहैं, दुःखीसे दीखैंहैं, इसमें क्या कारण है?, कैकेयी बोली कि महाराजको रात्रिभर निद्रा नहीं आई ॥ ४४ ॥ और "राम, राम, राम" ऐसा कहकर उनकाही चिन्तन करतेरहे, इस कारण जागनेसे उनका चित्त अस्वस्थसा प्रतीत होता है, सो तू रामचंद्रको शीघ्रही यहाँ लिवाकर ला, महाराजको उनको देखनेकी इच्छा है ॥ ४५ ॥ सुमन्त्र बोला कि हे देवि ! क्रोध मत करो महाराजकी आज्ञाके विना मैं किसप्रकार जाऊँ, यह मन्त्रीका कहना सुनकर उससे राजा दशरथजी बोले कि ॥ ४६ ॥ हे सुमन्त्र ! रामचंद्रकी सुन्दरमूर्त्ति देखनेको मेरी इच्छा होरही है, तू उनको शीघ्रही लिवाकरला. ऐसी आज्ञा होतेही सुमन्त्र श्रीरामचद्रजीके मन्दिरमें गया, तहाँ जानेका उसको निषेध नहीं था, सो शीघ्रतासे तहाँ पहुँचकर श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा कि हे कमलनेत्र रामचन्द्र ! तुम्हारा कल्याण होय, मेरे साथ शीघ्रही पिताके मन्दिरमें चलिये, महाराजको तुम्हारे देखनेकी इच्छा हुई है, जीरन्त्रके इसप्रकार कहतेही रामचन्द्र रथमें बैठकर शीघ्रतासे चलदिये, रा॰ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ साथमें सारथि और लक्ष्मण यह दोनो चले, राजमन्दिरके बीचकी ड्योढ़ीमें वसिष्ठ आदि ऋषिमण्डली स्थित थी, यह पहिले कहाही है, उनकी ओरको देखतेहुए (वार्त्तालाप न करके) श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही पिताके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करतेभए, राजा दशरथ रामचन्द्रजीको हृदयसे लगानेके निमित्त उठकर खड़ेही रहे, ॥ ५० ॥ ५१ ॥ हे रामचन्द्र ! इसप्रकार कहकर उन्होने अपनी भुजा फैलाई. परन्तु दुःखके समुद्रमें पड़ेथे, रामचन्द्रजीने हा ! हा ! ! इसप्रकार कहतेहुए राजाको हृदयसे लगाकर गोदीमें लिटाया ॥ ५२ ॥ राजा दशरथ

मूर्छित होकर गिर पड़े, ऐसा देखकर सम्पूर्ण रणवासकी स्त्रियें रोदन करने-लगीं; रुदन क्यौं होरहा है? इसका निश्चय करनेको वसिष्ठजीभी भीतर आए, ॥ ५३ ॥ रामचन्द्रजीने बूझा कि, यह है क्या? राजाको दुःख काहेसे हुआ, इसप्रकार रामचन्द्रजीके बूझनेपर कैकेयी रामचन्द्रजीसे बोली ॥ ५४ ॥ कि हे रामचन्द्र! इस सम्पूर्णवार्त्ताका कारण तुमही हो इस दुःख-के दूर होनेकेलिये महाराजका हितकारक एक छोटासा कार्य्य तुम्हे करना चाहिये, ॥ ५५ ॥ अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करना, यह तुम्हारा व्रत है, तैसेही तुम महाराजकोभी अपना वचन सत्य करनेमें सहायता करो, पहिले एकसमय महाराजने चित्तमें प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये थे, ॥ ५६ ॥ उनको परिपूर्ण करना सर्वथा तुम्हारे अधीन है, महाराजको तौ तुमसे ऐसा कहते लज्जा लगती है, सत्यरूपी फाँसीसे बँधेहुए अपने पिताकी तुम रक्षा करो, यह मुझे योग्य मालूम होताहै ॥ ५७ ॥ पुत्रशब्दका अर्थ तौ यह ही है कि वह पुन्नाम नरकसे पिताकी रक्षा करताहै, कैकेयीके इन वाक्योंको सुनतेही रामचन्द्रजी वज्रका प्रहार लगनेकी समान पीड़ित हुए, और कैकेयीसे बोले कि हे मातः! तू मुझसे यह क्या बात कह-तीहै. मेरा तौ ऐसा निश्चय है कि मैं पिताके निमित्त प्राणोंको भी देदूँगा, अथवा भयंकर विषयुक्त भोजनभी करलूँगा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ सीताका तौ क्या है कौसल्यामाताकाभी त्याग करदूँगा; राज्य तौ मैं अबही त्याग दूँगा, उत्तम पुत्र उसको ही कहते हैं, कि जो आज्ञा मिलनेके पहिलेही पिताकी इच्छाको जानकर उनके अनुसार कार्य्य करै ॥ ६० ॥ पिताके आज्ञा करनेपर जो उनका कार्य्य करता है, उसको 'मध्यमश्रेणीका' पुत्र कहतेहैं, कार्य्य करनेके निमित्त पिताके आज्ञा करनेपरभी जो कार्य्य नहीं करता है, उस पुत्रको केवल 'मल' कहते हैं, अर्थात् उसको 'पुत्र' यह नाम शोभा नहीं देता, वह केवल माता और पिताके शरीरके मलका एक गोला उत्पन्न हुआ है ॥ ६१ ॥ इसकारण मेरे पिताजी मुझे जो कार्य्य करनेको कहैंगे, अथवा कहचुके होंगे, वह मैं सब कार्य्य करूँगा, सत्य

कहताहूँ कि वह कार्य्य मैं अवश्यही करूँगा, इसमें अन्तर (फरक) नहीं होयगा, रामचन्द्रजी एक वार्त्ताको दो प्रकारसे नहीं कहते, अर्थात् पहिले किसी वार्त्ताको कहकर फिर उसको लौटते नहीं किन्तु वैसाही करते हैं ॥ ६२ ॥ कैकेयीने रामचन्द्रजीकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर बोलनेका प्रारम्भ किया, कि हे रामचन्द्र! तुम्हारा अभिषेक करनेके निमित्त जो सामग्रियें इकठी करी हैं, उनसे मेरे प्रियपुत्र भरतको राज्याभिषेक अवश्य होना चाहिये, यह एक वर मैंने महाराजसे माँगा है, दूसरे वरसे मैंने यह माँगा है कि हे रामचन्द्र! तुम आज शीघ्रही अङ्गपर वस्त्रोंकी जगह चीरें अथवा वल्कल (भोजपत्र) धारण करके और जटा धारण करके, पिताकी आज्ञासे आजही बनको शीघ्र चले जाओ, और तहाँ मुनियोंके खानेको अन्नको भक्षण करके चौदह वर्षपर्य्यन्त रहो, ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ यह पिताका कार्य्य तुम आज करो, हे रामचन्द्र! महाराजको तुमसे यह वार्त्ता कहते लज्जा लगती है, ॥ ६६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे मातः! भरतही राज्य करैं, मैं दण्डकारण्यको जाताहूँ, परन्तु महाराज इस बारेमें मुझसे कुछ नहीं कहतेहैं, इसका कारण मुझे मालूम नहीं होता ६७ राजा दशरथजीने रामचंद्रजीके यह वचन सुने, और आगे खड़े हुए रामचंद्रजीकी ओरको देखा, उससमय उनको अत्यन्त दुःख हुआ, और रामचंद्रजीसे दुःखके वचन कहे ॥ ६८ ॥ कि हेराम! इस स्त्रीने मुझे पूर्ण रीतिसे जीत लिया है, मेरे मनको भ्रान्ति होनेके कारण मैं उलटे मार्गमें चलरहाहूँ इसकारण तुम मुझे राज्यसे दूर करके अथवा मुझे जेलखानेमें डालकर इस राज्यको ग्रहण करलो, ऐसा करनेसे तुम्हें पाप बिल्कुल नहीं लगैगा ॥ ६९ ॥ हे रामचंद्र तुम्हारे ऐसे करनेपर मुझेभी असत्यका दोष नहीं लगैगा, दुःखसे सन्तप्त हुए राजा दशरथ उससमय इसप्रकार कहकर विलाप करने लगे, ॥ ७० ॥ हा राम! हा जगन्नाथ! अरे मेरे प्राणवल्लभ! मुझे छोड़कर तुम घोर वनमें किसप्रकार जाओगे ॥ ७१ ॥ राजा दशरथ रामचंद्रजीको गोदीमें बैठालकर और पहिले कहनेके अनुसार पुकार पुकार

कर किछ मारकर रोदन करने लगे, रामचंद्रजीने पानीके हाथोंसे पिताके नेत्र पोंछे ॥ ७२ ॥ श्रीरामचंद्रजी नीतिशास्त्रमें प्रवीण थे उन्होंने देशकालके अनुसार इसप्रकार कहकर राजाको समझाया कि–हे महाराज ! आप तो ज्ञानी हो, इससमय दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है ? मेरे छोटे भ्राताको राज्य करने दो ॥ ७३ ॥ मैं प्रतिज्ञाको पूरी करके आपकी राजधानीमें फिर लौटकर आऊँगा, हे महाराज ! वनमें रहनेसे मुझे राज्यकी अपेक्षा करोड़गुण सुख अधिक होयगा ॥ ७४ ॥ क्योंकि उससे दो लाभ होंगे– एक तो आपके सत्यका पालन होयगा, और दूसरा देवताओंकाभी कार्य्य सिद्ध होयगा, और मैं वनमें रहूं यह वार्त्ता कैकेयीको प्रियभी है, इससे मेरे वनमें रहनेसे बड़ा लाभ होगा ॥ ७५ ॥ मेरे मनकी ऐसी इच्छा कि इसीसमय चला जाऊं, माता (कैकेयी) के मनका ताप तो दूर होने दो, अभिषेकके लिये जो जो सामग्री इकठी करी है, उनको उठाकर रखवादो ॥ ७६ ॥ माता (कौसल्या) को आश्वासन देकर, और सीताको समझाकर मैं यहां आताहूं, फिर आपके चरणोंको प्रणाम करके सुखपूर्वक वनको जाऊंगा ॥ ७७ ॥ रामचंद्रजी ऐसा कहकर और पिताकी प्रदक्षिणा करके माताके दर्शन करनेके निमित्त चलदिये, इधर कौसल्या रामचंद्रके अभिषेकके उत्सवके निमित्त बैठी हुई विष्णुभगवान्‌का पूजन कर रहीथी ॥ ७८ ॥ उसने ब्राह्मणोंसे होम करायाथा, और उनको बहुत धन दिया, अब वह मौनव्रत धारण करके एकाग्र मनसे विष्णुभगवान्‌का ध्यान कर रहीथी, ॥ ७९ ॥ सबके अन्तर्यामी अद्वितीय पूर्ण ज्ञानस्वरूप प्रकाशात्मक सबकी अत्युत्तम स्वरूपताको तिरस्कार करनेवाले और नित्यानन्दस्वरूप भगवान्‌का ध्यान करती हुई कौसल्याने आगे खडे हुएभी रामचंद्रको नहीं देखा॥ ८० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषातृतीयः सर्गः समाप्तः

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

तदनन्तर सुमित्राने तिन रामचंद्रजीको देखकर शीघ्रही कौसल्यासे

कहा कि यह रामचन्द्र आए हुए तेरे धोरे खडे हैं ॥ १ ॥ रामचंद्रजीका नाम सुनतेही कौसल्याने अपनी दृष्टिको समाधिसे उतारकर बाह्य प्रवाहमें लगाया, तब विशालनेत्र रामचंद्रजीको देखकर हृदयसे लगाया और गोदीमें बैठालिया ॥ २ ॥ मस्तकको सूंघा, तथा नीले कमलकी समान तेजयुक्त उनके शरीरपर हाथ फेरा, और कहा कि हे पुत्र ! तू भूंखा होगा, सो मैंने तेरे निमित्त मधुर मधुर पदार्थ तयार करके रक्खे हैं उनको भक्षण कर ले ॥ ३ ॥ रामचन्द्र बोले कि हे मातः ! पिताजीने अब मेरे भोजन करनेको अवकाश नहीं दिया है, मैं आज इससमय शीघ्रही दण्डकारण्यको जाऊंगा, ऐसा निश्चय किया है, ॥ ४ ॥ अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करना यह मेरे पिताजीका नियम है, तिसके अनुसार उन्होंने कैकेयीको दियेहुए वचनको सत्य करनेके निमित्त भरतको अयोध्याका राज्य और मुझे अरण्य (वन) का श्रेष्ठ, आधिपत्य दिया है ॥ ५ ॥ अब मैं मुनिका वेश धारण करके चौदह वर्षपर्य्यंत तहाँ (वनमें) रहूंगा, और फिर लौटकर आऊंगा, तू किञ्चिन्मात्रभी चिन्ता न करना ॥ ६ ॥ यह सुनतेही एकायकी दुःखकी घबड़ाहटसे कौसल्या मूर्छित होकर गिरपडी, कुछकालके अनन्तर फिर उठी, परन्तु उस अत्यन्त दुःखसे उसके मनको अत्यन्तही पीड़ा होने लगी, अधिक तो क्या उस दुःखके समुद्रमें मग्न होगई, और इस दशामेंही श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि—हे राम! यदि तुम सत्य वनकोही जाओगे, तो मुझेभी साथ ले चलो तुम्हारे विना मैं क्षणमात्रभी जीवनको किसप्रकार धारण करूंगी॥ ७॥ ८॥ जिसप्रकार गौं अपने छोटेसे बालकको छोडकर कहीं नहीं रहसके है, तिसीप्रकार हे पुत्र ? मैं तुम्हे छोडकर जरा देरभी नहीं रहसकूंगी, क्योंकि तुम मुझे प्राणोंकी अपेक्षासेंभी अधिक प्रिय हो ॥ ९ ॥ राजा प्रसन्न हो तौ वह खुशीसे भरतको राज्य देदें, तुमभी तो उन्हे प्रिय हो तिसपरभी वह तुम्हैं वनको जानेके निमित्त आज्ञा देते हैं इसमें क्या कारण है ॥ १० ॥ राजाने कैकेयीको वर दियाहै तौ, उस क्याएँ सर्वस्व देदें, तुमने कैकेयीका अथवा राजाका ऐसा क्या अपराध किया है? कि जिससे तुम्है

वनको जाना चाहिये ॥ ११ ॥ पिता गुरु होनेके कारण तुम्हारे पूज्य हैं, परन्तु मैं उनसेभी अधिक तुम्हारी मान्य हूँ, इससे पिताने वनको जानेके लिये कहा है, तौभी मैं निषेध करती हूँ कि तुम वनको मत जाओ ॥ १२॥ यदि तुम मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके राजाकी आज्ञाके अनुसार चले जाओगे तौ मैं तत्काल प्राणोंका त्यागकर यमपुरीको चली जाऊंगी ॥ १३॥ लक्ष्मण-जीको यह वृत्तान्त सुननेसे क्रोध आरहाथा, तिसमेंभी कौसल्याका यह भाषण सुननेसे तौ अत्यन्त ही बढ़गया, उस समय उनकी आकृतिसे यह प्रतीत होताथा कि मानो यह त्रिलोकीको भस्म करदेंगे, ऐसी दशामेंही उन्होंने राम-चन्द्रजीसे कहा कि ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्रजी! भरत अत्यन्त उन्मत्त हो गया हैं राज्यके लोभसे उनके मनमें भ्रान्ति होगई है, इसकारणही वह कैकेयीके स्वाधीन रहताहै, और अपनी इच्छा होता है सो करताहै, अब मैं उसको, उसके सहायकोंको और उनके मामाको बाँधकर मारे डालताहूँ ॥ १५॥ पहिले प्रलयकालमें शिवजीने सम्पूर्ण लोकोंको भस्म करतेसमय जैसा उग्र स्वरूप धारण कियाथा, वैसाही भयंकर स्वरूप मैं धारण करताहूँ, प्राणी आज मेरे पराक्रमको देखैं, हे रामचन्द्र तुम शत्रुओंको दण्ड देनेवाले हो, तौ इस समय अपना राज्याभिषेक करनेके निमित्त उद्योग करो॥ १६॥ मैं हाथमें धनुप लेकर तयार होताहूँ, और यदि उस कार्य्यमें कोई विघ्न आवेगा तौ उसका नाश करूँगा, लक्ष्मणजीके इसप्रकार कहनेपर रामच-न्द्रजीने उन्हे हृदयसे लगाया और गोदीमें बैठाकर कहने लगे ॥ १७ ॥ कि हेरघुकुलश्रेष्ठ लक्ष्मण! तुम शूर और मेरे हित करनेमें अत्यन्त कटिबद्ध हो, जैसा तुमने कहा, वैसेही तुम करसक्ते हो, यह सब सत्य है, और मैं जानताभी हूँ, परन्तु तैसा वर्त्ताव करनेका समय नही है ॥ १८ ॥ यह राज्य शरीर आदि जो कुछ दीखैहै, वह यदि सब सत्य होता तौ, उसके निमित्त तुम्हारा परिश्रम सफल होता,॥ १९॥परन्तु यह भोग मेघमण्डलके ऊपर क्षणमात्र चमकनेवाली बिजलीकी समान चञ्चल हैं, आयु तौ अग्नि-से तपाए हुए लोहेपर डालेहुए जलकी बिन्दुकी समान तत्काल नाशको प्राप्त

होनेवाली है ॥ २० ॥ जिस प्रकार मेंडक सर्पके मुखमें ग्रसाहुआ होकरभी डाँस माक्षिका आदिके पकडनेको इच्छा करताहै, तिसी प्रकार मनुष्य काालरूपी सर्पसे ग्रसाहुआ होकरभी नाशवान् भोगोंको भोगनेकी इच्छा करताहै ॥ २१ ॥ शरीरको भोग मिलै इसकारण मनुष्य रात्रिदिन बड़े कष्टसे द्रव्य पैदा करनेका उपाय और वेदोक्त कर्म्म करताहै, परन्तु यह जड़ शरीर तो अन्तर्य्यामी पुरुष (आत्मा) से बिल्कुल भिन्न है,ऐसा देखनेमें आवे है, तब पुरुषको इस शरीरमें कौनसा भोग भोगनेको मिलैगा ॥ २२ ॥ जिस प्रकार प्रपा (पानीयशाला-पौ) पर चारों ओरके पुरुष क्षणमात्रको इकट्ठे होतेहैं, तिसी प्रकार प्राणीको पिता-माता-पुत्र-भ्राता-स्त्री और भाई बन्धु आदिका कुछ कालको समागम होता है और फिर नदीमें पड़े हुए काठके और प्रवाहके संबन्धके समान चञ्चल पिता आदिका और प्राणीका समागम क्षणमात्रमें नष्ट होजाता है ॥ २३ ॥ लक्ष्मी छायाकी समान चञ्चल है, यह तो प्रत्येक पुरुषके अनुभवमें आता है, और तरुण अवस्था जलकी तरङ्गकी समान अस्थिर है, स्त्रीसुख केवल स्वप्नके सुखकी समान है, और आयु अत्यन्तही थोड़ा है,ऐसा होनेपर भी प्राणी " मैं भोग भोगताहूँ; मेरा द्रव्य है" ऐसा अभिमान करता है ॥ २४ ॥ संसार स्वप्नकी समान होकर भी नित्य रोगादिकोंसे भरा हुआ है, और इस संसारका " गन्धर्वनगर" यह नाम है ऐसा होनेपर भी पुरुष अज्ञानके वशीभूत होकर तिस संसारमें आनन्द मानते हैं ॥ २५ ॥ सूर्य्यके जाने आनेसे (उदय अस्त होनेसे) आयु नित्य नष्ट होती है, तिससे कुछ पुरुष वृद्धावस्थासे ग्रस्त होजाते हैं, और कुछ मृत्युको प्राप्त होजाते हैं, ऐसी दशा देखकर भी मनुष्य बिलकुल नहीं समझते, यह कैसा आश्चर्य्य है ॥ २६ ॥ इस प्राणीकी बुद्धिको कितना मोह होरहा है, देखो कल वीता हुआ वही दिन और वही रात्रि आज है, ऐसा समझ करभी भोग भोगनेमें आसक्त होकर आयुको वृथा खोवै है, काल (मृत्यु)के वेगको बिलकुल नहीं देखै है ॥ २७ ॥ कच्चे घड़ेमें भरकर रक्खे हुए पानीकी समान यह आयु क्षणक्षणमें कम होता जाय है,

रोगोंका समूह शत्रुकी समान शरीरपर प्रहार कररहा है ॥ २८ ॥ जरा (बुढ़ापा) व्याधीकी समान भय दिखाती हुई आगे खडी है, मृत्यु तौ यह साथही आताहुआ, "समय कब पूरा होय" ऐसी वाट देख रहाहै॥ २९॥ इस शरीरका, कीड़ा, विष्ठा अथवा भस्म, इनमेंसे कोई एक नाम रखना चाहिये, क्यों कि इसका अन्त इन तीनोंमेंसे किसीएक प्रकारका तौ होयगाही, पृथ्वीपर पड़ा सडता रहैगा तौ कीड़े पडजायँगे, कौए कुत्ते खा जायँगे तौ विष्ठा हो जायगा, और जलादियाजायगा तौ भस्म होजायगा) ऐसी वास्तविक दशा होनेपरभी प्राणी तिस शरीरके ऊपर "मैं" ऐसा अभिमान करता है, और अपनेको "मैं" राजा अथवा सब लोकोंमें प्रसिद्ध हूँ. ऐसा मानता है ॥ ३० ॥ यह देह त्वचा, अस्थि, मांस, विष्ठा, मूत्र, रेत (वीर्य) और रुधिरआदिकरके भरा है. इसको अनेक प्रकारके विकार और दशा भोगनी पडती है, आत्मा तौ निर्विकार परिणामहीन है, ऐसा वेदोंके विषें कहा है, तब कहो इस शरीरको आत्मा किसप्रकार कह सक्ते हैं, हे लक्ष्मण! तुम इस देहके ऊपर अभिमान करके लोकोंको भस्म करनेकी इच्छा करते हो ॥ ३१ ॥हे लक्ष्मण! देहके ऊपर अभिमान करनेवाले प्राणीके हाथसे अनेक दोष उत्पन्न होतेहैं, देहकेविषें " मैं (आत्मा) " ऐसी बुद्धि करनेहीका नाम अविद्या (अज्ञान) है ॥ ३२ ॥ "मैं देह नहीं हूँ किन्तु ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ" ऐसी जो बुद्धि है वही ज्ञान कहाता है, अज्ञान संसारका कारण होताहै, और ज्ञान संसारकी निवृत्ति करताहै ३३ इसकारण मुमुक्षुपुरुषोंको ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त यत्न करना चाहिये. हे लक्ष्मण ! तुझे शत्रुओंका नाश करनेका यदि आग्रह है तौ मैं शत्रु कौनसे हैं तिन्हे दिखलाताहूँ, उनका नाश कर ! अरे ! तिस मोक्षप्राप्तिरूप कार्य्यके कामक्रोधादि शत्रु हैं॥ ३४ ॥तिनमें भी इकला क्रोधही मोक्षकी प्राप्तिमें सदा विघ्न करनेको समर्थ है, मनुष्यको क्रोधका आवेश आया कि वह पुरुष पिताको भ्राताको-मित्रको-और अपने हितकरनेवालोंको भी मारनेको प्रवृत्त हो जाता है ॥ ३५ ॥ मनको ताप होनेका कारण क्रोधही है, क्रोधके कारणही

संसारमें बन्धन होता है, क्रोधही धर्मका नाश करता है, इस कारण हे लक्ष्मण! क्रोधका बिलकुल त्याग करदो ॥ ३६ ॥ यह क्रोध एक बड़ा प्रबल शत्रु है, तृष्णा (भोगकी इच्छा) ही वैतरणी (यम राजाके नगरके समीप बहनेवाली मांस, रुधिर, पीब, आदिसे भरी हुई) नदी है, सन्तोष नन्दनवन है, और शान्तिही कामधेनु है ॥ ३७ ॥ इस कारण हे लक्ष्मण! तुम अब क्षमाको अङ्गीकार करो, ऐसा करनेसे तुम्हारे शत्रु उत्पन्न नहीं होंगे ॥ ३८ ॥ आत्मा-देह-इन्द्रिय, मन, प्राण बुद्धि आदिसे भिन्न होकर शुद्ध और स्वयंप्रकाश है, उसका कोई विकार अथवा आकार नहीं है, जबतक प्राणीको आत्मा "ऐसा ज्ञान नहीं होता है, तबतक उसको संसारमें दुःखोंके समूहोंकी पीड़ा भोगनी पड़ती है, और यह मृत्यूकी तौ अवधिही है, अर्थात् जब यह ज्ञान होजाता है फिर प्राणोंको मृत्युका भय नहीं होता है, इस कारण हे लक्ष्मण! तुम नित्य हृदयके विषें "आत्मा शरीरादिसे भिन्न है" ऐसी भावना रक्खो ॥ ३९ ॥ ४० ॥ "मैं बुद्ध्यादिसे भिन्न हूँ" ऐसा बाहर लोक व्यवहारके अनुसार ऐसा वर्त्ताव खुशीसे करो, खेद बिलकुल मत करो, सुख अथवा दुःख जो कुछ प्राप्त होय उसको प्रारब्धपर दृष्टि देकर भोगते रहे, अर्थात् उसका अभिमान मत करो ॥ ४१ ॥ इसप्रकार हृदयमें विचारकर तुम संसार प्रवाहमें पड़नेके कारण चाहिये सो व्यवहार करते हुए भी लिप्त नहीं होओगे, हे रघुकुलमें जन्म लेनेवाले लक्ष्मण! बाहरमें तुम सम्पूर्ण कार्य्योंके कर्तृत्वको धारण करकेभी यदि तुम्हारा आभ्यन्तरिक स्वभाव शुद्ध रहेगा तौ अर्थात् हृदयके विषें किसी कार्य्यके कर्तृत्वका अभिमान नहीं करोगे तौ तुमको कर्म्म करनेका दोष बिलकुल नहीं लगैगा, इस मेरे सम्पूर्ण उपदेशको तुम नित्य हृदयमें रक्खो ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब तुम्हैं संसारके विषें किसी प्रकारके भी दुःखसे कदापि पीडा नहीं होयगी, हे मातः तूभी मेरी कहेहुए इस वृत्तान्तको सदा ध्यानमें रख ॥ ४४ ॥ मेरे लौटकर आनेकी बाट देखती रहो, तुझे बहुत दिनोंपर्य्यन्त दुःख नहीं सहना पडेगा, नदीके प्रवाहमें अनेक नौका डाली जायँ हैं, परन्तु उनका

एक स्थानमें रहना कदापि नहीं होय है, तिसीप्रकार संसार मार्गमें नित्य विचरनेवाले प्राणियोंका नित्य एक स्थानमें समागम कदापि नहीं रहे है, चौदह वर्ष यह संख्या बहुत मालूम होय है, परन्तु क्षणमात्रमें बीत जायगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे मातः! अब दुःखको दूर करके आनन्दपूर्वक मुझे जानेकी आज्ञा दो, ऐसा करनेसे वनमें मेरा समय सुखपूर्वक व्यतीत हो-जायगा ॥ ४७ ॥ रामचन्द्रजी इसप्रकार कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके बहुत कालपर्य्यन्त माताके चरणोंमें पडे, तब कौसल्याने उन्हे उठाकर गोदीमें बैठाया, और अनेक आशीर्वाद देकर प्रशंसा करी ॥ ४८॥ गन्धर्वों करके सहित ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता तुम्हारी चलते समय, स्थित होते समय, और शयन करते समय रक्षा करैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार कहकर और वारंवार हृदयसे लगाकर कौसल्याने रामचन्द्रजीको आज्ञा दी, पूर्व कहे हुए उपदेशको सुनतेही लक्ष्मणजीके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा, और उनका कण्ठ भरआया, ऐसी दशामेंही वह रामचन्द्रजीको नमस्कार करके, कहने लगे कि-हे रामचन्द्र! यह मेरे हृदयका सन्देह तुमने दूर करा, हे रामचन्द्र! मैं सेवा करनेके निमित्त तुम्हारे साथ चलूँ, मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! इतना मुझपर अनुग्रह करो, नहीं तो मैं प्राणोंको त्याग दूँगा, तब रामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा, शीघ्र चलो, विलम्ब मत करो' इस प्रकार कहा ॥ ५२ ॥ फिर वह सीतापति समर्थ ईश्वर तहाँसे आकर सीताको समझानेके निमित्त उसके मन्दिरमें गए, सीताजीका स्वभाव आनन्दी होनेके कारण उनका मुख नित्य हास्ययुक्त रहताथा, उनका भाषण मधुर था, "पति आए" ऐसा देखतेही सीताजीने सुवर्णके पात्रमें भरे हुए जलको लेकर भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके चरण धुलाए, और पतिकी ओरको देखकर उनसे बूझा कि-हे देव! आज आप सेनाके विनाही कैसे आए? और कहाँ गएथे? आपका श्वेत छत्र कहाँ है? बाजे नहीं बजते हैं, मुकुट आदि राजचिह्न आपके शरीरपर नहीं दीखते, सुनाथा कि आज आप

माण्डलिक राजाओंके साथ बडे ठाटसे आओगे, परन्तु आप उस रीतिसे नहीं आए, इसका क्या कारण है? सीताजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर श्रीरामचन्द्रजी हँसते हँसते उनसे बोले ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे सुन्दरि! आज महाराज (पिताजी) ने मुझे दण्डकारण्यका सम्पूर्ण राज्य दिया है, इस कारण हे प्रिये! उस पिताकी आज्ञाका पालन करनेके निमित्त मैं शीघ्रही जानेवाला हूँ ॥ ५७ ॥ मैं आजही वनको जाऊँगा, तू अपनी सासुओंके समीप रहती हुई, मेरी माताकी सेवा करती रहियो, तुझे मालूमही है कि मैं कभी असत्य नहीं बोलताहूँ ॥ ५८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके मुखसे ऐसे शब्द निकलतेही सीताजीको बडा भय मालूम पडा और रामचंद्रजीसे कहने लगी-क्या? उदार अंतःकरणसे आपके पिताजीने आपको वनका राज्य दिया है? और उन्होंने क्या कहा है?५९॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि-हे पतिव्रते सीते! महाराजने प्रसन्न होकर केकयीको वर दिया था, उससे भरतको राज्य और मुझे वनवास दिया है॥६०॥ क्योंकि कैकेयी माताने तिन वरोंमेंसे एकसे 'मैं वनमें चौदह वर्ष पर्य्यन्त रहूं' ऐसा मांगा है, दयालु महाराज सत्यवादी हैं, इसकारण उन्होंने उस याचनाको स्वीकार करा है ॥ ६१ ॥ इसकारण हे प्रिये ! मैं अब शीघ्रही जाऊँगा, तू इसमें विघ्न मत कर; इसप्रकार रामचन्द्रके भाषणको सुनकर जानकी प्रसन्न अन्तःकरणसे उनसे कहने लगी कि—हे रघुवीर ! मैं आपके आगे वनको जाऊँगी, आप पीछे चलेंगे, मुझे लियेविना जाना आपको योग्य नहीं हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ मधुर भाषण करनेवाली प्रिय स्त्रीके ऐसे भाषणको सुनकर रामचन्द्रजीको सन्तोष हुआ, और जानकीसे कहने लगे कि-हे प्रिये ! मैं तुझे अनेक व्याघ्र चीता आदि हिंसक पशुओंसे भरे हुए वनमें किस प्रकार लेजाऊंगा ॥ ६४ ॥ तहाँ मनुष्योंको भक्षण करनेवाले घोर विकराल स्वरूपके राक्षस हैं, और सिंह-व्याघ्र तथा शूकर आदि इधर उधर फिरते रहें हैं ॥ ६५ ॥ हे सुन्दरि ! तहां भोजनके अर्थ पदार्थ चाँहो तो कडुए आमले आदि फल मूल मिलते हैं. पूरी और तरकारी कभीभी नहीं

मिलतीं ॥ ६६ ॥ हे सीते! वह फलभी ढूंढो तौ योग्य समयपर किसी जगहहीं मिलते हैं, सब स्थानमें मिलही जायँ यह नियम नहीं है, रेती—कांटे आदिसे ढका हुआ होनेके कारण कहीं कहीं तौ मार्ग ढूँढनेसेभी कठिनतासे मिलता है ॥ ६७ ॥ यद्यपि तहां रहनेके योग्य गुफा आदि किलेकी समान स्थान होनेके कारण शत्रु आ नहीं सक्ते हैं, और उन गुफा आदिके कारण पीड़ाभी नहीं सहनी पड़ती है, तथापि तहां झींगर—डांस आदि जन्तु बहुत है, इस प्रकारके उस दण्डकारण्यमें अनेक दोष (भय) हैं ॥ ६८ ॥ पैरों चलना पड़ैगा, तिस मार्गमें कहीं वायु होगा, कहीं ठंढ होगी कहीं धूप होगी, तिस वनमें तू राक्षसादिकोंको देखकर भयके मारे तत्काल प्राणोंको त्याग देगी ॥ ६९ ॥ इसकारण हे सुन्दरि! तुम घरही रहो मैं तुमसे फिर शीघ्रही लौटकर मिलूंगा, इस प्रकारके रामचंद्रजीके कहनेको सुनकर सीताको बड़ा खेद हुआ और कुछ क्रोध आजानेके कारण होठ फड़फड़ाने लगे, ऐसी दशामेंही वह रामचन्द्रजीसे बोली कि-हे श्रीरामचन्द्र! मैं तुम्हारी पतिव्रता धर्म्मपत्नी हूँ, सो तुम्हारी इच्छा मुझे छोड़नेको कैसे होतीहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥ तुम धर्म्मके जाननेवाले और दयालु हो, मुझसे कोई दोष तौ हुआही नहीं है, तुम्हारे सिवाय अन्य कोईभी मेरा आधार नहीं है, हे प्राणवल्लभ! तहाँ राक्षस रहो, मैं तुम्हारे पास रहूँगी, तौ मुझे वनमें कौन भय दिखा सकैगा ७२ फलमूलआदि जो कुछ तुम्हारे भक्षण करनेसे बचैगे, वही मुझे अमृततुल्य होंगे, मैं उससेही सन्तुष्ट होकर सुखपूर्वक कालको व्यतीत करूँगी ॥ ७३ ॥ आपके साथ फिरनेपर मुझे दर्भ (कुश) काश, और काँटे भी पुष्पोंकी शय्याकी समान मालूम पड़ैंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ७४ ॥ मैं आपको किञ्चिन्मात्रभी क्लेश नहीं दूंगी, किन्तु आपका कार्य्य (रावण आदि राक्षसोंका वधरूप कार्य्य ऐसा जानकीजीका गूढ़ अभिप्राय है) सिद्ध करनेमें सहायक होऊँगी, बालकपनेमें मुझे देखकर एक ज्योतिःशास्त्रके जाननेवाले चतुर पण्डितने कहाथा कि-तेरा पतिके साथ वनमें वास होयगा, सो प्राणप्यारे! उस ब्राह्मणका वचन सत्य होने दो, मैं तुम्हारे साथ

वनको जाऊँगी ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ हे प्रभो ! और भी एक थोडीसी बात आपसे कहती हूँ, उसको सुनकर मुझे वनको ले चालिये, इस प्रकार तुह्मारे मनमें आही जायगा, देखो प्रभो! तुमने बहुत ब्राह्मणोंसे अनेक रामायणैं सुनी हैं, ॥ ७७ ॥ उनमें कहीं भी 'राम सीताके विना वनको गए ऐसी कथा है क्या? कहो इस कारण मैं तुम्हारी सब प्रकारसे सहाय करनेके निमित्त तुम्हारे साथ वनको जाऊँगी ॥ ७८ ॥ यदि मुझे छोड़कर जाओगे तो मैं तुम्हारे सामनेही प्राणोंको त्याग दूंगी रामचन्द्रजी सीताके इस निश्चयको जानकर बोले कि हे देवि! बहुत अच्छा तो अब मेरे साथ वनको चलनेके निमित्त शीघ्र तयार होओ अपने हार और आभूषण शीघ्र अरुन्धतीको देदो ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अब हम ब्राह्मणोंको अपना सम्पूर्ण द्रव्य दान करके वनको जायँगे, श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार कहकर तत्काल लक्ष्मणजीके द्वारा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको बुलवा लिया ॥ ८१ ॥ वह ब्राह्मण कुटुम्बवत्सल, विद्वान्, और सुशील थे, तदनन्तर तिन रघुकुलश्रेष्ठ रामचंद्रजीने तिन ब्राह्मणोंको गौओंके सैंकड़ों समूह, धन, दिव्य वस्त्र, और आभूषण आदि अनेक पदार्थ आनन्दपूर्वक दान दिये॥८२॥ सीताने अरुन्धतीको अपने उत्तम उत्तम आभूषण दिये, रामचन्द्रजीने अपनी माताके सेवकोंको और अपने रणवासमे रहनेवाले सेवकोंको, तथा नगरके लोगोंको, और देशान्तरके पुरुषोंको, तथा सहस्रों ब्राह्मणोंको इनाम-वेतन (नौकरी) और दक्षिणा आदिमें अनेकप्रकारका धन दिया ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ लक्ष्मणजीनेभी अपनी माता सुमित्राको कौसल्याके स्वाधीन किया, और हाथमें धनुष लेकर रामचन्द्रजीके आगे खड़े होगये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र सीता-और लक्ष्मण यह सब राजमन्दिरको चले ॥ ८६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सीताको और छोटेभ्राता (लक्ष्मणजी) को साथ लेकर राजमार्गसे धीरे २ चले, उससमय नगरके पुरुष और अभिषेकोत्सवके निमित्त आए हुए देशान्तरोंके सम्पूर्ण पुरुष कौतुकसे उनकी ओरको देखते थे, रामचन्द्रभी उनकी ओर आनन्दपूर्वक देखतेथे, उनका शरीर श्यामवर्ण और सहस्रों काम-

देवकी समान सुन्दर थे, उनकी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशा शोभायमान दीख-रीथी, वह परमात्मा अपने चरणोंके न्यास (धरने) सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करते हुए पिताके मन्दिरमें पहुँचे ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्म-रामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-स्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाचतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५

श्रीशिवजी बोले कि-हे पार्वति! कैकेयीके वरदान आदिका वृत्तान्त सुन-कर अत्यन्त दुःख हुआ, अब लक्ष्मण और सीता करके सहित मार्गमें श्रीरामचन्द्रजी चलते हुए नगरवासियोंने देखें, तब सब पुरुष परस्पर कहने लगे अहो यह कैसे कष्टकी वार्त्ता है, अपने वचनको सत्य करना, यह श्रीरामचंद्रजीको योग्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं परन्तु महाराज दशरथने विषयलम्पट होकर स्त्रीके कहनेसे अपने प्रिय पुत्रको त्याग दिया, अर्थात् वनमें जानेको कह दिया, क्या इससे महाराज 'सत्यप्रतिज्ञ' कहला सके हैं? और कैकेयी ऐसी दुष्टा किस प्रकार होगयी ? श्रीरामचन्द्रजी 'सत्यप्र-तिज्ञ' हैं, इस कारण उसका प्रिय कार्य्य करनेको तत्पर हैं, ऐसे होने-परभी उसने श्रीरामचन्द्रजीको नगरसे बाहर किसप्रकार निकलवाया है, ऐसा कार्य्य उसके हाथसे किसप्रकार हुआ? इससे प्रतीत होता है कि निःसन्देह उसकी बुद्धिको बड़ा भारी मोह होगया है, अरे पुरुषो! अब हमको भी यहाँ नहीं रहना चाहिये, स्त्री और छोटे भ्राता करके सहित श्रीरामचंद्रजीके मनमें जहाँ जानेकी इच्छा है तहां चलो आजही उस वनमेंही हमभी चलैं, अरे सब पुरुषो! देखो देखो! जानकीजी पैदल चली जारही है, ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ इन त्रिभुवन सुन्दरी सीताजीको आज पर्य्यन्त कभी क्या किसी पुरुषने देखाथा? देखो आज वह इतने जनस-मूहमें प्रत्यक्ष पैरोंसे चल रही हैं ॥ ६ ॥ क्या श्रीरामचन्द्रजीभी हाथी घोड़े आदिके विना कभी पैरों चलतेथे? देखो देखो! हा ! त्रिलोकीमें अद्वितीय सुन्दर अत्यन्त कोमल श्रेष्ठ पुरुषोंकी भी यह दशा! ॥ ७ ॥ यह तो

कैकेयी नामसे सबका नाश करनेके निमित्त कोई राक्षसी उत्पन्न हुई है, सीताजीको पैरों चलते देखकर श्रीरामचन्द्रजीको भी दुःख होता होगा ॥८॥ यहाँ प्रारब्धकोही प्रबल कहना चाहिये, पुरुषका यत्न बिलकुल दुर्बल है, सत्पुरुषोंका समूह दुःखसे व्याकुल होकर इसप्रकार वार्त्ताकर रहा, इस साधुओंके समूहमें श्रेष्ठ वामदेव मुनि थे, वह कहने लगे–कि हे पूरुषों! श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी इनके विषयमें तुम बिलकुल शोक मत करो, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ अहो यह रामचन्द्र साक्षात् परमेश्वर आदि नारायण विष्णु भगवान्‌का अवतार हैं, और यह जानकीजी लक्ष्मीजीका अवतार है, यही लोकमें 'योगमाया' इसनामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥ इस समय जो रामचन्द्रजीके पीछे चल रहेहैं यह लक्ष्मणजी साक्षात् शेषजीका अवतार हैं, यही श्रीरामचन्द्रजी मायाके गुणोंसे युक्त होकर अनेकप्रकारके रूपोंको धारण करतेहुएसे मालूम होते हैं ॥ १२ ॥ यहही रजोगुणसे युक्त होकर प्रथम सृष्टिकर्ताभी ब्रह्माजी होतेहुए, तथा सत्वगुणसे युक्त होकर त्रिलोकीके पालन करनेवाले विष्णु हुए ॥ १३ ॥ और प्रलयकालमें तमोगुणरूपी होकर जगत्‌का संहार करनेवाले रुद्र यहही होतेभए, पूर्वकालमें इन्होंने मत्स्यावतार धारण करके वैवस्वत मनुनामक अपने भक्तको नौकामें बैठाकर प्रलयकालकी समाप्ति पर्य्यन्त उसकी रक्षा करतेभए, इनही श्रीरामचन्द्रजीने पूर्वकालमें समुद्रमन्थनके समय मन्दराचलपर्वत पातालमेंको चलागया तब कच्छपका रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया यहही रघुवीर पृथ्वी रसातलको चली गई तब प्रलयकालमें वराहरूप हुए थे॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ और उस समय इन्होने अपनी दाढ़की नोकपर पृथ्वीको तोलकर रखलियाथा, इन श्रीरामचन्द्रजीनेही पूर्वकालमें प्रह्लादको वर देनेके निमित्त नृसिंह अवतार धारण कियाथा ॥ १७ ॥ और त्रिलोकीको काँटेकी समान दुःख देनेवाले एक राक्षस (हिरण्यकशिपु) को अपने नखोंसे फाड़ डालाथा, पूर्वकालमें अदितीने अपने पुत्र (इन्द्र) का राज्य राजा बलिने छीना ऐसा देखकर इनकी प्रार्थना

करी थी ॥ १८ ॥ तब इन्होंने "वामन" अवतार धारण करके भिक्षा माँगकर वह राज्य बलिसे फिर फेर लियाथा, फिर पृथ्वीके ऊपर दुष्ट क्षत्रियोंका बडा भार होगया, उस भारको दूर करनेके निमित्त इन्होंने 'परशुराम' अवतार धारण करा ॥ १९ ॥ वही जगत्के स्वामी इससमय 'रामावतार' धारण करके यहाँ उत्पन्न हुए हैं, यह अब शीघ्रही रावण आदि करोडों राक्षसोंका वध करैंगे ॥ २० ॥ तिस दुष्टका मरण मनुष्यकेही हाथसे ठहरा है, राजा दशरथने भी 'विष्णुभगवान्' मेरे पुत्र हो इस अभिलाषासे तप करके तिन दुःखहरण करनेवाले प्रभुकी आराधना करी थी तब वह हरि राजाके पुत्र हुए, वहही विष्णु भगवान् यह श्रीरामचंद्रजी हैं, यह रावणादि राक्षसोंका वध करनेके निमित्त लक्ष्मणजीको सहायतार्थ साथ लेकर आजही वनको जायँगे, यह सीता सृष्टि, स्थिति, और प्रलय करनेवाली तिन हरिकी माया है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजी वनको भेजनेमें राजा दशरथ अथवा कैकेयी किञ्चिन्मात्रभी कारण नहीं है, कलही नारदजीने पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त ब्रह्माजीका सन्देशा श्रीरामचन्द्रजीसे कहा था ॥ २४ ॥ तब प्रत्यक्ष श्रीरामचन्द्रजीने अपने आप कहा था कि कलको मैं वनको जाउँगा, सो हे पुरुषो! तुम्हे श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपके विषयमें अबभी अज्ञान है, इसकारण मैं कहताहूँ कि तुम श्रीरामचन्द्रजीकी बिलकुल चिन्ता मत करो ॥ २५ ॥ पृथ्वीतलके विषें जो पुरुष नित्य 'राम-राम' ऐसा जप करते हैं, उनको मृत्यु आदिका भय कदापि नहीं होताहै ॥ २६ ॥ ऐसी जिनके नामकी महिमा है, तिन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीको क्या दुःख पानेकी शंका करनी चाहिये? कलियुगमें मुक्ति मिलनेका साधन केवल रामनाम ही है, अन्य वस्तु नहीं है ॥ २७ ॥ वह लोकोंके कर्ता प्रभु मायाके योगसे मनुष्यका रूप धारण करके लोकोंके अनुसार वर्त्ताव करते हैं, भक्तोंको भजन करनेका आधार मिले, रावणका वध होय, औ राजा दशरथका मनोरथ सिद्ध होय, इन तीन उद्देशोंसे तिन प्रभुने यह मनुष्यका रूप धारण करा है, इतना कहकर वह वामदेव मुनि

चुप होगए ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसप्रकार सुनकर उन द्विजों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य)ने पूर्ण रीतिसे जान लिया कि यह श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भक्तोंका दुःख नष्ट करनेवाले व्यापक परमेश्वर हैं तब तिन सब पुरुषोंके हृदयकी सन्देहरूप ग्रन्थि (गाँठ) दूर होगई, और वह श्रीरामचन्द्रजीकाही चिन्तवन करने लगे ॥ ३० ॥ जो पुरुष सीता और श्रीरामचन्द्रजीके रहस्यको चिन्तन करताहै, उसको उत्तम तत्वज्ञानकी प्राप्ति होतीहै, और उसकी श्रीरामचन्द्रजीके विषें दृढ भक्ति होती है ॥ ३१ ॥ हे पुरुषों ! तुम श्रीरामचंद्रजीके प्रिय भक्त हो; इस रहस्यको गुप्त रक्खो, इतना कहकर वामदेवमुनि चले गए, तिन पुरुषोंकोभी; श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परमेश्वर हैं, ऐसा ज्ञान हो गया ॥ ३२ ॥ इधर श्रीरामचंद्रजी छोटे भ्राता लक्ष्मण और सीताजी करके सहित वेरोंक पिताके मंदिरमें जाकर कैकेयीसे यह बोले कि ॥ ३३ ॥ हे मातः! तेरी अभिलाषाके अनुसार हम तीनोंजनें दण्डकारण्यको जानेके निमित्त निश्चय करके यहाँ आए हैं, अब पिताजी हमें शीघ्रही आज्ञा दें; ॥ ३४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार कहतेही कैकेयीने तत्काल उठकर अपने आप श्रीरामचंद्रजीको, और लक्ष्मणजीको तथा सीताजीको अलग अलग वल्कल दिये ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीने राजकीय वस्त्रोंको उतार कर वह वनके योग्य चीरवल्कल धारण करे, लक्ष्मणजीने भी ऐसाही किया, परन्तु सीताजी यह नहीं जानतीं थीं कि चीरवल्कल किसप्रकार धारण करने चाहिये, ॥ ३६ ॥ इस कारण सीता उन वल्कलोंको हाथमें लेकर लज्जापूर्वक श्रीरामचंद्रजीके मुखकी ओर देखने लगी, श्रीरामचंद्रजीने वह वल्कल सीताजीके हाथमेंसे लेकर वस्त्रोंके स्थानमें सीताजीको पहिनाए ॥ ३७ ॥ यह देखतेही चारोंओर सम्पूर्ण रणवासकी रानियें रोने लगीं, वह रोना सुनकर वसिष्ठजीको दुःख मालूम पड़ा, सो क्रोधीत होकर ललकारते हुए कैकेयीसे कहने लगे कि-अरी दुष्टे! यह तेरा कार्य्य बड़ाही दुःखदायीहै, अरी तैने तो इकले रामचंद्रजीकोही वनको भिजवानेके लिये वर माँगा है, फिर सीताको वल्कल क्यों देती है? ॥ ३८ ॥ अब यह परम पतिव्रता सीता पतिभक्तिके कारण यदि रामचन्द्रजीके संग जाय

है तौ, उसको वल्कल मत दो, वह खुशीसे दिव्य वस्त्र धारण करै, और नित्य शरीरपर आभूषण पहिरै, ॥ ४० ॥ और प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करै; इसको सुखी देखकर रामचन्द्रका वनमें रहनेका दुःख दूर होयगा, राजा दशरथभी सुमन्त्रसे बोले— कि— हे सुमन्त्र ! रथ लाओ ॥ ४१ ॥ वनमें रहनेवाले मुनि— रामचन्द्र आदि तीनोंको-प्रिय हैं तौ, यह रथमें बैठकर वनको जायँ, राजा दशरथने इसप्रकार कहकर, रामचन्द्र, सीता, और लक्ष्मण इन तीनोंके मुखकी ओरको देखा ॥ ४२ ॥ तिस देखनेके साथ ही दुःखसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े, और रोदन करने लगे, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा वहने लगी, श्रीरामचन्द्रजीके समक्ष सीताजी शीघ्रही रथपर चढ़ गईं, ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रजी पिताकी प्रदक्षिणा करके रथपर चढ़गए, लक्ष्मणजीभी दो खड्ग, दो धनुष, और दो तर्कस,इतनी सामग्री लेकर रथपर चढ़े, और सारथीको शीघ्रही रथ हाँकनेके निमित्त कहा, राजा दशरथ बोले कि— हे सुमन्त्र ! थामले थामले जरा खड़ा रह ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने चल चल (रथको चलाओ, थामो मत)इसप्रकार कहा, इसकारण सुमन्त्रने रथ हाँक दिया, श्रीरामचन्द्रजीके दूर चले जानेपर राजा दशरथ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४६ ॥ नगरमेंके आबालवृद्ध पुरुष और श्रेष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मण; हे राम! थमो थमो (खड़े रहो) इसप्रकार चिल्लाते हुए रथके पीछे पीछे चले ॥ ४७ ॥ राजा दशरथने बहुत कालपर्य्यन्त रोदन किया, अन्तमें अपने शिष्योंसे कहा कि- मुझे रामचन्द्रकी माता जो कौसल्या तिसके मन्दिरमें ले चलो ॥ ४८ ॥ तहाँ मेरा कुछ काल जीवन होयगा, रामचंद्रको मुझसे छुटा दिया, अब इस दुःखके कारण मैं आगेको बहुत काल नहीं जीऊँगा ॥ ४९ ॥ तदनन्तर कौसल्याके मन्दिरमें पहुँचतेही राजा फिर मूर्छित होकर गिरपड़े, बहुत देरके अनन्तर होसमें तौ हुए, परन्तु कुछ बोले नहीं चुप्पही बैठे रहे॥ ५० ॥ इधर श्रीरामचंद्रजी तमसा नदीके तटपर जाकर तहाँ सुखपूर्वक रहे, तिन प्रभुने कुछ भक्षण न करा, केवल जलपान करके एक वृक्षके नीचे सीताक-

रके सहित शयन करा, लक्ष्मणजी इस वार्त्ताको जानतेथे कि बड़े भ्राता पिताकी समान होतेहैं और उनकी सेवा करना धर्म्म है, सो उन्होंने इस धर्म्मके अनुसार रात्रिभर जागरण करा, और सुमन्त्र करके सहित हाथमें धनुष लेकर रात्रिभर श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीकी रक्षा करी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ सब नगरके पुरुष तहाँ आकर रामचन्द्रजीके समीप रहे, उन सबने विचार करलियाथा कि-यदि हम श्रीरामचन्द्रजीको लौटाकर नगरमें नहीं लासकेंगे तो, हमभी उनके साथ वनको जायँगे ॥ ५३ ॥ यह उनका निश्चय जानकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ, उन श्रीरामचंद्रजीने मनमें विचार किया कि-मैं तो अब नगरको लौटकर जाऊँगाही नहीं, परन्तु इनको विना कारण मेरे साथ क्लेश भोगना पड़ैगा, अब इसमें क्या युक्ति करनी चाहिये, विचारते विचारते अन्तमें एक निश्चय करके सुमन्त्रसे बोले कि-हे सुमन्त्र! रथ लाओ, हम अबही जायँगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ऐसी आज्ञा पातेही सुमन्त्रने रथके घोड़े जोड़े, और श्रीरामचन्द्र-सीताजी-और लक्ष्मणजीको रथमें बैठालकर, किसीकोभी मालूम नहीं हुआ जल्दीसे चले गए ॥ ५६ ॥ लोगोंको बँहकानेके निमित्त प्रथम अयोध्याके सामनेको थोड़ा मार्ग चलकर फिर दूरको वनमें चले गए, इधर वह पुरवासी प्रातःकालको उठकर श्रीरामचंद्रजीको ढूँढ़ने लगे, जब रामचन्द्रजी नहीं मिले तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ ॥ ५७ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके रथका चिह्न लग रहाथा, उस मार्गको देखते देखते नगरमें आगए, और वहाँ प्रतिदिन अन्तःकरणमें सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीके चिन्तवन करते हुए रहने लगे ॥ ५८ ॥ सुमन्त्रनेभी आदरपूर्वक रथको शीघ्र चलाया, सीताजीसहित श्रीरामचंद्रजी मनोहर मनोहर देशोंको देखते हुए श्रीगङ्गाजीके तीरपर पहुँचे, तहाँ शृंगबेरपुरके समीप श्रीरामचंद्रजीने श्रीगंगाजीका दर्शन किया, और प्रणाम करके स्नान किया, तब श्रीरामचंद्रजीके मनमें परम आनन्द हुआ ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ तदनन्तर वह रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी एक शिंशपाके वृक्षके नीचे बैठे. इधर गुहको (शृंगबेरपुरके भिल्लोंके राजाको) लोगोंसे

श्रीरामचन्द्रजी आए हैं, यह परमानन्दकी वार्ता मालूम पड़ी ॥ ६१ ॥ तब वह गुह भक्तिपूर्वक अपने मित्र और स्वामी जो श्रीरामचन्द्रजी तिनसे मिलनेके निमित्त आनन्दयुक्त होकर फल-मधु-पुष्पादि लेकर जल्दीसे आया ॥ ६२ ॥ उसने श्रीरामचन्द्रजीके आगे वह उपायन (नजराना) रखकर, पृथ्वीपर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया, तब श्रीरामचन्द्रजीने गुहको उठाकर शीघ्रही हृदयसे लगाया ॥ ६३ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने कुशल प्रश्न बूझा, तब गुह हाथ जोड़कर बोला कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम सम्पूर्ण जगत्-को पवित्र करनेवाले हो, मेरा जन्म नीच निषाद (भिल्ल) के कुलमें हुआ है, परन्तु मैं आज धन्य हूँ ॥ ६४ ॥ हे रघुवीर ! तुम्हारे शरीरका स्पर्श होतेही मुझे परमानन्द प्राप्त हुआ, तुम्हारे मुझ सेवकका यह नैषाद (भि-ल्लोंका) राज्य आपके स्वाधीन है, हे रघुकुलके उद्धार करनेवाले श्रीरामच-न्द्रजी ! यहाँ रहकर तुम हमारा पालन करो, आप नगरको चलिये, और मेरे स्थानको पवित्र करिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हे देवाधिदेव ! षड्गुणैश्व-र्य्ययुक्त श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने आपकेलिये फल मूल इकठे करे हैं, उनको ग्रहण करके कृपा करिये, मैं आपका दास हूँ ॥ ६७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर तिस गुहसे बोले कि—हे मित्र ! मेरे वचन सुनो, मैं चौदह व-र्षपर्य्यन्त गृहमें अथवा ग्राममें नहीं घुसूंगा ॥ ६८ ॥ तथा किसी दूसरेके दियेहुए फलमूलादिभी कुछ नहीं भक्षण करूंगा, यह तुम्हारा राज्य सम्पूर्ण मेराही है, ऐसा मैं जानताहूं, क्यों कि तू मेरा अत्यन्त प्रिय मित्र है, ॥ ६९ ॥ फिर रामचंद्रजीने गुहसे वड़का क्षीर मंगवाया और आदरपूर्वक लक्ष्मणजी करके सहित अपनी जटाओंका मुकुट बांधा ॥ ७० ॥ लक्ष्मण-जीने तहाँ कुश और पत्तेआदिकी शय्या बनाई, सीताजी करके सहित श्रीरामचंद्रजी केवल जलपान मात्र करके उसपर सोए, जिसप्रकार पहिले अयोध्यानगरीकेविषें राजमन्दिरकी अटारीकेविषें सजाएहुए पलँगपर शयन करतेथे, तिसीप्रकार तहाँभी वह श्रीरामचंद्रजी सीताकरके सहित सुखपूर्वक सोए ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तहाँ समीपमेंही लक्ष्मणजी अपने

समीप बाण, तर्कस, और धनुष रखकर, और अपना धनुष बाण चढ़ा चढ़ाया हाथमें लेकर "सीतारामको भय देनेके निमित्त कोई जीव जन्तु तौ नहीं आता है, ऐसा चारों ओरको देखते हुए उनकी रक्षा करते रहे उनके समीपही गुहभी धनुषके ऊपर बाण चढ़ाए हुए सावधान रहा॥ ७३॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पश्चिमोत्तरदे-शीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषापञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति!रामचंद्रजीको निद्रा आगई,ऐसा देखतेही गुहके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी, और नम्रभावसे लक्ष्मणजीसे कहने लगा कि हे भ्रातः! तुम रामचंद्रजीकी ओरको देखतेही हो, जो श्रीरामचंद्रजी सुन्दर मन्दिरमें सुवर्णकी शय्यापर बिछेहुए कोमल बिछानेपर सोतेथे, वहही आज सीताकरके सहित कुश और पत्तोंकी शय्यापर सोरहे हैं॥ १ ॥ २॥ दैव (प्रारब्ध) ने कैकेयीको श्रीरामचन्द्रजीके दुःखका कारण करा है, इसकारणही कैकेयीने मन्थराकी बुद्धिका सहारा लेकर यह पापाचरण किया है ॥ ३ ॥ इसको सुनकर लक्ष्मणजी बोले कि हे मित्र! मेरे वचनको सुन, कौन किसके दुःखका हेतु है? और कौन किसके सुखका हेतु है? ॥ ४ ॥ सुख अथवा दुःख प्राप्त होनेका कारण प्राणीका पूर्वजन्मका आर्जित कर्म्म है, ॥ ५ ॥ सुख अथवा दुःखका देनेवाला दूसरा कोई नहीं है "दूसरा मुझे दुःख देय है" ऐसी बुद्धि जो है वह कुबुद्धि है, मैं सुखप्राप्तिके निमित्त उद्योग करताहूँ' यह अभिमान करनाभी वृथा है, क्योंकि सब प्राणी अपने कर्म्मरूपी बन्धनमें बँधे हुए हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं, ईश्वर कर्म्मोंके सूत्रको चलातेहैं, उसके अनुसार प्राणी सुख अथवा दुःखको प्राप्त होतेहैं ॥ ६ ॥ हितकर्त्ता; मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेषी (हिंसासे वैर करनेवाला), मध्यस्थ, और बान्धव, यह सब अपने योग्य कर्म्मको करतेहुए हितकर्त्ता-शत्रु-मित्रादि प्रतीत होते हैं ॥ ७ ॥ मनुष्य अपने कर्म्मोंके अधीन है इसकारण सुख अथवा दुःख जो कुछ जैसा प्राप्त होय उसको वैसाही भोग-

कर अपने अन्तःकरणको स्वस्थ रक्खै ॥ ८ ॥ हे गुह! मुझे भोगोंकी प्राप्तिकी; तथा भोगोंके त्यागकी इच्छा नहीं है. वह भोग मिलैं वा न मिलैं, कुछ होय, मैं कभीभी भोगोंको अधीन होनेवाला नहीं हूँ, और श्रीरामचन्द्रजीकी स्थितिभी मेरेही समान है, इसकारण हमको किसी दशामें भी दुःख नहीं होता है ॥ ९ ॥ जिस देशमें जिस समय, जिसकारणसे जिसकिसीने जो जो कुछ शुभ अथवा अशुभ कर्म्म किया हो, उसका फल, तैसी तैसी रीतिसेही उसको भोगना पड़ता है, वह अन्यथा (तिसी रीतिसे न भोगना पड़े ऐसा) नहीं होता है ॥ १० ॥ इसकारण शुभ अथवा अशुभ कैसाही फल प्राप्त होय तौ हर्ष अथवा शोक करना वृथा है, ब्रह्माजीने जो कुछ जैसा रच दिया है, उसको देवता अथवा दैत्य कोई भी उल्लंघन नहीं करसक्ता है ॥ ११ ॥ मनुष्यका सुख दुःखसे सर्वदा सम्बन्ध रहता है, क्योंकि यह शरीर केवल पुण्य और पापके संयोगसे उत्पन्न हुआ है, इसकारण इसको सुखदुःख लगेही रहते हैं ॥ १२ ॥ दिनके अनन्तर रात्रि और रात्रिके अनन्तर दिन होता है, कदापि चूकता नहीं है, इसीप्रकार सुखके अनन्तर दुःख, और दुःखके अनन्तर सुख प्राप्त होता है, इस परम्पराको प्राणी कदापि उल्लंघन नहीं करसक्ताहै॥ १३ ॥ पानी और पंक (कींच) यह दोनों जिसप्रकार एकमें एक मिले हुए होते हैं, तिसी प्रकार सुखके मध्यमें दुःख स्थित है, और दुःखके मध्यमें सुख स्थित है, अर्थात् सुख और दुःख दोनों परस्पर मिले हुए हैं॥ १४ ॥ इसकारण विद्वान् पुरुष इष्ट (प्रिय), अथवा अनिष्ट (अप्रिय), प्रसङ्ग आजाय तो धैर्य्य रखते हैं, यह सब मायाके खेल हैं, ऐसा जानते हैं, इस कारणही उन विद्वान् पुरुषोंको सुखके समय आनन्द नहीं होता है, और दुःखके समय (मोह) खेद नहीं होता है ॥ १५ ॥ गुह और लक्ष्मण इन दोनोंका ऐसा वार्त्तालाप हो रहाथा कि इतनेहीमें आकाश स्वच्छ दीखने लगा (प्रातःकाल हो गया) तब रामचन्द्रजीने अन्तःकरणको स्वस्थ करके आचमन किया (अर्थात् प्रातःकालकी सब विधि करी) ॥ १६ ॥

और गुहसे बोले कि-हे मित्र! मेरे लिये जलदीसे एक दृढ़ (मजबूतसी) नौका लाओ, इसप्रकार रामचन्द्रजीके भाषणको सुनतेही वह भिल्लों-का राजा गुह अपने आपही एक दृढ़ सुलक्षणसम्पन्न (अच्छी चलनेवाली) नौका लेकर आया, और बोला कि-हे प्रभो! आप सीताजीको और लक्ष्मणजीको साथ लेकर इस नौकापर चढ़िये ॥ १७ ॥ १८ ॥ मैं अपने आपही जातिके पुरुषोंकरके सहित सावधानीसे इस नौकाको चलाकर परलेपार पहुँचाताहूँ, श्रीरामचन्द्रजीने "बहुत अच्छा" ऐसे कहकर तिस शुभलक्षणा सीताको चढ़ाया, और वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आप नौकापर गुहके हाथके सहारे चढ़े लक्ष्मणजीभी पहले आयुधआदि चढ़ाकर फिर आप चढ़े ॥ १९ ॥ २० ॥ जातिके पुरुषोंकरके सहित गुहने तिन तीनोंके बैठनेपर नौकाको अपने आप चलाया, गङ्गाके मध्यमें नौका आनेपर जानकीजीने प्रार्थना करी ॥ २१ ॥ कि हे देवि! गङ्गे! तेरे अर्थ नमस्कार है, मैं श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी इन दोनों करके सहित जब वनवाससे लौटकर आऊँगी, तब आदरपूर्वक मद्य, मांस, उपहार, नानाप्रकारकी बलि इतनी सामगरीसे तेरा पूजन करूँगी ऐसा भाषण करनेके अनन्तर सीता और श्रीरामचन्द्रजी धीरे २ भागीरथीको उतरकर परलेपार पहुँचे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ तब गुहभी श्रीरामचन्द्रजीसे बोला-कि राजाधिराज! मैं तुम्हारे साथ चलताहूँ, मुझे आज्ञा दीजिये, नहीं तो मैं प्राणोंको त्यागदूँगा ॥ २४ ॥ निषादपुत्र (गुह) का यह कहना सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उससे बोले-कि-हे गुहमित्र! मैं चौदह वर्षपर्य्यन्त दण्डकारण्यमें रहकर फिर लौटकर आऊँगा, इस वचनको सत्य मान, रामचन्द्रका वचन कभी झूँठा नहीं होता है, ऐसे कहकर श्रीरामचन्द्रजीने तिस भक्तको हृदयसे लगाया, और वारंवार आश्वासन दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने गुहको लौटादिया, वहभी बड़ी कठिनतासे घरको गया, इधर तीनोंने एक पवित्र मृग मारा, उसके मांसका पाक किया, और हवन करके भोजन किया, फिर श्रीरामचंद्रजीने और सीताजीने वृक्षोंके पत्तोंपर शयन किया, इसप्रकार

उन्होंने वह रात्रि सुखपूर्वक विताई, फिर श्रीरामचंद्रजी सीताजीको और लक्ष्मणजीको साथ लेकर, भरद्वाजमुनिके आश्रममें जाकर बाहर खड़े रहे तहाँ एक बटु (ऋषिकुमार)को देखकर श्रीरामचंद्रजी बोले कि-हे बटो! राजा दशरथका पुत्र रामचंद्र सीता और लक्ष्मण करके सहित बाहर वनमें आया है, ऐसा मुनिसे जाकर कह दो ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ यह सुनतेही तिस मुनिकुमारने तत्काल जाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा कि-हे महाराज! श्रीरामचन्द्रजी आकर वनके बाहर खड़े हैं, ॥ ३१ ॥ उनके साथमें उनकी स्त्री और छोटा भाई भी है, उस देवताओंकी समान तेजस्वी पुरुषने मुझसे कहा कि-भरद्वाजमुनिसे मैं आया हूँ, यह वार्ता यथोचित रीतिसे कह दो ॥ ३२ ॥ यह सुनतेही मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी शीघ्रही उठे और अर्घ्य-पाद्य-आदि पूजाकी सामग्री साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप आए ॥ ३३ ॥ उन्होंने लक्ष्मणजी करके सहित श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके विधिपूर्वक उनका पूजन किया फिर बोले कि-हे कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी! मेरी पर्णकुटीमें चलो, और हे रघुनन्दन! अपने चरणोंकी धूलिसे उस स्थानको पवित्र करो, भरद्वाजमुनि इसप्रकार कहकर सीताजीसहित श्रीरामलक्ष्मणको आश्रममें ले आए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और भक्तिपूर्वक फिर पूजन करके उनका उत्तम रीतिसे आदर और आतिथ्य किया फिर भरद्वाजमुनि बोले कि-हे श्रीरामचन्द्रजी ! तपश्चर्य्याका उत्तम फल यही है कि आपका दर्शन होय, आज तुम्हारा समागम हुआ, इसकारण मेरी तपश्चर्य्या (तप करना) सफल हो गई ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्र ! पूर्वकालमें बीतेहुए और आगेको होनेवाले तुम्हारे सम्पूर्ण चरित्रको मैं जानताहूं, तुम साक्षात् परमेश्वर हो, किसी कार्य्यके निमित्त मायाकरके तुमने मनुष्यरूप धारण किया है ॥ ३७ ॥ पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेसे तुमने जिस कार्य्यके निमित्त अवतार धारण किया है, और जिसकारणसे वनवासको आए हो, तथा आगे जो कुछ कार्य्य करोगे, वह सब मैं तुम्हारी उपासनासे प्राप्त हुई ज्ञानदृष्टिसे

जानताहूं, इससे अधिक और मैं आपके विषयमें क्या वर्णन करूँ ? हे रघुवीर ! मैं आज कृतकृत्य हो गया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ क्यों कि मुझे तुम्हारा दर्शन मिला, तुम प्रकृतिके नियन्ता परमेश्वर ककुत्स्थराजाके वंशमें उत्पन्न हुए हो, तदनन्तर सीताजी और लक्ष्मणजीकरके सहित श्रीरामचंद्रजीने तिन मुनिको प्रणाम किया,और बोले॥ ४० ॥ कि अहो ब्रह्मनिष्ठ महाराज! हमसरीखे अधम क्षत्रियोंपर आप अनुग्रह करतेही हैं, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजी और भरद्वाजमुनिका वार्त्तालाभ हुआ तदनन्तर उसदिन वह तीनोंजनें भरद्वाजमुनिके पास रहे ॥ ४१ ॥ प्रातःकाल उठकर मुनिने स्नान करके श्रीरामचन्द्रजीको आगे जानेका मार्ग दिखाया, तदनन्तर मार्ग दिखानेके लिये भरद्वाजमुनिके भेजेहुए मुनिकुमारोंके साथ उस मार्गसे यमुनाको उतरकर चित्रकूटपर्वतके समीप आए, जहाँ वाल्मीकिऋषिका आश्रम था, चलते चलते श्रीरामचन्द्रजी तिस वाल्मीकिआश्रममें पहुँचे, तहाँ अनेक ऋषि थे ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ वह स्थान अनेक जातिके पक्षियोंसे भर रहाथा, वहाँ पुष्प और फल सदा लगे रहते थे, तहाँ रहनेवाले मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीको देखकर राम लक्ष्मण, सीता, इन तीनोंने शिरसे प्रणाम किया, वाल्मीकिऋषिने जो आगे देखा तो साक्षात् लक्ष्मीकेपतिका अवतार त्रैलोक्यसुन्दर श्रीरामचन्द्रजी दृष्टि पड़े ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उनके साथमें जानकीजी और लक्ष्मणजी यह दोनों थे, जटाओंके मुकुटसे शोभायमान दीखतेथे, उनका रूप कामदेवकी समानथा; और नेत्र कमलकीसमान मनोहर थे ॥ ४६ ॥ उनको देखतेही आश्चर्यसे मुनिकी दृष्टि स्तब्ध हो गई, (टकी बाँधकर उनको देखने लगे), और तत्काल उठकर परमानन्दरूप श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाया, तब मुनिके नेत्रोंमेंसे आनन्दके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा॥ ४७॥ फिर तिन वाल्मीकिमुनिने सम्पूर्णजगत्के पूज्य जो श्रीरामचन्द्रजी तिनकीअर्घ्य पाद्यआदि सामग्रीसे आदरऔर भक्तिपूर्वक पूजा करी, मधुर मधुर फल मूल मंगवाए, और हे पुत्र रामचन्द्र! यह फल मधुर है, इसको भक्षण करो, ऐसी वारम्वार विनंती करके उनका गौरव किया ॥ ४८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी

नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर वाल्मीकिमुनिसे बोले कि-महाराज ! पिताजीकी आज्ञाको मानकर हम दण्डकारण्यमें आए हैं ॥ ४९ ॥ आप सब जानते-ही हैं, फिर इसका कारण मैं आपके सामने क्या कहूँ ? (अर्थात् कह-नेकी कुछ आवश्यकता नहीं हैं), अब जो मेरे सुखपूर्वक निवास करनेके योग्य हो ऐसा एक स्थान आप मुझे बतादीजिये ॥ ५० ॥ तहाँ मैं सीता करके सहित कुछ काल व्यतीत करूँगा, श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार कहनेपर वाल्मीकिमुनि हँसते हँसते इनसे बोले ॥ ५१ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! तुमही सब लोकके रहनेका उत्तम स्थान हो, तैसेही सम्पूर्ण प्राणी तुम्हारे रहनेके स्थान हैं ॥ ५२ ॥ हे रघुनन्दन ! यह तुम्हे साधारण स्थान बता-दिया, अब तुम सीताजीकरके सहित रहनेके योग्य स्थान कौनसा है ? ऐसा विशेष प्रश्न करतेहो तो हे रघुवीर ! तुम्हारे नित्य निवास करनेका स्थान कौनसा है सो कहताहूं, लोकमें जो पुरुष शान्त हैं, और अमुक श्रेष्ठ है अमुक निकृष्ट (बुरा) है ऐसी भेददृष्टि न रखकर जो पुरुष सर्वत्र समदृष्टि होते हैं, और किसीभी प्राणीसे द्वेषभाव (वैरभाव) नहीं रखते हैं, नित्य तुम्हारी भक्ति करते हैं, उन पुरुषोंका हृदय तुम्हारे निवास करनेका सबसे उत्तम स्थान है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जो पुरुष विहित और निषिद्धआदि सम्पूर्ण कर्म्मोंका त्याग करके, केवल एक तुम्हारीही सेवा करते हैं, उनका, हृदयभी सीताजीकरके सहित तुम्हारे सुखपूर्वक निवास करनेका सुन्दर स्थान है॥५५॥जो पुरुष अहंता-ममता, जय-पराजय लाभ- हानि. इत्यादि द्वन्द्वोंको त्यागकर और अभिलाषारहित होकर तु-म्हारी शरणागत जातेहैं, और तुम्हारे नाममन्त्रका जप करतेहैं उनका हृदय-भी तुम्हारे निवास करनेका उत्तम स्थान है ॥ ५६ ॥ जिन पुरुषोंने अह-ङ्कार, प्रीति और द्वेष त्याग दियेहैं, और मृत्तिकाका ढेला और सोना इन-पर समदृष्टि करके शान्ति स्वीकार करली है, उन पुरुषोंका हृदयभी तुम्हारे निवास करनेका उत्तम स्थान है ॥ ५७ ॥ जो पुरुष तुम्हारेविषें मन और बुद्धिको लगाकर नित्य सन्तुष्ट रहतेहैं, और अपने सम्पूर्ण कर्म्मोंको तुम्हारे

अर्पण करते हैं, उन पुरुषोंका हृदयभी तुम्हारे निवास करनेका उत्तम स्थान है ॥ ५८ ॥ जो अप्रिय वस्तुको प्राप्त होकर द्वेषभाव नहीं करतेहैं, और प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होनेपर जिन्हे आनन्द नहीं प्रतीत होताहै, और "यह सब माया है" ऐसा निश्चय करके जो पुरुष तुम्हारा भजन करतेहैं, उन पुरुषोंका मनभी तुम्हारे निवास करनेका स्थान है ॥ ५९ ॥ जन्म लेना १, उत्पत्तिके अनन्तर होना २, वृद्धिको प्राप्त होना ३, पूर्ण होना अर्थात् परिणामावस्थाको प्राप्त होना ४, क्षीण होनेलगना ५, और नाशको प्राप्त होना ६, यह छः भावविकार देहको प्राप्त होतेहैं, आत्माके नहीं हैं, क्षुधा और तृषा (प्यास) यह विकार प्राणके हैं, तथा सुख दुःख और भय यह विकार बुद्धिके हैं, आत्माके नहीं हैं,ऐसी जिसकी दृष्टि होती है वह पुरुष, संसारकी प्राप्तिके कारण जो पुण्य और पाप इन धर्म्मोंसे मुक्त होताहै, उन पुरुषोंका अन्तःकरणभी सीतासहित तुम्हारे निवास करनेका श्रेष्ठ स्थान है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ श्रीरामचंद्रजी सबकी बुद्धियोंकी वृत्तियोंमें निवास करते हैं, वह ज्ञानस्वरूप हैं, उनका स्वरूप भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीनो कालोंमें नष्ट नहीं होता है, उनकेविषें परिणाम और द्वेषभाव नहीं होय है, वह श्रेष्ठ ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होकरभी निर्लेप हैं, ऐसी तुम्हारे विषयमें जिनकी दृष्टि है, उन पुरुषोंके हृदयरूपी कमलमें तुम सीताजी करके सहित निवास करो ॥ ६२ ॥ निरन्तर ध्यानका अभ्यास करनेसे जिनके मन तुम्हारे स्वरूपकेविषें निश्चल होगए हैं, उन पुरुषोंके हृदयकमलकेविषें सीतासहित तुम्हारे निवास करनेका स्थान है ॥ ६३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम्हारे नामोंकी महिमा कौन वर्णन करसक्ता है, और यदि उसका वर्णन करै तो किसप्रकार करै ? तुम्हारे नामोंके प्रभावसेही मैं इस ब्रह्मर्षिपदको प्राप्त हुआहूं ॥ ६४ ॥ मैं पहिले किरातों (भिल्लों) के साथ रहा और उनकेही साथ वृद्धिको प्राप्त हुआ, केवल जन्ममात्रसेही मुझमें ब्राह्मणपना था, बाकी मैं बिलकुल शूद्रोंकी समान आचार करनेमें तत्पर रहताथा ॥ ६५ ॥ इन्द्रियें बिलकुल मेरे वशमें नहींथीं, तिन इन्द्रियोंके वशमें होनेके कारण मैं एक शूद्रस्त्रीकेविषें

आसक्त होगया, उस स्त्रीकेविषें मुझसे बहुत पुत्र उत्पन्न हुए, फिर मैं चौरोंके समागमसे चोर होगया, ॥ ६६ ॥ मैं नित्य हाथमें धनुषबाण लेकर प्राणियोंको मृत्युकी समान प्रतीत होताथा, अर्थात् अनेक प्राणियोंका वध करताथा ॥ ६७ ॥ एक समय एक बड़े बनकेविषें परमतेजस्वी साक्षात् सप्तर्षि मेरी दृष्टि पड़े, उनकी कान्ति अग्निकी वा सूर्य्यकी समान थी, ॥ ६८ ॥ लोभसे, और इनका सर्वस्व छीन लूँ इस इच्छासे "खड़े रहो, खड़े रहो" ऐसे कहताहुआ मैं उनके पीछे दौड़ा, मुझे देखकर मुनियोंने बूझा कि अरे अधम ब्राह्मण! हमारे ऊपरको तू क्यौं दौड़ा चला आवे है? ॥ ६९ ॥ तब मैंने उनसे कहा कि-हे श्रेष्ठमुनियो! 'तुमसे कुछ छीनलूँ' इस लिये मैं आयाहूँ, मेरे बहुतसे स्त्री और बालक हैं, उनको भूँक लगी है ॥ ७० ॥ उनका निर्वाह करनेके निमित्त मैं पर्वतपर और वनमें फिरताहूँ, हे श्रीरामचन्द्रजी! मुझे देखतेही प्राणियोंको भय लगताथा, परन्तु इन मुनियोंको भय नहीं हुआ, मेरे इस कहनेको सुनतेही वह मुझसे कहने लगे कि अरे! तू अपने घर जा और अपने कुटुम्बके मनुष्योंसे बूझ, कि मैं प्रतिदिन जो कुछ पाप इकठा करताहूँ, उसके भागी (हिस्सेदार) तुम हो वा नहीं, यह बात कुटुम्बके प्रत्येक मनुष्यसे अलग अलग बूझ ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तेरे लौटकर आने पर्य्यंत हम यहीं हैं, यह तू निश्चय रख, मैं "बहुत अच्छा" इसप्रकार कहकर घरको गया, और मुनियोंने जो कहाथा, उसके अनुसार स्त्री पुत्रादिसे बूझने लगा, तब हे श्रीरामचन्द्रजी! उन्होने मुझे उत्तर दिया कि वह सम्पूर्ण पाप तेरेही हैं, हम तौ केवल जो तुम लाकर हमें दोगे उस द्रव्यादिको भोगनेकेही भागी (हिस्सेदार) हैं॥ ७३ ॥ ७४ ॥ यह सुनतेही मुझे बुरा मालूम पड़ा, मैं इन स्त्रीपुत्रादिकोंका कुछ भी उपकार नहीं करूंगा, ऐसा विचार करके मैं जहाँ वह दयालु हृदयवाले मुनि खड़े थे, तहाँ लौटकर फिर आया॥ ७५ ॥ मुनियोंका दर्शन होतेही मेरा अंतःकरण शुद्ध होगया, मैंने धनुष आदिको फेंककर उनको साष्टांग नमस्कार किया, और विनती करी ॥ ७६ ॥ कि हे श्रेष्ठमुनीश्वरो! मैं नरकके समुद्रमें जाता(पड़ा)हूँ,

मेरी रक्षा करो मैं आगे खड़ाहुआ हूँ, ऐसा देखकर वह श्रेष्ठ मुनीश्वर मुझसे बोले कि उठ, उठ, तेरा कल्याण होय, साधुओंका समागम कदापि निष्फल नहीं होता है, हम तुझे थोड़ासा उपदेश करतेहैं, उसके द्वारा तू संसारदुःखसे छूट जायगा, फिर वह मुनि एकएककी ओरको देखकर विचारकरके आपसमें कहने लगे कि-यह ब्राह्मण अधम और दुराचारी होनेके कारण उपेक्षा करनेके योग्य है (अर्थात् इसको उपदेश न करके उदासीन रहना चाहिये यह श्रेष्ठ है) तथापि सदाचरणी शरण आएहुए मनुष्यको मोक्षमार्गका उपदेश करके प्रयत्नपूर्वक रक्षा करै ॥७७॥७८॥ ७९॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! उन ऋषियोंने इसप्रकार परस्पर वार्त्तालाप किया, और यहही निश्चय करके, तुम्हारे नामके "मरा" यह विपरीत (उलटे) अक्षर कहकर एकाग्रमनसे उस स्थानमेंही बैठकर जप करनेके निमित्त मुझे आज्ञा दी ॥ ८० ॥ फिर हम लौटकर आवैं तबतक हमारे कहनेके अनुसार नित्य जप करते रहो, ऐसे कहकर यह दिव्यस्वरूप सब मुनि चलेगए ॥ ८१ ॥ मैं उनके उपदेश के अनुसार वैसाही करतारहा, एकाग्रमनसे जप करते करते अनायासमें ही मेरी बाह्य विषयोंकी स्मृति जाती रही ॥ ८२ ॥ मैंने सब सङ्गका परित्याग करदिया, और शरीर किञ्चिन्मात्रभी हला नहीं ऐसी रीतिसे बहुत दिन बीतगए तब मेरे शरीरपर वल्मीक (बांबीरेतेका ढेर) होगया॥८३॥ फिर सहस्रयुग! व्यतीत होनेपर वह ऋषि लौटकर आए, और मुझसे "बाहर आओ" ऐसा कहा यह सुनकर तत्कालही मैं उठकर खड़ा होगया८४ और जैसे नीहार (कुहर) मेंसे सूर्य्य बाहर निकलताहै, तिसप्रकार वल्मीकसे बाहर निकला, तब वह सप्तऋषि मुझसे बोले कि- हे मुनिश्रेष्ठ! तेरा "वाल्मीकि" यह नाम हम रखतेहैं ॥ ८५ ॥ क्योंकि इस समय तू वल्मीक (रेतेके ढेर) से उत्पन्न हुआहै, यह तेरा दूसरा जन्म हुआ. हे रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी! इतना कहकर वह मुनि स्वर्गके मार्गको चलेगए ॥ ८६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुम्हारे नामके प्रभावसे इस स्थितिको प्राप्त हुआ हूँ आज साक्षात् सीताजी और लक्ष्मणजी करके सहित कमलनयन श्रीराम-

चन्द्रजीका दर्शन हुआ, अब मैं मोक्षको प्राप्त होजाऊंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं, हे श्रीरामचन्द्रजी! मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे निवास करनेके योग्य स्थान दिखाताहूँ, तुम्हारा कल्याण होय॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह तेजस्वी मुनि इसप्रकार वार्त्ता करके शिष्योंकी मण्डलीकरके सहित श्रीरामलक्ष्मणको साथ लेकर आगे चले, और उन्होंने पर्वत और गङ्गा इन दोनोंके मध्यमें श्रीरामचन्द्रजीके रहनेके योग्य स्थान दिखादिया ॥ ८९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने पर्वतपर रहनेवाले भिल्लोंसे तहाँ एक बड़ी लम्बी चौड़ी शाला और पूर्वपश्चिम तथा एक दक्षणोत्तर ऐसे दो सुन्दर मन्दिर बनवाए, जो श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण जगत्के निवास स्थान थे उन्होने भी रहनेके निमित्त मन्दिर बनवाए ॥ ९० ॥ जानकीजी और लक्ष्मणजी इन दोनोकरके सहित श्रीरामचंद्रजी वह देवताओंकी समान तीनोजने तिस उत्तम मन्दिरके विषें रहनेलगे ॥ ९१ ॥ तहाँ वाल्मीकि मुनिने सीताजी और लक्ष्मणजी करके सहित श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम रीतिसे पूजाकरी, स्वर्गकेविषें इन्द्राणीकरके सहित इन्द्र देवताओंकरके सहित जिसप्रकार आनन्दसे रहतेहैं. तिसीप्रकार तहाँ सीतासहित श्रीरामचन्द्रजी अनेक श्रेष्ठमुनियोंकरके सहित आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥९२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाषष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तम सर्गः ॥ ७ ॥

इधर सुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीको गङ्गाके तीरपै छोंड़कर लौटा तो सायंकालके समय अयोध्यामें घुसा, नगरमें घुसतेहुए लज्जाके कारण उसने अपना मुख वस्त्रसे ढ़कलिया, और उसके नेत्र आँसुओंसे भर आए ॥ १ ॥ वह अपने रथको बहार खड़ाकरके राजा दशरथका दर्शन करनेके निमित्त मन्दिरमें गया, तहाँ उसने जयजयकार पूर्वक महाराज दशरथकी स्तुति करके उनको प्रणाम किया ॥ २ ॥ सुमन्त्र प्रणाम करता है, ऐसा देखतेही राजा दशरथका अन्तःकरण विह्वल हो आया, तिस दशामेंही वह सुमन्त्रसे बोले कि-हे सुमन्त्र ? सीता और लक्ष्मण इन दोनोंकरके

सहित श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं? ॥ ३ ॥ तूने उनको कहाँ छोड़ाथा? मुझ पापीको उन्होंने क्या कहा? मेरे निर्दयपिनेके कारण सीता और लक्ष्मणने मुझे क्या क्या कहा? ॥ ४ ॥ हा राम! हा गुणनिधे! हा मधुरभाषिणि सीते! मैं दुःखके समुद्रमें मग्न होकर मरणोन्मुख (मृत्युके सामने प्राप्त) होगयाहूँ, यह मेरी दशा तुमको नहीं दीखती ॥ ५ ॥ इसप्रकार बहुत समयपर्य्यन्त विलाप करके राजादशरथ दुःखके समुद्रमें निमग्न होगए अर्थात् परमदुःखको प्राप्तहुए, तिन राजादशरथको इसप्रकार विलाप करतेहुए देखकर सुमन्त्र मन्त्री हाथजोड़कर बोला कि ॥ ६ ॥ हे महाराज! श्रीरामचन्द्र, सीताजी, और लक्ष्मणजी इन तीनोंको मैं रथमें बैठालकर शृङ्गवेरपुरके समीप गङ्गाके तटपर लेगया, तहाँ वह तीनो जने उतर पड़े ॥ ७ ॥ तहाँ गुहने कुछ फलमूल आदि लाया, श्रीरामचन्द्रजीने उस (गुह) का सन्तोष करनेके निमित्त उन फलोंको हाथसे स्पर्शमात्र किया, और वह वैसेही रखदिये (भक्षण नहीं करे) ॥ ८ ॥ महाराज! फिर श्रीरामचन्द्रजीने अपने आप गुहसे बड़का दूध मंगाकर जटाओंका मुकुट बाँध लिया, और मुझसे कहा ॥ ९ ॥ कि हे सुमन्त्र! महाराजसे कहना कि मेरे निमित्त आप शोक नहीं करें हम सबको वनमें अयोध्याकी अपेक्षाभी अधिक सुख होगा ॥ १० ॥ माताको प्रणामपूर्वक मेरा सन्देशा कहना कि मेरे निमित्त आप बिलकुल दुःख नहीं मानै, महाराज वृद्धावस्थाके कारण शोकसे व्याकुल होयँगे, उनको आप समझा दें ॥ ११ ॥ महाराजाधिराज! उस समय सीताके नेत्रोंमें आँसूभर आए, और श्रीरामचन्द्रजीकी ओरको किञ्चिन्मात्र देखकर, दुःखके कारण गद्गदवाणीसे मुझसे बोलीं ॥ १२ ॥ कि हे सुमन्त्र! सासुओंके औ श्वशुरजीके चरणकमलोंमें मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम कहना, ऐसे कहकर और मुख कुछ नीचेको करके सीताजी रोती हुई चलीगई ॥ १३ ॥ फिर शीघ्रही तीनोजने नौकापर चढे उस समय तीनोकेही नेत्रोंमें आँसू भर रहेथे, वह गङ्गाको उतरकर परलेपार गए तबतक मैं खड़ा रहा ॥ १४ ॥ फिर मैं बड़ा दुःखित होता हुआ लौट आया, यह सुनतेही कौसल्या रोती रोती राजा-

दशरथसे इस प्रकार बोली ॥ १५ ॥ कि हे महाराज! कैकेयी आपकी प्रिया स्त्री है, इसकारण आपने उसको वर दिया, तौ उसके पुत्रको राज्य दे दो, इस विषयमें मैं कुछ नहीं कहती, परन्तु मेरे पुत्रको बाहर क्यों निकाल दिया? ॥ १६ ॥ यह सब आप अपने हाथोंसे किया है, फिर अब रोते क्यों हो? यह कौसल्याका भाषण सुनतेही, जैसे घावपर अग्नि लगजाय, ऐसी राजा दशरथकी दशा होगई ॥ १७ ॥ उनके नेत्र शोकके आँसुओंसे फिर भर आए ऐसी दशामें वह कौसल्यासे बोले कि-हे कौसल्ये पहिलेही मैं दुःखसे मर रहाहूँ, तिसपरभी फिर मुझे तू क्यों दुःख देती है?१८ निःसन्देह अबही मेरे प्राण निकल जायँगे, पूर्वकालमें मेरी मूर्खताके कारण मुझे एक मुनिने शाप दियाथा ॥ १९ ॥ पूर्वकालमें युवावस्था (जवानी) केविषें मैं बड़ा उन्मत्त था, मृगया (शिकार) का अत्यन्त व्यसन (शौक) होनेके कारण एक समय मैं हाथमें धनुष बाण लेकर रात्रिके समय बड़े ब-नमें एक नदीके तटपर फिर रहाथा, ॥ २० ॥ अर्द्धरात्रि (आधीरात) के समय तहाँ कोईएक तृषासे घबड़ाहुआ (प्यासा) मुनि आया, उसके माता पिता पिपासा (प्यास) से व्याकुल होरहेथे इसकारण वह उनके निमित्त जल लेजानेके उद्योगमें था, उसने अपने कुम्भ (घड़े) को जलमें डुबोया, तब घड़ेमें पानी भरते समय "गुड़ गुड़ गुड़ गुड़" ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ।२१। अर्द्धरात्रिके समय होनेके कारण 'तहाँ कोई मनुष्य होगा' ऐसी शंका तौ मुझे थीही नहीं, मैंने जाना कि कोई हस्ती जल पीरहा है, सो मैंने धनुषपर शब्दवेधी बाण चढ़ाकर छोडदिया, ॥ २२ ॥ इतनेहीमें तहाँ कोई मनुष्य है इस बातकोजतानेवाला, "मरारे मरा" ऐसा शब्द हुआ, वह मनुष्य फिर चिल्लाने लगा-कि मैंने तौ किसीकाभी अपराध नहीं करा, फिर मुझे किसने मारा, हा प्रारब्ध! ॥२३॥ मेरे मातापिता जलकी इच्छासे मेरी बाट देखरहे होंगे, यह उसपुरुषका कहना सुनतेही मैं भयभीत हुआ और वैसाही धीरे धीरे उस पुरुषके समीप गया, और उससे कहा कि हे स्वामिन्! मैं दशरथ हूं, आप यहाँ आए हैं, यह मुझे मालूम नहीं था, इस कारण मेरे हाथसे

आपको बाण लग गया, हे मुने! हे महाराज! अब मेरी रक्षा करना आपके ही आधीन है, ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह शब्द उच्चारण करतेमें मेरे मुखसे ठीक अक्षर नहीं निकलतेथे, अन्तमें मैं उनके चरणोंमें गिरपड़ा उस समय वह मुनि मुझसे बोले कि— हे राजाधिराज! ड़रो मत ॥ २६ ॥ तुमको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी, क्योंकि मैं तप करनेवाला वैश्य हूं, मेरे माता पिता क्षुधा (भूँख) और प्याससे व्याकुल होकर मेरी वाट देखते होंगे, ॥ २७ ॥ तू बूझनेबाझनेमें कालक्षेप न करके शीघ्रही जल लेजाकर उन्हें दे, तू ऐसा नहीं करैगा, और कहीं यदि मेरे पिताको क्रोध आगया तौ वह तुझे भस्म करडालैंगे ॥ २८ ॥ इस कारण तू जल लेजाकर उन्हें दे, और प्रणाम करके यह सम्पूर्ण जो कुछ हुआ है सो वृत्तान्त निवेदन कर, मुझे बड़ी पिड़ा होती है, इससे वह बाणकी नोक मेरे शरीरमेंसे बाहर निकाल, मैं अब प्राणोंको छोडताहूं ॥ २९ ॥ तिस मुनिके इस प्रकार कहनेपर मैंने तत्काल उसके शरीरमेंसे बाणकी नोक बाहर निकाली, और जलसे भराहुआ कलश लेकर जहाँ उसके माता पिता थे वहाँ गया॥ ३० ॥ वह दोनों अतिवृद्ध और अन्धे थे, उस रात्रिके समय क्षुधा और तृपासे व्याकुल हो रहेथे, पुत्र जल लेकर आया नहीं इसका क्या कारण है? ॥ ३१ ॥ हम वृद्धोंको दूसरे किसीका आधार नहीं है, हमें समीप देखतेही प्रत्येक पुरुषको पुरा मालूम होताहै, ऐसी हमारी दीन दशा है, इस समय हम प्याससे अत्यन्तही व्याकुल होरहेहैं, ऐसे समयमें हमारा भक्तिमान्‌पुत्र न जाने हमारी क्यों उपेक्षा करताहै ॥ ३२ ॥ इसप्रकार व्याकुल होकर वह दोनो चिंता कररहेथे, इतनेहीमें मेरे पैरोंका शब्द उनके कानोंमें पडा वह शब्द सुनतेही पिता बोला कि-हे पुत्र! तुमने इतना विलम्ब क्यों किया ॥ ३३ ॥ हे पुत्र! हमैं निर्मल जल दे,और तूभी पी, उनके इसप्रकार कहतेमें भयके कारण मैं धीरे उनके समीप गया ॥ ३४ ॥ और नम्रतापूर्वक चरणोंमें प्रणाम करके बोला कि-हे महाराज! मैं तुम्हारा पुत्र तो नहीं हूँ किन्तु अयोध्याका राजा दशरथ हूँ ॥ ३५ ॥ मुझ दुष्टको मृगया

(शिकार)का बडा व्यसन(शौक) है, इस कारण मैं आज रात्रिमें पशुओंका शिकार खेलता खेलता एक जलाशयसे दूरपर खडाथा, इतनेहीमें जलमेंका कुछ शब्द मेरे कानमें पडा, सो मैं शब्दवेधी बाणका छोडनेवाला हूँ इसकारण मैंने एक शब्दवेधी बाण छोडा, सोई "मरा रे मरा" ऐसा शब्द मेरे सुननेमें आया, तब मैं भयभीत होकर वैसाही उसके समीप आया। ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तहाँ जटाओंको वखेर कर पडेहुए एक मुनिकुमारको मैंने देखा, उसको देखतेही भयभीत होकर मैंने उसकी प्रार्थना करी, कि मेरी रक्षा करो, मुझे जीवदान दो, ॥ ३८ ॥ तब वह मुझसे बोला कि भय मतकर तुझे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगैगा, तू मेरे मातापिताको जल लेजाकर दे तथा प्रणाम कर और अपने जीवनके निमित्त उनकी प्रार्थना कर ॥ ३९ ॥ उस मुनिने इस प्रकार कहा, तब मैं यहाँ आया हूँ, हे महाराज! मैं मुनिका घात करनेवाला, दुष्ट, पातकी आपकी शरण आया हूं, आप दया करके मेरी रक्षा करो ॥ ४० ॥ यह पुत्रको मरणकी वार्त्ता कानमें पडतेही वह दोनों दुःखसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरपडे और विलाप करने लगे विलाप करते करते उन्होंने मुझसे कहा कि—अरे! हमारा पुत्र जहाँ होय तहाँ हमै शीघ्रही ले चल, विलम्ब मत कर ॥ ४१ ॥ फिर मैं उन बूढे दोनों स्त्री पुरुषको जहाँ उनका पुत्र था तहाँ लेगयो, तहाँ उन्होंने पुत्रके शरीरपर हाथ फेर कर बहुत विलाप किया. ॥ ४२ ॥ वह हाय! हाय! ऐसे चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे, हा पुत्र! हा पुत्र! हा बेटा! अरे हमैं जल पिला देरे! अरे! हमैं जल क्यों नहीं देता है? ॥ ४३ ॥ तदनन्तर वह दोनों मुझसे बोले कि हे राजन्! अब जलदीसे चिता तयार कर, उनकी आज्ञाके अनुसार मैंने शीघ्रही चिता रचकर उस पै तीनोंको बैठाला और लाकर अग्नि दे दी, तब वह तीनों भस्म होकर स्वर्गलोकको गए ॥ ४४ ॥ उनमेंसे वृद्धपिता—मरते समय शोकके आवेशमें मुझसे बोला कि—तेरी ऐसीही दशा होयगी, मेरा तुझे शाप है कि, तू पुत्रके शोकमें मरणको प्राप्त होयगा. ॥ ४५ ॥ हे कौसल्ये! वह शाप भोगनेका समय मुझे इस समय

प्राप्त हुआ है, इस शापका दूर होना अशक्य है (कदापि दूर नहीं हो सका) इतना भाषण करके राजा दशरथ शोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगे कि ॥ ४६ ॥ हा राम ! हा पुत्र! हा सीते! हा गुणनिधे लक्ष्मण! तुम्हारे वियोगमें मुझे मरण प्राप्त हुआ है, अरे ! यह सब केकेयी करनी हैं ॥ ४७ ॥ राजा दशरथ इस प्रकार विलाप करते हुए प्राणोंको त्यागकर स्वर्ग लोकको पधार गए, कौसल्या, सुमित्रा, तथा औरभी रणवासकी स्त्रियें रोदन करने लगीं, और छातीको कूट कूटकर बडा विलाप करने लगीं प्रातःकालको मन्त्रियोंकरके सहित वसिष्ठमुनि तहाँ आए ॥ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उन्होंने राजा दशरथके शव (मृतकशरीर) को तैलकी द्रोणीमें रखकर, फिर दूतोंको आज्ञा दी कि—तुम शीघ्रही घोडोंपे चढ़कर युधाजित् (भरतके मामाके नगर) को जाओ ॥ ५० ॥ तहाँ परमतेजस्वी और प्रतापशाली भरतजी शत्रुघ्नकरके सहित हैं, उनको मेरी आज्ञासे शीघ्र ही लेकर आओ, और उनसे यह कहना ॥ ५१ ॥ कि शीघ्रही अयोध्यामें जाकर राजाके और कैकेयीके भी दर्शन करो. ऐसी आज्ञा पातेही दूत चलदिये, और बडी शीघ्रतासे भरतजीके मामा युधाजित्के पास पहुँचे, ॥ ५२ ॥ और प्रणाम करके बोले कि-हे महाराज ! वसिष्ठमुनिने छोटे भ्राताकरके सहित भरतजीके विषयमें आपको सन्देशा कहा है, कि भरतजीको अपने छोटे भ्राताके साथ शीघ्रही अयोध्यापुरीको भेज दो, विचार करनेमें देरी मत लगाओ, यह आज्ञा सुनतेके साथही भरत भयसे व्याकुल होगए; और शीघ्रही वसिष्ठगुरुकी आज्ञाके अनुसार छोटे भ्राताको साथ लेकर दूतोंकरके सहित चलदिये, महाराजको अथवा श्रीरामचन्द्रको कोई दुःख आनकर प्राप्त हुआ होगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ ऐसी चिन्तामें ग्रस्त होकर मार्गमें विचार करते करते नगरमें आए, तौ नगरकी शोभा बिलकुल नष्ट होरहीथी, तहाँ लोगोंकी व्यवहार व्यापारसम्बन्धकी बातें तथा पुरुषोंके समूह कहींभी नहीं देखे, ॥ ५६ ॥ आनन्दोत्सवोंकरके तौ नगर बिलकूलही हीन होरहाथा, जब भरतने नगरकी यह

दशा देखी तब तौ उनको बडीही चिन्ता हुई; फिर राजभवनमें घुसकर देखा तौ ऐसा प्रतीत होता था कि मानो राजलक्ष्मी इस स्थानको छोडकर चली गई है ॥५७॥ फिर उन्होने देखा तौ इकली कैकेयीही आसनपर बैठी है; तब भरतजीने शिर नमाकर माताके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ५८ ॥ भरतजी आए, यह देखलेही कैकेयी प्रेमसे उठकर खड़ी होगई, और जल्दीसे उनको हृदयसे लगाकर गोदीमें बैठा लिया, ॥ ५९ ॥ फिर उसने भरतजीके मस्तकको सूँघकर फिर उनसे अपने मैकेके मनुष्योंकी कुशल बूझी कि-हे भरत! मेरा भ्राता तथा भाग्यशाली मेरी माता तौ कुशल है ना? ॥ ६० ॥ हे पुत्र! आज बधाई है जो मैंने तुम्हें आज कुशलपूर्वक देखा, माताने भरतसे यह सब वार्त्ता बूझी, परन्तु भरतजीका मन चिन्तासे व्याकुल होरहाथा, सो भरतजीने माताके बूझनेपर तौ कुछ ध्यान नहीं दिया, और खिन्न अन्तःकरणसे माताके प्रति बूझने लगे कि-हे मातः! हमारे पिताजी कहाँ हैं? तू यहाँ इकली बैठी है, इसका क्या कारण है॥६१॥ ॥ ६२ ॥ हमारे महाराज (पिताजी) तौ तुम्हें छोड़कर एकान्तमें कभी भी नहीं बैठते थे, इस समय वह यहाँ नहीं दीखते, सो बता कहाँ हैं? ॥ ६३ ॥ पिताजीका दर्शन न होनेसे मेरे मनमें इस समय भय और दुःख उत्पन्न होताहै, यह प्रश्न सुनकर कैकेयी पुत्रसे बोली कि-हे पुत्र! तेरे दुःख करनेसे लाभ क्या है? ॥ ६४ ॥ धर्मात्मा और अश्वमेधादि यज्ञोंसे परमेश्वरकी आराधना करनेवाले पुरुष जिस गतिको प्राप्त होते हैं, तिस गतिकोही अब तुम्हारे पिताभी प्राप्त होगए, तुम्हारी पिताकेविषें बड़ी भारी प्रीति थी परन्तु अब शोक करनेसे क्या लाभ होगा? ॥ ६५ ॥ यह वार्त्ता सुनतेही भरत शोकसे विह्वल होकर पृथ्वीपर गिरपड़े, और हे तात! मुझे दुःखके समुद्रमें डालकर किधरको चलेगए, ॥ ६६ ॥ हा पिताजी! मुझे रामचन्द्रजीके अर्थ सौंपे बिना किधर चलेगए, ऐसा विलाप करताहुआ पुत्र पृथ्वीपर पडा है, और इसके केश चारों ओरको बिखर रहेहैं ॥ ६७ ॥ ऐसा देखकर कैकेयीने भरतको उठाकर बैठाया, और नेत्र

पोंछकर कहा कि-हे पुत्र! सावधान हो, तेराही भला होयगा, ऐसी सब युक्ति मैंने करली है ॥ ६८ ॥ तब भरतजी बोले कि-महाराजने मरतेस-मय क्या कहा था? कैकेयीको भय अथवा लज्जा कुछ नहीं थी, सो शा-न्तिपूर्वक भरतजीसे कहने लगी॥६९॥कि महाराज, हा राम! हा लक्ष्मण! हा राम! हा सीते! इसप्रकार वारंवार कहकर बहुतकालपर्य्यन्त शोक करते हुए अन्तमें स्वर्गलोकको पधारगए॥ ७० ॥तब भरतजीने कैकेयीसे बुझा कि-हे मातः! क्या उससमय श्रीरामचन्द्रजी समीपमें नहीं थे? तथा लक्ष्मण और सीता इनमेंसेभी कोई क्या समीप नहीं था? उस समय वह सब कहाँ गए थे? ॥७१॥ कैकेयी बोली कि-हे भरत! रामचन्द्रको यौवराज्य देनेके निमित्त तुम्हारे पिताने बड़ी सामग्री इकट्ठी करीथी, परन्तु तुझे राज्य मिलै, इस उद्देशसे मैंने उस समय तिस कार्य्यमें विघ्न करदिया॥ ७२॥महाराजने वरदानी होकर पूर्वकालमें मुझे दो वर दिये थे वह मैंने इस समय माँग लिये उनमेंसे एक वरते तुमको सम्पूर्ण राज्य माँगा, और दूसरेसे, रामचन्द्र मुनियोंकी समान व्रत धारण करके वनमें रहैं, यह माँगा, महाराज सत्यका पालन करनेवाले थे, इसकारण उन्होंने तुझेही राज्य दिया, ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ और तुम्हारे पिताने रामचन्द्रजीको वनमेंही भेजा, सीताभी पातिव्रत्यका मार्ग अवलम्बन करके रामचंद्रके साथ गई ॥ ७५ ॥ मैं श्रेष्ठ (यथार्थभक्तिमान्) भ्राता हूँ, ऐसा दिखानेके निमित्त लक्ष्मण भी रामचन्द्रके साथ गया, उन सबके वनको चले जानेपर महाराज उनकाही चिन्तन करने लगे ॥ ७६ ॥ अन्तमें "राम राम" इसप्रकार पुकारते हुए महाराज स्वर्गलोकको पधार गए, यह माताका बचन सुनतेही, जिसप्रकार वज्रका प्रहार लगने पर वृक्ष टूटकर नीचे गिरपड़ता है, तिसीप्रकार भरत मूर्च्छाको प्राप्त होकर पृथ्वीपर निश्चेष्ट होकर गिरपड़े, यह देखकर कैकेयीको दुःख हुआ, वह उस समय भरतसे फिर बोली कि-हे पुत्र! तू शोक किस कारण करै है? मुझे तो शोकका कोई कारण दीखता नहीं ॥७७॥७८॥अरे! तुझे तो बड़ा सुन्दर राज्य प्राप्त हुआ, और तुझे इस समय शोक करना सजा है. इसका क्या

कारण है? माताके इसप्रकार कहनेपर भरत उसकी ओरको इतनी कठोर दृष्टिसे देखने लगे कि उस देखनेसे वह कैकेयीको क्या जलाएही देत रहैं ऐसे मालूम पड़े, फिर भरतजी कैकेयीसे बोले कि ॥ ७९ ॥ रे दुष्टे! पतिकी हत्या करी है, इसकारण तू महापापिनी है, तुझसे बात करना मुझे अच्छा नहीं, मालूम होताहै, अरी पापे! तेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, इस कारण मैं भी इस समय पापका भागी हूँ, अब मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा, या विष खालूँगा ॥ ८० ॥ अथवा खड्ग (तलवार) से आत्महत्या करके यमपुरीको जाताहूँ, अरी दुष्टे! तैंने पतिका वध करा है, इसकारण तू कुम्भीपाक नरकको जायगी ॥ ८१ ॥ भरत इसप्रकार कैकेयीको ललकार कर फिर कौसल्याके मन्दिरमें गए वह भी भरतको देखतेही चीखमार कर रोनेलगी ॥ ८२ ॥ उस समय भरतभी उसके चरणोंमें गिरकर रोने लगे, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण जगत्में फैल रही है तिन श्रीरामचन्द्रकी माताने भरतको हृदयसे लगाया, वह महासीधी बड़ी दुर्बल होरहीथी, उसका मुख बड़ा दीन मलीन दीखताथा, नेत्रोंसे बराबर आँसू बहरहेथे. सो भरतसे बोली कि-हे पुत्र! तुम दूर चलेगए, और इधर यह सब कौतुक हुआ, तेरी माताने क्या क्या कार्य्य करे, वह सब उसके कहनेसे तुझे मालूमही होयगा ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ मेरा पुत्र रघुकुलोत्पन्न रामचन्द्र मुझे दुःखके समुद्रमें डूबतीहुईको छोड़कर स्त्रीको और लक्ष्मणको साथ लेकर बनको चलागया, उसने वस्त्रोंके स्थानमें शरीरपर वल्कल धारण करे, और केशोंका जटाजूट बाँध लिया ॥ ८५ ॥ हा राम! हा रघुवंशाधिपते! तुम प्रत्यक्ष परात्पर ईश्वर मेरी कोखमें आए, तौभी मुझे दुःख नहीं छोड़ते, इससे मेरी बुद्धिको निश्चय होताहै कि अवश्यही दैव बलवान् है, ॥ ८६ ॥ इसप्रकार कौसल्या अत्यन्त शोकसे विलाप कर रही है; ऐसा देखकर भरतने कौसल्याके चरण पकड़कर कहा कि-हे मातः मेरा वचन सुनो ॥ ८७ ॥ कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके विषयमें जो कुछ कार्य्य करा, अथवा और जो कुछ (मेरे लिये राज्य माँगना आदि) कार्य्य किया, वह

यदि मुझे मालूम होय, या यदि मैंने उसे प्रेरणा करी होय तो हे मातः मुझे सैंकड़ों ब्रह्महत्याओंका पाप लगै, अरुन्धतीसहित वसिष्ठजीको खड्गसे वध करनेपर जो पाप होय वह पाप "यदि यह वार्त्ता पहिलेसे मुझे मालुम होय" तो मुझे लगै, इस प्रकार शपथ करके भरत उस समय रोने लगे, ॥ ॥८८॥ ८९॥ ९०॥ तदनन्तर कौसल्याने उसे हृदयसे लगाकर कहा कि-हे पुत्र! तेरे हृदयको मैं जानतीहूं, तू बिलकुल शोक मतकर, यह वार्त्ता होरहीथी कि इतनेहीमें "भरत आए हैं" यह वार्त्ता सुनकर वसिष्ठजी मन्त्रियोंकरके सहित राजमन्दिरमें आए, भरत शोक करते हैं ऐसा देखकर वसिष्ठजी उनसे आदर पूर्वक बोले कि ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ हे भरत! राजा दशरथ ज्ञानवान् और सत्यपराक्रमी थे, इस समय उनकी वृद्ध अवस्था थी, उन्होंने मर्त्यलोकके सब सुख भोग लिये, बडी २ दक्षिणा देकर अश्वमेधादि यज्ञोंसे परमेश्वरकी आराधना करी; और राम सरीखा पुत्र मिला, यह श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण दुःखोंके हरनेवाले साक्षात् ईश्वर हैं, अन्तमें वह महासमर्थ राजा दशरथ स्वर्गमें जाकर इन्द्रके आधे आसनको प्राप्त हुएहैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ उनके विषयमें तुम बिलकुल निष्कारण शोक करते हो, उनके विषयमें शोक करना अयोग्य है, क्योंकि वह मोक्षकी प्राप्तिके अधिकारी होकर स्थित हैं, आत्मानात्म-का विचार करे विना शोक करना कितना अयोग्य है, सो तुम्हे मालूम ही होगा, आत्मा नित्य है उसको कोई विकार नहीं होताहै, वह शुद्ध और जन्म मृत्यु आदिसे रहित है ॥ ९५ ॥ यह शरीर जड़ और अत्यन्त अपवित्र है, इसका कभी तौ नाश होनाही है, इतना विचार करनेसे किसी प्रकारसेभी शोक करनेका अवकाश नहीं है ॥ ९६ ॥ पिता अथवा पुत्र कोई यदि मृत्युको प्राप्त होजाय तौ अपने शरीरको ताड़न करके जो पुरुष मृतक पुरुषके विषयमें शोक करते हैं, वह सब मूर्ख हैं ॥ ९७ ॥ संसार वास्तवमें असार है, यह संसारका स्वरूप जिसको मालूम होजाता है, उस पुरुषको संसारकेविषें किसी वस्तुका वियोग होजाय तो यह वैराग्यका

कारण होता है, तिससेही आगेको शान्तिसुख प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ जिस समय प्राणी इस लोकमें जन्मको प्राप्त हुआ कि उसी समय मृत्यु उसके पीछे आता है, इसकारण जन्म लेनेवाले प्राणीका मृत्यु कदापि नहीं टलता है, ॥ ९९ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंको जन्म अथवा मृत्यु प्राप्त होना, यह उनका अपने अपने कर्म्मोंके अधीन है, अज्ञानी पुरुषकोभी यदि यह तत्त्ववार्त्ता मालूम होजाय तौ वह बान्धवोंके विषयमें किस प्रकार शोक करैगा? अर्थात् कदापि शोक नहीं करैगा, जिस विषयमें मूर्खभी शोक न करै, क्या उस विषयमें तत्त्वज्ञानी शोक मानैगा? ॥ १०० ॥ अरे आजपर्य्यन्त करोडों ब्रह्माण्ड नष्ट होगए, अनेक सृष्टियोंके प्रलय होगए, सम्पूर्ण समुद्र सूखगए, तब इस क्षणिक जीवनके विषयमें आस्था किसप्रकार करी जाय? ॥ १०१ ॥ हलते हुए पत्तेके अग्रभागपर लगेहुए जलके बिन्दुके समान यह आयु क्षण मात्रमें नष्ट होनेवाला है, और असमयमें त्याग देता है, फिर उसपर तेरा विश्वास किसप्रकार है ॥ १०२ ॥ जीवको पूर्वजन्मके शरीरमें किये हुए कर्म्मके अनुसार फिर देह प्राप्त होता है; तिस (नवीन प्राप्त हुए) देहमें जो कर्म्म करै उसके योगसे फिर दूसरा जन्म होताहै, यह परम्परा नित्यसे ही चली आतीहै, इसप्रकार कुछ समयको देहका वियोग होजाय तौ भी आत्माका नाश नहीं होताहै, इसकारण उसके विषयमें शोक करना निरर्थक है ॥ १०३ ॥ जिसप्रकार मनुष्य वस्त्र जीर्ण होनेपर उनको त्याग देता है, तिसीप्रकार जीव जीर्ण शरीरका त्यागकरके फिर नवीन शरीरको सदा ग्रहण करताहै, फिर अब उस शरीरके विषयमें शोक करनेका अवसर रहाही कहाँ? आत्मा कभी मरता नहीं हैं, कभी जन्म नहीं लेता है, अथवा कभी वृद्धिको नहीं प्राप्त होताहै ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ वह आत्मा छःओंही भावविकारों (जायते अस्ति आदि) करके रहित है, उसके स्वरूपकी इयत्ता नहीं हैं, तीनोकालमें नष्ट न होनेवाला निर्विषय ज्ञान तिस आत्माकी मूर्ति है, वह आनन्दरूप और बुद्धि, चित्तआदिका साक्षी है, उसका नाश कदापि नहीं होताहै, ॥ १०६ ॥ हे भरत! एकही आत्मा सर्वत्र पूर्णरूपसे व्याप्त है, उसकेविषें

द्वैतभाव किञ्चिन्मात्रभी नहीं है, वह सर्वत्र समानसत्तारूपसे रहता है, मैं वह ही आत्मा हूँ, इसप्रकार पूर्ण रीतिसे जान शोकको त्याग दे, और अब आगेकी क्रियाकर ॥ १०७ ॥ कुलको आनन्द देना यह तेरा कार्य्य है, इसकारण तू अब मन्त्रियोंके व हमारे साथ पिताके शव (मृतकदेह) को तेलकी द्रोणीसे बाहर निकालकर उसका यथोचित संस्कार कर ॥ १०८ ॥ इसप्रकार साक्षात् वसिष्ठगुरुने समझाया, तब भरतने अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले शोकको त्यागकर विधिपूर्वक पिताकी प्रेतक्रिया करी ॥ १०९ ॥ उनके पिता (दशरथ)ने यथाविधि अग्निहोत्र स्वीकार कराथा, (अर्थात् राजा दशरथ विधिपूर्वक अग्निहोत्र करा करतेथे), इसकारण भरतने गुरुकी बताई हुई रीतिके अनुसार पिताके शवका संस्कार करा ॥ ११० ॥ग्यारहवां दिन आनेपर भरतने वेदके पारङ्गत सैंकड़ों हजारों ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराया ॥ १११ ॥ पिताके उद्देशसे ब्राह्मणोंको बहुतसा द्रव्य सहस्रों गौ, ग्राम, रत्न, और वस्त्र दिये ॥ ११२ ॥ और फिर वसिष्ठ गुरु छोटे भ्राता (शत्रुघ्न) और मन्त्रिमण्डल करके सहित वह भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकाही ध्यान करते हुए अपने घर रहे ॥ ११३ ॥ अब उन भरतजीके मनमें विचार होने लगा कि-सीताजी और लक्ष्मण इन दोनोंकरके सहित श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त घोर वनमें गए, इसका कारण मेरी माता है, इसकारण वह राक्षसीकी समान दीखती हुईको देखतेही तत्काल मेरा अन्तःकरण जलने लगता है, तिससे अब मैं इस सम्पूर्ण राज्यको दूरसेही त्यागकर वनमें जाताहूँ, तहाँ सीताजीकरके सहित तिन सुहास्यवदन श्रीरामचन्द्रजीकी सदा सेवा करता रहूँगा, ॥ ११४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीय मुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषासप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि-हे पार्वति! महासमर्थ वसिष्ठमुनि अनेक मुनियों करके सहित मंत्रिमण्डलको साथ लेकर राजाकी सभामें आए, वह सभागृह

देवसभाके समान था ॥ १ ॥ तहाँ वसिष्ठजी आसनपर बैठे, उनकी ओरको देखतेही देखनेवालेको "यह दूसरे ब्रह्माजीहि हैं," ऐसे प्रतीत होतेथे; उन्होंने छोटे भ्रातासहित भरतजीको बुलवाकर समीप बैठाला ॥ २ ॥ और तिन शत्रुओंको निग्रह करनेवाले (प्रतापी) भरतजीसे देश और कालके अनुसार वार्त्ता करनेका प्रारम्भ करा कि-हे पुत्र! तुम्हारे पिताजीकी आज्ञाके अनुसार आज तुम्हारा राज्याभिषेक करैंगे ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम्हारे निमित्त कैकेयीने राज्य माँगलियाथा, और राजादशरथका अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेका संकल्प था, इसकारण उन्होंने हमारे सबके समक्ष तुम्हारे लिये देदियाहै ॥ ४ ॥ सो आज मुनियोंके मंत्रोच्चारणपूर्वक तुम्हारा अभिषेक कराजायगा, यह सुनकर भरतजी बोले कि-हे गुरो! महाराज! मुझे राज्यको क्या करनाहै ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी राजाधिराज हैं, मैं तो उनका सेवकही हूँ मैंने कल प्रातःकाल श्रीरामचन्द्रजीको शीघ्रही लौटाकर लानेके निमित्त जानेका संकल्प करा है ॥ ६ ॥ मैं, आप, और उस राक्षसी कैकेयीके सिवाय सम्पूर्ण माता चलैं, कैकेयीके विषें मेरा मातृत्वका सम्बन्ध है ठीक है, परन्तु मेरे चित्तमें तो ऐसा आताहै कि अभी उसको मारडालूँ ॥ ७ ॥ परन्तु स्त्रीकी हत्या करनेपर रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी मुझे क्षमा नहीं करैंगे, इसकारण मैं ऐसा नहीं करताहूँ, सो कल प्रातःकाल होतेही मैं शत्रुघ्नको साथ लेकर शीघ्रही दण्डकारण्यको पैदल जाऊँगा, आप चलैं, या न चलैं, श्रीरामचन्द्रजी जिसप्रकार वनको गए हैं, तिसीप्रकार मैंभी शरीरपर वल्कलोंकेही वस्त्र धारण करके वनको जाऊँगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे मुने! मेरे साथ शत्रुघ्नभी जायँगे, मैं श्रीरामचन्द्रजीके लौटकर आनेके समयतक फल और मूल भक्षण करके रहूँगा, भूमिपर शयन करूँगा, और मस्तकपर जटाओंको धारण करूंगा ॥ १० ॥ भरतजी ऐसा निश्चय करके चुप्प होकर बैठगए, यह वार्त्ता सुनतेही सम्पूर्ण पुरुषोंने आनन्दमें आकर उनकी 'बहुत योग्य है! बहुत उत्तम है!' ऐसा कहकर प्रशंसा करी ॥ ११ ॥ फिर प्रातःकाल होतेही भरतजी चलदिये, और सुमन्त्रकी आज्ञाके अनुसार

हत्ती घोड़े आदि सम्पूर्ण सेना उनके पीछे पीछे चली ॥ १२ ॥ कौसल्या आदि राजपत्नी, और वसिष्ठआदि ब्राह्मण यह सब इकट्ठे होकर भरत-जीके आगे, पीछे, और दहिने बाएँ होकर पृथ्वीको ढकते हुए चले॥ १३॥ तिस प्रचण्ड सेनाने शृङ्गवेरपुरके समीप जाकर शत्रुघ्नकी आज्ञासे इधर उधर गङ्गाके सम्पूर्ण तटपर निवास किया ॥ १४ ॥ 'भरत आए हैं' यह वार्त्ता सुनतेही गुहके मनमें यह शङ्का उत्पन्न हुई कि-देखो भरतजी बड़ा सेनाका समूह साथ लेकर आए हैं ॥ १५ ॥ सो कहीं कुछ दुष्ट कार्य्य करनेके निमित्त तो नहीं आए हैं? श्रीरामचन्द्रजीको यह वार्त्ता इससमय पर्य्यन्त मालूम नहीं है, सो मैं समीप जाऊं तो भरतके हृदयकी वार्त्ता मालूम होय, यदि उनके मनमें कपट नहीं होयगा तो मैं उनको गंगाके परलीपार उतारदूँगा नहीं तो सम्पूर्ण मेरी जातिके लोग अपनी नौकाओंको गङ्गामेंसे निकालकर बाहर डालदें, और हाथोंमें शस्त्र लेकर चारों ओरसे देखते रहें, यदि भरत गङ्गाके पार जानेका यत्नकरैं तो उनको रोकें किसी-प्रकार पार न उतरने दें, ॥ १६ ॥ १७ ॥ गुहने अपने सम्पूर्ण जातिके पुरुषोंको इसप्रकार आज्ञा दी तब वह सब नानाप्रकारकी अनेक भैंटें (न-जराने) लेकर भरतजीके समीप आए ॥ १८ ॥ तिस गुहने भरतजीके पासको आतेसमय अनेकप्रकारके आयुधोंको धारण करे हुए जातिके अनेक पुरुषोंको साथ लेलियाथा, भरतजीके सामने भेट (नजराना) निवेदन कर-के गुहने चारोंओरको देखा तो उसको पहिलीसीही दशा दीखी, कि-लघु-भ्रातकरके सहित भरतजी बैठे हैं, और उनके समीपमेंही मन्त्रिमण्डल बैठा है, भरतजीने अपने मेघकी समान श्यामवर्ण शरीरपर वस्त्रोंके स्थानमें वल्क-ल धारण करके जटाओंका मुकुट बनालियाहै, और श्रीरामचन्द्रजीके नि-मित्त शोक कर करके मुखसे राम-राम, ऐसी रटना कररहे हैं, यह दशा देखकर गुहने भूमिपर मस्तक टेककर उनको प्रणाम किया, और 'मैं गुह हूँ' इसप्रकार कहा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ भरत-जीने तत्काल उठाकर गुहको हृदयसे लगाया, और आदरपूर्वक कुशल

क्षेम बुझा, इससमय भरतजीने स्वस्थचित्त हो गुहको अपना मित्र समझकर कहने लगे कि-हे भ्रातः! इस स्थानमें तुम श्रीरामचन्द्रजीके साथ आनन्दपूर्वक बैठेथे, तथा निर्मल मनसे तुम्हें हृदयसे लगायाथा, और तुम्हारी प्रीतिको देखकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र प्रेमके अश्रुओंसे भर आए थे, इसकारण तू धन्य है, सीता और लक्ष्मणजी करके सहित तिन कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम अनेक प्रकारके वार्त्तालाप करे इस कारण तुम कृतकृत्य हो ॥ २२ ॥ २३॥२४ ॥ हे सुव्रत गुह! तुम्हें जहाँ श्रीरामचंद्रको देखा हुआथा,तहाँ मुझे लिवाचल, जानकी सहित श्रीरामचंद्रजीने जहाँ शयन कराथा, वह स्थल मुझे दिखाओ ॥ २५ ॥ तुमने श्रीरामचन्द्रजीकेविषें भक्ति करी, और उनको अत्यन्त प्रिय हुए तिससे तुम भाग्यवान् हो, भरतजी इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीको वारंवार स्मरण करके नेत्रोंसे आँसुओंका प्रवाह वरसाने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर भरतजी गुहके साथ जहाँ श्रीरामचन्द्रजी रात्रिमें रहेथे, तहाँ गए, तहाँ दर्भ (कुश) बिछाकर बनाए हुए शयन करनेके स्थान उन्होंने देखे ॥ २७ ॥ सीताजीके अङ्गोंके आभूषणोंकी रगड़ लगनेसे तहाँ शयनके स्थानपर सुवर्णके चिन्ह लगा रहेथे, उस स्थानको देखतेही भरतजीका हृदय दुःखसे सन्तप्त हुआ, और वह शोक करने लगे ॥ २८ ॥ कि हाय! जो जनकराजाकी सुकुमार कन्या सीता राजमन्दिरमें रत्नजटित शय्यापर कोमल बिछौने बिछाकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ शयन करतीथी, उसही सीताने मेरे दोषसे श्रीरामचन्द्रजी करके सहित कुशोंके आसनमें कैसे कष्टसे शयन कराहोगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ धिक्कार है मुझे, जिस मैंने पापोंकी राशिरूप कैकेयीके उदरसे जन्म लिया, और मेरे कारणसे परमेश्वररूप श्रीरामचन्द्रजीको यह क्लेश सहना पडताहै! धिक्कार है मेरे जीवनको ॥ ३१ ॥ अहो! लक्ष्मण धन्य हैं, जो जन्मलेनेका उत्तम फल उनको मिलगया, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी वनमें रहनेलगे तौ वह (लक्ष्मण) भी प्रसन्नचित्तसे नित्य उनकेही पीछे पीछे फिरतेहैं ॥ ३२ ॥ मैं यदि

श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंके दासोंका सेवक होऊँगा, तबही मेरा जन्म सफल होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे भ्रातः! गुह! श्रीरामचन्द्रजी कहाँ रहतेहैं, यह यदि तुम्हें मालूम होय तो मुझसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहु, तो मैं उनको लानेकेलिये शीघ्रही जाऊँ ॥ ३४ ॥ गुहने 'भरतजीका अन्तःकरण निष्कपट है' यह जानकर उनसे प्रेमपूर्वक कहाकि-हे देव! (राजन्!) भरतजी! कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी, और लक्ष्मणजी, तथा सीताजी, इन तीनोकेविषें तुम्हारी इतनी भक्ति है, इसकारण तुम धन्य हो, चित्रकूटपर्वतके समीप जहाँ गङ्गा नदी समीप ही है, तहाँ मुनियोंके आश्रमोंके स्थानमें लघुभ्राता (लक्ष्मणजी) और जानकी इन दोनोंकरके सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी रहते हैं, तहाँ फलमूलोंकी अधिकता होनेसे श्रीरामचन्द्रजी सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ चलिये, तहाँ शीघ्रही चलें, अब तुम्हें गंगा उतरकर परलीपार जाना होयगा, इसप्रकार कहकर यह शीघ्रही जाकर पाँचसौ नौका लेआया, जिनसे कि सम्पूर्ण सेना महानदी गंगाके परलेपर उतर जाय, और भरतजीका अधिक आदर करनेके लिये, राजाओंके बैठनेके योग्य एक उत्तम नौका अपने आप लाया, तदनन्तर गुहने उस नौकापर भरत, शत्रुघ्न, श्रीरामचन्द्रजीकी माता (कौसल्या), और वसिष्ठजी इन सबको बैठाला, और दूसरी सुन्दरसी एक नौका लाकर उसमें कैकेयीको तथा अन्य स्त्रियोंको बैठाला, और सबको गङ्गाके परलेपार लेगया, ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गङ्गाको उतरकर परलीपार जानेके साथ शीघ्रही भरतजी सेनाकरके सहित भरद्वाज मुनिके आश्रमपर्य्यन्त गए, फिर "आश्रममें लोगोंके कारण उपद्रव न होय" इसकारण अपनी प्रचण्ड सेनाको कुछ दूरपै ठहराकर शत्रुघ्नकरके सहित आश्रममें गए ॥ ४१ ॥ तिस आश्रममें अग्निकी समान तेजस्वी भरद्वाज मुनि बैठे हुएथे, उनको देखकर भरतने अत्यन्त भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ उन मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीने यह दशरथके पुत्र हैं, ऐसा पहिंचान कर उनका स्वागत करा, और फिर उनके शरीरको जटा और वल्कल धारण करेहुए देखकर कुशल

क्षेम बूझा और कहने लगे ॥ ४३ ॥ कि हे भरत! राज्यका पालन करना यह तुम्हारा कार्य्य है, इसको छोड़कर आज तुमने यह वल्कल आदि किस कारण धारण करे हैं, और मुनियोंके निवास करनेके वनमें तू किसकारण आया है? ॥ ४४ ॥ यह भरद्वाज मुनिका भाषण सुनतेही भरतजीके नेत्रोंसे आँसुओंका प्रवाह वहने लगा. और बोले कि, हे महाराज! आप सर्वज्ञ हो इसकारण आपको जितनी जो कुछ वार्त्ता है संपूर्ण मालूम है ॥ ४५ ॥ ऐसे प्रभावशाली होकरभी आपने जो कुछ बूझा सो मेरे ऊपर आपका अनुग्रहही है, हे महाराज! कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीको राज्य मिलनेमें जो विघ्न करा है वह अथवा वनवासको वह किसके कहनेसे किसप्रकार गए, इत्यादि मुझे कुछभी मालूम नहीं है, अर्थात् मुझे मालूम होकर यह कुछभी वार्त्ता नहीं हुई है, हे मुनिश्रेष्ठ! इस विषयमें मैं आज आपके दोनो चरणोंकी शपथ करताहूँ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसे कहकर भरतजीने मुनिके चरणोंपर हाथ रक्खा, और अन्तःकरणमें खिन्न होकर फिर कहनेलगे कि-हे महाराज! मेरा मन शुद्ध है, अथवा कलुषित (दुष्ट) है, वह तो आप जानही सक्तेहैं ॥ ४८ ॥ हे स्वामिन्! राजा रामचन्द्रजीके होतेहुए मुझे राज्यका क्या करनाहै? हे मुनिश्रेष्ठ! मैं श्रीरामचन्द्रजीकी सदा सेवा करतारहाहूँ ॥ ४९ ॥ इसकारण हे ऋषिवर्य! मैं श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर उनके चरणोंमें गिरकर और सम्पूर्ण राज्यकाभार समर्पण करके, और यहाँही वसिष्ठ आदिमुनि, नगरके पुरुष, और देशदेशान्तरोंके लोगोंकी सहायतासे उनका अभिषेक करूँगा, फिर उन लक्ष्मीपति प्रभुको अयोध्यापुरीमें लेजाकर मैं उनका दास अति नीचभावसे उनकी सेवा करतारहूँगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यह भरतजीका वचनसुनकर भरद्वाज मुनि आश्चर्य्यमें होगए, और भरतजीको हृदयसे लगाकर, मस्तकको सूंघा, और उनकी परम प्रशंसा करी ॥ ५२ ॥ और कहने लगे कि हे पुत्र! इस भवितव्यवार्त्ताको मैं ज्ञानदृष्टि करके पहिलेहीसे जानताथा, तुम बिलकुल खेद मतकरो, तुम्हारी श्रीरामचन्द्रजीकेविषें लक्ष्मणजीसे भी

अधिक भक्ति है, इस वार्त्ताको मैं पूर्ण रीतिसे जानताहूँ ॥ ५३ ॥ तुम्हारा आचरण परम पवित्र है, हे भरत! मैं सेनासहित तुम्हारा आतिथ्य करनेकी इच्छा करताहूँ, तुम आज सेनाकरके सहित यहाँ भोजन करो, कल श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाओ ॥ ५४ ॥ भरतजी बोले कि-हे महाराज! जैसी आपकी आज्ञा होयगी, वह मुझे शिरोधार्य्य है, तदनन्तर भरद्वाजमुनि जाकर होमशालामें बैठे, और आचमन करके मौन होगए, और मनोरथको पूर्ण करनेवाली कामधेनुका ध्यान करने लगे, वह मुनि अभ्यागतोंकी सम्पूर्ण इच्छा पूर्ण करतेथे, तदनन्तर कामधेनुने जिस तिसकी इच्छाके अनुसार सम्पूर्ण अलौकिक (दुष्प्राप्य-अतिउत्तम) पदार्थ उत्पन्न करे ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ भरतजीकी और उनकी सेनाकी जैसी जैसी इच्छा होती गई, तैसे तैसे सम्पूर्ण पदार्थोंकी कामधेनुने यथेष्ट वर्षा करी, तिससे सम्पूर्ण सेनाके लोग तृप्त-होगए ॥ ५७ ॥ तिन श्रेष्ठ योगिराज भरद्वाज मुनिने आदरपूर्वक आतिथ्य करतेसमय प्रथम शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार वसिष्ठ मुनिका पूजन करा, तदनन्तर सेनासहित भरतजीको तृप्त करा ॥ ५८ ॥ लघुभ्राता (शत्रुघ्न) करके सहित भरतजी तिस स्वर्गतुल्य आश्रमकेविषें एक दिन रहे, और दूसरे दिन प्रातःकालके समय उठकर भरद्वाजमुनिको प्रणाम करके, उनकी आज्ञा मिलनेपर रामचन्द्रके समीप जानेके निमित्त चलदिये ॥ ५९ ॥ जाते जाते चित्रकूटके समीप पहुँचनेपर उन्होंने अपनी सेनाको कुछ दूरपर ठहरादिया, और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंकी इच्छासे अपने आप आगेको चले ॥ ६० ॥ उन परमपराक्रमी भरतजीने शत्रुघ्न, सुमन्त्र, और गुह इनको साथ लेकर तपस्वियोंके सम्पूर्ण आश्रम ढूँढे परन्तु श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम कहीं नहीं मिला, भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीके ढूँढनेके सिवाय और सम्पूर्ण कार्य छोड़दिये ॥ ६१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी कुटी नहीं मिली तब भरतजीने ऋषियोंसे बूझा कि-हे महाराज! सीता और लक्ष्मणजी करके सहित श्रीरामचन्द्रजी कहाँ विराजते हैं? ॥ ६२ ॥ तब ऋषि बोले कि यहाँसे आगे पर्वतके पीछे गङ्गाके उत्तरकी ओरके तटपर

एकान्त स्थलमें श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम है, सम्पूर्ण बन सुन्दर होनेके कारण वह स्थल परम शोभायमान दीखता है ॥ ६३ ॥ वह आश्रम केलके ब-नोंसे घिरा हुआ है, तहाँ फलोंसे लदेहुए आम्र और पनसके वृक्ष बहुत हैं, तथा तहाँ चम्पक, कोविदार, पुन्नाग, यह वृक्ष अनेक हैं ॥ ६४ ॥ इस प्रकार मुनियोंकरके दिखाएहुए आश्रमको भरतजी आगे देख-कर आनन्दपूर्वक सुमन्त्र मन्त्री करके सहित श्रीरामचन्द्रजीके आ-श्रमकी ओरको गए ॥ ६५ ॥ तब छोटे भ्राता शत्रुघ्नकरके सहित भरत-जीको श्रीराचन्द्रजीका सुन्दर और अतितेजयुक्त आश्रम दूरसेही दीखने-लगा, श्रीरामचन्द्रजी तहाँ रहतेथे, इसकारण वह स्थान अत्यन्त रमणीय हो-गयाथा, तहाँ अनेक मुनिमण्डल विराजमान थे, तहाँ वृक्षोंकी शाखाओं-पर अनेक सुन्दर वल्कल वस्त्र और चर्म्म (कृष्णाजीन- मृगछाला) सूख रहेथे ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्या-काण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

तदनन्तर भरतजी आनन्दित हो तिस आश्रमके समीप गए, जानकीजी और श्रीरामचन्द्रजी इन दोनोंजनोंके चरणोंके चिन्ह स्पष्ट लगेहुए मालूम होतेथे, इसकारण वह स्थान परमपवित्र और अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता-था ॥ १ ॥ तहाँ वज्र, अंकुश, कमल, और इनके साथसे विशेष रमणीय मालूम होनेवाले ध्वज-आदिचिन्होंकरके युक्त श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके चिन्ह चारों ओर लगे हुए भरतने देखे उन चरणोंके चिन्होंसे तहाँ की पृथ्वीका अतिसौभाग्य प्रतीत होताथा, तिस रामचन्द्रजीके चरणोंसे चि-न्हित भूमिको देखकर छोटे भ्राताकरके सहित भरतजी उस चरणोंकी धू-लिमें लोटने लगे, ॥ २ ॥ और अपने आपसे कहने लगे कि- अहो ब्रह्म-देवादिदेव, और वेद जिसके चरणोंकी धूलिको पाने लिये नित्य ढूंढतेहैं, तिनही श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके चिन्होंकरके युक्त इस भूमिका मुझे दर्शन हु-आ, इसकारण मैं अत्यन्तही धन्य हूँ ॥ ३ ॥ ऐसा विचार होतेही एकसाथ

विलक्षण प्रेमरस उत्पन्न हुआ, और उसमें भरतजीका अन्तःकरण मग्न होगया, उनकी मनकी वृत्ति उस समय एक श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमेंही लगगई, और आनन्दके आँसुओंके प्रवाहसे उनका वक्षःस्थल भीजगया,ऐसी दशामेंही वह धीरे धीरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमके समीप आए ॥ ४ ॥ तहाँ बैठे हुए रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीको भरतजीने देखा. तिन श्रीरामचन्द्रजीके अङ्गकी कान्ति दूबके पत्तोंकी समान श्यामताको लिये हुएथी, नेत्र विशालथे, उनके मस्तकपर जटाओंका मुकुट विराजमान था और शरीरपर नवीन वल्कलरूपी वस्त्र धारण कररहेथे, उनका मुख प्रसन्न था, और कान्ति बालसूर्य्यकी समानथी ॥ ५ ॥ उस समय तिन श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टि शुभलक्षणोंकरके युक्त जो जानकीजी तिनकेविषें लगरहीथी, और लक्ष्मणजी उनके चरणकमलोंकी सेवा कर रहेथे, यह देखतेही भरतजीके मनमें हर्ष और शोक यह दोनों विकार एकसाथ उत्पन्न हुए; और दौड़के जाकर झट श्रीरामचन्द्रजीके चरण पकड़ लिये ॥६॥ आजानुबाहु श्रीरामचंद्रजीने अपनी भुजाओंसे भरतजीको समीको खैंचकर हृदयसे लगाया, और उनके शरीरपर आनन्दके आँसुओंको प्रवाहसे अभिषेक करनेलगे, तदनन्तर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उनको गोदीमें बैठालकर वारंवार हृदयसे लगाया ॥ ७ ॥ इतनेहीमें जिसप्रकार तृषा (प्यास) से घबडाई हुई गौ जलके निमित्त दौड़कर आवै, तैसे श्रीरामचन्द्रजीकी सब माता श्रीरामचन्द्रजीको देखनेकी इच्छा करके शीघ्रही तहाँ आई ॥ ८ ॥ अपनी माता (कौसल्या) को देखतेही श्रीरामचन्द्रजीने तत्काल उठकर उसके चरणोंमें आनन्दके आँसुओंकरके सहित मस्तक रक्खा, कौसल्याने भी पुत्रको हृदयसे लगाया, पति (राजा दशरथ)का स्मरण होनेके कारण इस समयमें कौसल्याको अत्यन्त दुःख होरहाथा ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कौसल्याकी समान औरभी माताओंको प्रणाम किया, तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीको आतेहुए देखकर श्रीरामचन्द्रजीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया, और आज मैं धन्य हूँ इसप्रकार वारंवार कहा, तद-

नन्तर सबको यथायोग्य आसनपै बैठालकर श्रीरामचन्द्रजी बूझने लगे ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ कि मेरे पिताजी तौ कुशलपूर्वक हैं? उनको बड़ा दुःख हुआ होगा, अब उन्होंने मेरेलिये क्या क्या आज्ञा कह दियाहैं? इसपर वसिष्ठजीने उनको इसप्रकार उत्तर दिया कि हे श्रीरामचन्द्र! तुम्हारे पिताको तुम्हारे वियोगसे महादुःख हुआ, और अन्तमें उन्होने तुम्हाराही चिन्तन तथा हे राम! हेराम! हा सीते! हा लक्ष्मण! इसप्रकार कहकर प्राण त्याग दिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ यह वसिष्ठजीका भाषण, जिसप्रकार कानमें एकप्रकारका शूलरोग पड़े इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कानोंमें पड़ा, और तत्काल हाय! हाय! हाय मरण हो गया! ऐसे कहतेहुए श्रीरामचन्द्रजी भूमिपर गिरपड़े, उनके साथही लक्ष्मणजीकी भी यही दशा हुई ॥ १४ ॥ उनको रुदन करतेहुए देखकर उनके पीछे सम्पूर्ण माता तथा अन्यलोगभी रुदन करने लगे, श्रीरामचन्द्रजी विलाप करने लगे कि-तात! हा दयालो! मुझे छोड़कर आप कहाँ चलेगए ॥ १५ ॥ आप महासमर्थ थे, हा पितः! अब मेरा कोई भी आधार नहीं रहा, अब आगेको मुझे लाड़ कौन करैगा! सीता और लक्ष्मण इनसेभी अधिक विलाप करने लगे ॥ १६ ॥ तब वसिष्ठजीने, पहिले अनेक राजाओंके इसीप्रकार चरित्र, और संसारकी अनित्यता, इत्यादि प्रसंगोंकरके युक्त अपने शान्तभाषणसे उस दुःखको शान्त किया तदनन्तर वह सब जने गंगापै जाकर स्नान करके शुद्ध हुए ॥ १७ ॥ तहाँ तिन सबने, श्रीरामचन्द्रजीके हाथोंसे जल मिलनेकी इच्छा करनेवाले राजा दशरथको जलदान दिया, फिर लक्ष्मणजीकरके सहित श्रीरामचन्द्रजीने पिण्डदान किया ॥ १८ ॥ वह पिण्ड इंगुदी (तापसवृक्ष) की पीठीके बनेहुए और मधु (शहत) से भीजेहुए थे, श्रीशिवजी बोले कि हे पार्वति! इंगुदीके फलोंके पिण्ड करना राजाके अयोग्य न जानना, क्योंकि शास्त्रोंमें इसप्रकार कहा है कि अपने आप जो अन्न भक्षण करै वही अन्न पितरोंको देय, रामचन्द्रजी स्वयं फल भक्षण करतेथे, इसकारण उन्होने पिण्डभी फलोंके ही दिये ॥ १९ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र दुःखके कारण आँसुओंसे भर आए, तद-

न्तर स्नान करके आश्रमको गए, इसीप्रकार और सब मण्डलीभी बहुत देर-पर्य्यन्त शोककरके और स्नानकरके आश्रमको लौट आए ॥ २० ॥ उस दिन सबने उपवास किया, फिर दूसरे दिन श्रीरामचन्द्रजी गंगाके निर्म्मल जलमें स्नान करके बैठे तब भरतजी समीपमें जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि हे आनन्ददायक श्रीरामचन्द्रजी! हे भाग्यशाली पुरुष ! तुम अपना अभिषेक करो ॥ २१ ॥ २२ ॥ और पितृपरम्परा प्राप्त हुए अपने राज्यका पालन करो, तुम बड़े भ्राता हो इसकारण मेरे पिताकी समान हो प्रजाका पालन क-रना यह क्षत्रियोंका धर्म्म है ॥ २३ ॥ प्रथम अनेक प्रकारके यज्ञ करके देव-ताओंकी आराधना करो; वंशकी वृद्धि करनेके निमित्त पुत्रोंको उत्पन्न करो, और पुत्रको राज्यपर बैठाकर फिर वनवासको जाओ ॥ २४ ॥ तुम्हारी इस-समयकी अवस्था वनवासकी नहीं है, मेरे ऊपर कृपा करो, मेरी माताने जो तुझ खोटा कर्म्म (वनवास दिलाना) करा है, उसका आप मनमें स्मरण न करिये, हे श्रीरामचन्द्रजी ! पिताकी समान आप हमारा पालन करिये ॥ २५ ॥ भरतजीने इसप्रकार कहकर भक्तिपूर्वक भ्राताके चरणोंमें मस्तक रक्खा, और साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीके आगे भूमिपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ २६ ॥ भरतजीकी अत्यन्त भक्ति देखकर श्रीरामचंद्रजीके नेत्रोंमेंसे प्रेमके आँसु-ओंका प्रवाह भरआया, और तत्काल भरतजीको उठाकर गोदीमें बैठालिया, और धीरे २ उनसे बातें करने लगे ॥ २७ ॥ हे तात! (भरत) मेरे कह-नेको सुनो तुम कहतेहो सो ठीकही है, परन्तु पिताजीने मुझसे कह दिया है कि चौदह वर्षपर्य्यन्त दण्डकारण्यमें रहकर, फिर नगरमें प्रवेश करना, इस समय यह सम्पूर्ण राज्य मैंने भरतको दिया है, ॥ २८ ॥ २९ ॥ इस का अभिप्राय यह है कि-पिताजीनेही तुम्हें अयोध्याका राज्य दिया है, और मुझे दण्डकारण्यका राज्य दिया है ॥ ३० ॥ इसकारण हम दोनो-कोही यत्नपूर्वक पिताजीके वचनका पालन करना चाहिये, जो पिताके वचनको उल्लंघन करके अपनी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करता है वह जीता-हुआही प्राणहीन पुरुषकी समान होता है, और देहान्त होनेपर उसे नरक-

गति मिलती है, तिसकारण तुम राज्यका पालन करो, और मैं दण्डकारण्य-का पालन करताहूँ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इसपर भरतजी बोले कि-हे राम-चंद्र! हमारे पिता अत्यन्त विषयी थे, इसकारण उनकी बुद्धि मोहको प्राप्त होगई थी, स्त्रियोंने उन्हे अत्यन्त वशमें करलियाथा, मनको भ्रान्ति होनेके कारण वह उन्मत्त होगएथे, जैसे प्रवीण पुरुष उन्मत्त पुरुषोंके कहनेको चित्तपर नहीं लातेहैं, इसीप्रकार पिताजीने जो कुछ कहाथा, उसको तुम सत्य मत मानो ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि-हे भरत! हमारे पिता विषयी अथवा स्त्रियोंके वशीभूत बिलकुल नहीं थे, तथा उन्होने मुझे जो आज्ञा दी वह बुद्धिके मोहित होनेके कारण दी, यह नहीं, किन्तु सत्यवादी होकरही उन्होंने मुझे यह आज्ञा दी है, उन्होंने पूर्वकालमें कैकेयीको वर देनेके वचन दियेथे, वह मिथ्या न हो जायँ, इसकारण भयसे तुम्हे राज्य और मुझे वन-वास दिया ॥ ३४ ॥ सत्पुरुषोंको असत्य बोलनेका नरकसेभी अधिक भय होता है, इसकारण मैं भी पिताजीके कैकेयीको दिये हुए वचनोंको सत्य करूँगा ॥ ३५ ॥ रघुकुलमें जन्म लेकर मैं वचनके भङ्ग करनेमें किसप्रकार प्रवृत्त होसक्ताहूँ, इस श्रीरामचंद्रजीके कहनेको सुनकर भरतजी बोले ॥ ३६ ॥ कि हे सदाचरणतत्पर श्रीरामचन्द्रजी! जिसप्रकार तुम शरीरपर वल्कलोंको धारण करके वनमें निवास करना चाँहते हो, तिसी-प्रकार तुम्हारे बदले मैं चौदह वर्षपर्य्यन्त वनमें रहूँगा, तुम सुखपूर्वक राज्य करो ॥ ३७ ॥ इसपर श्रीरामचन्द्रजी बोले कि-हे भरत! पिताजीने, यह राज्य तुम्हैही दिया है, और वनवास मुझे दियाहै, उसमें यदि मैं व्यत्यय (उलटापलटा) करूँगा तौ पूर्वकी समानही असत्य हो जायगा ॥ ३८ ॥ भरतजी बोले कि-बहुत अच्छा तौ मैं तुम्हारे साथ वनमें जाऊँगा, और लक्ष्मणकी समान तुम्हारी सेवा करता रहूँगा, यदि आप इसकाभी निषेध करोगे तौ प्रायोपवेश (अन्नपान त्यागकर मरणका संकल्प) करके शरी-रका त्याग करदूँगा, यह आप निश्चय जानिये ॥ ३९ ॥ भरतजी इसप्र-कार करेहुए अपने निश्चयको कहकर, और धूपमें कुश बिछाकर, मनसे

भी तैसाही निश्चय करके पूर्वाभिमुख बैठगये ॥ ४० ॥ इसप्रकार भरतजीका आग्रह देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य्य हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने गुरु वसिष्ठजीको नेत्रसे संकेत (इशारा) करा कि-इनको आप समझा दीजिये ॥ ४१ ॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ जो वसिष्ठजी है उन्होंने उस संकेतको जानकर एकान्तमें भरतजीसे कहा कि—हे पुत्र! मैं तुझसे एक सिद्धान्तकी गुप्त वार्त्ता कहता हूं, उसको तुम सुनो ॥ ४२ ॥ हे भरत! यह श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् नारायण हैं, यह ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे रावणका वध करनेके निमित्त दशरथजीके पुत्ररुपसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ४३ ॥ और योगमायाभी " सीता " इस नामकरके जनककी कन्या होकर प्रकट हुई है, शेषजीभी लक्ष्मणका रूप धारणकरके इससमय श्रीरामचंद्रके पीछे पीछे फिरते हैं ॥ ४४ ॥ यह तीनोंजनें रावणका वध करनेकी इच्छासे उधर जायँगे, इसमें कुछ संदेह नहीं है, कैकेयीको वर देना, उसका कठोर भाषण करना, इत्यादि सम्पूर्ण चरित्र देवताओंने करे हैं, नहीं तो वह इस प्रकार कैसे कहती ? इसकारण हे पुत्र! श्रीरामचन्द्रजीको लौटकर लेजानेका आग्रह छोड़दो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ और अपनी बड़ी भारी सेना और भ्राता (शत्रुघ्न)को साथलेकर लौटके नगरको जाओ, श्रीरामचंद्रजी, कुटुम्बसहित रावणका वध करके शीघ्रही लौटकर आवेंगे ॥ ४७ ॥ इसप्रकार गुरु वसिष्ठजीके कथनको सुनकर भरतजीको आश्चर्य्य मालूम पड़ा, विस्मयके कारण उनके नेत्र प्रफुल्लसे दीखने लगे और श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाकर उनसे कहने लगे कि-राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी! अपनी पूज्य पादुका राज्य करनेको दीजिये (अर्थात् तुम्हारी पादुकाओंको राज्यपर स्थापन करूँगा) तुम्हारे लौटकर आनेके समयपर्य्यन्त मैं उनकी सेवा करता रहूँगा, ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर भरतजीने एक दिव्य पादुकाओंका जोड़ा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें पहिनाया, श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रेमभावसे वह पादुका भरतजीको दीं ॥ ५० ॥ भरतजीने वह रत्नजटित पादुका लेलीं, और फिर श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करके वारंवार नम-

स्कार करा, ॥ ५१ ॥ भक्तिके कारण भरतजीका कण्ठ रुकगया और गद्गद वाणी होगई, इस दशामें श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि-हे श्रीरामचन्द्रजी! चौदह वर्ष पूर्ण होतेही पन्द्रहवें वर्षके पहिले दिन यदि तुम लौटकर नहीं आजाओगे तौ मैं बहुतसी अग्नि इकट्ठी करके उसमें भस्म होजाऊँगा, श्रीरामचन्द्रजीने, इस वार्त्ताको स्वीकार करके भरतजीको अयोध्यापुरीको लौटजानेके लिये कहा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ भरतजी परमबुद्धिमान् थे, उन्होने श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार वसिष्ठमुनि, शत्रुघ्न, माता, मन्त्री और सेना इन सबको साथ लेकर चलनेकी तयारी करदी ॥ ५४ ॥ उस समय श्रीरामचंद्रजी इकलेही बैठे थे, ऐसा समय पाकर कैकेयी उनके पास गई, दुःखित होनेके कारण निरंतर आँसुओंकी धारा वहानेसे उसके नेत्र विह्वल हो रहेथे, सो रोती रोती हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि-हे श्रीरामचंद्र! मैंने तुम्हारे राज्य मिलनेमें विघ्न करा, मेरी बुद्धि दुष्ट होगईथी मायाने मेरे अन्तःकरणको मोहित करलियाथा, सो अब आप मेरे इस दुष्कर्म्मको क्षमा करो, क्यों कि-क्षमा करना सत्पुरुषोंका स्वभाव होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तुम साक्षात्परमेश्वर विष्णु भगवान् हो, तुम्हारा स्वरूप अव्यक्त और नित्य है, तुमने मायाकरके मनुष्यरूप धारण करा है, और उस मायासे तुम सम्पूर्ण जगत्को मोहित करते हो, तुम्हारी प्रेरणा होनेसेही पुरुप सत्कर्म्म अथवा दुष्कर्म करनेमें प्रवृत्त होते हैं ॥ ५७ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी अधीन और स्वयं परतन्त्र है, अपने आप क्या कर सके है? जिसप्रकार कठपुतलियें, वाजीगर (नचानेवाले) की इच्छाके अनुसार नृत्य करती हैं; तिसीप्रकार तुम्हारी वशीभूत माया, तुम्हारी प्रेरणा होनेसे तुम्हारी इच्छाके अनुसार अनेक प्रकारके रूप धारण करके नृत्य करती है, तुम्हारे मनमें देवताओंका कार्य्य सिद्ध करनेका था, इसकारण तुमने मुझे प्रेरणा करी, इसकारण मेरे मनमें पाप उत्पन्न हुआ; और मैंने यह अत्यन्त दुष्कर्म करा, हे शत्रुनाशक श्रीरामचंद्र! जिनका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ होता है, तिनही आज तुम्हारा मुझे प्रत्यक्ष दर्शन

होरहाहै, यह मेरा बड़ा भाग्य है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे श्रीरामचंद्र! मेरी रक्षा करो, जगत्के स्वामी तुमही हो, तुम्हारे स्वरूपका, गुणोंका और शक्तिका अंत नहीं है, हे जगत्पते! तुम्हारे अर्थ नमस्कार हैं, मेरी तुमसे इतनी प्रार्थना है कि-तुम अपने ज्ञानरूपी निर्म्मल खड्गसे पुत्र द्रव्य आदिके विषयकी मेरी स्नेहरूपी फासीको काटदो. मैं तुम्हारी शरणागत हूँ, यह कैकेयीका कहना सुनकर श्रीरामचंद्रजी हँसते हँसते उससे बोले ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ कि हे मातः! तेरा अहोभाग्य है, तूने जो मुझसे कहा है सो असत्य नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण सत्य है, मैंने जैसी प्रेरणा करी, वैसेही वाणी तेरे मुखसे निकली ॥ ६३ ॥ यह सब देवताओंका कार्य्य सिद्ध करनेके निमित्त हुआ है, इसमें तेरा दोष नहीं है. अब तू अयोध्यानगरीको जा, और हृदयमें नित्य रात्रिदिन मेरा ध्यान करती रह ॥ ६४ ॥ तब मेरी भक्तिसे तेरा सब विषयका स्नेह दूर हो जायगा; और शीघ्रही तू मुक्त होजायगी, मेरी दृष्टि सर्व समान है, जिसप्रकार मायावी (बाजीगर) को अपने आप उत्पन्न करेहुए मायाके रचित पदार्थोंमें द्वेष अथवा प्रीति नहीं होतीहै, तिसी प्रकार मेरे मनमें किसीसे वैरभाव अथवा प्रेमभाव नहीं है, भक्ति करनेवालेके मैं वशमें रहताहूँ, हे मातः! जिनकी बुद्धिको मेरी मायाने मोहित करलिया है, वह पुरुष मुझको मनुष्योंकी समान ही एक मनुष्य और सुखदुःखके प्रवाहमें पड़ाहुआ समझते हैं, परन्तु वास्तवमें मैं वैसा नहीं हूँ तुझे मेरे विषयका यथार्थ ज्ञान हुआ, वह बड़े आनन्दकी वार्त्ता है, यह ज्ञान संसारबन्धनको नष्ट करता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ घरमेंही तू मुझे स्मरण करती रह, तू कर्म्मोंसे लिप्त नहीं होयगी, श्रीरामचंद्रजीने इसप्रकार कहा तब कैकेयीको आनन्द और आश्चर्य्य दोनों हुए, उसने श्रीरामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा करी, भूमिपर सैंकड़ों नमस्कार करे, और बड़े आनन्दपूर्वक घरको जानेकी तयारी करी, भरतजी, मंत्री, माता और गुरु आदि सब पुरुषोंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकाही ध्यान करते हुए अयोध्याको गए, वह महाबुद्धिमान् भरतजी; नगरके लोगोंको और देशदेशोंसे आए

हुए सम्पूर्ण पुरुषोंको अयोध्याके विषें नीतिकी रीतिके अनुसार स्थापन करके अपने आप नन्दिग्रामको चले गये, तहाँ उन्होंने सिंहासनपर श्रीरामचंद्रजीकी पादुका स्थापन करी, और नित्य भक्तिपूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत आदि सामग्रीसे उनकी पूजा करने लगे; वह भरतजी उन पादुकाओंको श्रीरामचंद्रजीकी समान मानकर प्रतिदिन सम्पूर्ण राजोपचार (छत्र चमर आदि) अर्पण करतेथे; उन्होंने नित्य व्रत धारण करनेका निश्चय कर लियाथा ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ शत्रुघ्नकरके सहित वह भरतजी नित्य फल और मूल भक्षण करके रहने लगे, इन्द्रियोंको वशमें करलिया, जटा और वल्कल धारण करलिये, भूमिपर शयन करा, और ब्रह्मचर्य्यव्रतका पालन करा, उससमय भरतजी पृथ्वीतलपर जितने राजकार्य्य होतेथे वह सम्पूर्ण पादुकाओंको यथावत् निवेदन करतेथे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ साक्षात् ब्रह्मनिष्ठ मुनिकी समान उनका मन श्रीरामचंद्रजीकी ओर सदा लगा रहताथा, रामचंद्रजीके लौटनेकी इच्छा करके वह दिनोको गिनतेही रहतेथे, ॥ ७५ ॥ इधर सीताजी और लक्ष्मणजी करके सहित श्रीरामचंद्रजी मुनियोंके साथ चित्रकूट पर्वतपर जहां पहिले रहतेथे, तहाँही कुछ दिन पर्य्यन्त और रहे ॥ ७६ ॥ फिर सीता और लक्ष्मण करके सहित श्रीरामचंद्रजी चित्रकूटपर हैं, ऐसा सुना तब उनका दर्शन करनेकी उत्कण्ठासे नगरसे लोग तहाँ नित्य आनेलगे, ॥ ७७ ॥ लोगोंके समूह आते हैं ऐसा देखकर, और दण्डकारण्यमें आगेको कार्य्य करनेका विचार करके श्रीरामचंद्रजीने उस पर्वतपर रहना छोड़ दिया ॥ ७८ ॥ श्रीरामचंद्रजी सीताजीको और भ्राता लक्ष्मणजीको साथ लेकर अत्रिऋषिके पवित्र आश्रममें गए, वह आश्रम निवासकरनेमे सदा सुखदायक था, तहाँ नगरके लोगोंकी भीड़ नहीं रहती थी ॥ ७९ ॥ तहाँ अत्रिमुनि विराजमान थे, उनकी कान्तिसे वह तपोवन प्रकाशित होरहाथा, श्रीरामचंद्रजी मुनिके समीप जाकर दण्डवत् प्रणाम कर उनसे बोले कि-हे महाराज! मैं रामचंद्र प्रणाम करताहूँ ॥ ८० ॥ हे मुने! पिताजीकी आज्ञा शिरोधार्य्य मान-

कर मैं दण्डकारण्यमें आया हूँ, वनवासके बहानेसे ही आपका दर्शन हुआ, इसकारण मैं धन्य हूँ ॥ ८१ ॥ अत्रिमुनिने श्रीरामचन्द्र जीका भाषण सुनकर "और श्रीरामचंद्रजी प्रत्यक्ष परमात्मा रूप हैं" ऐसा जानकर भक्तिसे विधिपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ८२ ॥ और वनमेंके फल अर्पण करके आतिथ्य करा, तदनन्तर श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मण यह तीनो जने स्वस्थ होकर बैठे तब अत्रिमुनि अन्तःकरणमें संतुष्ट होकर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ८३ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी! मेरी अत्यंत वृद्ध स्त्री अनसूया भीतर बैठी है, बहुत दिनोंपर्य्यंत तप करनेके कारण उसकी कीर्त्ति सब जगत्में प्रसिद्ध है ही, धर्म्मका तत्त्व जाननेके कारण उसको धर्म्माचरण अत्यन्त प्रिय है, हे शत्रुनाशक सीताजी उसका दर्शन करें कम-लनयन श्रीरामचंद्रजीने " बहुत अच्छा" कहकर सीताजीसे कहा ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ कि हे शुभलक्षणे जानकि! जाओ अनसूया देवीको प्रणाम करके फिर शीघ्रही लौटकर आओ, सीताजीने " बहुत अच्छा " कहकर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करा, अर्थात् भीतर जाकर अनसूयाको प्रणाम करा ॥ ८६ ॥ सीता आगे खड़ी हुई प्रणाम करती है ऐसा देखकर अनसूयाके मनको आनन्द हुआ, उसने सीताजीको हे पुत्रि सीते! ऐसे कोमल वचनोंसे बुलाकर गोदीमें बैठाला, ॥ ८७ ॥ और विश्वकर्म्माके बनाएहुए दो दिव्य कुण्डल, तथा दो स्वच्छ दुपट्टे दिये उसके मनमें सीताके विषयकी परम भक्ति थी ॥ ८८ ॥ अनसूयाका मुख नित्य प्रसन्न रहताथा, उसने सीताके देहपर दिव्य अंगराग (उबटना) लगाया, और बोली कि-हे कमलवदने जानकि! मैंने जो यह उबटना तेरे अंगको लगाया है, इसमें ऐसा गुण है कि-यह तेरी स्वाभाविक शोभाको कभीभी कम नहीं होने देयगी ॥ ८९ ॥ हे जानकी! पातिव्रत्य-का आदर करके तू नित्य श्रीरामचंद्रजीके पीछे पीछे जाओ, श्रीरामचं-द्रजी तेरे साथ फिर कुशलपूर्वक स्थानको जायँ ॥ ९० ॥ फिर अत्रिमुनिने न्यायानुसार सीतासहित श्रीरामचंद्रजीको और लक्ष्मणजीको भोजन करा-

था, और हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ९१ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी! तुमही भुवनोंको उत्पन्न करके उनकी रक्षा करनेके निमित्त देव मनुष्य-और मत्स्य-कुर्म्मआदि तिर्य्यक्योनिमें अवतार धारण करतेहो, देहके गुणोंसे तुम किञ्चिन्मात्रभी लिप्त नहीं होतेहो, सबको मोहित करनेवाली माया तुमसे डरती रहती है ॥ ९२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौडवंशावतंसश्रीयुतभोलानाथसूनु पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

इति अयोध्याकाण्ड समाप्त

इति अयोध्याकाण्ड समाप्त

श्रीः।

अध्यात्मरामायणभाषा।

अरण्यकाण्ड।

श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मणाविरचित

जिसमें

विराधशापोद्धार, शूर्पणखाविरूपकरण, खरदूषणादिचतुर्दशसहस्रराक्षसमारण, सीताहरण इत्यादि कथा सविस्तर लिखी है.

वही

रामकथाभिलाषियोंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजी

इन्होंने

"गूजराती प्रिंटिंग" प्रेसमें छपवायकर प्रसिद्ध किया.

संवत् १९५२ शके १८१८

॥ अरण्यकाण्ड ॥ ३ ॥

दोहा—हनि विराध बन शुचिकरण, शूर्पणखाअँगभङ्ग ॥
दलि खरादिदल सियहरण, काण्ड अरण्यप्रसङ्ग ॥ १ ॥

दोहा—श्रीरामायण कल्पतरु, काण्ड अरण्य प्रकाण्ड ॥
जो आरोहण करत सो, लहै फल भक्ति प्रकाण्ड ॥ २ ॥

दोहा—यामें अतिपावन अहै, हरगौरीसम्वाद ॥
सुनत गुनत बाँचत लहै, हरिजन हरिप्रसाद ॥ ३ ॥

दोहा—यामें भाषा सुरस अति, रामकथा अभिराम ॥
ताहीते हरिजननको, याहीमें आराम ॥ ४ ॥

अरण्यकाण्डम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

महादेवजी बोले कि हे पार्वति! श्रीरामचंद्रजी वहाँ एक दिन रहे, और दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानकरके मुनिकी आज्ञा लेकर आगे जानेको तयार हुए ॥ १ ॥ चलते समय श्रीरामचंद्रजी मुनिसे बोले कि हे मुने! दण्डकारण्यमें अनेक मुनियोंके मण्डल निवास करते हैं, इसकारण तिस स्थानकी अत्यन्तही शोभा होरही है, ऐसा सुनकर मुझे तहाँ जानेकी इच्छा होती है, सो आप आज्ञा दीजिये? ॥ २ ॥ और हमें मार्ग बतानेके लिये अपने शिष्योंको आज्ञा दीजिये? वह परम प्रसिद्ध अत्रिमुनि श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार भाषणको सुनकर हँसने लगे, और श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हे आनन्ददायक श्रीरामचन्द्र! देवताओंको भी तुम्हाराही आश्रय है, तुम सम्पूर्ण जगत्को मार्ग दिखानेवाले हो, तुम्हे मार्ग दिखानेवाला संसारमें कौन है? तथापि तुमने लोकाचारके अनुसार बूझा है, इस कारण यह शिष्य तुम्हे मार्ग दिखा देंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसप्रकार शिष्योंको आज्ञा देकर अत्रिमुनि अपने आपभी थोड़ी दूरतक उनको पहुँचानेको गए ॥ ५ ॥ फिर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी कोसभर पहुँचे तब मार्गमें एक बड़ी नदी दीखी, तब अत्रिमुनिके शिष्योंसे श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार कहने लगे कि ॥ ६ ॥ क्योंजी? नदी उतरनेका कोई उपाय है या नही? वह कहने लगे कि- हे श्रीरामचंद्रजी यहीं एक बड़ी मजबूत नौका है, ॥ ७ ॥ हमही क्षणमात्रमें तुम्हे परलीपार उतारदेंगे, तदनन्तर मुनिकुमारोंने सीताजी-श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी इन तीनोंको नौकामें बैठाकर थोड़ेसमयमेंही नदीके परलेपार उतारदिया और श्रीरामचंद्रजीने आनन्दपूर्वक लौट जानेकी आज्ञादी तब वह सर्व मुनिकुमार

लौटकर अत्रिमुनिके आश्रमको गए॥ ८ ॥ ९ ॥ श्रीरामलक्ष्मण आगे चले तौ उनको एक भयानक बन मिला, तहाँ झींगरका झिंगारशब्द निरन्तर होरहाथा, अनेक प्रकारके जंगली पशुओंके समूह इधर उधर फिर रहेथे, सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंके कारण वह स्थान भयंकर होरहाथा ॥ १० ॥ कराल विकराल स्वरूपके राक्षस तहाँ बड़े प्रेमसे रहते थे, तहाँ जातेके साथही मनुष्योंके शरीरपर भयके कारण रोमाञ्च खड़े होजातेथे, ऐसे उस भयानक बनमें प्रवेश करके श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ कि हे लक्ष्मण! यहाँसे अब तुम बड़ी सावधानीसे बिलकुल मेरे साथ साथ चलो, ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजीने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाली, हाथमें बाण लेलिये, और लक्ष्मणजीसे यह कहतेहुए आगेको चले ॥ १२ ॥ कि हे लक्ष्मण! मैं आगे चलताहूँ, तुम हाथमें धनुष लेकर पीछे पीछे चलो, और जिसप्रकार जीव और ईश्वरके मध्यमें माया हो इसप्रकार सीता हम दोनोंके बीचमें चले ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण! चारों ओरको दृष्टि डालकर देखो, तुम शत्रुओंका वध करनेके कार्य्यमें प्रवीण हो, दण्डकारण्यमें राक्षसोंका बड़ा भारी भय है; यह तुमने अपने कानोंसे सुनाही है, आज अपशकुन होते हैं, इसकारण तिस प्रकारका कोई कष्ट आनकर पड़ैगा, ऐसा मालूम होता है ॥ १४ ॥ ऐसे वार्त्ता करते करते वह डेढ़ योजन (छः कोश) मार्ग चले गए; तहाँ उन्होंने एक सरोवर देखा, उसमें कल्हार कुमुद कमल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प और शीतल जलकी अत्यन्त अधिकताथी, इसकारण वह सरोवर शोभायमान दीखताथा, वह तीनोंजने उस सरोवरके समीप गए, और उसके उत्तम जलका पान करके जलके समीप थोड़ीही दूरपर एक वृक्षकी छायामें क्षणमात्र विश्राम लेनेके निमित्त बैठे, इतनेहीमें एक भयङ्कर बड़ाभारी लम्बा चौड़ा प्राणी अपने ऊपरको चला आवै है, ऐसा उन्होंने देखा ॥ १५ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ उसके मुखमें लम्बी लम्बी दाढ़ें थीं, और वह अपनी महागर्जना करके प्राणियोंको भय दिखाताथा, वह अपने बाएँ कन्धेपर भाला

रक्खा हुआथा, उसमें अनेक मनुष्य लटका लिए थे ॥ १८ ॥ वनमें जो कोई जीव मिलताथा, वह हस्ती हो, व्याघ्र हो,अथवा भैंसा हो,उसको भक्षण कर लेताथा, श्रीरामचंद्रजीने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा पहिलेही चढ़ा रक्खीथी, उस धनुपको हाथमें लेकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १९ ॥ कि हे भ्रातः! देखो, यह बड़े भारी शरीरवाला राक्षस समीप आगया यह हमारे सामने इधरहीको चलाआता है, इसको देखकर डरपोकोंको बड़ा भय लगताहोगा, ॥ २० ॥ तुम धनुषको तयार करके खड़ेरहो, हे जानकि! तुम भयभीत मत होना, इसप्रकार कहकर और बाण हाथमें लेकर श्रीरामचंद्रजी पर्वतकी समान निश्चल खड़े होगए ॥ २१ ॥ उस समय वह राक्षस तौ श्रीरामचंद्रजीको, और लक्ष्मणजीको, तथा जानकी-जीको देखकर बड़ी जोरसे हँसनेलगा, और उनको डरताहुआ इसप्रकार बोला ॥ २२ ॥ कि अरे तुम दोनो जने कौन हो? तुम्हारे शरीरपर बाण, तरकस, जटा, और वल्कल दीखतेहैं, तुमने बालक होकर मुनियोंका वेष धारण करा है, तुम्हारे साथ एक स्त्री है, आकृतिसे तौ तुम बड़े उन्मत्त मालूम होतेहो, ॥ २३ ॥ देखनेमें बड़े सुन्दर हो, और मुझे तुम मेरे मु-खमें अपने आप आकर पड़नेवाले ग्रासकी समान मालूम होतेहो, अरे! इस घोर वनमें सिंहादि हिंसक पशु रहतेहैं, तुम यहाँ किसकारण आए हो? २४ इसप्रकार राक्षसके कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हँसतेहुए उस राक्षससे कहने लगे कि, अरे! मैं रामचन्द्र हूँ, और यह मेरे प्रिय भ्राता लक्ष्मण है, तथा यह मेरी प्राणप्रिया सीता है, हम पिताकी आज्ञाको मान-कर तुझसरीखे दुष्टोंको शिक्षा देनेके निमित्त यहाँ आए हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीका भाषण सुनतेके साथही वह राक्षस बड़े वेगसे खीखीकरके हँसनेलगा, और मुख फैलाकर तथा जल्दीसे हाथमें शूल लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि ॥ २७ ॥ अरे रामचंद्र! मैं संपूर्ण जगत्में प्रसिद्ध विराधनामवाला राक्षस हूँ, और तू मुझे नहीं जानता है, अरे मेरे भयसे तौ सम्पूर्ण मुनि वनको छोड़कर यहाँसे चले

गए ॥ २८ ॥ अब तुम्हे यदि जीवित रहनेकी इच्छा होय तो शस्त्रोंको डालकर, और सीताको छोड़कर भागजाओ, नहीं तो मैं तुम दोनोंको अभी भक्षण कर लेताहूँ ॥ २९ ॥ कहकर वह राक्षस सीताजीको पकड़नेके लिये उनके ऊपरको दौड़ा, तब श्रीरामचंद्रजीने हँसते हँसते दोनो भुजा काटडाली ॥ ३० ॥ तबतौ उसके चित्तमें बडा क्रोध भरगया, और वह अपने विकराल मुखको फैलाकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपरको चला; 'विराध दौडकर आताहै' ऐसा देखकर श्रीरामचन्द्रजीने दौडतेही दौडतेमें उसके दोनो पैर काटडाले, यह एक आश्चर्य्यसा होगया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वह राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको ग्रसतेके लिये सर्पकी समान सरकता सरकता आनेलगा, तब श्रीरामचन्द्रजीनें अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसका प्रचण्ड मस्तक काटडाला, वह मस्तक रुधिरकी धारासहित पृथ्वीपर गिरपडा, तब सीताने श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा करी; ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससमय स्वर्गमें देवताओंकी स्त्रियोंनें दुन्दुभी बजाई, अप्सरा आनन्दमें होकर नृत्य करने लगीं, और गन्धर्व तथा किन्नर गान करनेलगे ॥ ३५ ॥ विराधके शरीरमेंसे एक अत्यंत स्वरूपवान् तेजस्वी पुरुष निकला, वह निर्म्मल वस्त्र धारण करेहुए था, तपाएहुए सुवर्णकी समान चमकतेहुए उत्तम आभूषण धारण करेहुएथा जिसप्रकार आकाशमें सूर्य्य दीखता है, इसप्रकार वह पुरुष श्रीरामचंद्रजीके आगे दीखने लगा ॥ ३६ ॥ उसने भक्तों के दुःखोंको दूर करनेवाले श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करा,-श्रीमहादेवजी कहनेलगे कि-हे पार्वति! श्रीरामचंद्रजी संसारप्रवाहका नाश करनेवाले हैं दयाके एकमात्र उत्पत्तिस्थान वह प्रभु स्वयं शरण आएहुए जनके संकटोंको दूर करते हैं, उनका दर्शन होतेही उस पुरुषका मन प्रसन्न होगया, और उसने श्रीरामचन्द्रजीको वारंवार साष्टाङ्ग प्रणाम करा ॥ ३७ ॥ और वह विराध कहने लगाकि हे श्रीरामचन्द्रजी! हे कमलपत्रविशालनेत्र! तुम्हारे सन्मुख खड़ाहुआ शुद्धतेजस्वी पुरुष मैं विद्याधर हूँ, विना कारणही क्रोध करनेवाले साक्षात् कोपमूर्त्ति दुर्वासाऋषिने पूर्वकालमें मुझे शाप दियाथा.

तुमने आज उस शापसे मुझे छुटाया ॥ ३८ ॥ अबसे आगेको संसारबन्धनके दूर होनेके निमित्त तुम्हारे चरण कमलोंका नित्य स्मरण रहै, मेरी वाणी तुह्मारे नामोंका कीर्त्तन ही करती रहै, कानोंसे तुम्हारे कीर्त्तनरूपी अमृतका पान करतारहूं, मेरे दोनों हाथ तुम्हारे चरणकमलोंका पूजन करते रहैं, मेरा शिर आपके दोनो चरणकमलोंको प्रणाम करतारहै, इसप्रकार मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियें तुम्हारी सेवा करनेमें तत्पर रहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी ! शुद्ध अपरोक्ष ज्ञानही तुम्हारी मूर्ति है, तुम नित्य आत्मस्वरूपमें रमण करते रहते हो, और भक्तजनोंके आनन्द-दायक हो, तथा जैसी इच्छा होय वैसाही चरित्र करनेमें समर्थ हो, हे श्री-रामचन्द्रजी! सीतासहित तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ४१ ॥ हे श्री-रामचंद्रजी! मैं तुम्हारी शरण आयाहूँ, मेरी रक्षा करो आप आज्ञा दें कि मैं देवलोकको जाऊँ, हे रघुवीर ! तुम्हारी माया मुझे मोहित नहीं करै, इत-नी कृपा करनेके लिये आपसे मेरी प्रार्थना है ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे उस पुरुषने प्रार्थना करी, तब श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए, उस समय तिन परमउदार परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजीने सन्तुष्ट होकर विराधको वरदान दिया, और कहा ॥ ४३ ॥ कि हे विद्याधर जाओ, संसारमें अज्ञानके दोषोंसे जो परिणाम देखनेमें आते हैं, वह तैंने मेरे दर्शनसे जीतलिये, इसकारण अब तू ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ होकर मुक्त होजायगा ॥ ४४ ॥ संसारमें मेरी भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, वह भक्ति उत्पन्न हुई कि मुक्ति होही जाती है, इसकारण तेरी जो मेरेविषें भक्ति हुई है, तिससे मेरी आज्ञा है तुझे मुक्ति प्राप्त होयगी ॥ ४५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने महाभयंकर राक्षसका वध करा, उसके शापसे छुटाकर वरदान दिया, अन्तमें उस राक्षसको फिर विद्याधर-योनि मिली, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंको जो वर्णन करैगा, वह पुरुष सम्पूर्ण पदार्थोंको प्राप्त होयगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपकृतभाषा-टीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्गः २

विराधके स्वर्गको चलेजानेके अनन्तर लक्ष्मणजी और सीताजी इन दोनोंको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी शरभंगके वनमें गए, वह स्थान सम्पूर्ण प्राणियोंको सुखदायक था, ॥ १ ॥ उस समय परम बुद्धिमान शरभंग ऋषि, 'लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजी सीताको साथ लेकर आए हैं' ऐसा देखकर जल्दीसे उठकर खड़े हुए ॥२॥ और सन्मुख जाकर तीनोंको बहुत सन्मानपूर्वक आश्रममें लाए, और आसनपै बैठाकर कन्द-मूल-फल आदिसे उनका आतिथ्य सत्कार करा ॥ ३ ॥ फिर शरभङ्गऋषि आनन्दपूर्वक तिन भक्तपरायण श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—कि हे श्रीरामचंद्रजी! मैं तप करनेका निश्चय करके बहुत दिनोंसे यहाँही निवास कर रहाहूँ ॥ ४ ॥ मेरी अत्यन्तही इच्छा थी कि आपका दर्शन होय, सो आज मेरी इच्छा पूर्ण होगई. हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम प्रत्यक्ष परमेश्वर हो, आज मेरा तप करना सफल हुआ, मैंने तप करके जो कुछ पुण्य संपादन करे हैं, वह सब मैं आज आपको समर्पण करताहूँ, और फिर मोक्षको प्राप्त होताहूँ॥ ५॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि-हे पार्वति! शरभंगमुनि पूर्णयोगी और विरक्त थे, उन्होंने अपना अपार पुण्यफल श्रीरामचंद्रजीको समर्पण करदिया, और जिनके स्वरूप का प्रमाण नहीं ऐसे सीतासहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करा, और तत्काल चितापर चढ़गए ॥६॥ इस समयमें वह निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान कररहेथे, श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं, उनका शरीर दूबके पत्तोंकी समान श्यामवर्ण और नेत्र कमलकी समान थे, वल्कलरूपी वस्त्रोंको धारण करेहुए थे, मस्तकपर तेजस्वी मुकुट विराजमान था, और सीता तथा लक्ष्मणजी यह दोनों उनके साथ थे॥ ७॥ देह त्याग करते हुए शरभङ्गऋषिने स्तुति करके श्रीरामचन्द्रजीसे प्रार्थना करी कि- "जगत्में श्रीरामचन्द्रजीकी समान दूसरा दयालु पुरुष क्या कोई और देखनेमें आता है? अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीकी समान दया करनेवाला कोई दूसरा नहीं है, जो स्मरण करतेही कामधेनुकी समान वाञ्छित पदार्थोंको देते हैं,

मैं सदा अनन्यभावसे उनका चिन्तन करता चला आया हूँ, उस स्मरणको जानकर तिन प्रभुने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है, ॥ ८ ॥ देवाधिदेव, दशरथ-कुमार प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अब यहां देखते रहैं, मैं अपने आपही देहको भस्म करके निष्पाप होकर ब्रह्मलोकको जाताहूँ ॥ ९ ॥ मेघपर विजुच्छ-टाकी समान जिनके वामांगमें सीता बैठी हुई हैं, वह अयोध्यापति रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी सदा सर्वकाल मेरे हृदयमें रहैं ॥ १० ॥ शरभंग मुनिने इस प्रकार कहकर बहुत कालपर्य्यन्त श्रीरामचंद्रका ध्यान करा, फिर आगे खड़ी हुई मूर्त्तिका दर्शन करा, अग्निको जलाया और तत्काल अपने पञ्चभूतात्मक शरीरको भस्म करडाला ॥ ११ ॥ तब वह दिव्यदेहधारी होकर साक्षात् लोकरक्षक प्रभु श्रीरामचन्द्रके पदको प्राप्त हुआ, फिर दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले सम्पूर्ण मुनिजन श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कर-नेके निमित्त तिन शरभङ्गऋषिके आश्रममें आपहुंचे ॥ १२ ॥ जानकी-जी श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी इन्होंने मायाकरके मनुष्यका रूप धारण कराथा, तिसकारण उस मुनिसमूहके दर्शन करके तत्काल भूमिपर प्रणाम किया ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं, उन्होंने भक्तोंका दुःख दूर करनेके निमित्त उस समय धनुषबाण हाथमें लियाथा, मुनियोंने उनको आशीर्वाद देकर गौरव किया, और हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! ब्रह्माजीने भूमिका भार दूर करनेके निमित्त प्रार्थना करी,इसकारण तुमने यहाँ अवतार लिया है,हम जानते हैं कि तुम प्रत्यक्ष विष्णु भगवान्, जानकीजी लक्ष्मी और लक्ष्मणजी शेषजीका अंश, तथा भरत और शत्रुघ्न दोनो शंख चक्रका अवतार हैं, सो अब अवश्यही तुम ऋषियोंको दुःखसे छुटाओगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! लक्ष्मणजी और सीताजीको लेकर हमारे साथ चलिये, मुनि जहाँ जहाँ निवास करते हैं, उन संपूर्ण आश्रमोंको आप क्रमसे देखते जाओ, तिस देखनेसे आपकी हमारे ऊपर दया बढ़ैगी, ॥ १७ ॥ इसप्र-कार ऋषियोंने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी प्रार्थना करी, तब वह सर्व

व्यापी ईश्वर श्रीरामचंद्रजी मुनियोंका वन देखनेके निमित्त ऋपियोंके साथ गए ॥ १८ ॥ तहाँ चारों ओर पड़े हुए अनेक मस्तकोंके हाड़ श्रीरामचंद्रजीने देखे, तब उन्होने ऋषियोंसे बूझा ॥ १९ ॥ कि हे मुनियो! यह हाड़ किनके हैं और यहाँ क्यों पड़े हैं। मुनि बोले कि-हे श्रीरामचन्द्रजी! यह ऋषियोंके मस्तक हैं, ॥ २० ॥ हे ईश्वर! नृशंस राक्षसोंके समूहके समूह समाधिको त्यागनेके समय ऋषियोंके तपमें विघ्न करते फिरते हैं, अब आप इस विपत्तिसे हमारी रक्षा करिये ॥ २१ ॥ भय और दीनतायुक्त वह मुनियोंका भाषण सुनतेही श्रीरामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा करी ॥ २२ ॥ तदनन्तर सीता और लक्ष्मणजी करके सहित श्रीरामचंद्रजी कुछ वर्षपर्यन्त रहे, वनके निवास करनेवाले मुनि नित्य उनका पूजन करतेथे, प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने क्रम क्रमसे तहाँ सम्पूर्ण ऋषियोंके आश्रम देखे ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनन्तर सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमको गये ऋषिके उस प्रसिद्ध आश्रममें ऋषियोंका बडा समूह रहताथा, तहाँ सम्पूर्ण ऋतुओंके फल पुष्प आदि सदा रहतेथे इसकारण प्राणियोंको तहाँ सदा सुख प्राप्त होताथा ॥ २५ ॥ 'श्रीरामचन्द्रजी आये हैं' ऐसा सुनतेही सुतीक्ष्ण मुनि अपने आप आए, यह मुनि अगस्त्य ऋपिके शिष्य थे, और रामचन्द्रकी उपासना करनेमें सदा लगे रहतेथे, उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीका विधिपूर्वक पूजन करा, भक्तिके कारण उनके नेत्र इतने उत्कंठित होरहे थे कि रामचन्द्रकी ओरको कितनीही देर देखा परन्तु तृप्ति न हुई ॥ २६ ॥ सुतीक्ष्ण मुनि श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि हे सीतापते! तुम्हारे गुणोंका अन्त नहीं है; तुम्हारे स्वरूपकी देशकरके अथवा काल करके मर्य्यादा नहीं है अर्थात् तुम्हारा स्वरूप अमुक देशमें अथवा अमुक कालपर्य्यन्त रहता है यह कहना नहीं बनसक्ता किन्तु सर्वव्यापी और नित्य है, महादेव और ब्रह्माजी तुम्हारे चरणोंका आश्रय लेते हैं, तुम्हारे चरणही संसाररूपी समुद्रको तरनेके निमित्त उत्तम नौकारूप हैं, तुम भक्त जनोंको सर्वोपरि आनन्द देतेहो, हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुम्हारे नाम मात्रका

जप करता रहता हूँ, और अब आगेको भी नियमसे तुम्हारे भक्तोंका दास होकर रहूंगा ॥ २७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! मैं तुम्हारी माया करके पुत्र, स्त्री, गृहरूप अज्ञानमय कूपमें डूब रहा हूँ; यह शरीर केवल मलका एक पिण्ड है; परन्तु इसकी मोहरूपी फांसीसे मेरा मन अत्यन्त बंध रहा है; हे देव! तुम्हारे स्वरूपका ज्ञान अथवा दर्शन सम्पूर्ण संसारमें किसीको भी नहीं होता है परन्तु वही तुम मेरी दशाको देखकर अपने आप मेरे समीप आये इस कारण मैं धन्य हूँ ॥ २८ ॥ तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हो; परन्तु जो मनुष्य तुम्हारे मंत्रका जप करनेसे विमुख होते हैं; उनके ऊपर तुम मायाका जाल फैलाते हो और जो तुम्हारे मंत्रका साधन करनेमें तत्पर रहते हैं उनके पाससे माया दूर रहती है जिसप्रकार राजा अपने सेवकोंको उनके कार्यके अनुसार न्यूनाधिक वेतन (तनख्वाह) देता है तिसीप्रकार तुम भी अपने भक्तोंको सेवाके अनुसार फल देते हो ॥ २९ ॥ जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलय होनेका कारण एक तुमही हो, हे ईश्वर! तुमही अपनी त्रिगुणात्मक मायाकरके ब्रह्मा, शिव और विष्णु इन रूपोंसे प्रतीत होते हो, जिसप्रकार सूर्यमण्डल वास्तवमें एकही होकर भी अनेक जलके पात्रोंमें प्रतिबिम्बित होनेसे अनेक रूपका दीखता है इसीप्रकार तुम्हारी माया करके जिनकी बुद्धि मोहित होरही है उनको तुम्हारा रूप भिन्न २ प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम शुद्ध सत्वगुण प्रधान चित्तके विषें निवास करते हो; आज मुझे तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन हुआ इस कारण मैं धन्य हूँ, अविचारी पुरुषोंको तुम्हारा स्वरूप प्रतीत नहीं होता है; परन्तु जिनके अन्तःकरण तुम्हारे मंत्रका जप करनेसे पवित्र होरहे हैं जिनसे तुम सदा प्रसन्न रहते हो उनको नित्य दर्शन देते हो ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! वास्तवमें तौ तुम्हारा रूप नहीं है परन्तु मायाकरके व्यवहार करनेके निमित्त तुमने जो यह रूप धारण करा है तिसका मुझे दर्शन मिला यह स्वरूप करोड़ों कामदेवकी अपेक्षासे सुन्दर है, और हाथोंमें सुन्दर धनुष

वाण होनेपरभी अन्तःकरण दयाकरके आर्द्र होरहा है, इस मूर्तिका मुख हास्य करके शोभायमान दीखता है ॥ ३२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! सीताजीकरके सहित तुम इस समय शरीरपर कृष्णमृगके चर्म्मरूप वस्त्रोंको धारण कर रहेहो, तुम किसीसे भयभीत नहीं होते है, लक्ष्मणजी सदा तुम्हारे चरणकमलोंकी सेवा करते हैं तुम्हारे शरीरकी कान्ति नीलकमलकी समान है, तुम्हारे गुण अनन्त हैं, तुम अत्यन्त गम्भीर हो मेरे भाग्यसेही यह तुमने अवतार धारण करा है, हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम्हारे अर्थ मैं वारंवार प्रणाम करताहूँ ॥ ३३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी देशकालआदि उपाधियोंकरके रहित और पूर्ण ज्ञान ज्योतिस्वरूप तुम्हारे स्वरूपको जो जानते हैं वह जानै, परन्तु मेरी तो ऐसी इच्छा है कि आज प्रत्यक्ष आगे जो यह स्वरूप दीख रहा है यहही निरन्तर मेरे हृदयमें रहै इसके सिवाय मुझे दूसरी कोई इच्छा नहीं है ॥ ३४ ॥ सुतीक्ष्ण मुनिके इसप्रकार स्तुति करनेपर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कराकर कहने लगे कि हे मुने ! तुम्हारा अन्तःकरण मेरी उपासना करनेसे निर्मल होगयाहै यह मैं जानताहूँ ॥ ३५ ॥ और इसकारणही मैं तुमसे मिलनेको आया हूँ, मेरी भक्तिके सिवाय दूसरा कोई संसारसमुद्रको तरनेका उपाय नहीं है, जगत्में जो पुरुष मेरी उपासना करते हैं और सम्पूर्ण इच्छाओंका त्याग करके एक मेरेही शरणागत होते हैं उनको प्रतिदिन मेरा दर्शन होता है, तुम्हारी करी हुई यह स्तुति मुझे प्रिय है, जो पुरुष नित्य इस स्तोत्रका पाठ करैंगे उनकी मेरेविषें भक्ति होयगी और उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त होयगा तुम मेरी उपासना करनेसे इस समयही सम्पूर्ण क्रियाओंसे मुक्त हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ तुमको देहान्त समयमें मेरे स्वरूपकेविषें सायुज्यकी प्राप्ति होयगी यह वार्ता निःसन्देह है, हे सुतीक्ष्ण मुने! मेरी ऐसी इच्छा है कि तुम्हारे गुरु मुनिवर अगस्त्यजीका दर्शन करूँ, मेरे चित्तमें कुछ काल तहाँ निवास करनेकी इच्छा है; इसकारण शीघ्रता करताहूँ ॥ ३९ ॥ सुतीक्ष्ण मुनि भी कहने लगे कि हे श्रीरामचन्द्रजी! अच्छा कल आप तहाँ

जाँय महामुनि अगस्त्यजीके दर्शन करेहुए बहुत दिन होगये इसकारण मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा ॥ ४० ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीका अन्तःकरण अगस्त्यमुनिसे वार्ता करनेके अर्थ अत्यन्त उत्कण्ठित होरहाथा, सो फिर दूसरे दिन प्रातःकालही सुतीक्ष्णमुनि सीता और लक्ष्मणजी इन सबको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी चलदिये और जहां अगस्त्यमुनिके लघुभ्राता निवास करतेथे तिस आश्रममें जा पहुँचे ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसँव्वादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः॥ २॥

तृतीय सर्गः ३

श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वती! सुतीक्ष्ण मुनि जानकी और लक्ष्मणजी इनकरके सहित श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्यमुनिके भ्राताके आश्रममें मध्याह्न कालमें जाकर पहुंचे ॥ १ ॥ उन मुनिने श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करा और श्रीरामचन्द्रजीने भी तहां उस दिन उत्तम उत्तम फल मूल आदि भक्षण करे, दूसरे दिन प्रातःकालके समय उठकर सबजने अगस्त्यमुनिके आश्रमको आये ॥ २ ॥ तहां सम्पूर्ण ऋतुओंके फल और पुष्प वृक्षोंपर लगरहेथे, नानाप्रकारके पशुओंके समूह विचर रहेथे, और अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूह मधुर मधुर शब्दकर रहेथे, मानो वह आश्रमका वन्ध इन्द्रके नन्दनवनकी बराबरी कररहाथा ॥ ३ ॥ तहां अनेक ब्रह्मर्षि और देवर्षि रहतेथे मध्यमध्यमें ऋषियोंके आश्रम होनेके कारण वह प्रदेश चारोंओरसे शोभायमान दीखता था देखनेवालेको ऐसा प्रतीत होताथा कि यह दूसरा ब्रह्मलोकही है ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी आश्रमके बाहरही खड़े होकर सुतीक्ष्ण मुनिसे कहने लगे कि हे सुतीक्ष्ण मुने! तुम शीघ्रही जाओ और मुनिवर अगस्त्यजीसे कहो कि लक्ष्मण और सीतासहित रामचन्द्र आये हैं॥ ५॥ इस प्रकारकी आज्ञा करना मेरे ऊपर बड़ाही अनुग्रह है, ऐसा कहकर सुतीक्ष्ण मुनि शीघ्रही गुरुके आश्रममें गए, तहाँ चारों ओर ऋषियोंके समूह बैठे थे, और बीचमें

अगस्त्य मुनि विराजमान थे, तहाँ विशेष करके रामभक्त बहुत थे; इससमयमें अगस्त्यमुनि अपने शिष्योंको अत्यन्त भक्तिसे राममंत्रका अर्थ स्पष्ट रीतिसे कहरहेथे ॥ ६ ॥ ७ ॥ तिन श्रेष्ठ अगस्त्यमुनिको देखतेही परम बुद्धिवान् सुतीक्ष्णमुनि उनके समीप गए और साष्टांग नमस्कार करके नम्रता पूर्वक कहने लगे ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मनिष्ठ महाराज! दशरथका पुत्र रामचन्द्र सीता और लक्ष्मणकरके सहित आपका दर्शन करनेके निमित्त बाहर आकर हाथ जोडे खड़े हैं ॥ ९ ॥ अगस्त्यमुनि बोले कि हे सुतीक्ष्ण! बड़े आनन्दकी वार्ता कहते हो तुह्मारा कल्याण होवे उनको शीघ्रही लिवाकर लाओ, रामचन्द्रजी मेरे हृदयमें सदा निवास करते हैं, मैं उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा करके इनका ध्यान करताहुआ यहां निवास करता रहा हूँ ॥ १० ॥ ऐसा कहकर अगस्त्यमुनि अपनेआप उठे और मुनियोंको साथ लेकर परमभक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये, धीरे आतेही अगस्त्यमुनि श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! तुम आये यह बहुत अच्छा हुआ तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा समागम हुआ तिससे आजका दिन बडे आनन्दका है, मेरे यहाँ प्रिय अतिथि आया इस कारण आजका दिन मेरा सफल हुआ ॥ १२ ॥ अगस्त्य मुनि सामने आये ऐसा देखतेही श्रीरामचन्द्रजीकोभी परम आनन्द हुआ, उन्ह श्रीरामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मणजीकरके सहित भूमिपर लोटकर प्रणाम किया ॥ १३ ॥ मुनिवर अगस्त्यजीने तत्काल श्रीरामचन्द्रजीको उठाकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाया, उनके शरीरका स्पर्श होतेही मुनिको परमानन्द हुआ और नेत्रोंमेंसे एकसाथ आसुओंका प्रवाह वहनेलगा ॥ १४ ॥ वह श्रेष्ठ मुनि एक हाथसे श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पकड़कर उनको अपने आश्रममें लिवागए, तिससमय उनके मनको परमानन्द होरहाथा ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी स्वस्थ होकर बैठे, तब अगस्त्यमुनिने उनका षोडशोपचारसे पूजन किया और लोकरीतिके अनुसार वनके अनेक प्रकारके भक्षण करनेयोग्य फलोंका भोजन कराया ॥ १६ ॥ फिर वह पूर्ण चन्द्रमाकी

समान मुखवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जब सुखपूर्वक एकान्त स्थानमें बैठे तब परम ज्ञानी अगस्त्यमुनि हाथ जोड़कर उनसे इसप्रकार कहनेलगे, ॥ ॥ १७ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे आनेकी बाट देखता हुआ मैं यहां रहताथा, जिससमय पूर्वकालमें क्षीर समुद्रकेविषें ब्रह्माजीने भूमिका भार उतारनेके निमित्त तथा रावणका वध करनेके निमित्त तुमसे प्रार्थना करी थी ॥ १८ ॥ तबसे यहाँ मुनियोंकरके सहित तुह्मारे दर्शनोंकी इच्छासे तप करताहुआ निवास करता हूँ, हे श्रीरामचन्द्रजी! मेरा ध्यान सदा तुह्मारी ओरही लगा रहताहै ॥ १९ ॥ सृष्टिके पहिले एक तुमही थे यह त्रिगुणसे उत्पन्न होनेवाला जगत् तुह्मारेविषें नहीथा क्योंकि तुम मायारूप उपाधिसे रहित थे, तुह्मारी शक्तिको मायानामसे कहते हैं, वह दो प्रकारकी है एक माया दूसरी अविद्या, जीवभी तुह्माराही स्वरूप है तिसके विषें आश्रयत्वसे रहनेवाली शक्ति माया है, और तुह्मारेविषें जीवको होनेवाला अज्ञानही अविद्या है ॥ २० ॥ तुह्मारे गुणरहित स्वरूपकोभी जब वह शक्ति आवृत करती है उस समय वेदान्तशास्त्रमें प्रवीण पुरुष उसको 'प्रधान' नामसे कहते हैं ॥ २१ ॥ उसकोही सांख्यशास्त्रके अनुयायी 'मूलप्रकृति' कहते हैं कोई 'माया' कोई 'संसृति' कोई 'बन्ध' इसप्रकार भिन्न भिन्न नामसे कहते हैं, ॥ २२ ॥ तुह्मारे कल्पनामात्र सम्बन्धसे उसकेविषें क्षोभ उत्पन्न हुआ कि वह माया महत्तत्वको उत्पन्न करती है, तुह्मारी प्रेरणा होतेही तिस महत्तत्वसे अहंकार उत्पन्न होता है ॥२३॥ महत्तत्वसे युक्त जो अहंकार सो तीन प्रकारका होता है, सात्विक १, राजस २, और तामस ३, ॥ २४ ॥ तामस अहंकारसे सूक्ष्म भूत उत्पन्न होते हैं, हे श्रीरामचन्द्र तिन सूक्ष्म भूतोंसे क्रमसे स्थूल पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं, उन्होंमें उत्तरोत्तर क्रमसे एक एक गुण अधिक होता है अर्थात् प्रथम आकाश उत्पन्न होता है उसका गुण शब्द है फिर स्पर्श सूक्ष्म भूत और आकाशसे वायु उत्पन्न होता है उसका गुण स्पर्शके सिवाय उसके आदि कारणका गुण जो शब्द वहभी परस्परसे तिस वायुमें आता

है, अर्थात् वायुके शब्द और स्पर्श यह दो गुण होते हैं, वायु और रूप सूक्ष्मभूतसे अग्नि उत्पन्न होता है उसका गुण रूप और पहिले परम्परा सम्बन्धसे आये हुए दोनों गुण इसप्रकार अग्निके गुण शब्द, स्पर्श, और रूप यह तीन होते हैं, अग्नि और रस सूक्ष्म भूतसे जल उत्पन्न होताहै उसका गुण रस और पहिले परम्परासम्बन्धसे आये हुए तीन गुण इस-प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप और रस यह चार गुण जलके होते हैं, जल और गन्धसूक्ष्मभूतसे पृथ्वी उत्पन्न होती है उसका गुण गन्ध और पहिले परम्परा-सम्बन्धसे आयेहुए चार गुण इसप्रकार पृथ्वीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह पांच गुण होते हैं ॥ २५ ॥ रजोगुणी अहंकारसे १ कर्ण, २ त्वचा, ३ नेत्र, ४ जिह्वा, ५ घ्राण, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय और ६ वाणी, ७ हस्त, ८ पाद, ९ गुद, १० उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रियं उत्पन्न होती हैं, सात्विक अहंकारसे तिन दश इन्द्रियोंके क्रमसे १, दिशा, २ वायु, ३ सूर्य, ४ वरुण, ५ अश्विनीकुमार, ६ अग्नि, ७ इन्द्र, ८ विष्णु, ९ मित्र, १० प्रजापति यह दश देवता और मन उत्पन्न होता है, तिनसे क्रिया शक्ति-सूत्रात्मा प्राण उत्पन्न होता है यह सब मिलकर सम्पूर्ण कार्य करनेवाला समष्टि हिरण्यगर्भरूप लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है ॥ २६॥ फिर पंचमहा-भूतके समूहसे विराट् उत्पन्न होता है, तिस विराट्‌रूपसे स्थावर जंगमरूप सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ जिसप्रकार भिन्न भिन्न ऋतुओंमें एकके बाद एक धान्य उन्पन्न होता है तिसीप्रकार काल और कर्मके संयोग-करके क्रमसे पशुपक्षी और मनुष्य आदि योनियें प्राणियोंको प्राप्त होती हैं, तुम रजोगुणको स्वीकार करतेहो सम्पूर्ण सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा होते हो ॥ २८ ॥ सत्वगुणको अंगीकार करके विश्वका पालन करते हो तब सत्पुरुष तुम्हें विष्णुनामसे कहते हैं, जगत्के प्रलयकालमें तुमही रुद्र होतेहो, तुम्हारी मायाके भिन्न भिन्न गुणोंकरके बुद्धिकी भिन्न भिन्न प्रका-रकी वृत्तियें होती हैं तिन वृत्तिके जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन नाम है, हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम तिन तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण (तुरीय) हो

तुम तिन अवस्थाओंके साक्षी ज्ञानरूप और विकाररहित हो ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ जिससमय तुम्हारी सृष्टिरूप लीला करनेकी इच्छा होय है तब तुम मायाके काल्पनिक सम्बन्धको अंगीकार करते हो और वास्तवमें गुण रहित होकरभी गुणवान्से प्रतीत होतेहो ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम्हारी माया सदा विद्या और अविद्या दो प्रकारकी प्रतीत होती है अर्थात् वहही संसार और मोक्ष दोनों देसक्ती है, जो प्राणी प्रवृत्तिमार्गमें तत्पर होरहे हैं वह अविद्याके वशीभूत हैं, और जो पुरुष निवृत्तिमार्गमें रहकर वेदान्तके अर्थका विचार करते हैं, और तुम्हारी भक्ति करनेमें निमग्न होजाते हैं, वह विद्यामय (ज्ञानी) होते है, अविद्याकी फाँसीमें पड़ेहुए पुरुष नित्य संसारीही रहते हैं, और जो पुरुष तत्त्वज्ञानके अभ्यास करनेमें तत्पर रहते हैं वह पुरुष नित्यमुक्त होते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जगत्में तुम्हारी भक्ति करनेमेंही रमेहुए और तुम्हारे मंत्रकी आराधना करनेवाले जो पुरुष होते हैं, उनकोही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है, औरोंको कभी भी नहीं होती है ॥ ३४ ॥ इसकारण जो पुरुष तुम्हारी भक्ति करके युक्त हैं वह निःसन्देह मुक्तही हैं, जो पुरुष तुम्हारी भक्तिरूप अमृतका पान नहीं करते हैं, उनको स्वप्नमें भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ३५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी अधिक कहाँलौं कहूँ, सबका सार तुमसे थोड़ेहीमें कहताहूँ कि सत्पुरुषोंका समागमही जगत्में मोक्षका साधन कहा है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष सर्वत्र समदृष्टि रखते हैं, रागद्वेषके कारण जो विषयवासना वह जिनके समीपसे दूर होगई है, पुत्रैषणा वित्तैषणा आदि एषणा (इच्छा) जिनको नहीं हैं अर्थात् सबप्रकारकी वासना जिनके मनसे दूर होगई हैं, और जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें करके पूर्ण शान्ति और तुम्हारी भक्ति अङ्गीकार करी है वहही सत्पुरुष हैं ॥ ३७ ॥ ऐसे पुरुष प्रिय वस्तुकी प्राप्ति अथवा विपत्ति, कैसाही समय आपडै परन्तु एकसीही वृत्ति रखते हैं विषयमेंभी आसक्ति नहीं करतेहैं, और सम्पूर्ण कर्म्मोंका त्याग करके सर्वकाल ब्रह्मकेविषें रमण करते हैं॥ ३८ ॥और वह यम नियमादि अष्टाङ्गयोगका

अभ्यास करके सिद्ध होहे हैं, इसकारणही कैसाही समय आपड़े परन्तु नित्य आनन्दमें रहते हैं,उनही सत्पुरुषोंका समागम होनेसे प्राणियोंको तुम्हारी कथा श्रवण करनेमें रुचि होती है॥ ३९॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! तदनन्तर तुम्हारे विषें उसकी भक्ति होती है, तुम तीनों कालमें अखण्डरूप हो, तुम्हारे विषें भक्ति उत्पन्न होतेही प्राणीको प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है, प्रवीण पुरुषोंका अंगीकार किया हुआ मोक्षका यहही मुख्य मार्ग है, इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी ! मुझे तुम्हारेविषें प्रेमरूप उत्तमभक्ति प्राप्त होय, और हे दुःखोंको दूर करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ! विशेषकरके तुम्हारे भक्तोंका मुझे समागम मिलै, और आज तुम्हारा दर्शन होनेके कारण मेरा जन्म सफल होगया है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ सफल हुए, हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने केवल तुम्हारे विषेंही बुद्धि लगाकर बहुत दिनोंपर्य्यन्त तपश्चर्या करी, तिस तपका फल आज मेरे हाथोंसे तुम्हारी पूजा होना है ॥ ४३ ॥ हे राघव ! सीतासहित तुम नित्य मेरे अन्तःकरणमें निवास करो, मैं चलूँ, बैठूँ, अथवा खड़ा रहूँ, तौ मुझे नित्य तुम्हारा स्मरण रहै ॥ ४४ ॥ इसप्रकार तिन मुनिवर अगस्त्यजीने लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करी, और तिनही श्रीरामचन्द्रजीके निमित्त पूर्वकालमें इन्द्रने आश्रममें धराहुआ धनुष उनको दिया ॥ ४५ ॥ तिस धनुषके साथ कदापि क्षीण (कमती) नहीं होनेवाले बाणोंके दो तरकस और एक खड्ग (तलवार) यह शस्त्र दिये, वह खड्ग रत्नजटित होनेके कारण अत्यन्त शोभायमान था, वह देकर अगस्त्य मुनिने कहा कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! राक्षसोंके समूहका पृथ्वीपर अत्यन्त भार होगया है, इसकारण तुम उनका वध करो ॥ ४६ ॥ इस कार्य्यको करनेके निमित्तही तुमने माया करके मनुष्य रूप धारण किया है, यहाँसे आठ कोशपर गोदावरीके तीरमें पवित्र वनसे शोभायमान पञ्चवटी नामवाला आश्रम है, हे रघुकुलभूषण! तुम अब अपने शेष बचे हुए वनवासके दिन तहाँ व्यतीत करो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हे साधुओंके पालक !

तहाँ देवताओंके बहुत कार्य करने हैं उनको पूर्ण करो ॥ ४९ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति! यह अगस्त्यमुनिकी उत्तम भक्ति और स्तुति सम्पूर्ण तात्विक सिद्धान्तोंसे ओतप्रोत भरी हुई है, तिसको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको आनन्द हुआ, वह भक्तसङ्कटनाशक प्रभु सर्वज्ञ थे, परन्तु उससमय अज्ञानीकी समान लीला करतेथे, इसकारण फिर उन्होंने अगस्त्यमुनिकी आज्ञा लेकर उनके दिखाए हुए मार्गसे आगेको चल दिये॥५०॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसँव्वादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

जाते जाते मार्गमें पर्वतके शिखरकी समान खड़ा हुआ वृद्ध जटायु पक्षी श्रीरामचंद्रजीने देखा, उसको देखतेही श्रीरामचन्द्रजीको बडा आश्चर्य हुआ और विचारने लगे कि यह क्या है? ॥ १ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि—हे लक्ष्मण! धनुष लाओ, यह आगे राक्षस खड़ा है, इस ऋषियोंके भक्षण करनेवाले राक्षसको यमलोकको पहुँचाताहूँ॥२॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीका भाषण सुनतेही गृध्रराज जटायु भयके मारे काँपने लगा, और कहने लगा कि—हे श्रीरामचन्द्रजी! तुमको मेरा वध करना योग्य नहीं है, क्योंकि मैं तुम्हारे पिताका प्रिय मित्र हूँ, ॥ ३ ॥ मेरा नाम जटायु है, हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम्हारा कल्याण होय, मैं तुम्हारे चित्तके अनुसार वर्त्ताव करनेवाला हूं ॥ ४ ॥ तुम्हारा प्रिय कार्य्य करनेकी इच्छासे मैं पंचवटीमें रहताहूँ, जब कभी तुम और लक्ष्मण दोनो मृगया (शिकार)को जाओगे, तब मैं जनककुमारी सीताको जहाँतक होसकैगी रक्षा करूँगा, इसप्रकार तिस जटायुके वचनको सुनकर श्रीरामचंद्रजी प्रेमपूर्वक उससे कहने लगे ॥५॥६॥ कि हे गृध्रराज! बहुत अच्छा ऐसाही करो, यहाँसे कुछ दूरपर मेरे निवास-स्थानके समीपमें वनकेविषें निवास करो और अपनी इच्छाके अनुसार मेरा प्रिय कार्य्य करते रहो॥७॥ इसप्रकार जटायुसे प्रेमपूर्वक वार्त्तालापकरके और हृदयसे लगाकर प्रभु श्री-

रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीकरके सहित पञ्चवटीमें गए ॥ ८ ॥ गोदावरीके तीरपै पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे विस्तीर्ण कुटी बनवाई, क्योंकि कारीगरीके कार्य्यमें लक्ष्मणजीकी बुद्धि परमप्रवीण थी ॥ ९ ॥ वह सब जने गोदावरीके उत्तरकी ओरके तीरपर तिस कुटीमें रहनेलगे, तिस कुटीके चारों ओर कदम्ब पनस और आम्र आदि अनेक वृक्ष लगरहेथे ॥ १० ॥ इस एकान्तस्थानमें जनसमूहका आना जाना बिलकुल नहीं था, तथा अतिवृष्टि अनावृष्टि और शारीरिक व्याधि आदिका भय नहीं था, तहाँ परम प्रवीण लक्ष्मणजी साथ जानकीके चित्तको प्रसन्न करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी सुखपूर्वक निवास करनेलगे, देवलोकमें जो आनन्द इन्द्रको प्राप्त होता है, वही आनन्द यहाँ श्रीरामचंद्रको प्राप्त होताथा, लक्ष्मणजी प्रतिदिन उनको कन्द-मूल-फल आदि लाकर देतेथे; क्योंकि उनका अन्तःकरण श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करनेमें सदा तत्पर रहताथा, वह नित्य रात्रिके समय हाथमें धनुषबाण लेकर चारों ओरको देखतेहुए जागतेथे ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ वह तीनोजने प्रतिदिन गोदावरीके जलमें स्नान करतेथे, सीताजीको कहीं जाना आना होताथा तौ वह श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणके बीचमें होकर चलतीथीं, ॥ १४ ॥ लक्ष्मणजी नित्य प्रसन्न अन्तःकरणसे जल लाकर देतेथे और उबकी सेवा करतेथे, इसप्रकार वह तीनोजने तहाँ सुखपूर्वक रहतेथे ॥ १५॥ एकसमय परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी एकान्तमें स्वस्थ बैठे थे, तब लक्ष्मणजीने विनयपूर्वक नम्र होकर उनसे बूझा ॥ १६ ॥ हे षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्न! कमलनयन! ईश्वर! श्रीरामचन्द्रजी! जिस मार्गसे चलनेपर निःसन्देह मोक्षकी प्राप्ति होती है, उस मार्गको आपके मुखसे श्रवण करनेकी इच्छा है, सो आप संक्षेपसे मेरे अर्थ वर्णन करिये ॥ १७ ॥ मोक्षका साधन ज्ञान है, यह तो मुझे मालूम है, परन्तु तिस ज्ञानका स्वरूप क्या है? सो मैं आपसे श्रवण करना चाहताहूँ वेदान्त आदि शास्त्रोंके श्रवण और मनन करके कौनसा ज्ञान प्राप्त होता है? और अपरोक्ष ज्ञान कौन है? तथा तिस

ज्ञानकी वृद्धि करनेके साधन जो भक्ति और वैराग्य उनका स्वरूप क्या है ? यह सब मेरे अर्थ वर्णन करिये, हे रघुवीर ! तुम्हारे सिवाय और कोई पृथ्वीतलमें इनके स्वरूपका वर्णन करनेवाला नहीं है ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि–हे तात! सुनो. तुमसे अत्यन्त गुप्तसे गुप्त वार्त्ता कहताहूँ, "शश (खरगोश) के सींग" "वन्ध्याका पुत्र" यह शब्द केवल उच्चारणमात्रही हैं, इनका वाच्य अर्थ कुछ भी नहीं है, तिसप्रकारही 'सृष्टि' इस शब्दकी रीति है, सृष्टि केवल भ्रममात्र है, मेरे कहे हुए, ज्ञानकी प्राप्ति होतेही मनुष्यका वह भ्रम तत्काल दूर होजाताहै, ॥ १९ ॥ प्रथम मैं तुमसे मायाका स्वरूप कहताहूँ, फिर ज्ञानका साधन, फिर शब्दज्ञान और तत्त्वज्ञान, और अंतमें ज्ञानका विषय (ज्ञेय) परमात्मा है, तिस परमात्माका ज्ञान होतेही मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है, शरीर आत्मासे भिन्न और जड है, तिस शरीरके विषें 'यहही आत्मा है' ऐसी जो बुद्धि होती है वहही माया है, तिस माया करकेही संसार कल्पित होता है, हे कुलभूषण लक्ष्मण अनादिकालसे माया दो प्रकारकी मानी गई है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ एक विक्षेपरूप, और दूसरी आवरणरूप, तिनमेंसे पहली विक्षेपरूप माया महत्तत्त्वसे लेकर चतुर्मुख ब्रह्मापर्यन्त स्थूल सूक्ष्म भेदवाला जो कुछ संसार है, तिसकी कल्पना करतीहै ॥ २३ ॥ दूसरी आवरणरूप माया ज्ञानरूपको आच्छादन करके स्थित रहतीहै, वह माया केवल परमात्माके आधारसे सम्पूर्ण विश्वकी कल्पना करतीहै ॥ २४ ॥ जिसप्रकार भ्रान्तिसे रज्जुके विषें सर्पकी प्रतीति होती है अर्थात् वह सर्प्प सत्य नहीं होता है;किन्तु रज्जुही सत्य होती है, तिसीप्रकार परमेश्वरके विषें माया करके कल्पना करा हुआ जगत् सत्य नहीं है परमात्माही सत्य है, ऐसा विचार करतेही संसार कुछभी नहीं होता है,मनुष्योंको नित्य जो कुछ श्रवण करनेमें आता है, दीखता है, और स्मरण होता है, वह सब स्वप्नके अथवा मनःकल्पित पदार्थोंकी समान मिथ्या है, संसाररूपी वृक्षका दृढ मूल देहही है; ऐसा शास्त्रोंमें

कहा है ॥ २५ ॥ २६ ॥ तिस देहके कारण पुत्र स्त्री आदिका सम्बन्ध भी नहीं रहता है ॥ २७ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच महा भूतोंसे यह स्थूल देह होता है, पंच सूक्ष्मभूत, अहंकार, बुद्धि, दश इन्द्रियें चैतन्यका प्रतिबिम्ब, और मन, यह लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीर होता है, मूल प्रकृति कारणशरीर है, इन तीनों शरीरोंको भी क्षेत्र कहते हैं और देह भी कहते हैं, इसकोही, अज्ञानी पुरुष आत्मा समझते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ इस जड़ समूह (तीनों शरीरों) से जीव धन्य है, वहही, परमात्मा है, उसके जन्म आदि छः भावविकार नहीं होते हैं, तिस जीवके तत्वस्वरूपका ज्ञान होनेके साधन मैं कहताहूँ श्रवण करो ॥ ३० ॥ जीव और परमात्मा यह एककेही पर्याय (नामान्तर) हैं; इन दोनोंमें भेदभाव नहीं है, और उनके स्वरूपकी ईयत्ता भी नहीं है, अब इस तत्वज्ञानकी प्राप्ति होनेके साधन वर्णन करताहूँ मनुष्य गर्व हिंसा आदिको त्याग दें ॥ ३१ ॥ दूसरा पुरुष निन्दाआदि करै तो सहलेय, सबके साथ सूधेपनेसे वर्ताव करै, मन वाणी और शरीरसे पूर्ण भक्तिकरके सद्गुरुकी सेवा करै ॥ ३२ ॥ शरीर और मनको स्वच्छ रक्खै, सदाचरण करनेमें तत्पर रहै, मन वाणी और शरीर इन तीनोंको अन्याय न करनेदे अर्थात् दूसरेका अनिष्ट चिन्तन न करके मनको वशमें रक्खै, दूसरेको अपशब्दोंसे दुःख न देकर वाणीको वशमें रक्खै, हिंसा न करके शरीरका दमन करै, तथा विषयभोगकी इच्छा न करै, ॥ ३३ ॥ अहंकार त्याग देय, मनुष्योंको जन्म और वृद्धावस्था आदिके दुःख सहने पड़ते हैं, यह देखकर संसारसे विरक्त होजाय, तथा पुत्र स्त्री द्रव्य आदिमें आसक्ति न करै, प्रेम त्याग देय ॥ ३४ ॥ सुख तथा दुःख दोनोंके समयमें सबका अंतर्यामी जो मैं राम तिस मेरेविषै अनन्यभावसे बुद्धि लगावै ॥ ३५ ॥ जहाँ मनुष्य समूहके आनेजानेका विघ्न न होय, तिस एकान्त और पवित्र स्थानमें निवास करै, संसारी पुरुषोंके समूहसे कदापि प्रेम न करै, आत्मज्ञानकी प्राप्तिका सदा उद्योग करता रहै, वेदान्तके अर्थका अवलोकन, श्रवण, मनन आदि करता रहै,

इसप्रकार कहे हुए उपायोंसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, इसके प्रतिकूल आच रण करनेसे अज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ मैं बुद्धि प्राण दान मन शरीर अहंकार इनसे भिन्न और चैतन्य स्वरूप और तीनोंकालमें नष्ट न होनेवाला परम पवित्र ज्ञानमय मैं ही हूँ, इसप्रकारके सिद्धान्त रूप उपदेशसे जो बोध होता है वही ज्ञान है, इस ज्ञानकाही जिस समय प्रत्यक्ष अनुभव होता है, तब वह तत्वज्ञान कहलाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ आत्मा सर्वत्र ज्ञान और आनन्द स्वरूपसे व्याप्त है; अविनाशी है, उसके स्वरूपका परिवर्त्तन नहीं होता है, आत्माके विषें बुद्धि चित्त अहंकार आदिके राग द्वेष लोभ अहंभाव आदि धर्म नहीं हैं ॥ ४० ॥ आत्मा अपने ज्ञानमय प्रकाशसे देहआदिको प्रकाशित करता है, उसके स्वरूपकी मर्या-दा आवरण और इयत्ता नहीं है, वह नित्य एकरूप और भेदभाव रहित है, सत्यं ज्ञान अनन्त है इत्यादि श्रुतिमें[1] कहे हुए ब्रह्म स्वरूपके लक्षण तिस आत्माकेही हैं ॥ ४१ ॥ आत्मा किसीमें आसक्त नहीं होता है, स्वरूपके ज्ञानके निमित्त दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं करताहै, वह सम्पूर्ण कर्म और वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखता है, तत्वज्ञानसे वह आत्मस्वरूप जाना जाता है, प्राणीको जिससमय सद्गुरुसे प्राप्त हुए महावाक्यके उपदेशसे जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान होता है उस समय ही संसारका मूलकारण जो अविद्या सो अपना कार्य जो स्थूल और इन्द्रियोंकरके सहित परमात्माके स्वरूपमें लीन होजाती है ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ इस अवस्थाको मुक्त कहते हैं, यह सम्पूर्ण आत्माकेविषें क-ल्पना किया है, अथवा यह आत्मा ज्ञानका मार्ग है, हे रघुनन्दन! शब्द-ज्ञान और तत्त्वज्ञानसे यह परमात्माका स्वरूप तुमसे वर्णन करा सो पर-मात्मा मैंही हूँ अर्थात् मोक्षावस्था मेराही स्वरूप है, परंतु जो पुरुष मेरी भक्ति नहीं करते हैं उनको मोक्षकी प्राप्ति होना महाकठिन है ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार नेत्र होनेपर भी रात्रिके समय अन्धकारमें मनुष्यको

१ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ऐसी श्रुति है.

"चोर किधरसे आया और किधरको गया" यह अच्छी तरह नहीं दीखता परंतु साथमें दीपक लेतेही उस मनुष्यकोही संपूर्ण पदार्थ भलेप्रकार दीखने लगते हैं ॥ ४६ ॥ तिसीप्रकार जिस पुरुषके अन्तःकरणमें मेरी भक्ति होती है उसको आत्मस्वरूपकी प्रतीति अच्छीप्रकार होती है, इस कारण मेरेविषें भक्ति होनेका कारण कुछ थोडासा तुमसे तत्त्वतः वर्णन करताहूँ सुनो ॥ ४७ ॥ मेरे भक्तोंकी सङ्गति करै, मेरी तथा मेरे भक्तोंकी सेवा करै, एकादशीके व्रत आदि धर्मका पालन करै, रामनवमी आदि मेरे उत्साहके दिनोंमें उत्सव करै, मेरी कथाके श्रवण करनेमें, पाठ करनेमें और सुनानेमें सदा प्रीति करै, मेरा पूजन करनेमें निष्ठा रक्खै, और मेरे नामका जप करता रहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जो पुरुष निरंतर वर्ताव करते हैं उनकी मेरे विषें निरंतर अटल भक्ति होती है, इसप्रकार मेरी भक्तिकी प्राप्ति होनेपरभी क्या कोई ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय रहजाता है? अर्थात् कोई नहीं ॥ ५० ॥ इसकारण मैं कहता हूँ कि मेरी भक्ति करनेवालेको वैराग्य शब्दज्ञान और तत्वज्ञानकी तत्काल प्राप्ति होजाती है, तदनन्तर उस मनुष्यको मुक्तिकी प्राप्ति होजाती है ॥ ५१ ॥ हे लक्ष्मण! तेरे प्रश्न करनेके अनुसार यह सब मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन करा, जो पुरुष इसके विषें मनको लगाकर स्थित होता है वह मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ जो पुरुष मेरी भक्तिसे रहित हो उसके अर्थ यह ज्ञान कदापि न कहै. मेरी भक्ति करनेवाले पुरुषको अपने आप बुलाकर प्रयत्न करकै इस ज्ञानका उपदेश करै ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य विश्वास करके भक्तिपूर्वक इस उपदेशका नित्य पाठ करताहै वह अपने विषें वर्तमान अज्ञानके समूहरूपी अन्धकारको नष्ट करके मुक्त होताहै ॥ ५४ ॥ मेरी भक्ति करनेवाले योगी पुरुषोंके अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र और अत्यन्त शान्त होतेहैं, उनके मन मेरी सेवा करनेमें अत्यन्त प्रेम करतेहैं, वह निर्मल आत्मस्वरूपके ज्ञानकी प्राप्ति करनेमें नित्य यत्न करते रहतेहैं जो मनुष्य ऐसे भक्तोंकी संगतिमें रहताहै और ज्ञानकी प्राप्ति करनेमें अपनी

बुद्धिसे उद्योग करताहै तथा साधुओंकी सेवा करनेके सिवाय दूसरे विषयमें बुद्धि नहीं लगाताहै उसके हाथमें ही मोक्ष स्थित है, और मैंभी उसे नित्य दर्शन देताहूं, और उपायोंसे मोक्षकी प्राप्ति तथा मेरा दर्शन नहीं होताहै ॥५५॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

तिससमय उस बड़े भारीदण्डकारण्यके विषें जनस्थानकी रहनेवाली एक राक्षसी फिरा करतीथी. वह अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाली और परमबलवान थी ॥ १ ॥ एक समय गोदावरीके किनारेपर पंचवटीके समीप पृथ्वीपति श्रीरामचंद्रजीके कमल वज्र और अंकुशके चिन्होंकरके युक्त चरणोंके चिन्होंको देखकर उस राक्षसीका मन तत्काल कामवासनासे व्याप्त होगया, वह उन चरणोंकी सुंदरता देखकर मोहित होगई, और उन चिन्होंको देखती २ हौले हौले श्रीरामचंद्रजीके आश्रममें आई ॥ २ ॥ ३ ॥ तहाँ कामदेवकी समान सुंदर लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजी सीता करके सहित बैठे थे उनको देखतेही उसकी कामवासना अत्यंत बढ़ गई ॥ ४ ॥ फिर उस राक्षसीने श्रीरामचंद्रजीसे बूझा कि तुम किसके कौन हो? जटा वल्कल आदि तपस्वियोंके वेषको धारण करके आश्रममें किस कारणसे रहते हो; और यहां रहकर तुमको कौनसा काम सिद्ध करना है सो मुझसे कहो ॥ ५ ॥ मैं राक्षसी हूँ और राक्षसोंका राजा जो महापराक्रमी रावण तिसकी बहन हूँ, मेरा नाम शूर्पणखा है, मैं अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करलेती हूँ ॥ ६ ॥ मेरा खरनामक भ्राता है, उसके पास मैं इस वनमेंही रहती हूँ, राजाने यह सम्पूर्ण वन मुझे देदिया, मैं यहाँ मुनियोंका भक्षण करके निर्वाह करती हूँ ॥ ७ ॥ तुम्हारा वृत्तान्त जाननेकी मेरी इच्छा है, सो हे श्रेष्ठ! मुझसे कहिये! श्रीरामचन्द्रजी उससे बोले कि मैं अयोध्याके राजाका पुत्र हूँ, मेरा नाम राम है॥ ८ ॥ यह सुन्दरी जनकराजाकी कन्या और मेरी स्त्री है, इसका नाम सीता है,

वह अतिसुन्दर पुरुष मेरा छोटा भ्राता लक्ष्मण है ॥ ९ ॥ हे त्रैलोक्यसुन्दरी ! मैं तेरा क्या कार्य करूँ, सो बता ? शूर्पणखा कामवासनासे व्याकुल होरहीथी सो इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर वह उनसे बोली ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मेरे साथ आवो औ पर्वतपर चलके वनमें बिहार करो तुम्हारे यह कमलसदृश नेत्र देखकर मैं कामपीड़ित होरही हूँ, मैं तुम्हैं छोड़कर नहीं जाऊंगी ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी ओर कटाक्षसे देखकर हँसते हँसते शूर्पणखासे कहा, कि हे शूर्पणखे! मेरी यह शुभलक्षणा व अनपायिनी सीता धर्मपत्नी विद्यमान है, ॥ १२ ॥ इसकारण हे सुन्दरी ! सपत्नीके दुःखसे तू मेरे पास कैसे रह सकेगी, बाहर मेरे भ्राता लक्ष्मण हैं वह अतिसुन्दर पुरुष तेरे योग्य पति होजाँयगे जा उनके साथही वनमें बिहार कर, जब श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार कहा, तब वह राक्षसी लक्ष्मणजीके पास गई और उनसे बोली कि हे सुन्दरपुरुष! तुम मेरे पति बनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ भ्राताकी आज्ञा मानकर परस्परका सुख भोगनेमें विलम्ब मत करो, कामवासनासे मोहित राक्षसीने लक्ष्मणसे इसप्रकार कहा, तब लक्ष्मणजी उससे बोले कि हे साध्वि ! मैं उन परम प्रवीण श्रीरामचन्द्रजीका सेवक हूँ, अतः तुझेभी उनकी दासी बनना पड़ैगा, और संसारमें दासकार्य करनेसे अधिक क्या दुःख है ? अर्थात् कुछभी नहीं ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसकारण कि तू उनकेही पास जा तेरा कल्याण होय, वह राजा और सबके स्वामी है, इसप्रकार लक्ष्मणके कथनको सुनकर वह दुष्ट अन्तःकरणवाली राक्षसी फिर रामचन्द्रजीके पास गई ॥ १७ ॥ और क्रोधमें होकर कहने लगी कि हे रामचंद्र! कहनेमें कुछभी स्थिरता और शक्तिता नहीं है, अरे मुझे इधर उधर क्यों फिराताहै, जिसके प्रेमसे मुझे फिराता है तिस सीताको मैं अबहीं यहाँ तेरे सामने खाए डालतीहूँ ॥ १८ ॥ ऐसे कहकर वह विकरालस्वरूप राक्षसी सीताजीके ऊपरको दौड़ी, तब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे तलवार निकालली और तिस

राक्षसीको पकड़कर उसके कान और नाक काटडाले, लक्ष्मणजी परम-शक्तिमान थे उससमय शूर्पणखाने भयङ्कर शब्दकरके रुदन करा उसका शरीर रुधिरसे भीजगया, और शीघ्रही रोती रोती और अपने भ्राता खरराक्षसको अपशब्द कहती हुई उसके सामने पृथ्वीपर गिरपड़ी खरराक्षसका शब्द उसके शब्दसेभी कठोर था उसने शूर्पणखासे बूझा कि यह क्या हुआ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ तेरी यह दुर्दशा किसने करीहै अपने आपही मृत्युके मुखमें जानेको कौनसा पुरुष तयारहुआ, सो मुझे बता? चाहे वह प्रत्यक्ष मृत्युकी समान ही हो परन्तु देख मैं उसका क्षणभरमें नाश करदूँगा ॥ २२ ॥ राक्षसी उससे कहनेलगी कि रामचन्द्र नामवाला एक मनुष्य सीता और लक्ष्मणको साथ लेकर दण्डकारण्यको निर्भय करताहुआ गोदावरीके तटपर निवास करताहै ॥ २३ ॥ उसके कहनेसे उसके छोटे भ्राताने यह मेरी दशा करीहै, यदि तू अपने कुलका अभिमानी और वीर है तौ इस शत्रुका नाश कर ॥ २४ ॥ मैंने यह निश्चय करलिया है कि रामलक्ष्मणके रुधिरका पान करूँगी और उन उन्मत्त मनुष्योंका भक्षण करूँगी, यदि यह नहीं होसकैगा तौ प्राणोंको त्यागकर यमपुरको चलीजाऊंगी ॥ २५ ॥ यह सुनतेही खरराक्षस क्रोधमें भरगया, और तत्काल महाकठोर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस रामचन्द्रके आश्रमको भेजदिये, और उनका वध करनेकी इच्छासे खर त्रिशिरा तथा दूषण यह तीनों राक्षस शीघ्रही अनेकप्रकारके शस्त्र धारण करके तैयार हो रामचन्द्रजीकी ओरको आये, उनके शब्दका कोलाहल सुनतेही श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण ! बड़ा कलकल शब्द सुनाई आरहाहै. सो निःसन्देह राक्षस यहाँको आतेहोंगे आज निःसन्देह उनका मेरे साथ घोर युद्ध होगा ॥ २९ ॥ तुम पराक्रमी हो परंतु मैं तुमसे कहता हूँ कि इससमय तुम सीताको लेकर गुफामें चले जाओ और वहाँ बैठो मेरे मनमें इस सम्पूर्ण भयङ्कर राक्षसोंके वध करनेकी इच्छा है ॥

॥ ३० ॥ इसमें अब कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है तुम्हें मेरी शपथ है. लक्ष्मणजी बहुत अच्छा कहकर और सीताजीको लेकर गुफामें चले गए ॥ ३१ ॥ प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने कसके कमर बाँधली हाथमें धनुष लेलिया, अक्षय बाणोंसे भरेहुए दो तरकस पीठपर बांधलिये, इसप्रकार तयारी करी कि इतनेहीमें राक्षस आकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर नानाप्रकारके शस्त्रोंकी और पत्थरोंकी तथा वृक्षोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने भी एकक्षणके भीतर सहजमेंही उन शस्त्र आदिके तिलकी समान टुकड़े करडाले फिर एक हजार बाणोंकी वर्षा करके सम्पूर्ण राक्षसोंका नाश करदिया, फिर श्रीरामचन्द्रजीने खर, त्रिशिरा इन तीनों राक्षसोंको चार घड़ीके भीतरही यमपुरीको पहुँचादिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीने भी सीताको गुफासे बाहर लाकर रामचन्द्रजीको सौंप दिया, श्रीरामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षसोंका नाश कर दिया, यह लक्ष्मणजी देखकर आश्चर्ययुक्त होगये ॥ ३६ ॥ प्रसन्न है मुखरूपी कमल जिनका ऐसी जानकीजीने रामचंद्रजीको हृदयसे लगाया, और उनके शरीरपर जो शस्त्रोंके घाव थे उनको धोया ॥ ३७ ॥ इधर बड़े बड़े राक्षस मारेगए यह देखकर रावणकी बहन शूर्पणखा लंकामें गई और रोती रोती सभामें जाकर रावणके चरणोंके समीप पृथ्वीपर गिरपड़ी मेरी बहन भयसे व्याकुल होरही है, ऐसा देखकर रावण उससे कहने लगा कि हे बाले! उठ उठ इस तेरे सुन्दर रूपको किसने विरूप करा,इन्द्रने यमने वरुणने अथवा कुवेरने, हे कल्याणि! उसका नाम बतला तौ मैं उसको क्षणमात्रमें भस्म करडालूँ,राक्षसी शूर्पणखाने उसको उत्तर दिया कि तू प्रमत्त है तथा तेरी बुद्धि अत्यन्त मन्द होरहीहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तू मद्यपानमेंही लग रहता है, और स्त्रियोंके वशीभूत तथा नपुंसककी समान है. राजाके दूतही नेत्र होते हैं सो तेरेपास बिलकुल नहीं हैं फिर तू किसप्रकार राज्यका पालन करैगा ॥ ४२ ॥ खर, दूषण त्रिशिरा यह तीनों युद्धमें मारे गए तथा बड़े २ वीर चौदह हजार राक्षसोंका रामचन्द्रने

क्षणमात्रमें नाश करदिया वह राक्षसोंका बड़ाभारी शत्रु उत्पन्न होगया है, उसने सम्पूर्ण जनस्थान ऋषियोंके निवास करनेयोग्य निर्भय करादिया यह वृत्तान्त तुझे इससमय पर्यन्त कुछ भी मालूम नहीं, इस कारणही मैं तुझे मूर्ख कहती हूँ ॥ ४३॥४४ ॥ रावण बोला कि हे शूर्पणखे! रामचन्द्र कौन है ? उसने राक्षसोंका किस कारण और किसप्रकार नाश किया यह सब मुझे ठीक ठीक बता ? तब मैं उन तीनोंको निर्मूल (नष्ट) कर दूँगा ॥ ४५ ॥ शूर्पणखा कहनेलगी कि हे राजन् ! एकसमय मैं जनस्थानसे फिरती फिरती गोदावरीके तटपर गईथी तहाँ पंचवटी नामक एक स्थान है तहाँ पूर्वकालमें अनेक ऋषि निवास करतेथे ॥४६॥ तिस आश्रममें कमलनेत्र रामचन्द्रको मैंने देखा वह हाथमें धनुषबाण धारण किये तथा तेजस्वी होकरभी जटा और वल्कलोंको धारण करे हुएथे ॥ ४७ ॥ उनका छोटा भ्राता लक्ष्मण देखनेमें बिलकुल उनकी ही समान है, रामचन्द्रकी स्त्री इतनी सुन्दर है कि दूसरी लक्ष्मीसी प्रतीत होतीहै, उसके नेत्र विशाल हैं ॥ ४८ ॥ देव, गन्धर्व, नाग और मनुष्योंमें ऐसी स्त्री आजपर्य्यंत न देखनेमें आई और न सुननेमें आई, हे राजन्! उस सुंदरीका तेज वनको प्रकाशित कर रहा है ॥ ४९ ॥ हे वीर! तिस स्त्रीको तेरी भार्य्या करनेके निमित्त लाऊं, इस उद्योगमें मैं थी; परन्तु रामचंद्रजीके परमशक्तिमान लक्ष्मण भ्राताने उनके कहनेसे मेरे नाक कान काट लिये, उनके सामने मेरी कुछभी नहीं चली, फिर मैं अत्यन्त दुःखित हो रोती रोती खरके पास चली गई ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उसनेभी राक्षसोंके अनेक सेनापति साथमें लेकर रामचंद्रके ऊपर चढाई करके युद्ध किया परन्तु रामचंद्र ऐसे बलवान् हैं कि उन्होंने एक क्षणमेंही सम्पूर्ण राक्षसोंको मारकर गिरादिया, वह राक्षस भी कुछ कम थे यह नहीं, किन्तु महापराक्रमी थे. यदि रामचन्द्रजी मनसे चाहैं तो त्रिलोकीको भी निःसन्देह आधे क्षणमेंही भस्म करसक्ते हैं, ऐसा मुझे प्रतीत होता है, हे समर्थ! यदि वह स्त्री तेरी पत्नी होयगी तबहीं तेरा जीवन सफल होयगा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसकारण हे राजाधि-

राज! जिसप्रकार सीता तेरी प्रियपत्नी होय सो उपाय कर, उसके कमल पत्रसमान नेत्र देखकर मेरे मनको तौ निश्चय होगया है कि इसकी समान सुन्दर स्त्री त्रिलोकीमें नहीं है ॥ ५५ ॥ हे रावण! तेरी शक्ति कितनीही बढ़ी हुई हो परन्तु तू प्रत्यक्ष रामचन्द्रके सामने स्थित नहीं होसकैगा, इसकारण कुछ कपटकरके तिन रामचन्द्रको मोहित करलेगा तो सीता तुझे मिलैगी ॥ ५६ ॥ रावणने यह वृत्तान्त सुनकर मधुर मधुर वचनोंसे और धन देकर तथा आदर सत्कारकरके बहनको शांत किया, फिर अपने मंदिरमें चलागया, परन्तु चित्त चिन्ताग्रस्त होरहाथा, इसकारण उसे रात्रिभर निद्रा नहीं आई ॥५७॥ वह मनमें विचारताथा कि रामचंद्र एक साधारण मनुष्य है उस इकलेनेही मेरे खर भ्राता और उसकी सेनाका कैसे नाश करदिया, उस मेरे भ्राताको अपनी शक्ति और धैर्यका बड़ा गर्व था उसको रामचन्द्रने मार डाला ॥ ५८ ॥ अथवा रामचन्द्र मनुष्य नहीं होंगे किंतु परमेश्वरही होंगे मेरे पास सेनाका समूह बहुत हो गया है और मैं अत्यन्त बलवान् होगया हूं इसकारण मेरा वध करनेकी इच्छासे पहिले ब्रह्माकी प्रार्थना करनेसे इससमय प्रभुने रघुकुलमें मनुष्यरूपसे अवतार लिया होगा॥५९॥ यदि परमेश्वरके हाथसे मेरा प्राणान्त होगा तौ मैं वैकुंठके राज्यका पालन करूंगा, नहीं तौ चिरकाल पर्यंत इस राक्षसोंके राज्यकोही भोगूंगा, दोनों प्रकारसे मेरा कल्याणही होगा, इसकारण मैं रामचंद्रके समीप जाताहूँ ॥ ६० ॥ तिस सम्पूर्ण राक्षसोंके राजाने ऐसा विचार कर तथा रामचंद्र साक्षात् परमेश्वर विष्णु हैं यह जानकर उसके मनमें यह आग्रह हुआ कि विरोध करकेही रामपद पाऊं, यह ठीकही था, क्योंकि सीधे भक्तिमार्गसे भगवान् शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

परम बुद्धिवान् रावणने रात्रिभर इसप्रकार विचार करके अपनेको क्या

करना चाहिये यह निश्चय करा और प्रातःकाल होतेही रथमें बैठकर समु-द्रके परलीपार मारीचके यहाँ गया, मारीच राक्षस उससमय ऋषियोंकी समान जटा वल्कल धारे हुए अपने हृदयमें वास्तवमें गुणरहित होकर भी त्रिगुणात्मक मायाके कार्यको प्रकाश करनेवाले परमेश्वरका ध्यानकर रहाथा, उसने समाधि उतारी तब देखा कि रावण मेरे घर आया है॥ १॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ सो शीघ्रही उठकर उसने रावणको हृदयसे लगाया, और विधिपूर्वक उसका सत्कारकर आदरसत्कार किया. अनन्तर रावण स्वस्थ होकर आसनपर बैठा, तब मारीचने उससे बूझा कि हे रावण! तुम कहींको जातेथे तौ साथमें दश पांच रथ तथा बहुतसे सेवक आदि होते थे और आज तौ यहाँ इकलेही रथपर बैठकर आये हो तुम मनमें कौनसे कार्य-का विचार कररहे हो, इस समय तुम मुझे बडे चिन्ताग्रस्तसे मालूम होते हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें कुछ गुप्त करने लायक नहीं होय तौ सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे कहो, तब मैं जो तुम्हारे मनमें होगा उसी कार्यको करूँ-गा, हे राजाधिराज! यदि तुम्हारा कार्य न्यायसे अथवा धर्मसे विरुद्ध नहीं होय तो मुझसे कहो, क्योंकि उस कार्यके करनेसे मुझे पाप न लगे ॥ ६ ॥ रावण बोला कि हे मारीच! दशरथ नामवाला एक प्रसिद्ध अयोध्याका राजा था उसका बड़ा पुत्र रामचन्द्र बड़ा परा-क्रमी है ॥ ७ ॥ दशरथने उस अपने पुत्रको स्त्री और लक्ष्मण भ्राता-करके सहित बनमें निकाल दियाहै, उसको बनके ऋषि प्राणोंसे भी प्रिय हैं, वह रामचन्द्र घोर बनके विषें पंचवटीनामक रमणीय आश्रममें रहता है, विशालनेत्रवाली उसकी स्त्री अत्यन्त सुन्दर है, उसको पुरुष देखतेही मोहित होजातेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ तिस रामचन्द्रने मेरे महापराक्रमी राक्षसों-का विना अपराधही वध करडाला और खरकाभी प्राणान्त करके वह उस वनमें निर्भय होकर सुखपूर्वक निवास करताहै ॥ १० ॥ उसका अन्तः-करण बिलकुल दयाहीन है, मेरी बहन शूर्पणखा कितनी सूधी है, उसने रामचन्द्रका कोई बिगाड़ नहीं करा तथापि उसके नाक कान काटडाले॥ ११॥

इसकारण मैं तुझे सहायताके लिये तुझे साथ लेजाकर वहां जाऊंगा और रामचन्द्र वनमें नहीं होयँगे तब उसकी प्राणप्यारी सीताको हरलाऊंगा ॥ १२॥ तू मायाकरके हरिणका रूप धारण कर और लक्ष्मणसहित रामचन्द्रको आश्रमसे दूर लेजा, इतनेहीमें इधर मैं सीताको हरकर लाताहूँ ॥ १३ ॥ तू मेरी इतनी सहायता करके फिर वहाँ आकर पूर्ववत् आश्रममें निवास कर रावणने इसप्रकार कहा तो रावणको देखकर मारीचको बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगा ॥ १४ ॥ कि हे रावण! तुझे सर्वस्वका नष्ट करनेवाला यह उपदेश किसने दिया, ऐसा अमंगल उपदेश करके जो तेरा नाश होता हुआ देखनेके निमित्त निश्चिन्त बैठा होगा वह तेरा परम शत्रु है प्रथम उसका वध करना चाहिये ॥ १५ ॥ हे रावण! रामचन्द्रजीके पराक्रमका स्मरण होतेही अन्तःकरण अत्यन्त घवरा जाता है, बालकपनमेंही वह विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेके निमित्त आये थे, उससमय उन्होंने एक बाण मारकर मुझे सौ योजनपर समुद्रमें फेंकदिया, तवसे मैं उनके भयसे अत्यन्त व्याकुल रहता हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस वार्ताका वारंवार स्मरण होकर मुझे जिधर तिधर रामचन्द्रही खड़े हैं ऐसा मालूम होने लगता है ॥ १८ ॥ पहिले मनमें शत्रुता होनेके कारण फिर भी मैं एक समय तीक्ष्ण सींगवाले मृगका रूप धारण करके और अपने सदृशही प्रतापी वहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर दण्डकारण्यमें उनके आश्रमपर गया ॥ १९ ॥ सीता और लक्ष्मणकरके सहित रामचन्द्र थे सो तहाँ पहुंचकर मैं बड़े वेगसे उनको मारनेके लिये तयार हुआ, तब रामचन्द्रने मुझे देखतेही एक बाण छोंडा ॥ २० ॥ हे राक्षसोंका राजा रावण! वह बाण मेरे वक्षस्थलमें लगा और मैं घूमता घूमता इस समुद्रमें आकर गिरा, तबसे मैं बड़ा भयभीत होकर यहाँ रहता हूँ, इस स्थानमें किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ २१ ॥ और मैं भोगराशिसे भयभीत होकर निरन्तर रामचंद्रहीका ध्यान किया करता हूँ, तथा राजा, रत्न, रमणी (सुन्दर स्त्री) रथ इत्यादि शब्द यदि मेरे कानमें पड़ जाते हैं, तो उन शब्दोंमें रकार

होनेके कारण मुझे ऐसा मालूम होताहै कि रामचन्द्र आगए ऐसी शंकासे ही मैने सम्पूर्ण बाह्य कार्योंको त्याग दिया और जब निद्राके वशमें होकर मनसे रामचन्द्रकीही चिन्ता करता सोताहूँ तब स्वप्नमें रामचन्द्रकी मूर्ति दीखतीहै और शीघ्रही में जाग जाताहूँ फिर निद्रा नहीं आती, और क्या कहूँ बैठे बैठेही समयको बिताने लग जाताहूँ, इसकारण मैं तुझसे कहताहूँ कि हे राजन्! तुमभी रामचन्द्रके विषयमें दुराग्रहको छोड़कर घरको लौट जाओ, बहुत दिनोंसे चलतेआए हुए राक्षसोंके राज्यका पालन करते रहो, रामचन्द्रकी वार्ता मनमें लाओगे अथवा उनके समीप जाओगे तो सम्पूर्ण राक्षस कुल नष्ट होजायगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ मैं तेरे हितकी यह वार्ता कहताहूँ मेरे उपदेशको ध्यानमें ला रामचन्द्र साक्षात् परमेश्वर हैं उनसे विरोध न करके सूधे भक्तिमार्गसे सेवाकर, वह रघुनन्दन परमदयालु हैं, और पूर्वकालमें नारदजीसे सुने हुए वचनोंकरके मुझे यह वृत्तान्त पूर्णरीतिसे मालूम है कि सत्ययुगमें ब्रह्माजीने प्रार्थना करी थी तब उन भक्तोंके संकट हरनेवाले प्रभुने प्रसन्न होकर ब्रह्माजीसे कहा तुम्हारी क्या इच्छा है; सो मुझसे कहो उसके अनुसारही मैं कार्य करूं ॥ २५॥ २६ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे कमलनेत्र ईश्वर! आप मनुष्यका रूप धारण करके दशरथके पुत्ररूपसे भूमिपर अवतार लो, और हमारा शत्रु जो दशमुख रावण उसका शीघ्रही नाश करो ॥ ॥ २७ ॥ इससे यह सिद्ध होता है कि यह रामचन्द्र मनुष्य नहीं किन्तु साक्षात् निर्विकार नारायण मायासे मनुष्यका रूप धारण करके भूमिका भार दूर करनेके लिये वनमें आये हो, तुमको किसीको देखकर किंचिन्मात्रभी भय नहीं होता है, इसकारण हे राजन्! सुखपूर्वक अपने घरको जाओ, इतना मारीचका भाषण सुनके रावणने उसको उत्तर दिया, कि हे मारीच! यदि रामचंद्र निःसन्देह परमेश्वरही हैं, और ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मेरे मारनेके लिये मनुष्यरूप धारण करके युक्ति करके यहाँ आये हैं तौ वह सत्यसंकल्प प्रभु अपना कार्य शीघ्रही सिद्धकरैंगे, इसमें चिन्ता करनेसे क्या होगा, इसकारण मैं जहांतक होसकैगा तहांतक प्रयत्नकरके रामचंद्रके पाससे

सीताको हरकर लाऊंगा ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे वीर! यदि मेरा रणमें मरण होयगा तौ परमपदको प्राप्त होऊंगा, नहीं तौ युध्दमें रामचंद्रको मारकर सीताको लेलूंगा, और निर्भय होकर राज्य करूँगा ॥ ३२॥ इसकारण मुझसे तुझे इतनाही कहना है किं हे भाग्यवान् पुरुष! उठ विचित्र प्रकारके मृगका रूप धारण कर और लक्ष्मणसहित रामचंद्रको शीघ्रही आश्रमसे बहुत दूर निकालकर लेजा. फिर शीघ्रही घर आकर स्वस्थ बैठ. इसके अनन्तर यदि मुझे भयदायक वार्त्ता कहैगा तौ इस खड्गसे तेरा यहाँही प्राणान्त करदूंगा. इसमें कुछ संदेह नहीं है, मारीचने इस वचनको सुनकर विचार करा कि यदि रामचन्द्र मेरा वध करेंगे तौ मैं संसारबन्धनसे मुक्त होऊंगा, और यदि इस दुष्टके हाथसे मेरा मरण होगा तौ अवश्यही नरकमें पड़ना पड़ैगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा विचार करनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके हाथसेही मरणका निश्चय करके मारीच शीघ्रही उठ खड़ा हुआ, और रावणसे कहने लगा कि हे रावण! तुम परम पराक्रमी और सर्वसमर्थ हो इसकारण आपकी आज्ञा मुझे माननीही चाहिये ॥ ३७॥ इसप्रकार कहकर मारीच उसके साथ चलनेको तयार हुआ तब दोनों जनें रथमें बैठकर श्रीरामचंद्रजीके आश्रममें आए मारीचने अग्निसे तपाए हुए सुवर्णकी समान अधिक क्या कहैं, सुवर्णकाही रूप धारण करलिया उसके अंगपर और पहली बूँदे शोभायमान हो रहींथीं, उसके सींग साक्षात् रत्नोंकेहीथे खुर हीरेकेथे, नेत्र इन्द्रनीलमणिकी समान थे, कान्ति बिजलीकी समान थी, और मुख अत्यन्त सुंदर था वह मृग वनमें इधर उधर फिरने लगा ॥ ३८॥ ३९॥ और रामचन्द्रजीके आश्रमके समीपमें उसे सीताजीने देखा उससमय वह कभी भागताथा कभी समीपमें आकर खड़ा होजाता था और फिर भयभीत होकर भागजाताथा, इसप्रकार कपटसे रूप धारणकरनेवाला वह दुष्ट राक्षस सीताको मोहित करनेकेलिये इसप्रकार विचरने लगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षष्ठः सर्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

इधर रामचन्द्रको रावणका वह सम्पूर्ण कर्तव्य मालूम हुआ इसकारण उन्होंने एकान्तमें सीतासे कहा कि हे जानकी! मेरे कहनेको सुन ॥ १ ॥ रावण सन्यासीका रूप धारण करके तेरे पास आवैगा, इसकारण तू अपने आकारकी एक छायाको आश्रममें स्थापन करके अपने आप अग्निमें प्रवेश कर जा, और मेरी आज्ञासे तिस अग्निके विषें एक वर्षपर्यन्त गुप्तरूपसे निवास कर, हे सुन्दरी! निःसन्देह रावणका वध करनेके अनन्तर तू पहिलेकी समान मेरे पास प्राप्त होयगी ॥ २ ॥ ३ ॥ यह रामचन्द्रजीका भाषण सुनके सीताने वैसाही किया, मायाकी सीता बनाकर बाहर बेठाल दी और अपने आप अग्निमें प्रवेश करगई ॥ ४ ॥ मारीचने कपट करके धारण कराहुआ वह मृगका रूप इस मायाकी बनाईहुई सीताने देखा, तब वह हँसती हँसती रामचन्द्रजीके समीप जाकर नम्रतापूर्वक कहने लगी ॥ ५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! देखो देखो वह सुवर्णका मृग इधर उधर निर्भय होकर फिर रहा है, ऐसा मृग आजपर्य्यन्त किसीने भी नहीं देखा होगा, उसका शरीर रत्नजटित सुवर्णकासा दीखता है, क्योंकि उसपर चित्र विचित्र अनेक बिन्दु हैं ॥ ६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! इस सुंदर मृगको बांधकर मुझे लादो. मैं उससे क्रीड़ा करूँगी, रामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा लाकर देताहूँ' ऐसे कह धनुष लेकर निकले और जाते समय लक्ष्मणसे कहा ॥ ७ ॥ कि हे लक्ष्मण! तुम बड़ी चतुरतासे मेरी प्राणप्यारी सीताकी रक्षा करना इस वनमें अति विकराल स्वरूप धारण करनेवाले मायावी राक्षस बहुत हैं ॥ ८ ॥ इसकारण तुम यहाँ सावधान होकर पवित्र कीर्त्ति सीताकी रक्षा करते रहो, इसपर लक्ष्मणजी रामचन्द्रसे बोले कि हे देव! यह मृगका रूप धारण करनेवाला निःसन्देह मारीच राक्षस है; ऐसा विलक्षण मृग पृथ्वीपर कहाँ होसक्ता है? ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे लक्ष्मण! यदि ये मारीच ही होगा तौ भी मैं निःसंन्देह इसका वध करूँगा, और यदि सच्चा मृग होगा तौ भी सीताके चित्तविनोदार्थ

लेकर आऊँगा ॥ १० ॥ अब मैं जाताहूँ और शीघ्रही मृगको बाँधकर लाताहूँ, तुम चतुरतासे सीताकी रक्षा करनेके निमित्त सावधान रहो ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी तिस मायावी मृगके पीछे दौड़ते चले गए (शिवजी कहते हैं कि हे पार्वति! रामचन्द्र जीकी सामर्थ्य कितनी प्रचण्ड है उसको ध्यानमें दो,) क्योंकि प्राणियों-को मोहित करनेवाली और जगतरूपसे परिणामको प्राप्त होनेवाली माया उनकेही आश्रयसे रहती है ॥ १२ ॥ वह निर्विकार होकरभी केवल चैत-न्यरूप हैं उनकी सम्पूर्ण कामना सदा परिपूर्ण रहतीहै क्योंकि वह आन-न्दस्वरूप हैं तौभी उस हिरणके पीछे दौडते चलेगए, इससे (प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै) कि भगवान् भक्तोंपर दया करनेवाले और उनके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं, यह कहना सत्य है ॥ १३ ॥ इसकाणही वह भगवान् इस मृगको सच्चा नहीं है किन्तु मृगरूप धारणकरनेवाला मायावी राक्षस मारी-च है यह जानकरभी सीताकी इच्छा पूर्ण करनेके निमित्त (उसको बांध-कर लानेके निमित्त) गये. यदि ऐसा नहीं माना जाय तौ वास्तवमें श्रीरा-मचन्द्रजी नित्य परिपूर्णकाम हैं उनको आत्मस्वरूपका ज्ञान है ॥ १४ ॥ फिर उनको मृगसे अथवा स्त्रीसे कार्यही क्या था? (इससे सिद्ध हुआ कि यह सम्पूर्ण लीला भगवानने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके निमित्त करी.) वह मृग कभी समीप दीखताथा और कभी दौडता दौडता छिप जाताथा कभी बहुत दूरपर दीखने लगताथा इसप्रकार वह श्रीरामचन्द्रजीको बहुत दूर लेगया तब रामचन्द्रजीने भी ठीक जानलिया कि यह राक्षसही है ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने एक बाण लेकर तिस मृगरूपी राक्षसके ऊपर छोंडा उस बाणके लगनेके साथही मारीच अपने पहिले राक्षसरूपको धारण करके भूमिपर गिरपडा और मुखमेंसे रुधिर टपकनेलगा ॥ १७ ॥ और गिरते गिरते उस राक्षसने रामचन्द्रकी समान स्वर बनाकर हाय! हाय! मरारे मरा! हे महाबाहो लक्ष्मण! शीघ्र आकर मेरी रक्षा करो इसप्रकार पुकारा ॥ १८ ॥ अज्ञानी प्राणीभी मरणके समय जिनके नामका एकबारभी

स्मरण करनेसे सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होजातेहैं, तिन प्रभुके सामने उनका ध्यान करते ही मारीचका देहान्त हुआ और प्रत्यक्ष तिन श्रीरामचन्द्रजी-के हाथसेही बध हुआ फिर उसकी मुक्ति होनेमें सन्देहही क्या ॥ १९ ॥ उसके देहसे निकलाहुआ तेज सम्पूर्ण वनवासी पुरुषोंके देखते देखते श्रीरा-मचन्द्रजीके स्वरूपमेंही जाकर मिलगया उस समय देवताओंको बडा आश्चर्य हुआ ॥ २० ॥ वह कहने लगे कि यह मारीच तौ मुनियोंका भक्षण करनेवाला महापापी था देखो इसके कैसे दुष्ट कर्म थे और कैसे उत्तमपदको प्राप्त हुआ यह निःसन्देह श्रीरामचन्द्रकीही महिमा है ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें यह एकसमय श्रीरामचन्द्रजीके छोडे हुए बाणसे विंधकर दूर जाकर गिरा था तबसे यह भयभीतहो घर द्रव्य आदि जो वस्तु थी सबका त्याग करके श्रीरामचन्द्रजीकाही ध्यान करता रहताथा ॥ २२ ॥ हृदयमें सदा श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेसे इसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो-गएहोंगे, और इसका रामचन्द्रजीके ही हाथसे मरण हुआ तथा अन्तका-लमें रामचन्द्रका दर्शन मिला इसकारण इसको तिन आनन्दमय प्रभुके स्वरूपकी प्राप्ति हुई ॥ २३ ॥ प्राणी ब्राह्मण हो वा राक्षस हो अथवा पापी हो या अधर्म करनेवालाभी यदि देहत्याग होनेके समय वह रामचन्द्र-जीका स्मरण करै तौ उत्तम पदको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ वह देवता इसप्रकार आपसमें वार्तालापकरके स्वर्गको चलेगए, इधर श्रीरामचन्द्रजी मनमें यह विचार करने लगे कि इस अधम राक्षसने मरतेसमय हा लक्ष्मण! इसप्रकार मेरे भाषणका अनुकरण करके प्राण त्यागे इसका क्या कारण है? मेरे चिल्लानेकी समान इस शब्दको सुनकर सीताने जाने क्या जाना होगा? ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसप्रकार चिन्तासे श्रीरामचन्द्रजीका अन्तःकरण व्याकुल होगया और वह श्रीरामचन्द्रजी उस दूर जगहसे पीछेको लौटे इधर सीताजी तिस दुष्ट मारीचका वाक्य कानमें पड़तेही भयभीत होगई और अत्यन्त दुःखित होकर लक्ष्मणजीसे कहने लगी कि हे लक्ष्मण! शीघ्र जा-ओ तुम्हारे भ्राताको उस राक्षसने बड़ी भारी पीड़ा दीहै, क्या तुमने अपने

भ्राताका 'हा लक्ष्मण !' यह शब्द नहीं सुना ? इसपर लक्ष्मणजी बोले कि हे देवी जानकी ! वह रामचन्द्रका शब्द नहीं है, किन्तु किसी दुष्ट राक्षसनेमरते समय इसप्रकार पुकारा होगा, हे देवि ! यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध करै तौ क्षणभरमें त्रिलोकीका नाश कर सक्ते हैं और अतुलप्रभाव होनेके कारणही देवता जिनका पूजन करतेहैं वह प्रभु ऐसे दीन वचन किसप्रकार उच्चारण करसक्तेहैं? सीताजीने क्रोधकरके लक्ष्मणजीके उपर दृष्टि डाली और नेत्रोंसे अश्रुधाराका प्रवाह चलने लगा ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसी दशामें सीताजी लक्ष्मणजीसे कहने लगी कि हे लक्ष्मण ! मुझे तुम्हारी बुद्धि टेढ़ी दिखती है. हे दुष्ट ! तेरी इच्छा ऐसी मालूम होतीहै कि भ्रातापर कोई दुःख आन पड़े मुझे मालूम होताहै कि रामचन्द्रजीके नाशकी इच्छा करनेवाले भरतने ही तुझे हमारे साथ भेजा है ॥ ३२ ॥ रामचंद्रजीका प्राणान्त होनेपर तू मुझे ले जायगा इस निमित्तही तू यहाँ आया है, परन्तु भलीप्रकार जान ले कि तुझे मेरी प्राप्ति नहीं होयगी, देख मैं अभी प्राणोंको त्यागे देतीहूँ ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजी तुझे स्त्रीको हरकर लेजानेवाला और ऐसा बनावटी नहीं जानतेथे मैं तुझसे सत्य कहती हूँ कि रामचंद्रजीके सिवाय दूसरेका तेरा क्या और भरतका क्या कदापि स्पर्श नहीं करूंगी ॥ ३४ ॥ सीताजी इसप्रकार कहकर अपने हाथोंसे अपनी छातीको पीटने लगीं और रुदन करना प्रारंभ करदिया सीताजीका वह भाषण लक्ष्मणजीने श्रवण करना नहीं चाहा इसकारण उन्होंने कानोंपर हाथ रखलिये और अत्यन्त दुःखित होकर सीताजीसे कहने लगे कि हे चण्डी ! तू अत्यन्तही खोटे स्वभाव वाली स्त्री है जो मुझसे ऐसा कहती है इसकारण तुझे धिक्कार है तूं यहांसे नष्ट होजायगी इसप्रकार लक्ष्मणजीने कहकर सीता वन देवताओंको सौंप दी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और अपने आप अत्यन्त दुःखितहोकर धीरे धीरे श्रीरामचंद्रकीही ओरको चलदिये सो रावणकोभी उस समय मौका मिला सो वह सन्यासीका स्वरूप धारण करके सीताके पास आया उस समय रावणके

हाथमें दण्ड कमण्डलू शोभायमान होरहेथे उस रावणको देखतेके साथही सीताजीने नमस्कार करके भक्तिपूर्वक पूजा करी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और कन्द मूल आदि समर्पण करके कहने लगी कि हे मुने ! आप आये यह बड़ी सुन्दर वार्ता हुई, यह फल मूल खाकर सुखसे विश्राम करिये ॥ ३९ ॥ मेरे पति अब शीघ्रही आवेंगे और आपका इससेभी अधिक सत्कार करेंगे यदि आपकी इच्छा होय तौ यहाँ विश्राम करिये ॥ ४० ॥ सन्यासी बोला कि हे सुन्दरि! तेरा स्वरूप इतना मनोहर मालूम होय है कि जिसका वर्ण नहीं होसका तेरे नेत्र कमलके पत्रोंकी समान हैं सो तू कौन है? और तेरा पति और इस राक्षसोंसे भरेहुए वनमें किसकारण है? सो मुझसे कहो तौ मैं भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करूँ ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन्! अयोध्या नगरीके विषें दशरथ नामवाले महाशूर वीर और श्रीमान् राजा थे, उनकेही यह रामचन्द्र सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठ पुत्र हैं ॥ ४२ ॥ मैं उनकी धर्मपत्नी जनक राजाकी कन्या सीता हूँ उनके लक्ष्मण नामक छोटे भ्राता हैं वह अपने भ्रातापर बड़ी प्रीति करते हैं ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञाको मानकर १४ वर्षपर्यन्त वनमें निवास करनेके अर्थ आये हैं हे महाराज ! आप अपना वृत्तान्त कहिये उसको श्रवण करनेकी मेरी इच्छा है ॥ ॥ ४४ ॥ वह संन्यासी कहने लगा कि हे जानकी ! मैं पौलस्त्यका पुत्र राक्षसोंका राजा रावण हूँ, तेरे प्राप्त होनेकी इच्छासे व्याकुल होकर मैं तुझे अपनी राजधानीमें लेजानेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ ४५ ॥ रामचन्द्र वैराग्यका वेष धारण करे हुए रहते हैं उनके साथ रहकर तुझे क्या लाभ होगा मेरे यहाँ चलकर निवास कर और मेरे साथ भोगोंको भोग और इन वनवासके दुःखोंको त्याग दे ॥ ४६ ॥ यह भाषण सुनतेही सीता भयभीत होगई और उससे कहने लगी कि हे दुष्ट! जो तू ऐसा अयोग्य भाषण करता है इसकारण तेरा रामचन्द्रजीके हाथोंसे नाश होजायगा ॥ ४७ ॥ क्षणभर ठहर रामचन्द्रजी अपने छोटे भ्राता करके सहित आतेही होंगे अरे मुझे भय दिखानेमें तेरी क्या सामर्थ्य है? तू ऐसा साहस करता है

जैसे कोई खरगोस सिंहकी स्त्रीको ललकारे अरे तेरा यह साहस योग्य नहीं है ॥ ४८ ॥ रामचन्द्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर तू भूमिपर पडाहुआ दीखैगा इसप्रकार सीताजीके भाषणको सुनकर रावण क्रोधमें भरगया ॥ ४९ ॥ और उसने अपना भयंकर पर्वतसमान रूप धारण करा उस शरीरके दश मुख वीस भुजा और कृष्ण वर्ण मेघमंडलकी समान कान्ति थी ॥ ५० ॥ उस स्वरूपको देकखर वनदेवता और वनके सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगए फिर रावणने 'सीताके चरण जबतक पृथ्वीसे लग रहे हैं तबतक उडाकर लेजानेमें मेरी सामर्थ्य नहीं है (क्योंकि सीता पृथ्वीकी पुत्री है)' ऐसा विचार करके अपने नखोंसे सीताके चरणोंके नीचेकी जमीन खोदी और भुजाओंसे ऊपर उठाकर रथमें बैठाला और तत्काल आकाश मार्गसे चलदिया, वह जनककुमारी सीता हा राम! हा लक्ष्मण! ऐसे कहकर रुदन करने लगी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वह दीन स्त्री भयसे इतनी व्याकुल होगई कि इधर उधरको नहीं देखसकी किन्तु उसकी दृष्टि नीचे भूमिकी ओरही लगी रही सीताके उस दीन रुदनको सुनकर पक्षिराज जटायु शीघ्रही पर्वतके शिखरपरसे उतरा उसकी चोंच अत्यन्त तीक्ष्ण थी वह रावणसे कहने लगा कि अरे जिसप्रकार यज्ञमें मंत्रोंसे पवित्र करेहुए पुरोडाशको कोई देखे नहीं और कुत्ता लेजाय तिसीप्रकार इस वनमें आश्रमके विषें कोई नहीं है ऐसा देखकर तू त्रिलोकीके स्वामीकी स्त्रीको चुराकर लेजाता है, परन्तु जबतक मैं बैठाहूँ तब तक सीताको लेजानेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ इसप्रकार कहकर जटायुने अपनी तीक्ष्ण चोंचसे उसके रथका चूरा चूरा कर दिया, घोड़ोंको घायल करके टुकड़े टुकड़े करदिये, और पैरोंसे धनुषका चूरा करदिया ॥ ५६ ॥ तब रावणने क्रोधमें भरकर सीताको छोड़ दिया, और खड्ग लेकर तिस बुद्धिवान पक्षिराजके पंख काटडाले ॥ ५७ ॥ उससमय वह पक्षिराज जटायु मृतकसा होकर पृथ्वीपर गिरपडा, परन्तु कुछ थोडा थोडा प्राण चलता रहा इधर रावणने

मायासे फिर दूसरा रथ बनालिया उसमें सीताको बैठाला और शीघ्रही अपनी राजधानीको चलागया ॥ ५८ ॥ सीताको अपनी रक्षा करनेवाला कोई न मिला तब हा राम! हा आनन्ददायक! हा त्रिलोकीपते रामचन्द्र! मैं संकटमें पडीहुई हूँ आज आप मेरे ऊपर दृष्टि क्यों नहीं देते ॥ ५९ ॥ हे रघुपते! यह राक्षस आपकी धर्मपत्नीको लिये जाता है इससे छुडाओ, हे लक्ष्मण! तुम श्रेष्ठ गुणोंके समुद्र हो, मैंने तुम्हारा अपराध करा है परन्तु उस अपराधकी ओर ध्यान मतकरो और इससमय आकर मेरी रक्षा करो ॥ ६० ॥ हे लक्ष्मण! मैंने तुम्हैं कहनेके अयोग्य अपशब्द कहे, उन अपशब्दरूपी वाणोंसे तुम्हारे हृदयमें घाव होरहेहोंगे, परन्तु अब मेरे ऊपर क्षमा करो. इसप्रकार सीता बराबर विलाप करनेलगी, परन्तु रावणने उधर कुछभी ध्यान नहीं दिया, और रामचन्द्रजीके आनेके भयसे सीताको लेकर शीघ्रही वायुकी समान वेगसे चलने लगा ॥ ६१ ॥ रावण आकाश मार्गसे सीताको लेकर चला तब वह नीचेको मुख करे बैठी हुई थीं इतनेहीमें पर्वतके शिखर पर बैठे हुए पांच वानर तिस कमलसदृश मुखवाली सीताने देखे उससमय सीताने तत्काल शरीरपरसे आभूषण उतारे और दुपट्टेका अधाटुकड़ा फाड़कर उसमें बांधे तथा उन वानरोंके द्वारा रामचन्द्रजीको सम्पूर्ण वृत्तान्त मालूम होजाय इस अभिप्रायसे पर्वतपर फेंकदिये ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ फिर वह रावण समुद्रको उल्लंघन करके लंकामें गया और सीताको अपने रणवासमें एकान्तस्थलके विषें लगीहुई अशोकवाटिकामें स्थित करदिया, उसके चारोंओर रक्षा करनेके निमित्त राक्षसीं नियत करदीं, और माताकी समान पालन करनेलगा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ सीताजीकी विपत्तिकी अवस्था कहाँतक वर्णन करैं, बहुत दिन व्यतीत होनेपर बराबर दुबली होनेलगीं अत्यन्त दीनसी होगईं, किसी दिनभी उबटना स्नान आदि नहींकरा, और दुःखके कारण मुख शुष्क होगया, अत्यन्त व्याकुल होकर सीताजी हा राम! हा राम! इसप्रकार विलाप करती हुई राक्षसियोंके समूहमें रहने लगी ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

इधर श्रीरामचन्द्रजी उस मायावी और अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले मारीच राक्षसका वध करके लौटकर आश्रमको आनेके निमित्त चलदिये सो दूरसेही उन्होंने देखा कि लक्ष्मण आरहे हैं; उस समय लक्ष्मणजी दीन हो रहेथे और मुख बिलकुल सूख रहाथा श्रीरामचन्द्रजी परम बुद्धिवान् और सर्वज्ञ थे, इसकारण उन्होंने जो कुछ वार्ता हुई थी सब जानगए, परन्तु इससमय उन्होंने अपने मनमेंही यह विचारा कि मैंने जो मायाकी सीता उत्पन्न करी है, यह वार्ता लक्ष्मणको मालूम नहीं है, यद्यपि मुझे सम्पूर्ण वृत्तान्त मालूम है तथापि अज्ञानीकी समान शोक करना चाहिये, क्योंकि यदि मैं उदासीन होकर कुटीमें चुप्प बैठा रहूँगा तो करोडों राक्षसोंके वधका उपाय किसप्रकार होगा? ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ यदि मैं साधारण कामी पुरुषकी समान दुःखसे व्याकुल होकर सीताके निमित्त शोक करूँगा तबहीं क्रमक्रमसे सीताको ढूंढते २ राक्षसोंकी राजधानीमें जानेका अवसर मिलेगा तब मैं कुटुम्बसहित रावणका वध करूँगा. सीताको तो मैंने इससमय अग्निमें गुप्त करही दिया, और रावणका वध करनेके अनन्तर मैं सीताको लेकर अयोध्याको जाऊंगा, ब्रह्माकी प्रार्थनासे मैंने मनुष्यरूप धारण करा है ॥ ५ ॥ ६ ॥ मैं इस मनुष्यरूपसे कुछ कालपर्यन्त पृथ्वीपर रहूँगा तदनन्तर जो पुरुष मायाकरके धारण करेहुए इस मेरे मनुष्य अवतारको श्रवण करैंगे उनको अनायासही मुक्तिकी प्राप्ति होयगी, परन्तु उनको मेरी भक्तिके मार्गपर चलना चाहिये; श्रीरामचन्द्रजीने अपने मनमें इसप्रकार निश्चय करा कि इतनेहीमें क्या देखतेहैं, कि लक्ष्मणजी पास आगए, तबतो लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! तुम मेरी प्रिया सीताको छोडकर यहाँ क्यों चले आये, जानकीको राक्षसोंने छीन लिया अथवा भक्षण करलिया ॥ ९ ॥ उस समय लक्ष्मणजीने रुदनकरके सीताके कहेहुए दुर्वचन सुनाए और हाथ जोडकर रामचन्द्रजीसे कहने लगे कि हे रघुवीर! जब सीताने राक्षसका पुकारा हुआ 'हा लक्ष्मण!' यह

शब्द सुना ॥ १० ॥ तब तुम्हारे भाषणकी समान उस वाक्यको सुनतेही घबडा गईं और रोतीं रोतीं मुझसे कहने लगीं कि शीघ्रही तहाँ जाओ मैंने सीताजीसे कहा कि हे देवि! यह शब्द राक्षसका है, रामचंद्रका नहीं है तुम निश्चिंत रहो ॥ ११ ॥ इसप्रकार मैंने उन पतिव्रताको समझाया उससे उनका चित्त तौ व्याकुलतारहित नहीं हुआ और उलटे जो अपशब्द मुझे कहे वह मैं आपके सामने उच्चारण नहीं करसक्ता ॥ १२ ॥ मैं कानोंपर हाथ रखके वहाँसे निकलकर तुम्हारे दर्शन करनेके निमित्त यहाँ आयाहूँ, यह सुनकर रामचंद्रजीने लक्ष्मणसे कहा कि हे लक्ष्मण! तथापि तुमने अनुचितही किया ॥ १३ ॥ अरे स्त्रीके कहेको सत्य मानकर तू उस सुंदरमुखीको छोड़कर चला आया यह क्या किया निःसंदेह राक्षस उसको ले गए होंगे, अथवा भक्षण करगए होंगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार चिंतासे व्याकुल होकर शीघ्रही अपने आश्रममें आए तहाँ जानकीको जब किसी स्थानमें भी न नहीं पाया, तब तौ दुःखसे अत्यंत व्याकुल होकर विलाप करने लगे ॥ १५ ॥ हा प्रिये तू कहाँ चली गई? पूर्ववत् आज मुझे आश्रममें नहीं दीखती है, क्या मेरा हास्य करनेके निमित्त अथवा मुझे मोहित करनेके निमित्त लीलासे कहीं छिप रही है ॥ ॥ १६ ॥ इसप्रकार कहकर उन्होंने वनमें सर्वत्र ढूंढ़ा, परंतु जानकी कहीं भी नहीं मिली तब तौ वनकी स्थावर जङ्गम वस्तुओंसे बूझने लगे कि हे वनदेवताओं! मेरी प्रिया सीता कहाँ है सो बतादो ॥ १७ ॥ हे पशुपक्षियो! हे वृक्षो! मेरी प्रिया सीता मुझे दिखादो इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करने लगे परन्तु सीता कहींभी देखनेमें नहीं आई महादेवजी बोले कि हे पार्वति! वास्तवदृष्टिसे देखो तौ श्रीरामचन्द्रजी सर्वज्ञ हैं परन्तु उन्होंने अज्ञानियोंकासा वर्ताव करा वह परमानन्दरूप होकर भी सीताके निमित्त शोक करने लगे वास्तवमें वह कोईभी क्रिया नहीं करते हैं परन्तु इससमय चारों ओर दौड़ते फिरते हैं ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ वह सत्यस्वरूप और अहंकार ममता रहित तथा नित्य आन-

न्दमय हैं, परन्तु इससमय मेरी सीता मेरी स्त्री इसप्रकार कहकर और अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे ॥ २० ॥ हे पार्वति! श्रीरामचन्द्रजी किसीभी विषयमें आसक्ति नहीं करते हैं परन्तु इससमय माया करके सांसारिक व्यवहार करने लगे यह वार्ता सत्य है, अज्ञानी पुरुषोंको तौ आसक्त हुएसे दीखते हैं, परन्तु जो तत्वज्ञानी हैं उनको सदा श्रीरामचन्द्रजी सत्यस्वरूपहीं प्रतीत होते हैं ॥ २१ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको साथ लेकर सम्पूर्ण वनमें ढूँढते ढूँढते एक टूटा हुआ रथ फटा हुआ छत्र, टुकडे टुकडे हुआ धनुष, और पृथ्वीपर पड़ा जुआ, देखा, तब तौ लक्ष्मणजीसे कहने लगे कि हे लक्ष्मण! यह देखो कोई राक्षस जानकीको लेगयाथा. परन्तु उसको जीतकर किसी दूसरेने जानकी छीन ली है, ऐसा मालूम होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ फिर कुछ थोड़ी दूर आगे चले तौ तहाँ श्रीरामचंद्रजीने पर्वतकी समान एक रुधिरसे भीजा हुआ शरीर पडा देखा तब तौ फिर कहने लगे ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! निःसंदेह यह दुष्ट जीवही तिस रूपवती जानकीको भक्षण करके अत्यंत, तृप्त हो, अब यहाँ एकान्तमें आकर शयन कर रहा है, देखो मैं अब इस राक्षसको मारे डालताहूँ ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! शीघ्रही मेरा धनुप और बाण लाकर दे, श्रीरामचंद्रजीके इस बचनको सुनतेही जटायु भयभीतसा होगया, और श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा ॥ २६ ॥ कि हे भगवन्! मैं अपने कर्मोंसेही मररहाहूँ, मुझे मतमारो, तुम्हारा कल्याण हो, हे तात! मैं जटायु हूँ, राक्षस नहीं हूँ, मैं तुम्हारी स्त्रीको चुराकर लेजानेवाले रावणके सन्मुख गयाथा, हे शत्रुनाशक ! तब मेरा और उनका युद्ध हुआ, मैंने उसके घोडे मारडाले, और रथ तोडडाला, और धनुषके टुकड़े टुकड़े कर डाले, तब उसने मेरे ऊपर खड्गका प्रहार करा, तिससे घायल होकर मैं यहाँ पडा हूँ, हे त्रैलोक्यनाथ! अब मैं प्राणोंको त्यागूंगा, मेरीओर कृपादृष्टिसे देखो, श्रीरामचन्द्रजीने यह भाषण सुनके दीन और कंठमें आयेहैं प्राण जिसके ऐसे तिस जटायुकी ओर देखा ॥

॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ उस समय दुःखके कारण श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंमें आंसू भर आये, और उन्होंने जटायुको अपने हाथोंसे स्पर्श करके कहने लगे ॥ ३० ॥ कि हे तात जटायो! मेरी सुन्दरमुखी स्त्रीको कोन लेगया सोवता? मेरा कार्य करनेके निमित्त तुम्हारा प्राणान्त हुआ, इस कारण तुम मेरे प्रिय बान्धव हो, ॥ ३१ ॥ जटायु अत्यन्त खिन्न स्वरसे कहनेलगा उसके मुखसे इस समय पर्यन्त रुधिर वह रहथा, उस दशाहीमें बोला कि हे रामचन्द्र! रावणनामवाला एक बड़ा प्रतापी है ॥ ३२॥ वही जनक राजकुमारी सीताको लेकर दक्षिण दिशाकी ओर गया है, इससे आगेको बोलनेकी मुझे शक्ति नहीं अब मैं तुम्हारे सामनेही प्राणोंको त्यागताहूँ ॥ ३३ ॥ हे पवित्र आत्मा श्रीरामचन्द्रजी! मरण कालमें मुझे आपका दर्शन हुआ यह बड़े भाग्यकी वार्ता है, तुम साक्षात् परमेश्वर विष्णु भगवान हो, माया करके मनुष्यरूप धारण कर रहेहो ॥ ३४ ॥ हे रघुवीर! अन्तकालमें तुम्हारा दर्शन होनेसे मैं मुक्त होगया, तुम अपने हाथोंसे मुझे फिरभी एकवार स्पर्श करो तौ मैं तुम्हारे लोकको प्राप्त होऊंगा ॥ ३५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने बहुत अच्छा कहकर उसके शरीरपर हाथ फेरा, उसका शुद्ध भाव देखकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और मुस्कुराने लगे, तदनन्तर जटायु प्राणोंको त्यागकर भूमिपर गिरपड़ा ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रजीने साक्षात् बंधुकी समान तिस जटायुका शोक किया, नेत्रोंमें दुःखके कारण आंसू भर आये, और लक्ष्मणजीसे काष्ठ मँगाकर तिस जटायुका अपने हाथोंसे दाह करा, ॥ ३७ ॥ तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीकरके सहित अत्यंत दुःखित हुए और स्नान करके वनमें जाकर एक मृग मारा और उसके मांसके टुकडे तहाँ आसपास हरी घासपर अनेक स्थानमें फैलाकर रक्खे और सम्पूर्ण पक्षी इन टुकडोंको भक्षण करैं तिससे पक्षिराज जटायु तृप्त हो, ऐसा संकल्प करा तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि हे जटायो! मेरे पदको प्राप्त हो, और अबहीं सब लोकके देखते २ मेरी स्वरूपतारूप मुक्तिको प्राप्त

होजाओ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इतनेहीमें अति शीघ्र तिस पुण्यात्मा जटायुको दिव्य स्वरूपकी प्राप्ति हुई, और सूर्यकी समान तेजस्वी उत्तम विमानपै चढ़कर शंख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट आदि आभूषणोंसे और अपने प्रकाशकरके आकाशको प्रकाशित करने लगा, उससमय जटायु पीताम्बर धारण करेहुए था, मूर्ति निर्मल थी, उस-केही समान रूप धारण करनेवाले विष्णु भगवानके चार पार्षद चारोंओर उसकी पूजा कर रहे थे, योगियोंके समूह स्तुति कररहे थे, उस समय जटायुने अतिशीघ्रतासे पुकारा और हाथ जोड़कर उन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जटायु बोला मैं साक्षात् परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको निरन्तर प्रणाम करताहूँ, जिन अनन्त शक्ति प्रभुके असंख्य गुण हैं, उनके देश कालकी मर्यादा नहीं है, वह पुराणपुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत्का पालन और प्रलय और उत्पत्तिकारण वही हैं, शान्तिही उनके उत्तम स्वरूपकी शोभाहै ॥ ४४ ॥ इनका स्वरूप अनन्तसुखरूप है, लक्ष्मी अपने प्रेमके कटाक्ष उनके ऊपर सदा डालती रहतीहैं, उन्होंने ही इंद्रादि और ब्रह्मादिकोंके दुःख दूर करेहैं वही सर्वश्रेष्ठ प्रभु भक्तोंको वरदेनेमें उत्कण्ठित रहते हैं, और हाथोंमें धनुष बाण धारण करते हैं, ऐसे श्रीराचन्द्रजीको मैं निरंतर प्रणाम कर-ताहूँ ॥ ४५ ॥ जिनका स्वरूप त्रिलोकीमें अत्यन्त सुन्दर है जो एकही स्तुति करनेके योग्य हैं जिनकी कान्ति सैंकडों सूर्यकी समान हैं, भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेका जिनका स्वभाव है, जो प्रीतिके प्रथम स्थान अन्तः-करणमें निवास करते हैं, मैं उनही श्रीरघुनन्दनकी शरणागत हूँ ॥ ४६ ॥ जिनका नाम संसाररूपी वनके भस्म करनेके निमित्त दावानलरूप है, महादेव आदि देवता भी जिनका पूजन करते हैं, जिन परम दयालु ईश्वरने सहस्रों अथवा करोडों दैत्योंका नाश करनेकेलिये अवतार धारण कराहै, जिनके अंगकी कान्ति यमुना नदीकी समान श्यामवर्ण है, दुःखोंको दूर करनेवाले तिन परमेश्वरकी मैं शरणागत हूँ ॥ ४७ ॥ जो प्रभु निरंतर

संसारकी चिन्तामें फँसे हुए पुरुषोंको प्राप्त नहीं होते हैं, संसारको त्यागकर विरक्त हुए मुनियोंको जिनका दर्शन नित्य मिलता है, जिनके चरण इस संसाररूपी समुद्रको पार होनेके निमित्त सुन्दर नौकारूप है, उनही रघुकुमार श्रीरामचंद्रकी शरणागत हूँ ॥ ४८ ॥ जो परमात्मा शिवजी और पार्वतीके हृदयमें निवास और जिनोंने कृष्णावतार धारण करके गोवर्द्धनपर्वतको उठालियाथा बडे बडे देवता और दैत्योंके अधिपति जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, जो देवताओंको इच्छित वर देते हैं, तिन रघुनाथकी मैं शरणागत हूँ ॥ ४९ ॥ जो पुरुष परद्रव्य और परस्त्रीका त्याग करते हैं, दूसरोंके गुण और ऐश्वर्य देखकर जिनके मनको संतोष होता है, और जिनके अन्तःकरण दूसरोंके हितकारक कार्योंमें सदा तत्पर रहते हैं, उनही पुरुषोंको जिन कमलनयन रघुनन्दनकी सेवा सुसाध्य है, तिन परमेश्वर रामचंद्रजीकी मैं शरणागत हूँ॥५०॥जिनका मुख किंचिन्मात्र मुस्कुरानेसे अतिसुन्दर और प्रफुल्लित दीखता है, जिनका दर्शन मुझे अति सहजमें हुआ है, जिनके अंगकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान नीलवर्ण है, जिनके नेत्रोंकी शोभा श्वेत कमलकी समान सुन्दर है, जो शिवजीके पिता जो ब्रह्मा उनके भी पिता हैं, तिन श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरणागत हूँ ॥ ५१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! जिसप्रकार जलसे भरे हुए अनेक पात्रोंमें सूर्य प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूपवाला दीखता है, तिसीप्रकार तुम सत्व, रज, तम, इन तीन गुणोंको अंगीकार करते हो, तब इस जगतमें ब्रह्मा विष्णु और शिव इन भेदोंसे अनेक प्रकारके प्रतीत होते हो, इन्द्रादिक देवता तुम्हारीही स्तुति करतेहैं तिनही आपकी मैं स्तुति करताहूँ ॥ ५२ ॥ जिन श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्ति सैंकडों और करोंड़ों कामदेवकी समान सुन्दर हैं, शतपथ ब्राह्मणमें कही हुई भावनाके द्वारा जिनकी अनायासही प्राप्ति होजाती है, बड़े योगियोंके अन्तःकरणमें जो नित्य प्रकाशित होते हैं, भक्तोंके दुःखोंको दूरकरनेवाले तिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरणागतहूँ ॥५३॥ जटायुके इस प्रकार स्तुतिकरनेपर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होगए और कहने लगे तेरा

कल्याण हो अब तू मेरे श्रेष्ठ विष्णुपदको प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य तेरे कहेहुए इस स्तोत्रको नियमसे श्रवण करेंगे अथवा लिखेंगे उनको मरणसमयमें मेरा स्मरण होयगा, और अन्तमें मेरी स्वरूपता रूप मुक्ति मिलैगी ॥ ५५ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वाक्य सुनकर उस समय जटायुका अन्तःकरण आनन्दसे भरगया, श्रीरामचंद्रजीके समान रूपको प्राप्त हुआ, वह जटायु ब्रह्माजीके भी पूजनीय विष्णुलोकको चलागया ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृत भाषाटीकायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीको साथ लेकर दूसरे वनमें गए, और दुःखित होकर फिर तहाँ सीताजीको ढूँढने लगे ॥ १ ॥ तहाँ उन दोनोंने एक विलक्षण आकृतिका राक्षस देखा उसके वक्षस्थलमेंही बड़ा भारी मुख था, नेत्र आदि कुछ नहीं थे, उस राक्षसके हाथ चारकोश पर्यंत लम्बे थे, अनेक प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले उस दैत्यका नाम कबंध था ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ राम लक्ष्मण उसकी भुजाओंकी बीचकी भूमिमें फिर रहेथे, चारों ओर भुजाओंका घेरा पड़गया, तब एकाएकी उनकी दृष्टि उस भयंकर राक्षसपर पड़ी ॥ ४ ॥ तब रामचन्द्रजी हँसते हँसते लक्ष्मणजीसे कहने लगे कि हे लक्ष्मण! देखो यह राक्षस है, इसके नेत्र और चरण नहीं है, छातीपर मुख हैं ॥ ५ ॥ हाथोंके बीचमें जो कुछ भी आजाता है निःसन्देह उसकोही भक्षण करके निर्वाह करता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है, कि हम दोनोंभी इसकी भुजाओंके बीचमें आगए हैं ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण! बाहर निकल जानेका कोई मार्ग नहीं दीखता, अब यहाँ हमको क्या करना चाहिये यह तो हम दोनोंको खाजायगा ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि हे श्रीरामचन्द्रजी? अब विचार करनेसे क्या होयगा? हम दोनो जने सावधान होकर इस राक्षसकी एक एक भुजा काट डाले ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने इस बातको स्वीकार करके खड्गसे राक्षसका दांह हाथ काट डाला, और लक्ष्मणजीने भी सहजमेंही उसका बाँया हाथ काट डाला ॥ ९ ॥ तब उस दैत्यको बड़ा आश्चर्य हुआ और इन दोनोंसे बूझने लगा कि तुम दोनों कौन हो? मुझे मालूम होताहै कि तुम कोई श्रेष्ठ देवता हो नहीं तौ मेरे हाथोंके काटनेकी इस लोकमें क्या स्वर्ग लोकके देवताओंभी किसीको शक्ति नहीं है ॥ १० ॥ तदनन्तर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी कुछ हँसते हुए उससे कहने लगे कि हे राक्षस! महाराज दशरथ नामक एक ऐश्वर्यवान् और परम बलवान् अयोध्याके राजा थे ॥ ११ ॥ मैं उनकाही पुत्र रामचन्द्र हूँ यह परम बुद्धिवान् पुरुष मेरे भ्राता लक्ष्मण हैं मेरी स्त्री त्रिलोकीमें सर्वोपरी सुन्दर जनककुमारी सीता है ॥ १२ ॥ मैं मृगया (सिकार) के निमित्त गयाथा इतनेहीमें सीताको कोई राक्षस लेगया, उसको ढूँढता हुआ मैं इस घोर वनमें आयाहूँ ॥ १३ ॥ परन्तु यहाँ तेरी भुजाओंके लपेटमें फँसगया इस कारण प्राणोंकी रक्षा करनेके निमित्त हमने तेरे हाथ काटडाले अब तू हमें यह बता कि ऐसे भयंकर रूपको धारण करेहुए तू कौन है ॥ १४ ॥ कवन्ध बोला कि हे श्रीरामन्द्रजी! आप मेरे पास आये इसकारण मैं धन्य हूँ मैं पहिले गंधर्वोंका राजा था उत्तम रूप और युवावस्थाको प्राप्त होनेसे गर्वमें होकर मैं सम्पूर्ण जगतमें फिरा, मुझे देखतेही सुन्दर सुन्दर स्त्रियोंका मन मोहित होजाताथा, हे श्रीरामचन्द्रजी! मैंने तप करके ब्रह्माजीसे अमर होनेका वर लिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर एकसमय अष्टावक्र मुनि मिले तब मुझे आठ जगहसे उनके टेढ़े शरीरको देखकर हँसी आगई तिससे मुनिने क्रोधमें होकर मुझे शाप दिया कि हे दुष्ट! हे दुर्बुद्धे! तू राक्षस होजा ॥ १७ ॥ तपके प्रभावसे अष्टावक्र मुनिकी कान्ति चारों ओर फैल रहीथी मैंने उनके चरणोंमें प्रणाम करा और प्रार्थना करी, तब उन्होंने दयायुक्त होकर मेरे शापका अंत कहदिया ॥ १८ ॥ कि त्रेतायुगमें साक्षात् नारायण दशरथके पुत्र रूपसे अवतार लेंगे और तेरे चार

कोशपर्यंत फैले हुए तेरे हाथोंको काटेंगे ॥ १९ ॥ तव तू शापसे मुक्त होकर अपने पहिले रूपको प्राप्त होयगा, इसप्रकार उनके शाप देतेही मुझे अपना शरीर राक्षस कैसा दीखने लगा ॥ २० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! फिर मैं एकसमय क्रोधकरके इन्द्रके सामने दौड़ा, तव इन्द्रने भी मेरे मस्तकपर वज्रका प्रहार करा ॥ २१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! उससमय तत्काल मेरा शीर नीचे कोखमें घुसगया और चरण बिलकुल नष्ट होगये, परन्तु ब्रह्माजीके वरदानसे वज्रका प्रहार लगनेसे मेरा मरण नहीं हुआ ॥२२॥ मेरे शरीरमें मुख न देखकर सवको दया आई और वह इंद्रसे वोले कि यह मुखके विना किसप्रकार धारण कर सकेगा? ॥ २३ ॥ तव इंद्रने मुझसे कहा कि तेरे पेटमेंसे मुख निकलैगा, और चार कोश लम्बे हाथ होंगे अव यहाँसे जा ॥ २४ ॥ इंद्रके इसप्रकार कहतेही मैं यहाँ आकर रहने लगा, अब जो कुछ वनमें मेरे हाथोंमें आजाता है, उसको ही भक्षण करके नित्य निर्वाह करताहूँ, परन्तु हे पुण्यपुरुष ! इससमय तुमने मेरे वह हाथ काट डाले ॥ २५ ॥ अव आपसे मेरी इतनीही प्रार्थना है कि तुम मुझे किसी अग्नि और आगसे भरेहुए गड्ढेमें डाल दो. हे रघुकुलोत्तम ! तुम अग्निसे मेरा दाह कर देगें तो मुझे अपने पहले रूपकी प्राप्ति होजायगी और फिर मैं तुम्हे तुम्हारी स्त्रीके मिलनेका मार्ग वताहूँगा, उसने इसप्रकार कहा तव श्रीरामचन्द्रजीने तत्काल लक्ष्मणजीसे एक गढ़ा खुदवाया, और उसमें उस राक्षसको रखकर काष्ठोंसे दाह करा, तव शीघ्रही उस राक्षसके शरीरमेंसे कामदेवकी समान सुन्दर सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसने रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्ग नमस्कार करा और हाथ जोडकर भक्तिके कारण गद् गद् हुई वाणीसे इसप्रकार कहने लगा ॥ २९ ॥ गन्धर्व बोला कि श्रीरामचन्द्रजी ! आज मेरा मन आपकी स्तुति करनेके निमित्त बड़ी उत्कण्ठासे उत्साह कर रहा है, तुम्हारे स्वरूपका आदि और अन्त नहीं है, तुम्हारे स्वरूपकी इयत्ता नहीं है, अर्थात् यह नियम नहीं होसक्ता कि तुम अमु-

कही स्थानमें रहतेहो, किन्तु तुम सर्व व्यापी हो, मनमें तुम्हारा चिन्तन करनेकी शक्ति नहीं है, और वाणी तुम्हारा वर्णन नहीं करसक्ती है ॥ ३० ॥ तुम्हारा सूक्ष्मरूप विराट और हिरण्यगर्भनामवाले स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों शरीरोंसे पृथक् है, और ज्ञानमय होनेके कारण उसको योगी जन भी अतिकठिनसे जान सके हैं, तुमको छोड़कर और सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ अनात्मक अर्थात् जड़ हैं, और हे प्रभो! यह मन आपसे भिन्न जड़ हैं, इसकारण इस मनको आपका ज्ञान किसप्रकार होसके है? ॥ ३१ ॥ बुद्धि और आत्मा इन दोनोंके प्रतिविम्बकी एकतारूप सम्बन्धको जीव कहते हैं, बुद्धि आदि सम्पूर्ण जड़ पदार्थोंको साक्षी जड़ही है, ऐसे आपके स्वरूपके विषें मन और वाणी नहीं प्रवेश करसके हैं, अज्ञ पुरुष आपके स्वरूपकी विषें सम्पूर्ण प्रपंचका आरोप अज्ञान करके करें हैं, वास्तवमें आपका स्वरूप निर्विकार और सबका आत्मा है, हिरण्यगर्भ तुम्हारा सूक्ष्म शरीर है और विराट आपका स्थूल देह कहावै है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तुम्हारा सूक्ष्म रूप हृदय कमलके विषें ध्यान करनेका विषय होय है, और जिसका ध्यान करनेसे ध्यान करनेवाले पुरुषका कल्याण होता है, और उस सूक्ष्म स्वरूपके ध्यानकी सिद्धि होनेपर प्राणीको भूत भविष्य और वर्तमानरूप त्रिकालमें होनेवाली संसारकी सम्पूर्ण वार्ताओंका ज्ञान होजाताहै ॥ ३४ ॥ तुम्हारे अण्डगोलरूप स्थूल देहके चारोंओर एकसे एक अधिक ऐसे महत्तत्व. अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह सात आवरण हैं, इसमें रहनेवाला विराटजीव विश्वके धारणका आश्रय है सब प्राणियोंको अन्तमें प्राप्त होने योग्य कैवल्यरूप मुक्ति तुमही हो, चौदह लोक तुम्हारेही शरीरके अंग कहलाते हैं, पाताल लोक तुम्हारे चरणका तलुआ है, महातल लोक पार्ष्णि अर्थात् चरणके ऊपरका भाग है ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ रसातल लोक तुम्हारे गुल्फ हैं, तलातल लोक तुम्हारी पिण्डली कहलाती है, हे श्रीरामचन्द्र! सुतल लोक तुम्हारे घुटने हैं तथा वितल लोक तुम्हारी जंघा है ॥ ३७ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! अतल लोक तुम्हारी

जंघाओंके नीचेका भाग है, और पृथ्वी तुम्हारी कमर है, स्वर्गलोक तुम्हारा वक्षस्थल है, महर्लोक तुम्हारा कण्ठ है ॥ ३८ ॥ जनलोक तुम्हारा मुख है, और तपोलोक तुम्हारा शंखाकार ललाट है. प्रभो श्रीरामचन्द्रजी! सत्यलोक सदा सर्वकाल तुम्हारे मस्तकपर रहता है ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी भुजा हैं, दिशा तुम्हारे कान है, अश्विनीकुमार तुम्हारी नासिका है, अग्नि तुम्हारा मुख है इसप्रकार शास्त्रोंमें वर्णन कराहै ॥ ४० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं चंद्रमा तुम्हारा मन कहाता है, कालही तुम्हारी चढ़ी हुई विकराल भ्रकुटि है, और बृहस्पति तुम्हारी बुद्धि है, ॥ ४१ ॥ रुद्र तुम्हारा अहंकाररूप हैं हे निर्विकारस्वरूप तुम्हारा भाषण वेद है, यमराज तुम्हारी दाढ़े हैं, तारागण तुम्हारे दांतोंकी पंक्ति हैं, ॥४२॥ जगतको मोहित करनेवाली माया तुम्हारा हास्य है, सृष्टि तुम्हारा कटाक्ष है, धर्म तुम्हारा अग्रभाग है, और अधर्म तुम्हारा पृष्ठभाग कहता हैं ॥ ४३ ॥ हे रघुवीर! रात्रिदिन तुम्हारा निमेषोन्मेष (नेत्रोंका खुलना मिचना) है, सातों समुद्र तुम्हारा उदर (पेट) है हे, प्रभो! नदियें तुम्हारी नाडी है ॥ ४४ ॥ हे ईश्वर! वृक्ष और वनस्पति तुम्हारे रोमांच हैं, वर्षा तुम्हारा वीर्य है, और ज्ञानशक्ति तुम्हारी महिमा है, तुम्हारे स्थूल (विराट) शरीरका वर्णन इस प्रकार है ॥ ४५ ॥ जो पुरुष इस तुम्हारे स्थूल शरीरके विषें मनको लगाते हैं, उन्हें अनायासहीमें मोक्षकी प्राप्ति होती हैं इसके सिवाय दूसरा मोक्षकी प्राप्तिका कोईभी सहज और श्रेष्ठ उपाय नहीं है ॥ ४६ ॥ इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुम्हारे स्थूल शरीकाही ध्यान करताहूँ, जिसका ध्यान करनेसे मनुष्योंके अन्तःकरणमें प्रेमरस टपकने लगता है, सच्चे प्रेमरसका लक्षण यह है कि इष्ट देवका स्मरण होतेही मनुष्योंके शरीरपे रोमांच खड़े होजाते हैं, यही दशा आपके विराटस्वरूपके ध्यान करनेवालेकी होती है ॥ ४७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम्हारे स्थूल शरीरका ध्यान करतेही जीवकी मुक्ति होजाती है, स्थूल रूपका

ध्यान रहो परन्तु हे रघुवीर! मैं इस समय साक्षात् सामने खड़े हुए तुम्हारे इस स्वरूपका ध्यान करताहूँ ॥ ४८ ॥ जो हाथोंमें धनुषबाण धारण करे हुए हैं, जिनके अंगकी कान्ति श्यामवर्ण है, और जो जटा और वल्कल से शोभायमान हो रहे हैं, और जिनकी युवावस्थाकी मूर्ति लक्ष्मणजीको साथ लेकर सीताजीको ढूँढ रही है ॥ ४९ ॥ हे रघुनन्दन! यहही मूर्ति सदा मेरे अन्तःकरणमें निवास करै, शंकर भगवान सर्वज्ञ हैं; परन्तु पार्वतीकरके सहित सदा तुम्हारे इस स्वरूपकाही ध्यान करते रहते हैं, हे रघुवीर! तुम्हारा नाम जीवोंको अज्ञान समुद्रसे तारनेवाला है आ "तत्वमसि" आदि महावाक्योंकरके प्रतिपादन करे हुए ब्रह्मरूप अर्थका वर्णन करनेवाला है, शिवजी महाराज सदा अपने मनमें प्रसन्न होकर काशीपुरीमें प्राणत्याग करनेवाले जीवोंको तुम्हारे "रामराम" इस नाम के मंत्रका उपदेश करते हैं, इसकारण हे जानकीनाथ! तुम निःसन्देह परमेश्वर हो ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यह संपूर्ण प्राणी तुम्हारी मायासे मोहित हो रहेहैं इसकारण तुम्हारे यथार्थ स्वरूपका ज्ञान नहीं होता है, हे श्रीरामचंद्र! हे मंगलदायक! हे सृष्टिकर्त्ता! हे परमेश्वर! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है॥ ५३॥ हे अयोध्यापते! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है,लक्ष्मणजी तुम्हारी सदा सेवा करते हैं, ऐसे रूपको धारण करनेवाले हे जगन्नाथ! मेरी रक्षा करो, मुझे संसारसे तारो, तुम्हारी माया मुझे मोहित न करे ॥ ५४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि हे गन्धर्व! तू पुण्यवान् है, तेरी भक्ति और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ अब तू मेरे परमपदरूपी सनातन स्वर्गलोकको प्राप्त हो, योगी पुरुष अपनी योगशक्तिसे इस देह करके सहित उस लोकमें जानेको समर्थ होते हैं ॥ ५५ ॥ तूने जो मेरी इससमय स्तुति करी है सो वेदके तात्पर्योंसे भरी है, जो पुरुष अनन्यभावसे भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करैंगे वह अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले संसारबन्धनको दूर करके नित्य और अनुभवसे जानने योग्य मेरे स्वरूपको प्राप्त होयँगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥९॥

दशमः सर्गः १०

इसप्रकार वर मिलनेपर वह गन्धर्व चलते समय श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि हे रघुनन्दन! वह जो आगे दीख रहाहै उस आश्रममें एक शवरी नामवाली भीलनी रहती है ॥ १ ॥ वह परमभक्ति करनेवाली तुम्हारे चरणोंमें परमभक्तिसे मन लगाकर रही है; इसलिये हे महाभाग्यवान पुरुष! उसके पास जाओ वह तुमसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहैगी ॥ २ ॥ ऐसे कहकर वह गन्धर्व सूर्यके समान तेजस्वी विमानमें बैठकर विष्णुके पद (स्वर्गलोक) को चला गया. शिवजी कहते हैं कि हे पार्वति! देखो रामनामके स्मरणका ऐसा फल होता है ॥ ३ ॥ कबन्धके वनमें सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जीवोंको बड़ा उपद्रव था, श्रीरामचन्द्रजी उस भयानक वनको छोड़कर हौले हौले चलकर शवरीके आश्रममें पहुँचे ॥ ४ ॥ लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीको दूरसेही आता हुआ देखा, सो शीघ्रही आनन्दसे उठकर सन्मुख आई ॥ ५ ॥ और चरणोंमें पडकर उठ खडी हुई, उससमय उसके नेत्रोंमें आनन्दके आंसु भरआए, फिर स्वागत पूँछकर दोनोंका सत्कार करा और उत्तम आसनपर बैठाया, ॥ ६ ॥ फिर भक्तिपूर्वक उत्तम प्रकारसे श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणके चरणोंका जल अपने शरीरपर छिड़का, तदनन्तर बड़े आनन्दसे अर्घ्यादि सामग्रीकरके सहित पूजनके द्रव्योंसे लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीका विधिपूर्वक पूजन करा, और श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ इकट्ठे करके धरे हुए अमृततुल्य फल भक्तिपूर्वक अर्पण करे, और चन्दनादि विलेपनकरके सहित सुगन्धित पुष्पोंसे फिर उनके चरणोंका पूजन करा ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ अतिथिसत्कार होनेके अनन्तर लघुभ्राताकरके सहित श्रीरामचन्द्रजी स्वस्थ होकर बैठे तब परमभक्ति शवरीने हाथ जोड़कर उनसे वार्ता करनेका प्रारम्भ करा कहने लगी कि हे रघुवीर! इस आश्रममें मेरे गुरुमहर्षि रहतेथे और मैंभी अनेक सहस्रों वर्षोंसे उनकी सेवा करती हुई पास रहतीथी, अब वह ब्रह्मपदको चलेगए, जातेसमय वह मुझसे कहनेलगे, कि तू सावधान होकर यहीं निवास कर, ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

साक्षात् सनातन परम ब्रह्म परमात्मा राक्षसोंका वध और ऋषियोंकी रक्षा करनेके निमित्त दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्र रूपसे प्रकट हुए हैं ॥ १३ ॥ वह यहाँ शीघ्रही आवेंगे तू और विषयों चित्त न देकर एकाग्र चित्तसे केवल उनकाही ध्यान करती हुई सावधान रहो, इससमय प्रभु चित्रकूट-पर्वतपर आश्रममें रहते हैं ॥ १४ ॥ उनके आनेपर्यन्त तू अपने शरीर-की रक्षाकर, श्रीरामन्द्रजीका दर्शन होनेके अनन्तर अपने शरीरको भस्म करके तू उनके पदको प्राप्त होयगी ॥ १५ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! मैं उनकी आज्ञाके अनुसार वर्ताव करके केवल तुम्हारा ध्यान करनेहीमें तत्पर रही, आजपर्यन्त मैंने तुम्हारी बाट देखी आज गुरुके वचन सफल हुए ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा दर्शन मेरे गुरुकोभी देखो नहीं हुआ, और मैं मूढ और हीन जातिमें उत्पन्न होनेवाली स्त्री हूँ, तथापि मुझे दर्शन हुआ, यह मेरा अहोभाग्य है, वास्तवमें तुम्हारा रूप अप्रमेय है ॥ १७ ॥ तुम्हारे दासका दास ऐसी परम्परा सैंकडोंपर्यन्त चली जाय तौ उस दासकीभी सेवा करनेका मुझे अधिकार नहीं है, फिर प्रत्यक्ष तुम्हारी सेवा करनेकी योग्य-ता तो कहाँसेही होसक्ती है ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तुम्हारे स्वरूपको मन जान नहिं सक्ता है और वाणी वर्णन नहीं करसक्ती है, न जाने मुझे आज आपका दर्शन किस पुण्यके प्रतापसे हुआ, हे देवाधिदेव ! तुम्हारी स्तुति किसप्रकार करनी चाहिये सो मेरे विचारमें नहीं आता मैं क्या करूँ मेरे ऊपर अनुग्रह करो ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे शबरी ! पुरुष स्त्री अथवा जाति नाम और आश्रम आदि मेरी सेवा करनेके मुख्य उपाय नहीं हैं, केवल भक्तिही मुख्य उपाय है ॥ २० ॥ पुरुष बहुतसे यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ और अन्य कर्म करैं, परन्तु मेरी विना भक्ति करे मेरा दर्शन मिलना कठिन होता है ॥ २१ ॥ हे भामिनी ! मैं इसकारण तुझसे संक्षेपसे भक्तिके उपाय कहताहूँ, साधु पुरुषोंकी सङ्गति करना भ-क्तिका प्रथम उपाय है ॥ २२ ॥ दूसरा मेरी कथाका बाँचना, तीसरा मेरे गुणोंका कीर्तन करना, और चौथा उपाय वेदरूपी मेरे वाक्योंका व्या-

ख्यान करना है ॥ २३ ॥ हे शुभे ! रामरूप मानकर गुरुकी निष्कपट होकर नित्य सेवा करना पाँचवाँ उपाय है, पवित्र आचरणमें प्रीति करना, चोरीका त्याग करना, ब्रह्मचर्यका धारण करना, कुछभी संग्रह न करना नियमोंका पालन; आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाधाय, इन नियमोंको धारण करना, धारण ध्यान और समाधि करना, तथा मेरी पूजा करनेमें निष्ठा रखना, यह छटा उपाय कहाता है. मंत्रकाण्डमें कही हुई विधिके अनुसार मेरे मंत्रकी साङ्गोपाङ्ग उपासना करना यह सातवां उपाय कहाता हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ मेरे भक्तोंका मुझसेभी अधिक पूजन करना, सम्पूर्ण प्राणियोंमें, ईश्वरभाव रखना, बाह्य विषयोंसे विरक्त रहना, और मन तथा बाहरकी इन्द्रियोंको वशमें रखना, यह आठवां उपाय है और मेरे तत्वस्वरूपका विचार करना नवमां उपाय है, हे शबरी ! इसप्रकार मेरी भक्ति नवप्रकारकी है, इसका उपाय जो कोई करता है फिर वह स्त्री होय अथवा पशु पक्षि होय उसकी मेरे विषे भक्ति होती है, हे सुलक्षणे ! शुद्ध प्रेमही भक्तिका लक्षण है ॥२६॥२७॥ ॥२८॥ भक्तिके उत्पन्न होतेही मेरे तत्वका साक्षात्कार होता है, और मेरे स्वरूपका साक्षात्कार होतेही तत्काल प्राणीको इस जन्ममेंही मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै इससे यह स्पष्ट सिद्ध होताहै कि निःसन्देह मोक्षका उपाय भक्तिही है, जिसका पहिले एक उपाय सिद्ध हो जाता है उसके क्रमसे सम्पूर्ण उपाय सिद्ध हो जाते हैं, इसकारण निःसन्देह भक्तिही मुक्ति है, हे शबरी तू मेरी भक्ति करती है इसकारण मैं तेरे पास प्राप्त हुआ हूं ॥२९॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अब मेरा दर्शन होनेके कारण तुझे निःसन्देह मुक्तिकी प्राप्ति होयगी, यदि तुझै मालूम होय तो मुझे बता ! कि मेरी कमलसदृश नेत्रवाली सीता कहाँ है ॥ ३२ ॥ उस सुन्दररूपवती मेरी प्रियाको कौन ले गया ? ॥ ३३ ॥ शबरी बोली-कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम सृष्टिकर्त्ता सर्वज्ञ देव हो, इसकारण सब कुछ जानते हो, तथापि मुझसे बूझते हो इसका कारण हे प्रभो ! तुम लोकोंकी समान वर्त्ताव करके सबको दिखाते हो,

यहही है ॥ ३४ ॥ इसकारण सीता इससमय कहाँ रहती हैं, वह स्थान तुम्है बताती हूँ, कि. सीताजीको रावण लेगया है, और इससमय वह लङ्कामें है ॥ ३५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! यहाँ थोरेही एक पम्पा नामक सरोवर है, और उससे लगा हुआही ऋष्यमूक नामक बड़ा भारी पर्वत है ॥ ३६ ॥ अतुल प्रतापी वानरोंका राजा सुग्रीव अत्यन्त भयभीत होकर चौदह मंत्रियोंकरके सहित तिस पर्वतपर यही निरन्तर निवास करता है, ३७॥ उसको अपने वालीनामवाले भ्राताका बड़ा भय है, केवल इस पर्वतपरही वह वाली नहीं आता है, क्योंकि उसको एक ऋषिका भय है, हे प्रभो! तुम तहाँ जाकर सुग्रीवसे मित्रता करो, तब वह तुम्हारे संपूर्ण कार्य्य पूर्ण करेगा, हे रघुवीर! अब मैं तुम्हारे सामनेही अग्निमें प्रवेश करतीहूँ ॥ ३८॥ ॥ ३९ ॥ हे राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी! तुम साक्षात् षड्गुण ऐश्वर्य्य संपन्न विष्णु हो, क्षणमात्र खड़े रहो, मैं इस शरीरको भस्म करके तुम्हारे श्रेष्ठ पदको जातीहूँ ॥ ४० ॥ शबरीने इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रार्थना करके अग्निमें प्रवेश करा. और क्षणमात्रमें अज्ञानके बन्धनसे छूटकर श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अति दुर्लभ मोक्षको प्राप्त होगई ॥ ४१ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति! जगन्नाथ भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायँ तो प्राणियोंको कौन पदार्थ दुर्लभ है? देखो शबरी अधमकुल (भिल्लकुल) मे जन्म पाकरभी उनकी कृपासे मुक्त होगई ॥ ४२॥ भिल्लनीको यदि मोक्ष मिलगया तो फिर उत्तम ब्राह्मणकुलसे जन्म लेनेवाले सदाचरणी पुरुषोंको श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेसे मुक्तिके मिलनेमें संदेहही क्या है? ॥ ४३ ॥ हे प्रवीण पुरुषों! इसकारण मुझे तुमसे इतना कहना है कि-भगवान् श्रीरामचंद्रजीकी भक्ति मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है, इसकारण तुम अज्ञानके नानाप्रकारके चरित्र जो मंत्रसाधनके आडंभर उनका दूरसेही त्याग करके उत्सुक होकर श्रीरामचंद्रजीकी पूर्ण सेवा करो,

उनके चरणकमल इच्छाको पूर्ण करनेवाले प्रत्यक्ष कामधेनुरूपही हैं, वह श्यामसुंदर प्रभु शिवजीकेभी हृदयमें नित्य निवास करते हैं ॥ ४४ ॥इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे मुरादाबादनिवासि भरद्वाजगोत्रोद्भव गौड़वंशावतंसपण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अरण्यकाण्ड समाप्त

श्रीः ।

अध्यात्मरामायणभाषा ।

किष्किन्धाकाण्ड ।

श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मणाविरचित

जिसमें

हनुमानमिलाप, रामसुग्रीवकी मैत्री, जयतमानमर्दन, वानरोंको सीताका खोज लानेके लिये सब दिशामें जाना.

वही

रामकथाभिलाषियोंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजी

इन्होंने

"गुजराती प्रिंटिंग" प्रेसमें छपवायकर प्रसिद्ध किया.

संवत् १९५२ शके १८१८

॥ किष्किन्धाकाण्ड ॥ ४ ॥

दोहा—मिलन पवनसुत, दुखहरण, रामसुकण्ठसुसङ्ग ॥
दलन इन्द्रसुत, हरिभ्रमण, किष्किन्धासुप्रसङ्ग ॥ १ ॥

दोहा—यहि असार संसारमें, रामनाम है सार ॥
जपत बेगही होइनर, बिनप्रयास भवपार ॥ २ ॥

दोहा—जो किष्किन्धा काण्डको, कथा सुनै, चितलाय ॥
मुक्तिपदारथ पायसो, गर्भवास नहिं आय ॥ ३ ॥

दोहा—यह किष्किन्धा काण्डको, रामचरित्र पवित्र ॥
श्रवण युगलमें भ्रमणकर, हर भवबन्ध विचित्र ॥ ४ ॥

श्रीः ।

अथ किष्किन्धाकाण्ड ।

श्रीशिवजी बोले, कि—हे पार्वति! तदनन्तर लक्ष्मणकरके सहित श्रीरामचंद्रजी धीरे धीरे पम्पासरके तटपर पहुँचे उस श्रेष्ठ सरोवरको देखकर बड़े आश्चर्य्यको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ उस सरोवरकी चौड़ाई एक कोशकी थी, और उसमें निर्म्मल अगाध जल था, और वह सरोवर कमल, कल्हार, और बबूले आदि अनेक पुष्पोंकरके मंडित था ॥ २ ॥ और हंस, कारण्डव, तथा चक्रवाक इत्यादि पक्षियोंसे शोभायमान था, और जल,कुक्कुट(जलमुर्ग) तथा कोयष्टि (कोयल) व क्रौञ्च अर्थात् कुररपक्षीके जिस सरोवरमें शब्द होरहे थे ॥ ३ ॥ और वह सरोवर अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वेलोंसे भरा हुआ था; और वह पम्पासर तरह तरहके फूलोंसे युक्त वृक्षोंकरके चारों ओर घिरा हुआथा, और जिस प्रकार महात्माओंका निर्मल चित्त होता है, तिसप्रकार उस पम्पासरका जल था, और कमलोंके परागसे जिस सरोवरका जल सुगन्धित था ॥ ४ ॥श्रमको दूर करनेके अर्थ तिस सरोवरमें लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेके अनंतर जलपान करके तिस सरोवरके तटपर शीतल मार्गसे चले ॥ ५ ॥ जटा और वल्कलसे शोभित धनुर्धारी परमपराक्रमी जितेन्द्रिय श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ऋष्यमूक पर्वतके धीरे धीरे चलतेहुए अनेक प्रकारके वृक्षोंकी और पर्वतकी शोभाको देखने लगे ॥ ६ ॥ सुग्रीव, हनुमान् आदि चार वानरोंकरके युक्त उस पर्वतपर बैठाथा; उसने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणको सामने आता हुआ देखो और भयके कारण पर्वतके शिखरपर चढ़ा गया ॥ ७ ॥ और भयसे घबडाकर हनुमानसे कहने लगा कि—हे मित्र! वीरोंमें उत्तम ये दोनों कौन हैं? यह तुम ब्राह्मणका वेष धारण करके जाओ और मालूम करो ॥ ८ ॥ क्या यह दोनों मेरे नाश करनेके अर्थ वालीके भेजे हुए तौ मेरे सन्मुख

नहीं आ रहे हैं, सो तुम संभाषण कर इन दोनोंके चित्तकी बातको पहिं-चानो ॥ ९ ॥ यदि उनके चित्तमें कुछ कपट मालूम होय तौ मुझको अंगुलीसे संकेत करदेना; तुम विनयपूर्वक नम्र होकर उनके चित्तकी बात ठीक ठीक जान आओ ॥ १० ॥ हनुमान सुग्रीवके वाक्यको श्रवणकर वैसेही ब्राह्मण वेष धारणकर श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख गये और विनयपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! वीरोंमें सन्मानको प्राप्त होने योग्य तरुण अवस्थावाले! आप दोनों कौन हैं? दो सूर्य मण्डलकी समान आपके शरीरकी कान्तिसे दशों दिशा शोभायमान होरहीं हैं ॥ १२ ॥ मुझे ऐसा मालूम होता है कि आप त्रिलोकीको रचनेवाले जगत्के कारण जगदोद्धार प्रधान पुरुष हो ॥ १३ ॥ माया करके पृथ्वीके भारके हरनेके अर्थ, लीला करके भक्तोंके पालनके अर्थ, मनुष्यरूपसे विचरण करते हो ॥ १४ ॥ मुझे प्रतीत होता है, कि—आप परम पुरुष हो और इस लोकमें क्षत्रियका अवतार लेकर विचरते हुए, लीलाकरकेही सम्पूर्ण जगत्का पालन, और राक्षसोंका नाश करनेके अर्थ उद्यत हुए हो ॥ १५॥ तुम स्वतंत्र सम्पूर्ण जगत्को प्रेरणा करनेवाले, सबको अंतर्यामी और नरनारायण रूपको धारण करके इस लोकमें विचरते हो, ऐसा मुझे प्रतीत होता है ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे कहने लगे, कि-हे लक्ष्मण! इस ब्रह्मचारी ब्राह्मणको देखो, निश्चयकरके इसने अनेकवार व्याकरण शास्त्र सुना है ॥ १७ ॥ इस ब्राह्मणने इतना भाषण करा, परन्तु कोईभी अशुद्ध नहीं निकला; तदनन्तर ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी हनुमानसे बोले॥ ॥ १८ ॥ कि हे ब्राह्मण ! मैं दशरथराजाका पुत्र रामचन्द्र हूँ, और यह मेरा लघुभ्राता लक्ष्मण है, मैं पिताके वचनको पालनेके अर्थ अपनी स्त्रीकरके सहित आयाथा, और तिस दण्डकवनमें रहताथा ॥ १९ ॥ तहांपर मेरी स्त्री सीताको किसी राक्षसने हरलिया. तिस सीताको ढूंढनेकेलिये मैं यहां आयाहूँ, हे ब्राह्मण ! तुम यह तौ बताओ कि तुम किसके पुत्रहो?और तुम्हारा नाम क्या है? ॥ २० ॥ ब्राह्मण वेषधारी हनुमानजी कहने लगे;

कि—परमप्रवीण सुग्रीव जो चारमंत्रियों करके सहित इस पर्वतके शिखर-पर बैठाहै ॥ २१ वह वालिका छोटा भ्राता है, तिस दुष्टात्मा वालिने उसे निकाल दिया है और स्त्री छीन लीहै ॥ २२ ॥ सो उस दुष्टात्मा वालीके भयसे वह इस ऋष्यमूक पर्वतपर रहताहै, हे परम प्रवीण! मैं सुग्रीवका मंत्री पवनकुमार हूँ ॥ २३ ॥ अंजनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, और मेरा प्रसिद्ध नाम हनुमान है, हे रघुवंशमणि श्रीरामचंद्रजी! उस सुग्रीवके साथ आपकी मित्रता होना योग्य है (क्योंकि स्त्रीका हरण होनेसे तुम दोनोंकी इस समय एकसीही दशा है) ॥ २४ ॥ आपकी स्त्रीका हरण करनेवाले का वध करनेमें वह सहायक होयगा, वहाँपर इसीसमय चलें, यदि आपकी इच्छा होय तो आइये ॥ २५ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले, कि-हे हनुमन्! मैं भी तिस सुग्रीवके संग मित्रता करनेको आया हूँ, और मैं भी उसकी मित्रताका जो कार्य है सो निःसन्देह करूँगा ॥ २६ ॥ तदनन्तर हनुमा-नूजी अपने स्वरूपको प्रकट करके श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे, कि—हे श्री-रामचन्द्रजी! आप दोनों मेरे कन्धोंपर चढ़ जाइये मैं पर्वतके ऊपर ले चलूँ-गा ॥ २७ ॥ वालिके भयसे चार मंत्रियोंकरके सहित सुग्रीव रहता है, इसके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी उन हनुमानूजीके कन्धोपर चढ़गये ॥ २८ ॥ तव महाबलवान् हनुमान् क्षणमात्रमें उन श्रीरामच-न्द्रजी और लक्ष्मणजीको पर्वतके उपर लेगये, और वृक्षकी छायामें उन दोनोंको बैठालदिया ॥ २९ ॥ फिर हनुमानूजी सुग्रीवके पास जाकर हाथ जोड़ कहने लगे, कि—हे राजन्! श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी आये हैं आप भयभीत मत हूजिये ॥ ३० ॥ और शीघ्र उठिये, मैंने श्रीराम-चन्द्रजीसे मित्रता करनेका योग ठहराया है, आप अग्निको साक्षी देकर उनसे शीघ्र मित्रता करो ॥ ३१ ॥ तदनन्तर सुग्रीव अति हर्षसे उठे, और श्रीरामचन्द्रजीके समीप आकर एक वृक्षकी शाखाको स्वयं तोड़ कर रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीको आसनके अर्थ देतेहुए ॥ ३२ ॥ और हनुमानजी लक्ष्मणजीके अर्थ देतेहुए, और लक्ष्मणजीभी सुग्रीवके अर्थ देते

हुए, सब जने स्थिर होकर अतिहर्षसे बैठे ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणजीने श्रीरामचंद्रजीका वनवास होना सीताजीका हरण होना. यह संपूर्ण वृत्तांत आदिसे अंततक कह सुनाया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार लक्ष्मणजीके कहेहुए वचनोंको सुनकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि, हे राजेन्द्र! मैं सीताकी शोध करूँगा ॥ ३५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! मैं शत्रुओंके नाश करनेके समयमें आपकी सहायता करूँगा;और मैंने जो कुछ देखा है,सो हे श्रीरामचंद्रजी! श्रवण करो, मैं कहताहूँ ॥ ३६ ॥ एक समयमें मंत्रियोंकरके सहित पर्वतके शिखरपर बैठाथा; उससमय कोई राक्षस उत्तम स्त्रीको लिये आकाश मार्गमें जाताथा ॥ ३७ ॥ और उसके मुखसे "राम राम" ऐसा शब्द निकलता जाताथा; उसने हम सबको पर्वतके शिखरपर बैठाहुआ देखकर शीघ्रही आभूषणोंको उतार अपने दुपट्टेमें बांधा, और हमारी ओर देकखर नीचेको डालदिया, और विलाप करतीही रही; वह राक्षस उसको लेकर चलागया; हे स्वामिन्! मैंने वह आभूषण शीघ्रही गुहामें डालदिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ अब आप उन आभूषणोंको देखकर पहिचान लीजिये कि-वह आपके हैं या नहीं? इसप्रकार कहकर तिस सुग्रीवने आभूषण लाकर श्रीरामचन्द्रजीको दिखाये ॥ ४० ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन आभूषणोंको वस्त्रमेंसे खोलके देखकर बारंबार हा सीता! इसप्रकार कहने लगे; और उन आभूषणोंको अपनी छतीपर रखकर सांसारिक पुरुषकी समान रुदन करने लगे ॥ ४१ ॥ उससमय भाई लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीको धीर बँधाकर कहने लगे, कि—हे भ्राता! थोड़े कालमेंही सुग्रीवकी सहायतासे संग्राममें रावणका वध करके पतिव्रता जानकी आपको मिलेंगी॥ ४२॥ सुग्रीवभी कहने लगा, कि—हे श्रीरामन्द्रजी! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि संग्राममें रावणका वध करके आपको जानकी समर्पण करूँगा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उन दोनोंके समीपमें हनुमान्‌जीने अग्निको प्रज्वलित करा; तब श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव यह दोनों अग्निको साक्षी करके तथा निष्कपटपनेसे भुजाओंको उठाकर परस्पर आलिंगन करके मिले, फिर सुग्रीव श्रीराम

चन्द्रजीके समीपमें बैठा और श्रीरामचन्द्रजीके विषें प्रेम होनेके कारण इनसे अपना वृत्तान्त कहने लगा; कि हे सखे! मेरा वृत्तान्त सुनो; जो कि वालिने मेरे साथ पहिले वर्त्ताव किया है ॥ ४४॥४५॥४६ ॥ एकसमय मय दैत्यका पुत्र बडा मदोन्मत्त मायावी नामक एक दैत्य किष्किन्धामें आकर बडा सिंहनाद करके वालिसे कहने लगा, कि—मुझसे युद्धकर; वाली इस प्रकार उस दैत्यके कहनेको न सहसका, और क्रोधसे लाल लाल नेत्र करके निकल आया, और उस दैत्यके बडी जोरसे एक घूंसा मारा ॥४७॥४८॥ वह दैत्य उस प्रहारसे घवड़ागया और दौड अपनी गुहाकी ओरको चला, तब वाली और मैंभी उसके पीछे दोडा, परन्तु वालीने इस मायावीको गुहामें घुसा देखकर क्रोधपूर्वक मुझसे कहा, कि-तू बाहर खड़ा रहो और मैं गुहाके भीतर जाताहूँ; इसप्रकार कहकर वह वाली अनन्तर गुहामें घुसगया और एकमास पर्यन्त न निकला ॥ ४९ ॥ ५० ॥ एक मासके अनन्तर गुहामेंसे बहुतसा रुधिर निकला, मैंने उसको देख वालीके मरणका निश्चय करके अत्यन्त दुःख माना ॥ ५१ ॥ तदनन्तर एक पत्थरकी शिलासे गुहाके मुखको ढककर स्थानको लौट आया और तहाँ सबसे कहा, कि-गुहामें वालीका राक्षसने प्राणान्त करदिया ॥ ५२ ॥ यह सुनकर सब अत्यन्त दुःखित हुए, मेरी इच्छा न होनेपरभी मंत्रियोंने मुझे राज्यतिलक करदिया ॥ ५३ ॥ हे शत्रुसूदन! मैं कुछकालपर्यन्त राज्यका पालन करता रहा, तदनन्तर वालीने आकर क्रोधपूर्वक मुझसे कठोर वाक्य कहे॥ ५४ ॥ और अनेक प्रकारसे मेरा तिरस्कार करके मुष्टिप्रहार करा; तब मैं भयके मारे नगरसे निकलकर भागआया ॥ ५५ ॥ सब लोकोमें घूमकर इस ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करताहूँ; वह वाली ऋषिके शापसे इस पर्वतपर नहीं आसक्ता है ॥ ५६ ॥ हे प्रभो! वह मूढबुद्धि उसदिनसे मेरी स्त्रीको स्वयं भोगताहै, इसकारण मैं स्त्रीहीन और स्थानभ्रष्ट होकर अत्यन्त दुःखित होरहाहूँ ॥५७॥ अब आपके चरणकमलोंका स्पर्श करनेसे कुछ दुःख दूर हो जायगा, राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजी मित्रके दुःखको सुनकर अत्यन्त दुःखित

हुए॥ ५८ ॥ और कहनेलगे, कि-हे मित्र! मैं शीघ्रही स्त्रीका हरण करनेवाले तुम्हारे शत्रुको नष्ट करदूंगा; इसप्रकार सुग्रीवके सन्मुख श्रीरामचंद्रजीने प्रतिज्ञा करी ॥ ५९ ॥ तब सुग्रीव कहने लगा, कि-हे राजेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी! वाली वीरोंके समूहमें अद्वितीय बलवान् है, देवताभी उसका पराजय करनेको समर्थ नहीं होते हैं, फिर आप उस वालिका वध किस प्रकार करेंगे ॥ ॥ ६० ॥ हे वीरशिरोमणि! मैं वालीके बलवीर्य्यका थोडासा विषय आपसे कहताहूँ, श्रवण करिये; एकसमय दुन्दुभिनामक एक महाबली महाशरीरवाला भयंकर दैत्य भैंसका रूप धारण करके रात्रिके समय किष्किन्धामें आया, और हे श्रीरामचन्द्रजी! युद्ध करनेके निमित्त वालीको बुलाने लगा॥ ६१ ॥ ६२ ॥ वाली उसके घमण्डको न सहनकर अत्यन्त क्रोधसें भरगया, और उस भैंसेका रूप धारण करनेवाले दैत्यके दोनों सींगोंको पकडकर पृथ्वीपर फेंक दिया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर एक चरणसे उसके शरीरको दाबकर और दोनों हाथोंसे उसके बडे शिरको तोडकर घुमाके पृथ्वीपर पटक दिया ॥ ६४ ॥ वह शिर एक योजन दूरपर मातंग ऋषिके आश्रमके समीपमें जाकर गिरा; हे श्रीरामचन्द्रजी! वह शिर योजनभरसे आनकर गिराया, इसकारण मुनिके आश्रममें रुधिरकी अत्यन्त वृष्टि हुई, उसको देखकर मातंग ऋषि क्रोधसे अधीर होकर वालीसे कहने लगे कि, यदि तू आजसे लेकर इस पर्वतपर आवेगा तौ निःसन्देह तेरा शिर कटजायगा, सो मातंगमुनिके शापके भयसे वाली तिस समयसे ऋष्यमूक पर्वतपर नहीं आताहै॥ ६५॥ ६६॥ ६७॥ मैंभी इस वार्ताको जानकर निर्भय इसपर्वतपर निवास करताहूँ; हे श्रीरामचन्द्रजी! यह देखो दुन्दुभिका पर्वतकी तुल्य मस्तक पड़ा हुआ है ॥ ६८॥ आप यदि इसको दूर फेंक देनेमें समर्थ होओगे, तौ निःसन्देह वालीका वध कर सकोगे; इसप्रकार कहकर सुग्रीवने वह पर्वतकी तुल्य दुन्दुभिका शिर दिखाया ॥ ६९ ॥ श्रीरामचंद्रजी दुंदुभिका शिर देखकर कुछ मुस्कुराये, और चरणके अंगूठेसे उसको दशयोजन दूर फेंक दिया यह बड़ा अद्भुत

चरित्र हुआ ॥ ७० ॥ सुग्रीव यह चरित्र देखकर मंत्रियोंके साथ 'वाह वाह' करके फिर भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा ॥ ७१ ॥ हे रघु-कुलतिलक! यह देखो सामने महासार (बड़े मजबूत) सात तालके वृक्ष स्थित हैं, वाली अपनी भुजाओंके वलसे इनमेंसे हरएकको हिलाकार पत्रहीन कर सक्ता है; आप यदि इन सातों तालके वृक्षोंको एकबाणसे वेधकर छेद कर सकोगे तौ मुझे विश्वास होजायगा कि, आप वालीका वध कर सकेगें, श्रीराम-चंद्रजीने सुग्रीवके इस कथनको स्वीकार करके धनुषको उठाकर उसपर बाण चढालिया ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ और अनायासमेंही तिन सातों तालके वृक्षोंको एक-वारमेंही वेध दिया; महाबली श्रीरामचन्द्रजीका छोडा हुआ बाण सातों ताल-के वृक्षोंको और पर्वत तथा पृथ्वीको भेदन करके फिर आकर श्रीरामचन्द्रजी के तरकसमें पहिलेकी समान स्थित होगया, तब सुग्रीवको बडा आश्चर्य्य हुआ, और अत्यन्त आनन्दमें होकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हे देव! निःसंदेह आप जगत्‌के स्वामी परमात्मा हो मेरे पूर्व जन्मोंमें इकठे किये हुए पुण्योंके प्रभावसे आज आपसे मेरा समागम हुआ है ॥ ७६ ॥ महात्मा पुरुष संसार बन्धनसे छूटनेके निमित्त आपका भजन करते हैं, उनहीं मोक्षके देनेवाले आपको प्राप्त होकर मैं मोक्षकी याचना करताहूँ, सांसारीक विषयोंकी नहीं ॥ ७७ ॥ स्त्री, पुत्र, धन, और राज्य, सम्पूर्ण आपकी मायाका रचा हुआ है; हे देवदेवेश, मैं और कुछ याचना नहीं करता केवल आप मेरे ऊपर प्रसन्न होजाय इतनीही प्रार्थना है ॥ ७८ ॥ मृत्तिकाके निमित्त पृथ्वीको खोदते खोदते बहुतसे रत्नोंके समूहको प्राप्त होकर पुरुष जिस जिसप्रकार आनन्दित होता है तिसीप्रकार आज भाग्य-के उदयसे आपको प्राप्त होकर मैं अनिर्वचनीय आनंदको प्राप्त होरहाहूँ ॥ ७९ ॥ आज मायासे उत्पन्न होनेवाला विषयोंकी वासनारूप मेरा बं-धन नष्ट होगया; यज्ञ, दान, तप, जलाशयोत्सर्ग आदि करनेपरभी जो शि-थिल नहीं होताहै किन्तु दृढ होताहै; वही भयानक संसारबन्धन आपके चरणकमलोंका स्पर्श करनेसे शीघ्रही नष्ट होजाताहै, हे प्रभो! इसमें कुछ

संदेह नहीं है ॥ ८० ॥ ८१ ॥ जिस पुरुषका चंचल चित्त तुम्हारे विषे चंचलतारहित होकर क्षणमात्रभी स्थित होता है उस पुरुषका अनेक प्रकारके अनर्थोंको उत्पन्न करनेवाला अज्ञान तत्काल दूर होजाता है ॥ ८२॥ इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी ! मेरा मन अन्यत्र न रहकर सर्वदा तुम्हारे विषे ही लगा रहै ॥ ८३ ॥ जो पुरुष मधुर स्वरसे राम राम कहकर क्षणमात्रभी भजन करता है वह ब्रह्महत्यारा अथवा मद्यपान करनेवाला होय तौभी क्षणमात्रमेंही उन सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ ८४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं शत्रुको जीतनेकी अथवा स्त्री पुत्रादिका सुखभोगनेकी इच्छा नहीं करता, किन्तु संसारबन्धनसे छुडानेवाली आपकी भक्ति सदा प्राप्त रहे, यही इच्छा है ॥ ८५ ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ ! मैं आपका अंश और आपकी मायाकरकें संसारमें लिप्त होरहाहूँ इसकारण मुझे अपने चरणकमलोंकी भक्ति देकर संसारदुःखसे छुटाइये ॥ ८६ ॥ पहिले मेरा चित्त आपकी मायासे ढकाहुआ था, इसकरण किसीको मित्र, किसीको शत्रु, और किसी पुरुषको उदासीन मानकर वर्ताव करताथा; और हे श्रीरामचन्द्रजी ! इससमय आपके चरणकमलोंका दर्शन होनेसे सम्पूर्ण पदार्थ मुझे ब्रह्मरूप प्रतीत होतेहैं; अब मेरा कोई न शत्रु है, और न कोई मित्र है; पुरुष जबतक आपकी मायाके वशीभूत रहते हैं, तबतक जगत्में किसीको मित्र, किसीको शत्रु, और किसीको उदासीन जानकर व्यवहार करते हैं, और जबतक शत्रु मित्रादि भाव दूर नहीं होताहै तबतकही मृत्युका भय रहताहै ॥ ८७ ॥८८॥ ॥८९॥ इसकारण जो पुरुष तिस मायाका सेवन करतेहैं वह सदा संसाररूप महाअंधकारमें डूबे रहतेहैं; यह सम्पूर्ण स्त्रीपुत्रादिरूप बन्धन मायाकाही रचा हुआ है; हे रघुकुल श्रेष्ठ ! वह माया आपकी दासी है, इसकारण मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ, कि– आप इस मायारूप बंधनको दूर करो ॥ ९० ॥ मेरे चित्तकी वृत्ति आपके चरणकमलोंमें लगी रहै; और मेरी वाणी आपकेनामकीर्त्तनमें तथाआपकी लीला वर्णन करनेमें लगी रहै; मेरे हाथ आपके भक्तोंकी सेवा करनेमें तत्पर रहैं;

मेरा शरीर आपके अंगके स्पर्शको प्राप्त हो ॥ ९१ ॥ मेरे नेत्र आपकी मूर्त्ति और आपके भक्त तथा गुरुदेवके दर्शन करनेमें लगे रहैं, मेरे कारण निरंतर आपके जन्मकर्मोंको श्रवण करनेमें लगे रहैं; मेरे चरण निरंतर आपके मंदिरोंको जानेके कार्यमें आवें ॥ ९२ ॥ हे गरुड़ध्वज ! मेरे शरीरके अंग आपके चरणोंकी रजसे मिले हुए तीर्थोंको धारण करैं; हे श्रीरामचंद्रजी ! मेरा शिर निरंतर शिव और ब्रह्माआदिसे सेवन कियेहुए आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करता रहै ॥ ९३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवको अपने शरीरके आलिंगनसे सम्पूर्णपापोंसे मुक्त देखकर मुस्कुराते हुए अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त तिस सुग्रीवको उपर मोहित करनेवाली अपनी मायाको फैलाते हुए, इसप्रकार कहने लगे, कि-हे मित्र! तुमने मुझसे रावणका वध आदि कार्य करनेकी जो प्रतिज्ञा करी है वह निःसन्देह कदापि मिथ्या नहीं होयगी ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ परन्तु मुझे सब पुरुष कहैंगे, कि--रामचंद्रने जो अग्निको साक्षी करके सुग्रीवका कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करी सो क्या किया ? ॥ ३ ॥ तुम्हारा कार्यसिद्ध होनेमें विलंब होनेपर निःसन्देह लोकमें मेरी निन्दा होयगी इसकारण तुम शीघ्रही जाकर युद्धके निमित्त वालीको बुलाओ, निःसंदेह तुम्हारी जय होयगी ॥ ४ ॥ मैं एकबाणसे वालीका वध करके किष्किन्धाके राज्यमें तुम्हारा अभिषेक करूंगा, सुग्रीव इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेको अंगीकार करके शीघ्रही किष्किंधाके बगीचेमें गया; और महाभयंकर शब्द करके वालीको बुलाने लगा; परम पराक्रमी वाली भ्राताके तिस भयंकर शब्दको सुनकर क्रोधमें भरगया और नेत्रलाल होगये ॥ ॥ ५ ॥ ६ ॥ शीघ्रही घरसे निकलकर जहाँ सुग्रीव था तहाँ आया, महाबली सुग्रीवने वालीको आताहुआ देखकर उसके वक्षस्थलपर

प्रहार करा ॥ ७ ॥ महावीर वालीनेभी क्रोधान्ध होकर सुग्रीवके हृदय-पर मुष्टिप्रहार करा, फिर सुग्रीवनेभी क्रुद्ध होकर वालीके हृदयमें घूंसा मारा, इसप्रकार परस्पर दोनोंका युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार युद्ध करते हुए दोनों वानरोंमें से सुग्रीवको अच्छी-तरह नहीं पहिंचान सके; इसीकारण सुग्रीवके बधकी शंकासे वालीका बध करनेके लिये बाण नहीं छोंडा ॥ ९ ॥ तदनन्तर सुग्रीव महाबली वाली-के मुष्टिप्रहारको सहनेमें असमर्थ होकर रुधिरकी वमन करताहुआ भयसे व्याकुल होकर भाग आया, वालीभी अपने स्थानकी ओर जानेको तयार हुआ, तदनन्तर सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा ॥ १० ॥ हे श्रीराम-चंद्रजी ! तुम क्या भ्रातारूपी शत्रुके द्वारा मेरा प्राणान्त करना चाहते हो? यदि मुझे नष्ट करनेकी अत्यन्तही इच्छा होरही है तो हे प्रभो ! आपही मुझे मार डालिये ॥ ११ ॥ हे शरणागतवत्सल ! हे सत्यवादिन् हे रघू-त्तम ! तुमने पहिले वाक्य देकर मुझे विश्वास करादिया था. कि मैं अवश्य-ही बालीका बध करूंगा, फिर किसकारण मेरी उपेक्षा करतेहो ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके इस कहनेको सुनकर नेत्रोंमें जल भरतेहुए सुग्रीव-को हृदयसे लगाकर कहने लगे, कि हे सखे ! तुम भयभीत मत हो, मैंने तुम दोनोंकी एकसी आकृति देखकर विशेष रूपसे वालीको न पहिंचाननेके कारण तुम्हारे बधकी शंकासे बाण नहीं छोंड़ा, अब भ्रान्तिको दूर करनेके नि-मित्त तुमारे शरीरपर कुछ चिन्ह करै देताहूँ, तुम फिर उसही स्थानपर जाकर वालीको बुलाओ मैं तत्कालही वालीका बध तुमारे देखते देखते करूंगा; हे भ्रातः! मैं रामचंद्र शपथ करके कहताहूँ, कि-क्षणमात्रमें तुम्हारे शत्रुका प्राणान्त कर दूँगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवको इसप्रकार समझाकर लक्ष्मणसे कहने लगे, कि-भ्रातः तुम सुग्रीव के कंठमें सुन्दर पुष्पोंकी माला पहिनाकर वालीसे युद्ध करनेके निमित्त भेजो, श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार सुग्रीवके गलेमें पुष्पोंकी माला पहिनाकर आदरपूर्वक कहा, कि- हे वानर ! अब तुम युद्ध करनेके लिये

जाओ ॥ १६ ॥ १७ ॥ लक्ष्मणजीका भेजा हुआ सुग्रीव युद्धके निमित्त पहिले स्थानमें जाकर पहिलेकी समान अतिघोर चीत्कार शब्द करके वालीको बुलाने लगा ॥ १८ ॥ महाबली वाली फिर सुग्रीवके अद्भुत शब्दको सुनकर आश्चर्य और क्रोधसे भरगया, और युद्धका वेश धारण करके रणभूमिमें आनेकेलिये तयार हुआ ॥ १९ ॥ तब वालीकी परम-प्रिया स्त्री तारा पतिका हाथ पकड़कर अनेक प्रकारसे युद्ध करनेका निषे-ध करके कहनेलगी कि-हे नाथ! तुम युद्ध करनेकेलिये मत जाओ, मुझे इसकारण अत्यन्त शंका होतीहै, कि-सुग्रीवको कुछकाल पहिलेही तुमने पराजित करदियाथा, और वह भाग गयाथा, परन्तु फिर अत्यन्त शीघ्रही युद्ध करनेके निमित्त आया है, इससे निःसन्देह मालूम होताहै कि सुग्रीव इससमय इकला नहीं है कोई बड़ा प्रबल सहायक उसके साथ युद्ध करनेको आया है ॥ २० ॥ २१ ॥ तब वाली तारासे कहने लगा, कि-हे सुभ्रु! तुम सुग्रीवके विषैमें कुछ शंका मत करो, हे प्रिये! इस समय मेरे हाथको छोड़कर अलग हटजा, मैं रणभूमिमें जाकर शीघ्रही शत्रु-का वध करके लौटूँगा, उस दुष्टात्माकी सहायता कौन करेगा? यदि कोई उसकी सहायता करैगा तो दोनोंको क्षणमात्रमें नष्ट करके शीघ्रही लौटकर आऊंगा, हे सुन्दरि! क्या कोई वीर पुरुष शत्रुके बुलानेपर कदापि घरमें बैठ सक्ता है इसकारण तू शोक मत कर, मैं शीघ्रही शत्रुका प्राणान्त करके लौटूँगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तारा कहने लगी कि-हे राजेन्द्र! मुझे कुछ औरभी कहनाहै, उसको सुनकर आप जैसा उचित समझे वैसा करैं पुत्र अंगदने एकदिन शिकारसे लौटकर मुझसे कहा, कि--हे मातः! मैंने शिकारको जाकर सुनाहै कि--अयोध्यापति दशरथराजकु-मार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सीताकरके सहित दण्डकारण्यमें आयेथे, तहाँ राक्षसपति रावणने छलकरके उनकी स्त्रीको हरलिया, इससमय वह श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वतपै आकर सुग्रीवसे मिलेहैं, और सुग्रीवनेभी उनके साथ अग्निको

साक्षी करके मित्रता करी है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणने सुग्रीवके मित्रभावमें बंधकर अग्निको साक्षी करके सुग्रीवसे प्रतिज्ञा करी है, कि– रणभूमिमें वालीका वध करके किष्किन्धाका राज्य तुमको देंगे ॥ २९ ॥ हे नाथ! ऐसा निश्चय करके वह दोनों सुग्रीवके साथ निःसन्देह आये होंगे, नहीं तौ अबहीं पराजित भागा हुआ सुग्रीव फिर युद्ध करनेके निमित्त किसप्रकार आता ॥ ३० ॥ हे महाराज! मेरे कहनेसे वैरभावको छोड़कर शीघ्रही सुग्रीवको बुलाओ और युवराजपदमें उसका अभिषेक करकै श्रीरामचंद्रजीकी शरणागत जाओ ॥ ३१ ॥ हे कपीन्द्र! मेरी, पुत्र अंगदकी, राज्यकी और वंशकी रक्षा करो; तारा विनयके वचनोंसे इसप्रकार समझाकर नेत्रोंमें जल भरके वालीके चरणोंमें गिरपड़ी ॥ ३२ ॥ फिर अपने दोनों हाथोंसे वालीके दोनों चरण पकड़कर भयसे अंतःकरणमें व्याकुल होकर रुदन करनेलगी, तब वाली ताराको हृदयसे लगाकर स्नेहपूर्वक इसप्रकार कहनेलगा ॥ ३३ ॥ हे प्रिये! तुम स्त्रीस्वभाव हो इसकारण भयभीत होती हो, परन्तु मुझे किसीप्रकारका भय नहीं है; परमप्रभु श्रीरामचंद्रजी यदि लक्ष्मणजीकरके सहित आये होंगे तौ निःसंदेह उनका मेरे साथ सुग्रीवसेभी अधिक स्नेह हो जायगा, क्योंकि सुग्रीवकी अपेक्षा मुझसे उनका अधिक कार्य सिद्ध होयगा; हे अनघे! मैंने पहिले सुना है, कि–अखिलब्रह्माण्डके स्वामी भगवान् नारायणने पृथ्वीका भार दूर करनेके अर्थ श्रीरामचंद्ररूपसे अवतार लिया है, तिन परमात्माको कोई अपना और पराया नहीं है ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे साध्वि! मैं तुझसे निश्चयकरके कहता हूँ, कि– श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंमें प्रणाम करके अपने स्थानको लाऊंगा क्योंकि भक्तवत्सल देवदेव दशरथराजकुमार श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तोंकी अभिलाषाको पूर्ण करते हैं ॥ ३७ ॥ यदि सुग्रीव इकला आया होगा तो क्षणमात्रमेंही उसका प्राणान्त करदूंगा, हे प्रिये! तुमने जो कहा, कि सुग्रीवको लाकर उसको युवराजपदका अभिषेक करना चाहिये;

सो हे सुलक्षणे ! सब लोकसमाजोंमें शूरशब्दसे प्रसिद्ध हूँ सो शत्रुके युद्ध-करनेकेलिये बुलानेपर किसप्रकार भयको सूचित करनेवाले तुम्हारे इस कहनेके अनुसार कार्य करूँ ? हे सुन्दरि ! तुम शोकको त्यागकर घरमें बैठो मैं युद्ध करनेकेलिये जाताहूँ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तदनन्तर महाबली वाली शोकके कारण जिसके नेत्रोंमें जलभर आया है ऐसी ताराको इसप्रकार समझाकर सुग्रीवका वध करनेकेनिमित्त उद्योग करके चलदिया ॥ ४१ ॥ पुष्पमालासे शोभायमान भीमपराक्रम सुग्रीव वालीको आया-हुवा देखकर पतंगके समान उछला ॥ ४२ ॥ और दोनों मुष्टियोंसे ताड़ना करा, वालिनेभी सुग्रीवके उपर मुष्टिप्रहार करा इसप्रकार दोनोंके परस्पर घोर प्रहार होनेलगे॥ ४३ ॥ सुग्रीव युद्ध करते करते बीचबीचमें श्रीरामचंद्रजीकी ओर देखने लगताथा, परम प्रतापी श्रीरामचंद्रजीने इसप्रकार युद्ध करते इन दोनोंको देखकर तरकसमेंसे ऐन्द्रबाण निकालकर धनुषपर चढ़ालिया, तदनन्तर वृक्षोंके झुण्डमें छुपकर बैठे हुए भगवान श्रीरामचंद्रजीने वालीके हृदयको लक्ष (निशाना) करके वह बाण कानपर्यन्त खैंचकर छोडा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वज्रकीसमान वीर्यवान् उस बाणने बड़े जोरसे जाकर वालीके हृदयको भेदन करा, तदनन्तर महाविर वाली हृदयमें बाण लगनेसे बड़ा घोर चीत्कार शब्द करता हुआ पृथ्वीपर गिरपड़ा; वालीके गिरनेके वेगको न सहकर पृथ्वी कम्पायमान होनेलगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वाली दोघड़ीपर्यन्त अचेतन (बेहोस) रहा, तदन्तर कुछ होसमें हुआ तब देखा, कि जटा-मुकटधारी, विशाल हृदयकरके शोभायमान, वनमालासे विभूषित, और चीरवसन धारण करेहुए, जंघाओं पर्यंत जिनकी मनोहर पीनभुजा लंबायमान होरही हैं, ऐसे नवीन दूबकी समान श्यामवर्ण कमलनयन श्रीरामचंद्रजी वामहस्त में धनुष और दाहिने हाथमें बाण धारण किये सन्मुख खड़े हैं, और सुग्रीव तथा लक्ष्मण दोनों ओर खड़े होकर सेवा कररहे हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वाली श्रीरामचंद्रजीको देखतेही निंदा करता हुआ कोमल वचनोंसे कहने लगा, कि-मैंने आपका कौनसा अप-

राध कियाथा, कि-जिसअपराधसे आपने मुझे नष्ट करा ॥ ५१ ॥ मालूम होताहै, कि-आपने राजनीतिको न जानकर यह निन्दित कर्म कियाहै, हे श्रीरामचंद्रजी तुमने चोरकी समान वृक्षोंके बीचमें छपकर मेरेऊपर बाण छोड़ा, इस अधर्मयुद्धसे क्या आपको यशकी प्राप्ति होयगी ? तुम क्षत्रिय संतान तिसपरभी मनुके वंशमें उत्पन्न हुएहो, तुमको ऐसा उचित नहीं था, यदि मेरे सन्मुख आकर युद्ध करके मेरा प्राणान्त करते तौ तुमको यशकी प्राप्ति होती; हे रघुनंदन ! सुग्रीवने आपका कौनसा काम किया और मैंने कौनसा नहीं किया ? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! मैंने सुनाहै, कि-दण्डकारण्यमें रावणने आपकी स्त्रीका हरण करलिया, उसको प्राप्त होनेकेलिये सुग्रीवकी शरण ली क्या यह कार्य मुझसे नहीं होता ? ॥ ५५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! मालूम होताहै, कि-आप मेरे संसार प्रसिद्ध पराक्रमको नहीं जानतेहो? मैं यदि इच्छा करूँ तौ घड़ीभरमें कुटुम्ब सहित रावणको लंकासहित इस स्थानमें लासक्ताहूँ. हे रघुकुलशिरोमणि रामचंद्रजी ! तुम जगत्में धर्मात्मा नामसे प्रसिद्ध हो, देखो व्याधिकी समान छुपकर वानरका वध करनेसे क्या धर्मकी प्राप्ति होयगी, और भक्षण करनेके अयोग्य वानरका मांस क्या आपके किसि कार्यमें आसक्ता है? ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वालीके इस प्रकार बहुत कथन करनेके अनन्तर श्रीरामचंद्रजी कहने लगे, कि-हे वानरराय ! मैं धर्मकी रक्षा करनेके निमित्त धनुषको धारण करेहुए इस जगत्में विचरताहूँ, अधर्म करनेवाले पुरुषोंको नष्ट करके धर्मात्मा पुरुषोंका पालन करना मेरा कार्य है; हे कपीन्द्र ! कन्या, बहिन, भ्राताकी स्त्री और पुत्रकी स्त्री यह चारों समान हैं, इन चारोंमेंसे एककेभी साथ जो पुरुष रमण करता है, वह मूढ़बुद्धि महापातकी, धर्मात्मा राजाओंका वध्य (मारनेयोग्य) होताहै यह निःसन्देह वार्ता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे वानरराज ! तुमभी लघुभ्राताकी स्त्रीको बलपूर्वक भोगते हो, इसकारण धर्मशास्त्रके अनुसार मैंने तुमको नष्ट करनेकी चेष्टा करी ॥ ६२ ॥ तुम वानरजाति होनेके कारण

कुछ नहीं जानते हो, महात्मा पुरुष अपने चरणोंसे जगत्‌को पवित्र करतेहुए विचरते रहतेहैं, इसकारण उनके कार्यकी निंदा न करै ॥ ६३ ॥ वाली श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार कथनको सुनतेही उनको साक्षात् विष्णुभगवान्‌का अवतार जानकर भयभीत होगया, फिर प्रणाम करके परमआनन्दित हो श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा ॥ ६४ ॥ हे श्रीरामचंद्र! हे महाभाग! इससमय आपको मैंने साक्षात् परमेश्वर जाना, इससे पहिले अज्ञानसे मैंने आपको जो कुछ कठोर वचन कहे उनको आप क्षमा करिये ॥ ६५ ॥ हे भगवन्! आपके बाणके प्रहारसे आपकेही सन्मुख इससमय प्राणत्याग करूँगा, ऐसा समय फिर कदापि नहीं मिलेगा; क्योंकि आपका दर्शन वियोगियोंको भी दुर्लभ है ॥ ६६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! जो पुरुष मरणके समय विवश होकर भी तुमारे नामका जप करतेहैं वह मरणके अनन्तर वैकुण्ठ धामको जातेहैं, वही आप आज मेरे मरणके समय सन्मुख विराजमान हो रहे हो और इससे अधिक मेरा क्या भाग्य होगा ॥ ६७ ॥ हे देव! तुम परम पुरुष हो, रावणके वधके निमित्त ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर आपने अवतार लिया है, और जानकीभी साक्षात् शुभलक्षणा लक्ष्मीका अवतार है, यह मैं जानताहूँ ॥ ६८ ॥ इस समय आज्ञा दीजिये, मैं आपके वैकुण्ठ धामको जाताहूँ, और मेरी तुल्य भुजबलयुक्त अंगदके ऊपर कृपादृष्टि रखना ॥ ६९ ॥ हे दशरथराजकुमार श्रीरामचंद्रजी! आप अपने कमलरूपी हाथोंसे मेरे वक्षस्थलको स्पर्श करके घावको दूर करिये, श्रीरामचंद्रजी वानरराज वालीके विनयपूर्वक वचनोंसे संतुष्ट हुए और अपने हाथसे उसके हृदयको स्पर्श करके विशल्य करा, वानरराज वालीनेभी वानरदेहको छोड़कर क्षणमात्रमें देवेन्द्रदेह धारण करा, तदनन्तर मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ शिवजी कहतेहैं, कि—पार्वति! श्रीरामचंद्रजीके बाणसे पीडित वाली, देखो रघुनाथजीके सुधाकर (चंद्रमा) की समान शीतलहाथका स्पर्श होनेपर क्षणमात्रमें वानरदेहको त्यागकर परमहंसोंकोभी दुष्प्राप्य किन्तु रामभक्तोंकोही प्राप्त होनेयोग्य वैकुंठधामको चलागया ॥ ७१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किधाकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

महादेवजी बोले, कि-हे पार्वति! जब वानरेन्द्र वालीका परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके बाणसे रणभूमिमें प्राणान्त होगया तब उसके सेवक वानरोंके समूह भयसे चित्तमें व्याकुल होकर दौड़ते हुए किष्किन्धामें आये और तारासे कहने लगे, कि-हे महाभागे! महाराजवालीका आज रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीके हाथसे प्राणान्त होगया, तुम अब मंत्रियोंसे कहकर अंगदकी रक्षा करो ॥ १ ॥ २ ॥ हम चारों द्वारके किवाड़ोंको बन्द करके नगरीकी रक्षा करैंगे; हे भामिनी! वानरोंका राजा अंगदको करो ॥ ३ ॥ तदनन्तर तारा वानरराजवालीका अशुभ संवाद सुनकर शोकसे मूर्छित होगई, और वारंवार दोनों हाथोंसे शिर और छातीको पीट पीटकर कहने लगी ॥ ४ ॥ कि-हे वानरो! मुझे पुत्र, राज्य, नगर और धनसे कुछ प्रयोजन नहीं है इससमयही मैं पतिके साथ यमलोकको जाऊंगी ॥ ५ ॥ तारा शोकसे अत्यन्त व्याकुल होकर मृत पतिके शरीरको देखनेके निमित्त उसी रणभूमिमें वाल खोलेहुए पहुँची, और वानरराज वालिके धूलिसे लपटे हुए और रुधिरसे भीगे हुए शरीरको देखकर उसके चरणोंमें गिरपड़ी और हा नाथ! हा नाथ! इसप्रकार कहतीहुई अत्यन्त विलाप करनेलगी ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनंतर सन्मुख आये हुए रघुनाथजी को देखकर कहनेलगी, कि—हेरामचंद्रजी! जिस बाणसे आपने महाराज वालीका प्राणान्त करा है उसी बाणसे मुझेभी यमलोकको पहुँचाइये ॥ ८ ॥ मैं शीघ्रही पतिके समीप जाऊंगी, क्योंकि प्राणपति मेरी वाट देखते होंगे, हे रघुनंदन! महाराज वालीको मेरे विना स्वर्गलोकमेंभी सुख नहीं होयगा॥ ॥ ९ ॥ आपसे अधिक क्या कहूं स्त्रीके वियोगका दुःख आपने स्वयं अनुभव कराही है शीघ्रही मेरा प्राणान्त करके महाराजके समीप पहुँचादोगे तो आपको स्त्रीके दान करनेका फल मिलैगा ॥ १० ॥ तदनन्तर सुग्रीवकी ओरको देखकर कहने लगी, कि- हेसुग्रीव! अब तुम वालिकें मारनेवाले श्रीरामचंद्रजीकरके दियेहुए निष्कंटक राज्य और अपनी स्त्री रुमाकरके

सहित पूर्ण सुख भोगो ॥ ११ ॥ परम बुद्धिवान् श्रीरामचंद्रजीको इस प्रकार विलाप करती हुई ताराके वचनोंको सुनकर दया आगई, सो तत्वज्ञानका उपदेश करके उसको समझानेलगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि- हे भीरु, ! तुम शोक करनेके अयोग्य पतिका वृथा शोक क्यों करती हो ? भला बता तो सही रणभूमिमें शयन करता हुआ देह और जीव इन दोनोंमें तूने किसको पति समझा है ॥ १३ ॥ यदि देहको पति कहै तौ किसी प्रकारभी शोक न करना चाहिये, क्योंकि चर्म मांस रुधिर और हड्डियोंकरके युक्त पंचभूतरूप यह जड़ देह काल, प्रारब्ध और सत्वादिगुणोंके योगसे उत्पन्न होताहै सो इस समयभी तेरे सामने पड़ाहै, यदि जीवको पति कहै तौ भी कुछ शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि जीव निर्विकार है, जन्ममरणरहित है, और वह न कहीं जाता है, न स्थित रहताहै ॥१४॥१५॥ जीव स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है और नपुंसकभी नहीं है, किन्तु आकाशकी समान सर्वव्यापी, अविनाशी, दूसरे पुरुषके संबन्ध करके रहित, निर्लेप और नित्य, ज्ञानमय, निर्मल, एक पदार्थ, सब भूतोंमें समान भावसे विराजमान है, उसके निमित्त क्यों शोक करती है वह कदापि शोकके योग्य नहीं है॥ १६ ॥ तारा कहने लगी, कि-हे श्रीरामचंद्रजी! यह देह काष्ठकी समान अचेतन और जीवात्मा ज्ञानमय नित्य पदार्थ है, तौ सुख दुःखादिको भोगनेवाला कौन है ? यह मेरा संदेह दूर करिये ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहने लगे, कि-जिस समयपर्यन्त जीवात्मा अज्ञानके वशमें होकर देह और इंद्रियादिके विषें ममत्व बुद्धिका त्याग नहीं करताहै तबतक ही उसको सुखदुःखादिरूप संसार भोगना पड़ताहै ॥ १८ ॥ हे सुन्दरि ! मनुष्यको विषयोंका ध्यान करते करते निद्राको प्राप्त होकर जिसप्रकार स्वप्नकी अवस्थामें उनही ध्यान करेहुए विषयोंकी मिथ्या प्राप्ति होतीहै और वह असत् वस्तुभी सत्यसी प्रतीत होती है परन्तु जाग्रत अवस्थामें ज्ञान होनेसे वह सब स्वप्नावस्थाके पदार्थ मिथ्या प्रतीत होने लगतेहैं, तिसीप्रकार जीव देहाभिमानकी अवस्थामें मिथ्या संसारको सत्यसा जाननेलगे हैं, सो संसार

अपने आप दूर नहीं होयहै किन्तु तत्वज्ञान होनेपर दूर होजाताहै ॥ ॥ १९ ॥ हे पुत्री! जीवात्मा अनादि अविद्याके प्रभावसे रागद्वेषादियुक्त होकर संसारबंधनको प्राप्त होजाताहै ॥ २० ॥ हे शुभे! अन्तःकरण ही संसार है और अन्तःकरणही बन्धन है, अन्तःकरणके साथ मिलकर उसके सुखदुःखादिको भोगनेलगताहै ॥ २१ ॥ जिसप्रकार स्फटिकमणि स्वभावसे निर्मल और श्वेत होताहै, परन्तु लाखआदिकी समीपता होनेसे लाल वर्ण प्रतीत होनेलगेहै इसीप्रकार निर्लेप आत्मा अन्तःकरण और इंद्रियादिकी समीपतासे संसारी प्रतीत होने लगेहै, आत्मा अनुमानका साधन जो मन तिसको स्वीकार करताहै और अज्ञानी होकर तिस मनसे उत्पन्न होनेवाले विषयोंको भोगताहै और इसकारणही राग द्वेषादिरूप अंतःकरणके गुणोंमें बँधकर पराधीन हो संसारमें लिप्त होजाताहै.जीवात्मा प्रथम रागद्वेषादिरूप अंतःकरणके गुणोंको उत्पन्न करके तिन रागद्वेषादिके कारण असत् कार्य करने लगताहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तिन सत् असत् कार्योंके तीन भेद हैं; एक शुक्ल (हिंसा रहित जप ध्यान आदि) दूसरा लोहित (हिंसायुक्त यज्ञादि) और तीसरा कृष्ण (पापकर्म) इन कर्मोंकी गतिभी प्रत्येककी भिन्न भिन्न उत्तम मध्यम और अधम है इनही कर्मोंके वशमें होकर जीवात्मा खण्डप्रलयपर्यन्त भ्रमता रहताहै ॥ २५ ॥ और खण्डप्रलयके समय वासना तथा अदृष्टकरके सहित अन्तःकरणमें मिलकर अनादिअविद्याकेविषें लीन होजाताहै ॥ २६ ॥ फिर सृष्टिकालके समय पूर्व वासना और अदृष्टकरके सहित जन्म लेता है, इसीप्रकार जीवात्मा विवश होकर वारंवार घटीयन्त्रकी समान घूमता रहताहै ॥ २७ ॥ फिर जिससमय जीव पूर्वजन्मोंमें किएहुए पुण्योंके प्रभावसे मेरी भक्तिकरनेवाले शान्तस्वभाव सत्पुरुषोंकी संगतिको प्राप्त होताहै, तब मेरी भक्ति होतीहै ॥ २८ ॥ तदनन्तर मेरी लीलाओंको श्रवण करनेपर दुर्लभ श्रद्धाकी प्राप्ति होतीहै; तदनन्तर अनायासमेंहि आत्मतत्वका ज्ञान होजाताहै ॥ २९ ॥ आत्मतत्वका ज्ञान होतेही गुरुके पढ़ायेहुए शास्त्रका

श्रवण, मनन और निदिध्यासन करनेसे जीवात्मा अपनेको सत्य आनंदमय अद्वितीय आत्मासे अभिन्न और देह इन्द्रिय मन प्राण तथा अहंकारसे भिन्न जानने लगताहै, इसप्रकार ज्ञान होतेही जीवात्मा तत्काल मुक्त होजाताहै यह यथार्थ उपदेश मैंने तेरे अर्थ वर्णन करा है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जो पुरुष इस संपूर्ण मेरे कहेहुए उपदेशको ग्रहण करके रात्रिदिन मनहीमनमें विचार करता है उसको संसारके दूःखोंका कदापि स्पर्शभी नहीं होताहै ॥ ३२ ॥ हे भामिनी ! तुमभी अंतःकरणको पवित्र करके मेरे कहे हुए इस सम्पूर्ण उपदेशका विचार करो, तब संसाररूप दुःखजाल तुमको स्पर्श नहीं कर सकैगा; और कर्मोंके बन्धनसे छूट जाओगी ॥ ३३ ॥ हे सुभ्रु ! पूर्वजन्ममें तैनें मेरी अत्यन्त भक्ति करी है इसकारण ही तुझे मुक्त करनेके निमित्त मैंने अपने रामचंद्ररूपका दर्शन दियाहै ॥ ३४ ॥ हे शुभे ! तू इससमय मेरे इस रूपको ध्यान करतीहुई मेरे उपदेश करे हुए सम्पूर्ण वाक्योंका मनहीमनमें विचार कर तब संसारके सम्पूर्ण कार्योंको करकेभी संसारबन्धनको नहीं प्राप्त होयगी ॥ ३५ ॥ ताराने विस्मयपूर्वक श्रीरामचंद्रजीके उपदेश करेहुए वाक्योंको सुनकर देहाभिमानसे उत्पन्न हुए शोकको त्यागकर श्रीरामचंद्रजीके अर्थ प्रणाम करा ॥ ३६ ॥ इसप्रकार सर्वोपरि ब्रह्मानंदका अनुभव करतीहुई जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हुई श्रीरामचंद्रजीने क्षणमात्रमें ताराके संसारबन्धनको छेदन करके निष्पाप करदिया और निर्वाण मुक्तिको पहुँचादिया, महात्मा सुग्रीवभी श्रीरामचंद्रजीके मुखसे निकलेहुए उपदेशको सुनकर अज्ञानके जालसे छूटगया और स्वस्थचित्त हुआ, तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवको बुलाकर इसप्रकार कहने लगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे मित्र ! तुम भ्राताका पुत्र जो अंगद तिसके द्वारा ज्येष्ठ भ्राता वालीके पारलौकिक संस्कार आदि संपूर्ण कर्मोंको मेरी आज्ञासे विधिपूर्वक कराओ ॥ ४० ॥ सुग्रीवभी श्रीरामचंद्रजीके इस कहनेको स्वीकार करके कुछ प्रधान वानरोंके द्वारा वालीके मृतकशरीरको उठवाकर पुष्पककी समान विमानमें

रखवाया सुग्रीवकी आज्ञासे राजाकी समान तिस मृतकदेहकी परिचर्या होने लगी ॥ ४१ ॥ वानरोंके समूहोंने चारों दिशाओंमें नौवत और नगाड़ोंकी ध्वनिसे किष्किन्धा नगरीको परिपूर्ण करदिया; तदनन्तर सुग्रीव कुछ ब्राह्मण और मंत्रियोंके समूह तारा तथा अंगदके साथ विमानमें रक्खेहुए वालीके मृतक शरीरके पीछे२चलने लगे ॥ ४२ ॥ कुछ दूर जाकर सुन्दर स्थानमें अंगदके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे युक्तिपूर्वक तिस मृतकशरीरके संस्कारादि कर्म करवाये तदनंतर सुग्रीव स्नानआदि कर्मोंसे निवट कर कुछ मंत्रियोंकरके सहित श्रीरामचंद्रजीके समीप गये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके सुग्रीव प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—हे राजराज ! आपही इस सम्पत्तियुक्त वानरोंके राज्यकी रक्षा करिये ॥ ४४ ॥ मैं लक्ष्मणकी तुल्य आज्ञाके अनुसार चिरकालपर्यन्त आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँगा, श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके इसप्रकार भक्तियुक्त वचनोंको सुनकर कुछ मुस्कुराते हुए कहनेलगे, कि—हे मित्र ! निःसन्देह तुममें और मुझमें कुछ भेद नही है, इसकारण शीघ्रही जाकर मेरी आज्ञासे किष्किंधा पुरीके राज्यमें अपना अभिषेक करो ॥ ४५॥ ४६॥ हे मित्र! मैं पिताकी आज्ञाके अनुसार चौदह वर्षपर्यन्त नगरमें प्रवेश नहीं करूंगा, इसकारण किष्किन्धामें मैं तो नहीं जाऊंगा परन्तु लक्ष्मणको भेजूँगा भ्राता लक्ष्मण तुम्हारे यहाँ अवश्य जायँगे ॥ ४७ ॥ हे मित्र ! तुम अंगदको युवराजपदमें आदरपूर्वक अभिषिक्त करो, इतना होयगा कि—इससमय मैं लक्ष्मणसहित समीपमें पर्वतके शिखरपर एकवर्षपर्यन्त निवास करूंगा, तुम नगरी में जाकर कुछ कालके अनंतरही सीताके ढूँढनेका यत्न करो ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम करके कहने लगा, कि—हे देव ! जो आज्ञा करतेहैं मैं उसके अनुसारही वर्ताव करूँगा ॥ ५० ॥ तदनन्तर सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मणजीकरके सहित किष्किन्धा नगरीमें गया और श्रीरामचंद्रजीके कहनेके अनुसार सम्पूर्ण कार्य करे ॥ ५१ ॥ महावीर लक्ष्मण सुग्रीवसे यथोचित सत्कारको प्राप्त होकर श्रीरामचंद्रजीके

समीप आये और प्रणाम करके बैठे, फिर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीकरके सहित प्रवर्षणनामक पर्वतके ऊपर बड़े चौंडे शिखरपर गये ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ श्रीरामचंद्रजी तहाँ सुन्दर सुन्दर फलवाले वृक्षोंके समीपमें वर्षा वायु और धूपसे बचानेवाली प्रकाशयुक्त सुंदर स्फटिककी गुहाको देखकर लक्ष्मणजीकरके सहित तहां निवास करनेकी इच्छा करतेहुए ॥५४॥ श्रीमहादेवजी कहतेहैं, कि—हे पार्वति ! जिस पर्वतपर श्रीरामचंद्रजीने जाकर निवास करा वह पर्वत अनेक प्रकारके सुन्दर फल, मूल, फूल और मोतियोंकी समान निर्म्मल जलसे पारिपूर्ण और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले अनेक वर्णके पक्षियोंकरके शोभायमान था ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रजी तिस प्रवर्षणपर्वतके शिखरपर मणिमय गुहाओंके विषें विचरते हुए सुन्दर पकेहुए फलमूलोंका भोजन करके तृप्त होते हुए लक्ष्मणजीकरके सहित परम सुखपूर्वक एकवर्षपर्यन्त रहे ॥ १ ॥ तहां एकदिन श्रीरामचंद्रजी बिजलीकरके युक्त और शब्दायमान वायुसे उड़ायेहुए जलयुक्त मेघमंडलको देखकर सुवर्णमय झूलसे शोभायमान हाथियोंके यूथके भ्रमसे चकित होगये ॥ २ ॥ और तिस स्थानके विषें नवीन घास भक्षण करनेसे हृष्टपुष्टाङ्ग मृगपक्षियोंके समूह इधर उधर फिरनेके समय मार्गमें श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करके ध्यानमें स्थित मुनियोंकी समान निश्चल होकर नेत्रोंके पलकोंको विना लगाए नेत्र खोलेहुएही खड़े रहतेथे ॥ ३ ॥ और सिद्धोंके समूह फिरनेवाले श्रीरामचंद्रजीको मनुष्यरूपधारी परमात्मा समझकर मृग और पक्षियोंका रूप धारण करके श्रीरामचंद्रजीके पीछे पीछे फिरनेलगते थे ॥ ॥ ४ ॥ ५ ॥ एकसमय ध्यानमें तत्पर श्रीरामचंद्रजीके समाधिसे विराम होकर निर्जनस्थानमें बैठनेपर भक्ति और प्रणयपूर्वक लक्ष्मणजी नम्रताके वचनोंसे कहनेलगे, किं—हे देव ! आपने मेरे अर्थ पहिले जो ज्ञानका उपदेश

करा तिससे मेरे हृदयका अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला सन्देह नष्ट होगया ॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ परन्तु योगी पुरुष जिसप्रकार लौकिक पूजाकी विधिसे आपकी आराधना करतेहैं, तिस पूजाकी विधिको जाननेकी इच्छा है ॥ ॥ ८ ॥ हे भगवन्! नारद, व्यास, कमलयोनि ब्रह्मा यह सम्पूर्ण योगीगण पूजाकी विधिसे आपकी आराधनाको मुक्तिका साधन कहतेहैं ॥ ९ ॥ हे दयालो! ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम तथा स्त्री और शूद्रोंको भी अनायासमेंही मुक्तिका देनेवाला, अधिक क्या कहूँ सब प्राणियोंकाही उपकार करनेवाला वह पूजाका विधान अपने भक्त इस छोटे भ्राताके अर्थ वर्णन करिये ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी कहनेलगे, कि—हे भ्रातः! मेरी पूजाकी विधिकी कुछ अवधि नहीं है तथापि संक्षेपसे क्रमपूर्वक कुछ विधि वर्णन करताहूँ सो सुनो ॥ ११ ॥ मनुष्यको योग्य है, कि—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यके यहाँ जन्म लेकर शास्त्रमें कही हुई रीतिकी अनुसार भक्तिपूर्वक गुरूसे मंत्र ले ॥ १२ ॥ तदनंतर गुरूकी बताई विधिके अनुसार मेरा पूजन करै, पुरुष आलस्य को त्यागकर हृदयके विषें, अग्निके विषें सुवर्णादिकी प्रतिमाके विषें, ब्राह्मणके विषें, "शालिग्रामकी" प्रतिमाके विषें मेरा पूजन करै; प्रातःकालके समय देहशुद्धिके अर्थ प्रथम स्नान करै॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण! बुद्धिमान् पुरुष वेद और तंत्रोंमें कहेहुए मंत्रोंकरके मृत्तिकालेपनादि स्नानकी विधिसे शुद्ध होकर नित्यका जो संध्यादि कर्म है उसको विधिपूर्वक करै ॥ १५॥ तदनन्तर कर्मसिद्धिके निमित्त बुद्धिमान् पहिले संकल्प करै, मुझसे अभेदबुद्धि करके अर्थात् मेरा रूप मानकर गुरूका पूजन करै ॥ १६ ॥ तदनन्तर शिलाके विषें प्रतिष्ठा करीहुई मेरी मूर्तिको स्नान करावै, मृत्तिकाकी मूर्ति होय तौ उसका मार्जन करै, फिर स्मृतिआदिके विषें कही हुई सामग्रीसे तिस प्रतिमाके विषें मेरा पूजन करै तब मनुष्य अपनी अभिलाषाके फलको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ परन्तु पाखण्डको त्यागकर इन्द्रियोंको वशमें करके गुरुकी बताई हुई विधिके अनुसार पूजन करनेसे ही अभिलाषा

पूर्ण होतीहै अन्यथा नहीं. हे लक्ष्मण! प्रतिमाको आभूषण चढ़ाना मुझको महाप्रिय है ॥ १८ ॥ प्रतिमाके विषें पूजन करना होय तौ पुष्प आदि सामग्रीकी अवश्यकता है, और अग्नि सूर्य तथा चित्रके विषें पूजन करै तौ घृतकी आवश्यकता है अर्थात् घृतसे हवन करै. हे भ्रातः! अधिक क्या कहूँ भक्तपुरुष श्रद्धापूर्वक केवल जलसेभी यदि मेरा पूजन करै तौ मैं प्रसन्न होताहूँ और भक्तिपूर्वक भक्ष्य भोज्य गंध पुष्प और अक्षतादिसे मेरा पुजन करै तौ कहनाही क्या है? पूजाके सम्पूर्ण द्रव्य इसप्रकार इकट्ठे करके पूजन करै ॥ १९ ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण! पूजन करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण पूजाकी सामग्रीको इकट्ठा करके पहिले कुशके आसनपर मृगछाला बिछावै उसके ऊपर ऊनका आसन बिछावे, तब शुद्धचित्त होकर भगवान्‌की प्रतिमाके सामने तिस आसनपर बैठे॥ २१ ॥ फिर मातृकान्यास बाहर और भीतर करै, तदनन्तर केशवादिन्यास, तदनन्तर तत्वन्यास, फिर विष्णुपंजरन्यास और मंत्रन्यास करै. इसीप्रकार सावधान होकर प्रतिमाके विषें भी न्यास करै; और पूजा करनेवाला पुरुष भगवान्‌के सामने अपने वामभागमें जलपूर्ण कलश स्थापन करै, और दाहिनी ओर अर्घ्य पाद्य देनेके निमित्त तथा आचमन देनेके निमित्त मधुपर्कदेनेके निमित्त चार पात्र और पुष्प रक्खै और अपने हृदयकमलके विषें सूर्यकी समान निर्मल जीवरूप मेरी कलाका ध्यान करै,हे लक्ष्मण! जिस कलाकरके यह सम्पूर्ण देह व्याप्त होरहाहै और उसही मेरी कलाका प्रतिमा आदिके विषें आव्हान न करै ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ तदनन्तर दम्भको त्यागकर पाद्य,अर्घ्य,आचमनीय, वस्त्र और आभूषण आदि सामग्रीसे यथाशक्ति मेरा पूजन करै ॥ २७ ॥ यदि पूजन करनेवाला सम्पत्तिमान् होयतौ कर्पूर, केशर, अगर, चंदन सुंदर सुगन्धियुक्त पुष्प, धूप, दीप, अनेकप्रकारके नैवेद्य और पांचप्रकारके नीराजन आदिके द्वारा मंत्रोंको पढ़ताहुआ मेरा पूजन करै, और अगस्त्यसंहिताके विषें कहीहुई रीतिके अनुसार दश आवर्णदेवताओंकाभी पूजन करै ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे भ्रातः! पूजा करनेवाला पुरुष यदि श्रद्धासें यह

सम्पूर्ण सामग्री मेरेअर्थ समर्पण करै तौ मैं ग्रहण करताहूँ, इसकारण मैं श्र-द्धाके वशीभूत हूँ, हे भ्रातः! मंत्रोंको जाननेवाला पूजक पुरुष पूजाके अन-न्तर मेरी प्रसन्नताके अर्थ यत्नपूर्वक विधिसे हवन करै ॥ ३० ॥ हे लक्ष्मण! होम करनेके समय कुण्डकी आवश्यकता है, इस कुण्डको पुरुष अगस्त्यसंहिताके विषें कहीहुई रीतिसे बनावै, तदनन्तर मेरे मूलमं-त्रको अथवा पुरुषसूक्तको पढ़कर हवन करै ॥ ३१ ॥ हे भ्रातः! यह जो कुंण्डमें हवन करनेकी विधि कही सो शूद्रादि और अग्निहोत्र न करनेवाले ब्राह्मणोंके अपनी उपास्य अग्निके विषें घृतसे अथवा चरुसे हवन करना चाहिये, उनको कुण्ड बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, बुद्धिमान् पुरुष हवन करतेसमय अग्निके विषें तपायेहुए सुवर्णकी समान दैदीप्यमान और दिव्य आभूषणोंकरके शोभित मेरे रूपका ध्यान करै तदनन्तर हनुमानआदि मेरे पार्षदोंके अर्थ बलि देकर हवनको समाप्त करै ॥ ३२॥ ॥ ३३ ॥ हे भ्रातः! तदनन्तर पूजन करनेवाला पुरुष मौन होकर मेरा ध्यान करता हुआ मेरे मूलमंत्रका जप करै और मेरा स्मरण करै फिर प्रस-न्न मनसे मेरे अर्थ कर्पूरसे बसाया हुआ ताम्बूल समर्पण करै ॥ ३४ ॥ मेरी प्रसन्नताके अर्थ अपने आप नृत्य गीत और स्तोत्रादि पाठ करै, फिर हृदयमें मेरा ध्यान करताहुआ पृथ्वीपर दण्डवत प्रणाम करै, फिर मेरे प्रसाद-के पुष्पादिको मेरी भावनासे मस्तकपर धारण करै और मनमें भक्तिपूर्वक यह विचारै, कि-हे इष्टदेव! तुम्हारे चरणकमलोंको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर शिरपै धारण करताहूं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ फिर पूजन करनेवाला हाथ जोड़कर हे भगवन्! मुझे घोर संसारसे रक्षा करो, इसप्रकार प्रार्थना करके प्रणाम करै, फिर परमज्ञानी पुरुष हृदयके विषें स्थित जीव करके आह्वान न करीहुई मेरी कलाका स्मरण करता हुआ विसर्जन करै॥ ३७॥ इसप्रकार कही हुई रीतिसे यदि विधिपूर्वक पूजन करै तौ पुरुष मेरे अनु-ग्रहसे इस लोक और परलोकमें सुखको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ यदि मेरा भक्त प्रतिदिन इस रीतिसे मेरा पूजन करै तौ मेरे सारूप्यको निःसन्देह

प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ हे भ्रातः तुम्हारे सन्मुख मैंने जो यह अतिपवित्र परम गुप्त सनातन पूजनकी विधि कही इसको जो पुरुष निरंतर पाठ करैंगे अथवा श्रवण करैंगे वह निःसन्देह पूजन करनेके फलको प्राप्त होंगे॥ ४० ॥ श्रीरामचंद्रजीने जिज्ञासा करनेवाले परमभक्त महात्मा लक्ष्मणजीके अर्थ इसप्रकार पूजन करनेकी विधि वर्णन करी ॥ ४१ ॥ तदनंतर प्राकृतमनुष्य-की समान मायाका अवलंबन करके अतिदुःखपूर्वक हा सीते! हा सीते! इसप्रकार विलाप करते हुए अतिकठिनतासे निद्राको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ इस अंतरमेंही तिस किष्किन्धानगरीके विषें परमबुद्धिमान् हनुमान् एका-न्तमें वानरराज सुग्रीवसे कहने लगे ॥ ४३ ॥ कि हे महाराज! मैं आपके परमहितकी एक वार्ता कहताहूँ सो सुनो; पहिले आपके साथ श्रीरामचंद्र-जीने अत्यन्त उपकार करा है अब आपको जो कुछ करना चाहिये उस-को भूलकर आप निश्चिन्त बैठे हैं. हे महाभाग! वह उपकार सामान्य नहीं है, देखो श्रीरामचंद्रजीने जगत्विख्यात महावीर वालिका तुमारे निमित्त रणभूमिमें प्राणान्त करके तुम्हें किष्किन्धाके राज्यमें अभिषिक्त किया था, और उनकीही सहायसे तुम्हें परमदुर्लभ तारा मिली है, इससमय वही श्रीरामचंद्रजी छोटे भ्राताकरके सहित पर्वतके शिखरपर निवास करतेहुए बड़ा भारी कार्य करनेके निमित्त तुम्हारे आनेकी बाट देख रहेहैं, तुम वानर जाति होनेके कारण स्त्रीके विषें आसक्त होकर कुछभी विचार नहीं करते हो ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तुमने श्रीरामचंद्रजीसे सीताको ढूँ-ढनेकी प्रतिज्ञा करी थी और इससमय तुम कुछ नहीं करतेहो, हे महाराज! तुम परमकृतघ्नीकी समान व्यवहार करते हो, इसकारण श्रीरामचंद्रजी बहु-तही शीघ्र वालिकी समान तुम्हेंभी नष्ट करदेंगे ॥ ४८ ॥ सुग्रीव इसप्रकार हनुमान्जीके कथनको सुनकर भयसे व्याकुल होकर कहनेलगा, कि— हे कपिश्रेष्ठ! तुमने जो कुछ कहा यह सत्य है ॥ ४९ ॥ इसकारण शीघ्र-ही मेरी आज्ञाके अनुसार तुम महावीर दश सहस्रवानरोंकी सेनाको शीघ्रही दशों दिशाको भेजो ॥ ५० ॥ बस अब वह सब जाकर सातोंद्वीपोंके स-

म्पूर्ण वानरोंको पंद्रहदिनके भीतर यहाँ लिवालावें ॥ ५१ ॥ और वानरोंकी सेनामें मेरी यह आज्ञा सुनावें कि एक पक्षके भीतर अपने अपने कार्योंसे निवटकर सब यहाँ आजायँ, जो पक्षभरके भीतर नहीं आवेंगे निःसन्देह मैं उनको प्राणदण्ड दूँगा. इसप्रकार हनुमानको आज्ञा देकर सुग्रीव घरमें चलेगये ॥ ५२ ॥ मंत्रियोंमें श्रेष्ठ हनुमानजीने बुद्धिमानीके साथ उसी समय सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार दशोंदिशाओंमें वानरोंकी सेनाको भेजदिया ॥ ५३ ॥ पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीने परमगुणी और परमपराक्रमी वायुकी समान वेगसे चलनेवाले, और पर्वतकी समान हैं शरीरोंके आकार जिनके ऐसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ वानरोंकेसमूहोंको धन और सन्मानसे संतुष्ट करके दूत बनाकर भेजा ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किंधाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पं०रामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी कहनेलगे, कि–हे पार्वति! इधर श्रीरामचंद्रजी तिस पर्वतके शिखरपर मणिमय गुहाके विषें बैठे हुए रात्रिका समय आनेपर सीताके वियोगको न सहकर लक्ष्मणजीसे इसप्रकार कहने लगे, कि॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! मेरी प्राणप्रिया जानकीको राक्षस जबरदस्तीसे हरकर लेगया सो इतने दिनोंपर्यंत जीती रही होगी या नहीं ? यह निश्चय करनेको मैं समर्थ नहीं हूं ॥ २ ॥ यदि कोई पुरुष मुझे यह खबर सुनादेगा, कि–सीता जीती है, उस पुरुषको मैं परमप्रियबन्धु समझूँगा; यदि मुझे कोई यह खबर देगा, कि सीता इसप्रकार ले आऊंगा, जिस प्रकार देवताओंने समुद्रमेंसे अमृत लियाथा; हे भ्रातः! सुनों मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, जिस दुष्टात्माने मेरी परमप्रिया जानकीको हरा है उसको मैं पुत्रादि कुटुंब सेना और वाहनों सहित भस्म करदूंगा; हा जनकनंदिनि सीते! हा चंद्रमुखि! तुम राक्षसके स्थानमें निवास करतीहुई मेरा दर्शन न होनेके दुःखको भोगती हुई किसप्रकार प्राणोंको धारण करती होओगी; हे प्रिये! मैं तुम्हारे विरहमें व्याकुल

होरहा हूँ, अधिक क्या कहूँ तुम्हारे विरहमें शीतलकिरण चंद्रमाभी मुझे प्रचंडकिरण सूर्यकीसमान प्रतीत होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे चंद्र ! तुम जिन शीतल किरणोंसे जानकीके शरीरका स्पर्श करतेहो उनही सम्पूर्ण किरणोंसे मेरे शरीरका स्पर्श करो, सुग्रीवही दयाहीन होकर मुझे दुःखितको नहीं देखता है, और निष्कंटक राज्यको प्राप्त होकर एकान्तस्थानमें स्त्रियोंके साथ सम्भोगके सुखको भोगताहै मेरेदुःखको एकबारभी नहीं देखता, हे भ्रातः! मद्यपानमें आसक्त अतिकामी वह सुग्रीव मालूम होताहै. कृतघ्नी होगया, इसकारणही शरत्कालको आयाहुआ जानकरभी सीताको ढूंढनेके निमित्त वह पापात्मा यत्न नहीं करताहै,मालूम होताहै वह कृतघ्नी मेरे पहिले करेहुए उपकारको भूल गया ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! जिसप्रकार मैंने वालीका प्राणान्त कराथा, तिसीप्रकार सकुटुंब सुग्रीवकोभी किष्किन्धासहित नष्ट करे देताहूँ जैसे मेरे हाथसे वालीका प्राणान्त हुआथा तैसेही आज सुग्रीवकाभी अन्त होयगा ॥ १० ॥ तदनन्तर इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीको क्रुद्ध देखकर लक्ष्मणजी कहने लगे, कि हे देव ! आप आज्ञा करिये मैं इस घड़ीही किष्किन्धा में जाताहूँ, दुष्टात्मा सुग्रीवको नष्ट करके शीघ्रही आपके पास लौटकर आताहूँ इसप्रकार कहकर धनुष, तलवार और तरकसको लेकर किष्किन्धाको जानेकेलिये तयारहुए लक्ष्मणजीको देखकर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे, कि—तुम मेरे प्रिय मित्र सुग्रीवको वालीकी समान नष्ट मत करदेना॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ किन्तु उसको भय दिखलाना, भय दिखलानेपर सुग्रीव जो कुछ कहै वह यहाँ आनकर मुझसे कहो,तब जो कुछ करना होयगा वह निःसन्देह करूँगा; भीमपराक्रम लक्ष्मणजी तथास्तु कहकर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार मानो वानरोंके समूहको क्रोधरूपी अग्निकरके भस्म करनेके अभिप्रायसे किष्किंधाको चल दिये, इधर सर्वज्ञ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मीरूप अपनी शक्तिकरके निरंतर मिलेहुए और विज्ञानमय होकरभी प्राकृतमनुष्यकी समान दुःखपूर्वक सीताके निमित्त शोक करने लगे; श्रीमहादेवजी कहतेहैं, कि—हे पार्वति ! बुद्धि आदिके साक्षी

मायासे पर रागद्वेषादिरहित परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके चित्तमें इसप्रकारके विकार कदापि उत्पन्न नहीं होसक्ते, परन्तु वह वैकुण्ठनाथ नारायण ब्रह्माजीकी प्रार्थनाको और राजा दशरथकी तपस्याको सफल करनेके निमित्त मनुष्य रूपसे प्रकट हुए, और मनुष्यकी समान व्यवहार करा, एक समय विष्णु भगवानने ऐसा विचार करा, कि--सम्पूर्ण प्राणी मेरी मायासे मोहित होरहेहैं इन अज्ञानी मनुष्योंकी मुक्ति किसप्रकार होय? फिर निश्चय कर लिया, कि-- सम्पूर्ण लोकोंके पापोंको दूर करनेवाली परम पुनीत रामायणनामक मेरी कथाका जगत्में प्रचार होनेपर अवश्यही अज्ञानियोंकी मुक्ति होजायगी, सो इससमय विष्णु भगवान् मनुष्यावतारको धारण करके लौकिक व्यवहारोंका उपदेश करनेके निमित्त समय समयके अनुसार क्रोध मोह और कामको अंगीकार करतेहैं और सत्वादिगुणोंके वशीभूत प्रजाओंको मोहित करतेहै और विज्ञानस्वरूप शक्तियुक्त तथा स्वयं विज्ञान स्वरूप सम्पूर्ण जगत्के शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी भगवान श्रीरामचंद्र निर्गुण होकर भी प्रीतिपूर्वक सत्वादि तीनों गुणोंका कार्य करतेहैं; परन्तु जिसप्रकार आकाश वायुके उड़ायेहुए धूलि आदिके संयोगको प्राप्त होकरभी उससे लिप्त नहीं होताहै तिसीप्रकार श्रीरामचंद्रजी भी कामक्रोधादिसे लिप्त नहीं होतेहैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ कोई कोई महर्षि कभी तिस अद्वितीय पुरुषके साक्षात्कारको प्राप्त होतेहैं, हरिभक्तिपरायण सनकादि ऋषि सदाही परमात्माका साक्षात्कार करतेहैं क्योंकि भक्तवत्सल भगवान् भक्त पुरुषोंके चित्तोंकी वृत्तिके अनुसार होकर उनके हृदयमें प्रकट होतेहैं, भगवद्भक्तिसे निर्मल अन्तःकरणवाले वह भक्तिही भगवत्तत्वको भलीप्रकार जानतेहैं; इधर वीर शिरोमणि लक्ष्मणजीभी उससमय किष्किन्धा नगरीके समीप जाकर सम्पूर्ण वानरोंको भयभीत करनेके निमित्त भयङ्कर प्रचण्ड प्रत्यंचाका शब्द करनेलगे, साधारण वानर लक्ष्मणजीको देखकर किष्किन्धाकी चारोंओरका प्राकार (छारदिवारी—शहरके चारोंओरके परकोटे) पर चढ़गये, और वृक्ष

तथा पत्थर उठा उठा कर किल किल शब्द करनेलगे; तबतौ उन वानरोंको देखकर महावीर लक्ष्मणजीके नेत्र क्रोधके कारण लाल लाल होगये ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ और वानरोंको नष्ट करनेके निमित्त भयंकर धनुषकी प्रत्यंचाको खेंचने लगे, इतनेहीमें लक्ष्मणजीको आये हुए जानकर मंत्रिश्रेष्ठ अंगद तहाँ शीघ्रही आये, और वानरोंको रोंका, फिर लक्ष्मणजीके समीप आकर दण्डवत प्रणाम करा ॥ २८ ॥ २९ ॥ तदनन्तर प्रीतिके बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी अंगदको हृदयसे लगाकर कहने लगे, कि—हे पुत्र ! तुम शीघ्रही जाओ, और अपने पितृव्य (चाचा) से कहो ॥ ३० ॥ श्रीरामचंद्रजीने क्रुद्ध होकर लक्ष्मणको किष्किन्धामें भेजा है; अंगद 'तथास्तु' कहकर शीघ्रही गया और सुग्रीवके समीप जाकर यह सब वार्ता सुनादी ॥ ३१ ॥ कि— हे महाराज ! क्रोधसे लाल लाल नेत्र करे हुए महावीर लक्ष्मणजी नगरके बाहरके द्वारपर खड़े हुए हैं; वानरराज सुग्रीव अंगदके इसप्रकार कहनेको सुनकर अत्यन्त भयभीत होगया ॥ ३२॥ और शीघ्रही श्रेष्ठ मंत्री हनुमान्‌को बुलाकर कहने लगा, कि-- हे मंत्रिन्! तुम शीघ्रही अंगदके साथ नगरके द्वारपर जाकर क्रुद्ध महावीर लक्ष्मणजीको नम्रता पूर्वक कोमल वचनोंसे शांतिकरके यहाँ लिवालाओ; सुग्रीवने इसप्रकार हनुमान्‌जीको तौ भेजदिया फिर वालिकी स्त्री तारासे कहनेलगा, कि-- हे अनघे ! तूभी जा, और महावीर लक्ष्मणजीको कोमल और मधुर वचनोंसे शान्ति करके रणवासमें लाकर मुझे दर्शन करा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ तारा 'बहुत अच्छा' कहकर बीचकी ड्योढ़ीमें जाकर बैठगई, हनुमान्‌जीने अंगदके साथ लक्ष्मणजीके समीप जाकर परमभक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके शुभ समाचार बूझा, और कहने लगे, कि हे महाभाग ! हे परमपराक्रमी ! आप चलिये निःसन्देह यह स्थान आपकाही है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ आप चलकर राजपरिवार और सुग्रीवको दर्शन दीजिये; तदनन्तर हे प्रभो ! आप जो आज्ञा करेंगे सो किया जायगा ॥ ३८ ॥ पवनकुमार हनुमान्‌जी इसप्रकार कहकर भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजीका हाथ पकड़ेहुए नगरके

बीचमें होकर राजमंदिरमें लाये ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणजी चारों ओर वानरसेनापति
यों बड़े बड़े महलोंको देखकर इन्द्रके भवनकी समान राजभवनमें गए
॥ ४० ॥ मदसे लाल हैं नेत्र जिसके सम्पूर्ण आभूपणोंको धारण करेहुए
चन्द्रमुखी ताराने लक्ष्मणजीको बीचकी ड्योढ़ीमें आयाहुआ देख कुछ मु-
स्कुराकर कहा, कि—हे देवर ! आइये, तुम्हारा कल्याण हो, हे महाबाहो !
तुम तौ परोपकार करनेवाले और भक्तवत्सल हो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ फि-
रभी परमभक्त अपने दास कपिराज सुग्रीवके ऊपर किसकारण कोप करा;
देखो देवर कपिराज सुग्रीवने निरास होकर बहुत काल पर्यन्त दुःख भो-
गाथा, इस समय आपनेही उनकी परमदुःखके समूहसे रक्षा करी है आपके
ही अनुग्रहसे इससमय परम प्रवीण सुग्रीव सुखको प्राप्त होकर काम वा-
सनामें आसक्त होनेके कारण रघुनाथजीकी सेवा करनेके निमित्त नहीं गये,
परन्तु रघुनाथजीके कार्यमें कदापि उदासीनता नहीं करेंगे; हे रघुकुलशि-
रोमणि ! इससे पहिलेहि नानादेशोंके वानरसमूहोंको बुलानेके निमित्त उन्होंने
दशसहस्र वानरोंकी सेना भेजीहै; सो बड़े बड़े पर्वतोंकी समान शरीरवाले वा-
नरोंके समूह बहुतही शीघ्र सम्पूर्ण दिशा और देशोंसे यहाँ आवेंगे ॥ ४३ ॥
॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उन नानरोंके समूहोंके आतेही कपिराज सु-
ग्रीव उनको साथ लेकर जायँगेः और राक्षसाधम रावण तथा उनके अनुचर
राक्षसोंके समूहोंको नष्ट करेंगे ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! वानरराज सुग्रीव
इस समयही श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करनेके निमित्त जायँगे; परन्तु इतना
होना चाहिये, कि--इससमय आप रणवासमें जाकर स्त्रीपुरुष और बान्ध-
वोंसहित सुग्रीवको दर्शन देकर अभयदान दीजिये, और अपने साथही श्री-
रामचंद्रजीके पास लिवाजाइये; दयालु लक्ष्मणजीने इसप्रकार ताराके वचनों-
से प्रसन्न होकर क्रोधको त्याग दिया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तदनन्तर रणवा-
समें जाकर सुग्रीवके मंदिरमें गये तौ क्या देखते हैं! कि--वानरराज सुग्रीव
अपनी प्यारी स्त्री रुमाको आलिङ्गन करे हुए शय्यापर लेटाहुआ है, सो
सुग्रीव लक्ष्मणजीको देखकर अत्यन्त भयभीतको तुल्य शय्यासे बहुत जो-

रसे कूदा, लक्ष्मणजी मद्यपान करनेसे उन्मत्त हुए सुग्रीवको देखकर कहने लगे, कि--अरे दुराचार! क्या तू इससमय रघुनाथजीको भूलगया? अरे वानर जिसबाणसे वाली यमलोकको सिधारा था वही बाण तेरे प्राणान्तकी वाट देख रहा है; इससमय ही तू मेरे हाथसे मृत्युको प्राप्त होकर वालीके मार्गको जायगा वीरशिरोमणि हनुमान्‌ने इसप्रकार अति कठोर भाषण करते हुए लक्ष्मणजीसे कहा, कि--हे महाभाग! आप किसकारण महाराजको ऐसे कठोर वाक्य कह रहेहैं? यह तो श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें तुमसेभी अधिक भक्ति रखतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और दिनरात श्रीरामचंद्रजीके कार्यके निमित्त जागते रहतेहैं, किसीसमयभी श्रीरामचंद्रजीके कार्यको नहीं भूलते हैं; हे प्रभो! यह देखो अनेक दिशा और देशोंसे आयेहुए करोड़ों वानरोंसे चारोंओर किष्किन्धामें भर रहेहैं थोड़े समयमें ही सम्पूर्ण वानरोंके समूह सीताजीको ढूंढ़नेके निमित्त जायँगे, महाराज सुग्रीवभी श्रीरामचंद्रजीके कार्यको अवश्यही पूरा करदेंगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी हनुमान्‌जीके इसप्रकार वचनोंको सुनकर लज्जित होगये; तदनंतर सुग्रीवने पाद्यअर्घादिसे लक्ष्मणजीका विधिपूर्वक पूजन करके हृदयसे लगाया, और हृदयसे लगाकर कहने लगा, कि—हे वीरेन्द्र! मैं रामचंद्रजीका दास हूँ, इन्होंने ही मेरी रक्षा करी है, इसकारण मुझे क्षमा कीजिये, हे प्रभो! श्रीरामचंद्रजीके प्रतापसे आधे क्षणके वीचमेंही चौदह लोकोंको जीत सक्ते हैं ॥ ५७॥ ५८ ॥ हे प्रभो! मैं और वानरोंके समूह तो नाममात्रके सहायक हैं; इसप्रकार सुग्रीवके नम्रवचनोंसे संतुष्ट होकर लक्ष्मणजी कहनेलगे ॥ ५९ ॥ कि—हे महाभाग! मैंने आपसे प्रेमयुक्त कोपसे जो कुछ कहा उसको क्षमा करो; हे वानरराज! तयार होकर मेरे साथ अभी श्रीरामचंद्रजीके समीप चलो क्योंकि सीताके वियोगसे व्याकुल श्रीरघुनाथजी वनमें इकले बैठे हैं; सुग्रीव इस प्रकार लक्ष्मणजीके कहनेको स्वीकार करके तत्काल लक्ष्मणजी करके सहित रथपर सवार होगये, और वानरोंके समूहोंको साथ लेकर श्रीराम-

चंद्रजीके पासको चलदिये ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ जिस समय हनुमान् नील और अंगद आदि वानरसमूह और रीछोंके समूह करके सहित वानरराज सुग्रीव चलनें लगा तबतक चारों दिशाओंमें बहुतसी भेरी और मृदंगोंकी ध्वनि होती रही, और वानरोंमेंसे कोई श्वेतछत्र लिये हुए थे, कोई चमरोंसे सुग्रीवका वीजना कररहे थे ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति! सुग्रीव और लक्ष्मणने रथपै चढ़कर तिस पर्वतकेविषें आकर देखा तो जटाजूटकरके विराजमान मृगचर्मको ओढ़े हुए विशाल नेत्र सहास्यवदन नव दूर्वादलश्याम श्रीरामचंद्रजी सीताके विरहसे व्याकुल होकर गुहाके द्वारपर पड़ीहुई शिलापर बैठकर इधर ऊधर फिरतेहुए मृगपक्षियोंकी आकृतियोंको देखकर किसी प्रकारसे अपने चित्तको वहला रहेथे, इतनेहीमें दोनों जने दूरसेही रथसे उतरकर श्रीरामचंद्रजीके समीप गये और भक्तिपूर्वक प्रणाम करा ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर शुभसमाचार बुझा, और समीप बैठाकर तिस सुग्रीवका विधिपूर्वक सत्कार किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर परम भक्तिमान् सुग्रीव नम्रतापूर्वक श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा, कि— हे देव! आप देखिये यह सम्पूर्ण कुलाचल पर्वतपर उत्पन्न हुई मेरु और मंदराचलके समान शरीरधारी और अनेक द्वीप अनेक नद नदी और पर्वतोंपर निवास करनेवाले यथेष्ट रूप धारणकरनेवाले पर्वतोंकी समान शरीरधारी वानरोंकी सेना चली आरही है, यह सब देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए और युद्ध करनेमें प्रवीण हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे प्रभो! इन वानरोंमें कोई वानर एक हस्तीके समान, कोई वानर दश हस्तीके समान, और कोई वानर दशहजार हस्तीकी समान बलवान् हैं, और कोई तो ऐसे हैं, कि— जिनके बलका वर्णन ही नहीं होसक्ता ॥ ८ ॥ और इनमें कोई वानर अं-

जनके समूहके समान कृष्णवर्ण, कुछ वानर सुवर्णके समूहकी समान पीत-वर्ण हैं, और कुछ वानरोंके मुख लालवर्ण, कुछ वानरोंके रोम अत्यन्त बड़े बड़े हैं ॥ ९ ॥ और कोई वानर निर्मल स्फटिक मणिकी समान उज्ज्वल और शुक्लवर्ण, और कोई वानर राक्षसोंके आकारके हैं; देखो यह वानरोंका समूह युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ चारों ओर भ्रमण कर रहा है॥ १०॥ हे रघुनाथजी ! यह वानरोंकी सेना वनके फल मूलादिकोंको भक्षण करनेवाली है, और सब आपकी आज्ञाका पालन करनेवाली है और हे प्रभो!यह ऋक्षराज परमपराक्रमी बुद्धिमान् जाम्बवान् करोड़ रीछोंकी सेनाको मालिकहै॥ ११॥ और अतितेजस्वी परम प्रसिद्ध पवनकुमार यह हनुमान्‌भी मेरे मंत्रियोंमें श्रेष्ठ है, और नल, नील, गय, गवाक्ष, गंधमादन, सरभ, सैन्धव, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार और हनुमान्‌के पिता परमपराक्रमी केशरी; यह मेरे सेनापति हैं, हे श्रीरामचंद्रजी ! यह सब मैंने प्रधान प्रधान गिनाए औरभी अनेक हैं,और यह सब इन्द्रकी समान पराक्रमी महाबलवान् परमयशस्वी और प्रत्येक करोड़ करोड़ वानरोंके अधिपति हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥१४॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे रघुनाथजी ! देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए इन सम्पूर्ण वानरोंके समूहोंको आप अपना आज्ञाकारी जानिये; हे प्रभो ! यह परमप्रसिद्ध वालिकुमार वालिकी तुल्य परम पराक्रमी महावीर और राक्ष-सोंकी सेनाको नष्ट करनेवाला श्रीमान् अंगद आपके सन्मुख खडा है; यह सब और अन्य अन्यभी बहुतसे महावीर सेनापति वानर आपके निमित्त प्राणपर्यन्त त्यागनेको तयार हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ यह सब महा-वीर पर्वतोंके शिखरोंके द्वारा युद्ध करके शत्रुको नष्ट करनेमें परमप्रवीण हैं, हे रघुकुल शिरोमणि ! आप इन सबको अपने अधीन जानकर आज्ञा दीजिये॥ १९॥ इसप्रकार कहनेके अनंतर श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवको हृदयसे लगाकर आनन्दके कारण नेत्रोंमें जलभर कहने लगे,कि--हे मित्र ! मैं जानता हूँ, कि-- तुम इस बड़े भारी कार्यको पूर्णरीतिसे जानते हो ॥ २० ॥ अब जानकीको ढूँढ़नेके निमित्त यदि तुम्हारी इच्छा होयतो इस कार्यकेलिये

वानरोंको आज्ञा दीजिये; श्रीरामचंद्रजीके कथनको सुनकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने प्रसन्न होकर महाबली परमपराक्रमी वानरोंको चारोंओर भेज दिये, और दक्षिण दिशामें नल, सुषेण, सरभ, मैन्द, द्विविद और महाबली अंगद, जाम्बवान्, हनुमान्, आदिको यत्नपूर्वक भेजा, और यह कहदिया॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ कि--हेवानरो ! शुभलक्षणा सीताजीको तुम यत्नपूर्वक ढूँढो, और मेरी आज्ञाके अनुसार एक महीनेके भीतर लौट आओ ॥ २५ ॥ यदि सीताको विना देखे या एकमासके अनंतर एक दिन व्यतीत करके आओगे तो मैं तुमको प्राणदण्ड दूँगा ॥ २६ ॥ सुग्रीवने इसप्रकार परमपराक्रमी वानरोंको भेजकर श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करा, और उनके समीपमें बैठगया ॥ २७ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी जातेहुए हनुमान्जीसे कहनेलगे, कि-- हे पवनकुमार ! मेरे नामसे अंकित इस उत्तम अँगूठीको विश्वासके अर्थ एकान्तमें बैठीहुई सीताको देना ॥ २८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! इस कार्यमें तुमही सहायक होओगे, मैं तुम्हारे सम्पूर्ण पराक्रमको जानताहूँ, अब तुम जाओ, मेरे आशीर्वादसे दुर्गम मार्गभी तुम्हें सुगम होयगा ॥ २९ ॥ इसप्रकार वानरराज सुग्रीवके भेजेहुए अंगद आदि वानर सीताको ढूँढनेके निमित्त इधर उधर घूमने लगे ॥ ३० ॥ और घूमते घूमते उन्होंने विन्ध्याचल पर्वतकी समान भयानक आकृतिवाला मृग और हस्तियोंको भक्षण करताहुआ एक राक्षस देखा ॥ ३१ ॥ कुछ वानर उस राक्षसका बड़ा शरीर देखकर यही रावण है, ऐसा अनुमान करके तत्काल किल किल शब्द करके उसके ऊपर मुष्टियोंका प्रहार करने लगे ॥ ३२ ॥ रावण अति पराक्रमी है इसकारण इस साधारण मुष्टियोंके प्रहारसे उसको क्या क्लेश होयगा और वह कब सह सकैगा ? इसकारण यह रावण नहीं है ऐसा विचारकर वह वानर दूसरे बड़े वनमें चले गये. उन वानरोंने तहाँ प्याससे व्याकुल होकर तहाँ जल नहीं पाया उस महावनमें इधर उधर फिरने लगे कंठ और तालु सूख गया फिर तहाँ तृण लता आदिसे ढकीहुई एक भयानक गुहा देखी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

उस गुहामेंसे गीले पंखवाले क्रौंच और हंसोंको निकलतेहुए देख-कर तिन वानरोंने अनुमान किया, कि-इसके भीतर निःसन्देह जल है इस-कारण हम अवश्यही इसके भीतर जाँय ॥ ३५॥ ऐसा विचार करके पहिले तौ हनुमान् घुसे, तदनंतर सब वानर एकका एक हाथ पकड़ शृंखला बांध-कर उत्कंठासे तिस गुहामें घुसे ॥ ३६ ॥ उन वानरोंने तिस महा अंधकार युक्त गुहामें जाते जाते बहुत दूरपर स्फटिक मणिकी समान निर्मल सरोवर और पके हुए सुंदर फलोंके बोझेसे ढके हुए कल्पवृक्षकी समान अनेक वृक्ष देखे ॥ ३७ ॥ मणि वस्त्रादिसे परिपूर्ण मनुष्योंसे रहित नानाप्रकारके भोजनके द्रव्यों करके युक्त स्थानोंको और तिन वृक्षोंको देखकर वह सब आश्चर्यमें होगये, और एक गृहमें होगये, और एक गृहमें विचित्र सुवर्णके आसनपर बैठी हुई वल्कलधारिणी योगिनीको देखकर भयभीत हो सबने भक्तिपूर्वक प्रणाम करा; कान्तिसे प्रकाशमान् तिस योगिनीने ध्यानसे चित्तको हटाकर इन वानरोंसे कहा, कि—हे वानरो! तुम किसकारण और स्थानसे यहां आये हो? और तुम्हें किसने भेजा है यहाँ किसकारण विघ्न-कर रहे हो? तिस योगिनीके इसप्रकार कथनको सुनकर हनुमान्जी बोले, कि—हे देवि! मैं बताता हूँ सुनो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अयोध्यापति महाराज दशरथ प्रसिद्ध राजा थे, उनके बडे पुत्र श्रीरामचं-द्रजी परम प्रसिद्ध हैं ॥ ४३ ॥ वह पिताकी आज्ञा पालन करनेके निमित्त स्त्री जानकी और छोटे भ्राता लक्ष्मण करके सहित इस वनको आए थे, इस वनमें श्रीरामचंद्रजीकी पतिव्रता सीताको दुष्टात्मा रावणने हरलिया, तब छोटे भ्राता लक्ष्मणकरके सहित श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवके पास आकर उससे मित्रता करी, सो मित्रताके कारण सुग्रीवने वानरोंको आज्ञा दी है, कि— हे वानरो! श्रीरामचंद्रजीकी परमप्रिया सीताको ढूंढो, सो हम इस वनमें इधरउधर सीताको ढूँढतेढूँढते जलकी इच्छासे इस भयानक गुफामें प्रारब्धवशसे आगए हैं, हे देवि! तुम कौन हो? और किसकारणसे इस स्था-नमें निवास करती हो? सो सब हमसे कहो ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥ इसप्रकार कहनेपर वह योगिनी प्रसन्न होकर तिन वानरोंसे पिपासासे व्याकुल देखकर कहने लगी, कि– हे वानरो ! तुम अपनी इच्छाके अनुसार फल मूल खाओ, और अमृतकी समान जलपान करके आओ, तब मैं आद्योपान्त सम्पूर्ण वृत्तान्त कहूँगी; वानर योगिनीके कहनेको स्वीकार करके गये, और फल मूल खाकर तथा जलपान करके योगिनीके समीप आये और हाथ जोड़कर खड़े होगये, तब दिव्य है दर्शन जिसका ऐसी वह योगिनी इसप्रकार हनुमान्‌जीसे कहने लगी, ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ कि– हे हनुमान् ! पूर्वकालके विषें परममनोहर दिव्य रूपवती हेमानामक विश्वकर्माकी कन्याने नृत्य गीत आदिसे महादेवजीको प्रसन्न किया था ॥ ५१ ॥ शीघ्रही प्रसन्न होकर महादेवजीने हेमाको यह परम सुन्दर नगरी दीथी, तब सुन्दरी हेमाने इस पुरीमें हजारों वर्षपर्यन्त निवास करा था ॥ ५२ ॥ तिस समय मैं मोक्षकी अभिलाषा करनेवाली और विष्णुभगवान्‌की सेवामें तत्पर होकर तिस हेमासे सखीभाव रखतीथी, मैं गन्धर्वकी पुत्री हूँ, मेरा नाम स्वयंप्रभा है ॥ ५३ ॥ हेमा ब्रह्मलोकको जातेसमय कहगई थी कि– तू प्राणीमात्रकरके रहित इसस्थानमें निवास करतीहुई तपस्या कर ॥ ५४ ॥ अविनाशी परमात्मा त्रेतायुगमें राजादशरथके यहां जन्म लेकर पृथ्वीका भार दूर करनेके अर्थ वनमें आवेंगे ॥ ५५ ॥ वानरोंके समूह तिन श्रीरामचंद्रजीकी मायाके ढूँढ़नेके अर्थ यहाँ प्रवेश करेंगे, तू उनका सत्कार और प्रयत्नपूर्वक श्रीरामचंद्रजीकी स्तुति करके योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य विष्णुभगवानके सनातन पदको प्राप्त होयगी, सो हे वानरो ! इसकारण शीघ्रही श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करनेके निमित्त जानेको मेरी इच्छा है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तुम नेत्र मीचकर गुहाके बाहर चलो वानरोंने यह वाक्य सुनकर शीघ्रतासे पहिलेही वनमें आगमन किया ॥ ५८ ॥ यह योगिनीभी तत्काल गुहाको त्यागकर श्रीरामचंद्रजीके समीप गइ और लक्ष्मणजी तथा सुग्रीव करके सहित श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करा, और परमबुद्धिमान् तिस योगिनीने

प्रदक्षिणा करके श्रीरामचंद्रजीके अर्थ वारंवार प्रणाम करा, उससमय उसके शरीरपर रोमांच खड़े होगए, और गदगद वाणीसे कहने लगी, कि-- हे श्री-रामचंद्रजी ! मैं आपकी दासी आपका दर्शन करनेके निमित्त आई हूँ, मैंने आपके दर्शन करनेके निमित्त हजारों वर्षपर्यन्त परम दुष्कर तप करा, आज वह मेरा तप सफल हुआ; अब मैं मायासे पर रहनेवाले आपको प्रणाम करतीहूँ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर और भीतर अदृश्यरूपसे निवास करते हो, तुम्हारी मायारूप परदेसे मनुष्य ढक रहेहैं, और तुमने योगमायासे अच्छिन्न होकर यह मनुष्यरूप धारण करा है ॥ ६३ ॥ जिसप्रकार स्त्रीवेष धारी पुरुष अज्ञपुरुषोंके जाननेमें नहीं आवैहै, तिसीप्रकार मनुष्यका रूप धारण करनेवाले आपका वास्तविक स्वरूप अज्ञपुरुषोंके जाननेमें नहीं आवैहै; हे भगवन् ! तुम परमभागवत पुरुषोंकी भक्तिरूप योगको विधान करनेकी इच्छासे इस पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए हो, अज्ञानसे ढकीहुई मैं आपको किसप्रकार जानसक्ती हूँ, क्योंकि त्रिलोकीमें कोई पुरुषही भक्तियोगके द्वारा आपको ईश्वर रूपसे जानता होगा ? ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! मुक्तिके देनेवाले आपके चरण कमलोंका मैंने दर्शन करा, तुम्हारा यह रूप मेरे हृदयमें सदा विराजमान होवो ॥ ६६ ॥ संसार समुद्रके मिटानेवाले उत्तममार्गके दिखानेवाले, व निष्किंचन पुरुषके धनरूप आपको धन, पुत्र, कलत्रादि विभूतियोंसे गर्वित जन नहीं देख सक्ता ॥ ६७ ॥ गुणसृष्टिसे निवृत्त; निष्किंचन धन, आत्माराम, निर्गुण, व गुणात्मा आपके अर्थ नमस्कार हैं. मै आपको कालरूपी, ईशान, आदि, मध्य, अंत इनकरके रहित, सर्वत्र समभावसे विचरनेवाले पर, पुरुष मानती हूं हे देव ! मनुष्य देहकी विडम्बनामात्र करनेवाले आपके चरितको कोई नही जानता ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ आपके न कोई प्यारा, न कोई शत्रु है, न कोई पराया है परंतु आपकी मायासे आवृत चित्तवाले आपको वैसा देखते हैं ॥ ७१ ॥ अजन्म अकर्ता, व ईश्वर आपका जो देवता, तिर्यक्, मनुष्यादिदेहमें जो जन्मकर्मादिक सो अत्य-

न्त विडम्बना है ॥ ७२ ॥ और अक्षर अर्थात् अविनाशी आपको कोई तो कथाश्रवणसिद्धिके उत्पन्न हुये कहते हैं कोई कोसलराजराजा दशरथकी तपस्याके फलकी सिद्धिके लिये उत्पन्न हुये हो ऐसा कहते हैं॥ ७३॥ अन्य जन कौसल्याकी पार्थनासे उत्पन्न हुये कहते है, कोई ऐसा कहते हैं कि दुष्ट, व राक्षसरूप पृथ्वीका भार हरनेके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे प्रभुने नरदेह धारण किया है. इसप्रकार हे रघुनन्दन! जो आपकी कथावोंको सुनते हैं व गाते हैं, वे संसारसमुद्रसे तारनेवाले आपके चरणारविंदको देखते हैं, और आपकी मायाके गुणोंसे बँधीहुई मैं इनसे व्यतिरिक्त, गुणाश्रय, सबके अविषय, और विभु आपको कैसे जान सक्ती हूं व कैसे स्तुति करसक्ती हूं, सो रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ, धनुषबाण धारण किये, व सुग्रीवादिकोंसे युक्त, छोटे भाई लक्ष्मण सहित, आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ इसप्रकार स्तुति किये गये, व प्रणत जनोंके पाप हरनेवाले, रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर, अपनी भक्त उस योगिनीसे बोले कि तेरा क्या मनोरथ है ? ॥ ७८ ॥ वह योगिनी भक्तिपूर्वक श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि हे भक्तवत्सल ! हे प्रभो ! मैं चहे जहां उत्पन्न होऊं? परंतु आप सर्वत्र मुझे अपनी अचल भक्ति देवो ॥ ७९ ॥ और मेरा सदा आपके भक्तोंहीमें संग रहै, प्राकृत पुरुषोंमें नहीं, तथा मेरी जिव्हा 'राम राम' ऐसा भक्तिपूर्वक सर्वदा कहा करे ॥ ८० ॥ और मेरा मन सीतालक्ष्मणसहित, धनुषबाण धारण किये, पीताम्बरधारे, उज्ज्वल मुकुटधारे, अंगद (बजुल्ला), नूपुर मोतियोंका हार, कौस्तुभमणि व कुण्डलोंसे शोभायमान, श्यामस्वरूपका स्मरण करता रहे, हे राम ! हे प्रभो ! दूसरा वर मैं नहीं मागती॥ ८१ ॥ ८२॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे महाभागे ! ऐसाही होवे, अब तू बदरिकाश्रमको जा, वहां हमारा स्मरण करती हुई तू थोडेही कालसे पञ्चभूतमय इस शरीरको त्यागकर हमीको प्राप्त होगी ॥ ८३ ॥ अमृतवत् मीठा श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुन तत्काल बेरेकी वृक्षसमूहसे युक्त बदरिकाश्रम तीर्थको जाकर उसी समय रघुपति श्रीरामचंद्रजी

का स्मरण करती वह योगिनी शरीरको छोड परम पदको प्राप्त होती भई ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा० किं० पण्डितरामस्वरूपकृत भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि इसके अनन्तर सीताजीके ढूंढनेसे दुबले वे वीरनर वृक्षसमूहमें बैठकर दुःखित होने लगे ॥ १ ॥ तहां वानरश्रेष्ठ अंगदनामक कोई वानर उन वानरोंसे बोला, कि वनमें घूमते २ हम लोगोंको एक महीना वीतगया ॥ २ ॥ परंतु सीता हम लोगोंको मिली नहीं राजाकी आज्ञा पूरी करी नहीं अब यदि किंष्किधाको जायगे तो सुग्रीव हमें मारैगा ॥ ३ ॥ विशेषकरके शत्रुपुत्र मुझको इसी बहानेसे मारैगा, क्यों कि मुझपर उसकी प्रीति कहां थी, मेरी तो श्रीरामचन्द्रजीने रक्षा करी है ॥ ४ ॥ इससमय मैने रामकाज किया नहीं यही उस दुष्टात्मा सुग्रीवका मेरे मारनेमें बहना हो जायगा ॥ ५ ॥ यह पापी सुग्रीव माताके सदृश भाईकी स्त्रीको भोग करता है, इसकारण हे वानर श्रेष्ठो! उसके पास न जायँगे ॥ ६ ॥ यहीपर जिस किसीप्रकारकी मौतसे देह त्याग दूंगा इसप्रकार आसूं भरे दुःखित अंगदको देख कोई २ वानरश्रेष्ठ पीडित हुये, और आखोंमें आंसूं भरकर अंगदजीसे बोले ॥ ७ ॥ ८ ॥ कि हे अंगद! इसमें आप किसलिये शोक करते हो? हम लोग आपके प्राणरक्षक होंगे और भयरहित इसीगुहामें रहैंगे ॥ ९ ॥ यह पुर सर्व सौभाग्य सहित देवलोकके समान है परस्पर धीरे धीरे ऐसे कहते हुये वानरोंकी वचन सुन नीतिविशारद मारुतीनन्दन हनुमानजी अंगदको आलिंगन कर बोले की आप यह बुरा विचार क्यों विचारते हैं ऐसा हो नहीं सक्का ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ हे अङ्गद! तू ताराको अति प्रियपुत्र हो, तथापि महाराज सुग्रीवको निःसंदेह अत्यंत प्रिय हो, और श्रीरामचंद्रजीके विषे तो लक्ष्मणसे भी अधिक प्रीति है, और प्रतिदिन वृद्धिकोही प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ इसकारण श्रीरामचंद्रजीसे और विशेष करके सुग्रीवसे

तौ तुम्हें कदापि भय नहीं करना चाहिये, हे पुत्र! मैं सदा तुम्हारे हित करनेमें ही लगा रहा हूँ, तुम्हें और किसी प्रकारका विचार न करना चाहिये ॥ १३ ॥ और वानरोंने जो कहा, कि—हम निर्भय होकर इस गुहामें निवास करेंगे अर्थात् कदापि सुग्रीवके पास नहीं जायँगे; सो हे अंगद! तुम जरा विचार कर तो देखो? भला वानरोंका इस प्रकार कहना क्यों कर ठीक हो सक्ता है? त्रिलोकीमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, कि—जिसको श्रीरामचंद्रजी अपने बाणसे भेदन न कर सकें? ॥ १४ ॥ और हे वानरश्रेष्ठ अंगद! यह जो सम्पूर्ण वानर तुमको खोटी सलाह दे रहे हैं सो यह अपने स्त्री पुत्रादिको त्यागकर किसप्रकार तुम्हारे पास रह सकेंगे ॥ १५ ॥ हे पुत्र! और एक गुप्त वार्ता मैं तुमसें कहता हूँ सो सुनों, श्रीरामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं किन्तु जन्ममरण रहित साक्षात् नारायण देव हैं, और सीताजी साक्षात् मायाके गुणोंसे संसारको मोहित करनेवाली महामाया हैं और लक्ष्मणजी पृथ्वीको धारण करनेवाले साक्षात् सर्पराज शेषजीका अवतार हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ यह सब ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर राक्षसोंके समूहोंका नाश करनेकेलिये मायाकरके मनुष्यरूपसे प्रकट हुए हैं. वास्तवमें यह त्रिलोकीके रक्षक हैं ॥ १८ ॥ और हम सब वैकुंठमें निवास करनेवाले विष्णु भगवान्के पार्षद हैं, जब परमात्माने अपनी इच्छासे मनुष्यका अवतार धारण करा; तब हमभी उनकी ही मायाकरके वानररूपसे उत्पन्न हुए हैं, और हम सब पूर्वकालमें तपस्याके द्वारा उनही त्रिलोकीके स्वामीकी आराधना करके उनके अनुग्रहसेही पार्षदपदको प्राप्त हुए थे, इससमय भी वानररूप करके तिनही परमात्माका सेवन करके फिर वैकुण्ठलोकको प्राप्त होंगे इसप्रकार हनुमान्जीने अंगदको समझाया, फिर सब वानर विन्ध्याचल पर्वतपर गए ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तहाँ जानकीजीको ढूँढते हुए, धीरे २ दक्षिणसमुद्रके तटपर महेन्द्राचल पर्वतके पास एक परमपवित्र छोटेसे पर्वतपर पहुँचे ॥ २३ ॥ तहाँ अथाह और कठिनसे पार होनेयोग्य समुद्रको देखकर सम्पूर्ण वानर भयभीत हो-

गये, और कहने लगे, कि—अब हम क्या करैं ॥ २४ ॥ और चिन्तासे व्याकुल होकर सब समुद्रके तटपर बैठगये और अंगद आदि महाबली वह सब वानर आपसमें सलाह करने लगे ॥ २५ ॥ कि—इस पर्वतकी गुहाओंमें फिरतेंही फिरते हमको एकमास बीत गया, अबतक न रावणही देखा, और न सीताही देखी, ॥ २६ ॥ बड़ा कठोर है दंड जिनका ऐसे महाराज सुग्रीव निःसंदेहही हमको प्राण दंड देंगे, सो सुग्रीवके हाथसे मर-नेकी अपेक्षा तो हमको स्वयं अन्नजलका त्याग करके प्राणोंको त्याग देना ही श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥ ऐसा निश्चय करके वहाँ ही सबने चारों और कुश विछाये और मरणका निश्चय करके तिन कुशोंपर बैठगये ॥ २८ ॥ इसी अंतरमें तहाँ धीरेसे महेन्द्राचलपर्वतकी गुहामेंसे निकलकर पर्वतको समान शरीरवाला एक गृध्र आया ॥ २८ ॥ और अन्नजलको त्याग मरणका निश्चय करके बैठेहुए तिन वानरोंको देखकर धीरेसे कहने लगा, कि—आज तो मुझे बहुतसा भोजन मिला, अब क्रमसे प्रतिदिन एक एक करके सबको भक्षण करूँगा; इसप्रकार उस गृध्रके कहनेको सुनकर सम्पूर्ण वान-रोंके मनमें भय उत्पन्न होगया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और आपसमें कहने लगे, कि—हे वानरो! यह गृध्र निःसंदेह हम सबको भक्षण करलेगा, सो अब हमसे श्रीरामचंद्रजीका कुछ कार्य न हुआ, और सुग्रीवकाभी कुछ हितसाधन न हुआ, तथा अपनाभी कुछ हित न हुआ, अब हम बेकारणही इस गृध्रके द्वारा मृत्युकोप्राप्त होकर मृत्युलोकको जायँगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हाय! परम बुद्धिमान् जटायुही धन्य था जो श्रीरामचंजीके अर्थ प्राणोंको त्यागकर योगियोंको भी कठिनसे प्राप्त होने योग्य मोक्ष पदको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ तब तो वह संपाती गृध्र इसप्रकार वानरोंके परस्पर भाषणको सुनकर कहने लगा, कि—अरे तुम कौन हो? जो कानोंको अमृतकी समान सुख देनेवाले जटायु इस मेरे भ्राताके नामको उच्चारण करके इससमय परस्पर वार्तालाप कर रहे हो, सो मुझसे कहो, और मुझसे तुम किसी प्रकारका भय मत करो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तब तो श्रीमान् अंगद उठ-

कर गृध्रके पास गये और कहने लगे, कि-हे महात्मन्! दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी और श्रीमान् लक्ष्मणकरके और अपनी स्त्री सीताकरके सहित दण्डकारण्यमें निवास करतेथे, सो एक दिन पर्णकुटीमें सीताजीको बैठाकर श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी मृगया (शिकार) के निमित्त बाहर वनमें गये थे, इतनेहीमें दुष्टात्मा रावण सीताजीको हरकर लेगया, उससमय महाबली परम पराक्रमी पक्षिराज जटायुने आकाश मार्गके विषे हा राम! हा रघुनाथ! इस प्रकार करुणायुक्त विलापको सुनकर आकाश-मार्गमें जाती हुई सीताजीकी रक्षा करनेके निमित्त रावणके साथ भयंकर युद्ध करा, और श्रीरामचंद्रजीके निमित्त वह महात्मा जटायु रावणके हाथसे मारागया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने स्वयं जटायुका दाह करा तिससे वह श्रीरामचंद्रजीके सायुज्य (मुक्ति) को प्राप्त हुआ, फिर श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके पास गये और अग्निको साक्षी करके सुग्रीवसे मित्रता करी ॥ ४१ ॥ फिर सुग्रीवके कहनेसे परम परा-क्रमी बालीका प्राणान्त करके वानरोंका राज्य तिन परम पराक्रमी श्रीरा-मचंद्रजीने सुग्रीवको दे दिया, फिर महाबली महाराज सुग्रीवने सीताजीको ढूँढनेके निमित्त बड़े बड़े बलवान् हम वानरोंको भेजा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और यह आज्ञा दी, कि-तुम एक मासके भीतर सीताको ढूँढकर नहीं लौटेगे तो तुम सबको प्राणदण्ड दूंगा; सो हम इस वनमें गुहाओंके विषे सीताको ढूँढनेके निमित्त घूमते रहे, इतनेहीमें एकमास व्यतीत होगया और हमको मालूम न हुआ परन्तु रावण और सीताकी वार्ताभी सुननेमें न आई, सो हम इस समुद्रके तटपर अन्नजलका त्याग करके प्राणत्याग करनेके निमित्त बैठे हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ हे पक्षिराज! यदि तुम माता सीताको जानते हो, कि-रावण किस स्थानमें हरकर लेगया, तो हमें बता दीजिये; इसप्रकार अंगदके वचनको सुनकर सम्पाती प्रसन्न चित्त हो कहने लगा, कि हे वानरो! बहुत दिनोंके अनंतर हजारों वर्षोंमें मैंने अपने परम प्रिय भ्राता जटायुका वृत्तान्त सुना है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सो हे वानरो! मैं पता बता-

कर सीताके ढूँढ़नेमें तुम्हारी सहायता करूंगा, परन्तु पहिले मुझे परम प्रिय भ्राता जटायुके निमित्त जलदान (तर्पण) करनेके लिये जलाशयके समीप लेचलो, फिर तुम्हारा कार्य सिद्ध होनेके निमित्त सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कहूँगा, इसप्रकार पक्षिराजके कहनेको स्वीकार करके वानर तिस सम्पातीको समुद्रके तटपर लेगये, तब उसने समुद्रके जलमें स्नान करके जलांजलि देकर भ्राताका तर्पण करा, फिर वानर तिस सम्पातीको उसही स्थानपर ले आये; तदनंतर सम्पाती वानरोंके हर्षको बढ़ाता हुआ कहने लगा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ कि-हे वानरो ! समुद्रके मध्यमें त्रिकूट पर्वतके ऊपर एक लंकानामनगरी है, उसमें अशोकवाटिकाके विषें राक्षसि-योंकरके रक्षा करी हुई श्रीरामचंद्रजीकी प्रियतमा सीता निवास करती है, गृध्रोंको बहुत दूरकी वस्तुभी दृष्टिगोचर होजाती है इसकारण यहाँसे सौ योजन दूर समुद्रके बीचमें स्थित लंका और सीताजी मुझे दीखती है इसमें तुम किसीप्रकारका संदेह मत करो, जो इस सौयोजन चौड़े समुद्रको उल्लं-घन कर सकैगा वह निःसन्देह सीताजीका दर्शन करकेही लौटैगा, क्या करूं मैं पक्षहीन हूँ नहीं तो भ्राता जटायुका प्राणान्त करनेवाले दुष्टात्मा राव-णको मैं इकलाही यमलोकको पहुंचादेता ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे वानरो ! तुम इस समुद्रको उल्लंघन करनेका यत्न करो तब श्रीरामचंद्रजी दुष्टात्मा राक्षसपति रावणका प्राणान्त करेंगे ॥ ५५ ॥ अब तुम हे वानरो! यह विचार करो, कि सौ योजन चौडे समुद्रको उल्लंघन करके लंकापुरीमें जाकर तहाँ जानकीजीका दर्शन और उनसे संभाषण करके, फिर समुद्रके इस पारको लौट आवै ऐसा तुम्हारे विषे कौन है ? ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद-ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा-दाबादवास्तव्य पण्डित रामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि-हे पार्वति ! जब सम्पातीने इसप्रकार कहा तब तो सब वानर आश्चर्यमें होगए और तिस सम्पातीसे बूझने लगे, कि-हे

भगवान्! आप अपना आदिसे लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये ? ॥ १ ॥ तब तौ सम्पाती अपना पहिला सम्पूर्ण वृत्तान्त कहने लगे कि-हे वानरो! पहिले मैं और जटायु दोनों भ्राता युवावस्थाको प्राप्त होकर बलकरके बडे गर्वको प्राप्त हुए, और हम दोनों अपने बलकी जांच करनेके निमित्त सूर्य-मण्डलपर्यन्त जानेके निमित्त बड़े घमंडके साथ उड़े ॥ २ ॥ ३ ॥ बहुत हजार योजनपर्यन्त जब पहुँचे तब भ्राता जटायु तौ सूर्यके तेजसे संतापको प्राप्त होगया, तब मैंने स्नेहके कारण भ्राताको अपने पक्षोंसे ढकलिया तब तौ सूर्यकी किरणोंसे मेरे पक्ष (पंख) जलगये और इस विंध्याचल पर्वतके शिखरपर गिरगया, और हे वानरो! दूरसे गिरनेके कारण उस समयमें मूर्च्छित होगया, यह नहीं मालूम हुआ, कि- मैं अपने देशमें हूं या पर्वतके शिखरोंपर पड़ा हूं पंखोंके जलनेसे भ्रान्त होरहा है मन जिसका ऐसा मैं तीन दिनके अनंतर कुछ होसमें हुआ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ और धीरेसे नेत्रोंको खोला तौ समीपमें एक बड़ा रमणीय आश्रम दीखा, तब मैं धीरे धीरे उस आश्रमके समीप गया ॥ ७ ॥ तब तौ तहां चन्द्रमा नामक मुनीश्वर मुझे देखकर आश्चर्य्यमें होगए, और कहनेलगे कि-हे सम्पाते यह क्या हुआ ? और तुम्हे विरूप किसने करदिया ॥ ८ ॥ मै तुमको जानताहूँ, तुम तौ पहिले बड़े बलवान् थे, तुम्हारे पंख किसप्रकार जलगए सो यदि उचित समझो तौ मुझसे कहो ॥ ९ ॥ तब मैंने अपना सब चेष्टित कह सुनाया, फिर दुःखित होकर कहने लगाकि- हे मुने! वडवानलकी समान बड़ी भारी चिन्तासे मेरा चित्त महाव्याकुल होरहा है ॥ १० ॥ कि-मै पंखोंके विना अपने जीवनको किसप्रकार व्यतीत करूँगा, जब मैंने इस-प्रकार कहा तब तौ वह दयालु मुनि नेत्रोंमें जल भरकर मेरी ओर देखकर कहने लगे ॥ ११ ॥ कि-हे पुत्र! मैं अब जो कहताहूं सो सुन, फिर जैसी तेरी इच्छा हो वैसा करना, हे सम्पाते! यह जो कुछ दुःख है सो देहमूलक है, अर्थात् जबतक शरीरोपाधि है तबतकही दुःख है, और देह कर्म्मोंके द्वारा उत्पन्न हुआ है, और देहके विषें " अहंबुद्धि—मैं देह हूँ ऐसी बुद्धि'

होनेपर पुरुषकी कर्म्मोंमें प्रवृत्ति होती है, और अहंबुद्धि अहंकार-(मैं देहहूँ ऐसी बुद्धि) अनादि जड़ परविद्यासे उत्पन्न होनेवाली है, वह अहंकार चैतन्यके प्रतिबिम्बकरके इसप्रकार युक्त रहता है, जिसप्रकार लोहेके गोलेमें वास्तवमें अग्नि नहीं होती परन्तु वह गोला तपाकर लाल करनेसे अग्निकी समान दीखने लगता है और दाहादि अग्निका कार्यभी करता है, इसीप्रकार उस अहंकारका देहके साथ तादात्म्य सम्बन्ध (जो भिन्न होकर भी अ- भिन्नसा दीखै उसे तादात्म्य कहते हैं) होनेसे देहभी चेतनयुक्त सा प्रतीत होने लगता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अहंकार अर्थात् मैं करताहूं इसप्रकारकी बुद्धि होनेसे मैं देह हूँ ऐसी बुद्धि होती है उस बुद्धिसे ही सुखदुःखादिका कारण यह संसार अर्थात् शरीर धारण होता है ॥ १५ ॥ निर्विकार जीवात्माको मिथ्या तादात्म्य संबन्ध होनेसे मैं देहहूं, मैं कर्म्मोंका करनेवाला हूँ सदा ऐसा प्रतीत होता है ॥ १६ ॥ इसकारणही जीव पाप- पुण्यरूप कर्म्मोंको करता है और तीन कर्म्मोंके फलके वशीभूत होकर बंधनको प्राप्त होता है, फिर यदि पापकर्म करै तौ चिरकालपर्यन्त अधो- गतिको प्राप्त रहताहै; और पुण्य कर्म करै तौ स्वर्गमें निवास करता है ॥ १७ ॥ जीवात्मा ऐसी अभिलाषा करता है, कि-मैंने बहुत पुण्य और यज्ञदानादि कर्म करे हैं इसकारण मैं निःसन्देह स्वर्ग- लोकमें जाकर सुख भोगूंगा ॥ १८ ॥ परन्तु वह जीवात्मा इस अपने अध्यास (अन्यथाबुद्धि) से स्वर्गलोकमें चिरकालपर्यन्त अत्यन्त सुख भोगकर फिर पुण्यका क्षय होनेके कारण इच्छा न करकेभी कर्मके वशीभूत होकर नीचेको गिरता है, और गिरकर वह सूक्ष्मशरीर धारी जीव चन्द्रमण्डलको प्राप्त होता है, तहाँ नीहार (कुहर) संयुक्त होकर पृथ्वीतलमें आता है और धान्योंमें प्रवेश करताहै ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ तिस धान्यमें बहुतकालतक स्थिर रहकर तिस धान्यके बनाए हुए चर्व्य, चोष्य, लेह्य, और पेह; उस चारप्रकारके द्रव्यके रूपमें परिणा- मको प्राप्त होताहै, तदनंतर पुरुषोंकरके भोजन कियाजाता है, फिर उस

पुरुषका वीर्यरूप होकर ऋतुकालके विषे स्त्रीकी योनिमें सींचा जाताहै, फिर स्त्रीकी योनिके रुधिरमें मिलकर जरायु (जेल) में लिपटता है, फिर एक दिनके अनंतर कललरूप होकर दृढताको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ फिर पांचरात्रिके अनंतर बुद्बुदेके आकारका होजाता है, और सात रात्रिके अनंतर मांसकी थैलीके आकारको प्राप्त होजाता है ॥ २३ ॥ पंद्रहदिनमें वह थैली रुधिरसे भरजाती है, पचीस रात्रिके अनंतर उस मांसकी थैलीसेही अंकुर उत्पन्न होनेलगते हैं ॥ २४ ॥ और एकमासतक क्रमसे उस मांसकी थैलीमें ग्रीवा शिर कंधे, पींठ और पेट, यह पांच अंग उत्पन्न होजातेहै ॥ २५ ॥ दूसरे महीनेमें क्रमसे हाथ, पैर, पसली, कमर और जानु (घुटुए) यह पांच अंग उत्पन्न होते हैं; और तीसरे महीनेमें क्रमसे सब अंगोंकी संधियें (जोड़) उत्पन्न होते हैं, चौथे महीनेमें क्रमसे सब अंगुलियें उत्पन्न होती हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ पांचवें महीनेमें नासिका, कर्ण, नेत्र दांतोंकी पंक्ति नख और गुह्यस्थान (मूत्रस्थान) यह अंग उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥ छठे महीनेके भीतर कर्णोंमें स्पष्ट छिद्र होजाते हैं, और गुदा, मेढ्र; उपस्थ और नाभि प्रकट होती है ॥ २९ ॥ और सातवें महीनेमें रोम तथा शिरके केश उत्पन्न होते हैं, आठवें महीनेमें सम्पूर्ण अंग अलग अलग स्पष्ट तयार होजाते हैं; हे पक्षिराज ! इसप्रकार स्त्रीके उदरमें गर्भ वृद्धिको प्राप्त होता है और पांचवें महीनेमें जीव सब प्रकारसे चेतनताको प्राप्त होजाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और इस गर्भकी नाभिमें लिपटेहुए नालके सूक्ष्म छिद्रमें होकर माताके भोजन करेहुए अन्नका रस जाता है, तिससे वह बालक पुष्टिको प्राप्त होता है और अपने कर्मके योगसे मृत्युको भी नहीं प्रात होता ॥ ३२ ॥ और अपने सम्पूर्ण पहिले जन्म और कर्मोंको स्मरण करताहुआ माताके उदरकी अग्निसे संतापको प्राप्त होकर कहता है ॥ ३३ ॥ कि— हाय मैंनें नाना प्रकारकी सहस्रों योनियोंमें जन्म लेकर पुत्र स्त्री आदि संबन्ध, और करोडों, पशु, बांधव और कुटुम्बका पालन करनेकी आसक्ति करके न्याय और अन्यायसे धन पैदा

करना इन सब वार्ताओंका पूर्ण रीतिसे अनुभव करा, परन्तु मुझ हतभाग्य-ने स्वप्नमें भी विष्णुभगवान्का चिंतवन न किया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अब मैं उसका फल भोग रहा हूँ कि—मुझे गर्भमें निवास करके यह बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ा है ॥ ३६ ॥ हाय! मैंने नाशवान् देहको नित्य जान-कर तृष्णायुक्त हो अनेक न करनेयोग्य कार्य्य करे, और भगवान्का चिन्त-वन करके अपना हितसाधन न करा इसकारणही अपने कर्म्मोंके वशीभूत होकर अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगरहा हूँ ॥ ३७ ॥ इस नरकको समान गर्भसे मेरा निकलना कब होयगा, अब मैं आगेको गर्भसे निकलकर नित्य विष्णुभगवान्का पूजन करूँगा ॥ ३८ ॥ इत्यादि अनेक प्रकारके विचार करताहुआ यह जीव तबतक योनिरूप यंत्रकरके पीडित होता रहता है जबतक उत्पन्न होताहै और उत्पन्न होतेसमय नरकसे छूटतेहुए पुरुषकी समान दुःखको प्राप्त होताहै, फिर पीवसे भरे हुए घावसे निकलकर गिरे हुए कीड़ेकी समान यह जीव चेष्टा करताहै अर्थात् कुलवलाने लगता है, फिर अनेक प्रकारके बाल्यावस्थाके दुःख भोगता है, इसप्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंको दुःख भोगने पड़तेहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे गृध्र! यह दुःख तुमनेभी भोगे होंगे और सर्वत्र विदित हैं, इसकारण मैंने युवावस्था आदिके दुःख वर्णन नहीं करे ॥ ४१ ॥ मैं देह हूँ इसप्रकार अभ्यास होनेसे नरक आदिकी प्राप्ति होती है, और गर्भ-वास आदि दुःखभी इस अहंबुद्धिके वशीभूत होकरही भोगने पड़ते हैं ॥ ॥ ४२ ॥ तिसकारण स्थूल और सूक्ष्म दोनों देहोंसे पृथक् मायासे पर अपने आत्मस्वरूपको जानकर और देहादिकी ममताको त्यागकर ज्ञानवान् होय ॥ ४३ ॥ जाग्रत आदि अवस्थाओंसे रहित सत्य ज्ञान आदि स्वरूप शुद्ध बुद्ध सदा शान्तरूप आत्माका चिंतवन करै ॥ ४४ ॥ चैतन्यस्वरूप आत्माका ज्ञान होनेपर और अविद्यासे उत्पन्न होनेवाले मोहका नाश होने-पर देह नष्ट होजाय अथवा प्रारब्धकर्मके बलसे स्थित रहै, ज्ञानीको उससे कुछ प्रयोजन नहीं ॥ ४५ ॥ क्योंकि ज्ञानीको शरीरके त्यागसे दुःख और शरीरके रहनेसे सुख नहीं होता है, इसमें कारण यह है कि—सुख और

दुःख अज्ञानसे उत्पन्न होते हैं; सो जबतक प्रारब्ध कर्मोंका नाश नहीं होता है तबतक जीव ज्ञानको प्राप्त होकरभी शरीरको धारण करही रहता है ॥ ॥ ४६ ॥ सो हे पक्षिराज! जबतक तेरा प्रारब्धकर्म है तबतक तू कैंचलीसे युक्त सर्पकी समान शरीरको धारण कर. अब मैं और तेरे परम हितकी वार्ता कहताहूँ उसको श्रवण कर ॥ ४७ ॥ त्रेतायुगके विषे अविनाशी नारायण दशरथराजकुमार श्रीरामचंद्रका अवतार धारण करके रावणका वध करनेके निमित्त स्त्री सीता और भ्राता लक्ष्मण करके सहित दण्डकारण्यमें आवेंगे ॥ ४८ ॥ और तिस दण्डकारण्यके विषे आश्रममें दोनों भ्राताओंके न होनेपर रावण सीताको चोरकी समान हरण करके लंकामें लेजाकर रक्खेगा, फिर सुग्रीवकी आज्ञासे तिस सीताको ढूँढ़नेके निमित्त समुद्रके तटपर वानर आवेंगे, तहाँ तुम्हारा उनके साथ कारणवशसे निःसन्देह समागम होगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ तब तुम उन वानरोंसे सीताके रहनेका स्थान यथार्थ कहोगे तब तत्कालही तुम्हारे दोनों पक्ष नवीन उत्पन्न होजायँगे ॥ ५२ ॥ सम्पाती कहने लगा, कि—हे वानरो! उन चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरने मुझसे इसप्रकार कहा था सो तुम देखो अब मेरे कोमल नवीन पंख निकल आये हैं ॥ ५३ ॥ हे वानरो! तुम्हारा कल्याण होय, मैं तौ अब जाताहूँ, और तुम्हें निःसंदेह सीताका दर्शन होयगा; कठिनसे उल्लंघन करनेयोग्य समुद्रको उल्लंघन करनेका यत्न करो ॥ ५४ ॥ जिन श्रीरामचंद्रजीके नामका स्मरण करनेमात्रहीसे संसाररूप समुद्रको उत्तीर्ण होकर पापात्मा पुरुषभी सनातन विष्णुपदको प्राप्त होजाताहै, उनही जगत्के रक्षक श्रीरामचंद्रजीके परमप्रिय भक्त होकर क्या तुम इस क्षुद्र समुद्रके उल्लंघन करनेको समर्थ नहीं होओगे ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

महादेवजी कहते हैं, कि- हे पार्वति ! जब इसप्रकार कहकर गृध्रराज सम्पाती आकाशमार्गको चलागया, तब तौ वानर बड़ेही हर्षकरके युक्त हुए, और सीताजीके दर्शनकी अभिलाषा करनेलगे ॥ १ ॥ और समुद्रको देखकर परस्पर इसप्रकार कहने लगे, कि—नक्रादि जलचर समूहोंकरके भयंकर तरंगोंकरके ऊपरको बढ़नेवाले और आकाशकी समान अपार कठिनसे उल्लंघन करनेयोग्य इस समुद्रको हम किसप्रकार उल्लंघन करै, तब उनमेसे अंगद कहने लगे कि—हे वानरो ! सुनो ! तुम सब अत्यन्त बलवान् हो, शूर हो, और तुमने बड़े बड़े पराक्रम करे हैं, अब यह बताओ कि तुममें ऐसा कौन है जो इस समुद्रका उल्लंघन करके राजकार्य्यको करैगा ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ निःसन्देह वह महात्मा सम्पूर्ण वानरोंको प्राणदान देगा, इसकारण जो महाबली इस कार्य्यको करनेका साहस रखता हो वह शीघ्रही मेरे सामने आवै ॥ ५ ॥ निःसन्देह जो इस कार्य्यको करैगा वही सम्पूर्ण वानरोंको क्या श्रीरामचन्द्र और सुग्रीवका रक्षक होयगा ॥ ६ ॥ जब इसप्रकार युवराज अंगदने कहा, तब तौ सम्पूर्ण वानरोंकी सेना चुप होगई, और कुछभी न बोले एक एकका मुख देखने लगे ॥ ७ ॥ तब तौ अङ्गद बोले कि—हे वानरो ! इस कार्य्यको सिद्ध करनेकेलिये सब अपना अपना बल वर्णन करो; फिर हम विचार करके समझ लेंगे कि—कौन इस कार्य्यको कर सकैगा ॥ ॥ ८ ॥ इसप्रकार अंगदके कहनेको सुनकर सब वानर अपने अपने बलका अलग अलग वर्णन करने लगे, दश योजनसे लेकर दश २ योजन आगेको अधिक अपना अपना बल सबने कहा; ॥ ९ ॥ परन्तु सबने सौ योजनके भीतरही जानेको अपना बल बताया, परन्तु इनमें जाम्बवान्ने कहा कि मैं अपने बलसे नव्वे योजन कूद सक्ताहूँ, और जाम्बवान् कहनेलगे कि—पहिले वामनावतारके विषैं जब वामनजीने सम्पूर्ण पृथ्वीको एकही चरणसे नाप लिया, तब मैंने उनकी इकीस प्रदक्षिणाकी

थीं, इसकारण उससमय इक्कीस प्रदक्षिणा पृथ्वीकी करीं, परन्तु इस समय मैं वृद्धावस्थासे ग्रस्त होरहा हूँ, इसकारण समुद्रके पार सौ योजन जानेकी भी अब मुझमें सामर्थ्य नहीं रही है ॥ १० ॥ ११ ॥ फिर युवराज अंगदभी कहनेलगे, कि–समुद्रके पार जानेको तौ मैंभी समर्थ हूँ परन्तु यह नहीं कहसक्ता, कि–फिर लौटकर आसकूँगा या नहीं ॥ १२ ॥ तब अंगदसे जाम्बवान् कहनेलगे कि–हे वीर! तुम तौ आज्ञा देनेवाले राजा हो, यद्यपि तुम इस कार्यके करनेमें समर्थ हो, तथापि हम आपको इस कार्यके निमित्त भेजना नहीं चाहते ॥ १३ ॥ तब अंगद कहने लगे, कि–यदि ऐसा है तब तौ हम सब पहिले की समान कुशाओंको बिछाकर प्राणोंको त्यागनेके निमित्त शयन करेंगे, क्योंकि यदि कोईभी इस कार्यको नहीं करैगा, तौ फिर किसप्रकार हम जीवित रह सकेंगे? ॥ १४ ॥ तब फिर जाम्बवान् अंगदसे कहने लगे, कि–हे पुत्र! कि–जिसके द्वारा हमारा कार्य शीघ्रही सिद्ध होयगा, उस विरको मैं तुम्हें दिखाताहूँ ॥ १५ ॥ इसप्रकार कहकर जाम्बवान् एकान्तमें बैठेहुए हनुमान्‌जीसे बोले, कि–हे पवनकुमार! इस भारी कार्यको उपस्थित होनेपरभी तुम एकान्तमें किसप्रकार मौन बैठे हो? ॥ १६ ॥ हे महाबल! तुम वायुके पुत्र और वायुकी तुल्य पराक्रमी हो, तथा इस कार्यको सिद्ध करनेके निमित्त ही तुमने जन्म धारण करा है, जिसप्रकार अज्ञानी पुरुष ज्ञानको प्राप्त होकर अपनी सामर्थ्यको प्रकट करताहै; हे महात्मन्! जिससमय तुम उत्पन्न हुए थे तत्कालही उदय होते हुए सूर्यको देखकर, "यह पकाहुआ फल है" मैं इसको ग्रहण कर लूँ, ऐसा कहकर तुम पांचसौ योजन ऊपरको बालचेष्टासे अनायासहीमें कूदकर पृथ्वीतलसे आये थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसकारण तुम्हारे बलका वर्णन करनेको कौन समर्थ हो सक्ता है. हे दृढप्रतिज्ञ! ब्रह्मचारिन्! उठो, श्रीरामचंद्रजीका कार्य करके हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥ इसप्रकार जाम्बवान्‌के कहनेको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, और सिंहकी समान इसप्रकार गर्जे, कि–मानो ब्रह्माण्डको तोड़ही डालेंगे ॥ २१ ॥ और

अपने शरीरको पर्वतकी समान बढाकर ऐसे प्रतीत होने लगे, कि मानो दूसरा वामनावतार ही होगया, और कहने लगे, कि हे वानरो! समुद्रको उल्लंघन करके और लंकाको भस्म करके, सकुटुंब रावणका नाश करके जानकीजीको लाऊं? अथवा रावणके गलेमें रस्सी बांधकर, और त्रिकूटाचलसहित लंकाको ठाम हाथपर रखके ले आऊं? और श्रीरामचंद्रजीके सामने डालदूं? अथवा मैं शुभलक्षण माता जानकीजीको देखकर ही लौट आऊं? ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसप्रकार हनूमान्‌जीके कहनेको सुनकर जाम्बवान् यह बोले कि—हे पवनकुमार! तुम्हारा कल्याण होय, तुम शुभलक्षणा माता जानकीको जीवतीहुई देखकरही लौट आओ ॥ २५ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीके साथ अपना पुरुषार्थ दिखाना, हे पवनकुमार! अब तुम आकाशमार्गसे जाओ, मार्गमें तुम्हारा मंगल होय ॥ २६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्य्यके निमित्त जातेहुए मार्गमें परमपराक्रमी वायु तुम्हारी अनुगामी (सहायक) होय, इसप्रकार आशीर्वाद देकर वानरसेनापतियोंने हनुमान्‌जी बिदा करा ॥ २७ ॥ तब हनुमान्‌जीने महेन्द्राचलके शिखरपै जाकर अपना अद्भुतस्वरूप बनालिया ॥ २८ ॥ उससमय महापर्वताकार शरीरधारी, सुवर्णकी समान गौरवर्ण, और अरुणकी समान लाल मनोहर मुखवाले तथा शेषजीकी समान बड़े लम्बे भुजदण्डयुक्त, ऐसा हनुमान्‌जीका स्वरूप सब प्राणियोंके देखनेमें आया ॥ २९ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादावादवास्तव्यगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजभारद्वाजरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इति किष्किन्धाकाण्डः ।

॥ इति किष्किन्धाकाण्ड समाप्त ॥

श्रीः।

अध्यात्मरामायणभाषा।

सुंदरकाण्ड।

श्रीयुत पण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मणाविरचित

जिसमें

अक्षयवध, लंकादहन, इन्द्रजितयुद्ध, सीताशुद्धि,
पुनर्दाशरथिचरणसमीपमारुतिगमनादि
कथा सविस्तर लिखीहैं

वही

रामकथाभिलाषियोंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजीने

'गूजरातीप्रिंटिंग' प्रेसमें छपवायके

प्रसिद्ध किया.

आषाढ सं० १९५२ शके १८१८

॥ सुन्दरकाण्ड ॥ ५ ॥

दोहा—अक्षयवध लंकादहन, मेघनादसँग जंग ॥
लहि सियसुधि पुनि प्रभुगमन, सुन्दरकाण्डप्रसंग ॥ १ ॥

दोहा—राम २ नर राम कहु, राम २ उठि भोर ॥
कहर २ मरिहै नतौ, डरिहै काल मरोर ॥ २ ॥

दोहा—रामकथा पावन परम, सुख उपजावन सोय ॥
कहत कहावत सुनत जो, लहत महासुख सोय ॥ ४ ॥

दोहा—सुन्दर सुन्दर काण्डकी, अद्भुत कथा अनूप ॥
सुनहिं निरन्तर जे मनुज, ते न परहिं भवकूप ॥ ३ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ सुन्दरकाड प्रारम्भः ।

श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि—हेपार्वति ! मच्छ मगरआदिसे भरेहुए सौ योजन चौड़े समुद्रको उल्लंघन करनेकी इच्छा करनेवाले आनंदके समूहसे परिपूर्ण पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीने परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके इस प्रकार कहा, कि—सम्पूर्ण वानर देखें मैं अब आकाशमार्गसे जाताहूँ ॥ १ ॥ २॥ जैसे, कि—श्रीरामचंद्रजीका अमोघ बाण, हे वानरो ! मैं अबही जाकर श्रीरामचंद्रजीकी प्रिया जानकीजीको देखूँगा और उनके दर्शन करनेसे कृतार्थ होकर फिर लौटकर श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करूँगा, जिनके नामको देहान्तके समय एकवारभी स्मरण करताहुआ मनुष्य संसाररूपी अपार समुद्रको तिरकर उनकेही लोक (वैकुण्ठ) को प्राप्त होताहै, फिर उनही श्रीरामचंद्रजीका दूत तिसपरभी उनके शरीरकी धारण करी हुई मुद्रिकाको लियेहुए और उनकाही हृदयमें ध्यान करताहुआ मैं इस छोटेसे समुद्रको उल्लंघन करूँगा, इसमें संदेहही क्या है ? इसप्रकार कहकर श्रीहनुमान्‌जीने अपनी भुजाओंको फैलाया, और पूंछको लंबा किया, गर्दनको सीधा करा, दृष्टि ऊपरको लगाई, और दोनों चरणोंको सिकोड़कर , दक्षिकी ओरको मुखकरके वायुकी तुल्य गतिसे क्षणमात्रमें समुद्रको कूद गये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनंतर महाबली परमपराक्रमी पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीको आकाशमार्गमें वायुकी समानवेगसे जाताहुआ देखकर इन हनुमान्‌जीके बलकी परीक्षा करनेके निमित्त इसप्रकार कहनेलगे, कि—यह महाबली और पवनकी तुल्य गतिवाला जो वानर जारहा है यह लंकामें प्रवेश करनेकी सामर्थ्य रखता है या नहीं ? इस बातको जाननेके लिये हम इसकी परीक्षा करें; इसप्रकार विचार कर वह देवता आश्च-

ध्यमें हुएसे सुरसानामक नागोंकी मातासे कहने लगे, कि--हे सुरसे! यह जो बड़े मेघमंडलकी समान वानर जारहा है सो परकोटेसे घिरीहुई और हजारों वीरोंसे रक्षा करीहुई लंकापुरीमें प्रवेश करसकैगा या नहीं? इसबातकी परीक्षा करनेके निमित्त तुम जाओ और इस वानरके गमनमें कुछ विघ्न करो ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ इस वानरके बल बुद्धि और पराक्रमकी परीक्षा करके शीघ्रही लौटकर आओ,सुरसा इसप्रकार देवताओंके कहनेको सुनकर हनुमान्‌जीके कार्यमें विघ्न करनेके निमित्त शीघ्रही गई ॥ १२ ॥ और आगेसे हनुमान्‌जीके मार्गको रोकतीहुई खड़ी होकर हनुमान्‌से कहने लगी, कि--हे महामते! आओ मेरे मुखमें तुम शीघ्रही प्रवेश करो ॥ १३ ॥ क्योंकि मैं भूंखसे बड़ी व्याकुल होरही हूँ सो आज तुम्हैं ही देवताओंने मेरा भोजन कल्पना करा है, तबतौ हनुमान्‌जी उस नागमाता सुरसासे कहने लगे, कि--हे माता! मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे जानकीजीको देखनेके निमित्त जाताहूँ सो शीघ्रही लौटकर और तिन जानकीजी कुशल श्रीरामचंद्रजीके अर्थ निवेदन करके तुह्मारे मुखमें प्रवेश करूँगा, इससमय तुम मेरा मार्ग छोड़ दो; हे सुरसे! मैं तुमको नमस्कार करताहूँ, इसप्रकार श्रीहनुमान्‌जीके कहनेपर सुरसा फिर बोली, कि अरे वानर! मैं भूँखी हूँ मेरे मुखमें प्रवेश करजा नहीं तौ मैं अपने आप भक्षण करे लेतीहूँ; इसप्रकार कहनेपर हनुमान्‌जी बोले, कि-- अच्छा शीघ्रही मुखको फैला ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ तेरे मुखमें प्रवेश करके फिर मैं अभी जल्दीसे जाऊंगा; इसप्रकार कहकर हनुमान्‌जी एकयोजन लंबा शरीर धारण करके सुरसाके आगे खड़े होगए ॥ १८ ॥ सुरसानेभी हनुमान्‌जीके स्वरूपको देखकर अपने मुखको पांच योजनका करलिया, तबतौ हनुमान्‌जीने उससेभी दूना अर्थात् दशयोजनका अपना शरीर कर लिया, ॥ १९ ॥ तब सुरसाने अपने मुखको बीस योजनका करा, ऐसा देख हनुमान्‌जीने भी अपना शरीर तीस योजनका करलिया ॥ २० ॥ फिर सुरसाने अपने मुखको पचास योजन चौंड़ा करा, ऐसा देख हनुमान्‌जीने अपना शरीर अँगूठेकी तुल्य

करलिया, और उसके मुखमें प्रवेश कर फिर बाहर आकर सन्मुखही कहने लगे, कि—हेसुरसे! मैंने तेरे मुखमें प्रवेश करा और बाहरभी निकलआया अब तेरे प्रणाम करताहूँ, इसप्रकार कहतेहुए हनुमान्‌जीको देखकर वह सुरसा बोली; कि--हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! जाओ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको सिद्ध करो ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे हनुमान्! मुझे देवताओंने तुम्हारे बलकी परीक्षा करनेके निमित्त भेजा था, अब तुम जाओ सीताजीको देखकर फिर लौटकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करो ॥ २४ ॥ इसप्रकार कहकर सुरसा देवलोकको चलीगई, फिर पवनकुमार हनुमान्‌जीभी पवनमार्गसें इसप्रकार चले, कि--जैसे पक्षिराज गरुड़ ॥ २५ ॥ उससमय समुद्रभी मणि और सुवर्णमय मैनाकपर्वतसे कहने लगा, कि--हे मित्र! यह महाबली पवनकुमार हनुमान् श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त जारहेहैं, तुम इनको विश्राम देकर सहायक बनो क्योंकि पूर्वकालमें मुझे सगरके पुत्रोंने बढ़ाया था इसकारणही मेरा नाम सागर हुआ है ॥ २६ ॥ २७ ॥ उस ही राजा सगरके कुलमें वह दशरथ राजकुमार प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हैं उनहीका कार्य सिद्ध करनेके अर्थ यह कपीश्वर हनुमान् जारहा है ॥ २८ ॥ इसकारण तुम बहुत शीघ्र जलमेंसे ऊपरको उठो जिससे कि--हनुमान् तुम्हारे ऊपर विश्राम करके गमन करैं, वह मैनाकपर्वत इसप्रकार समुद्रके कहनेको स्वीकार करके नानाप्रकारकी मणियोंके शिखरोंकरके युक्त बड़े ऊँचे आकारको धारण कर जलमेंसे प्रकट हुआ और उस पर्वतके ऊपर मनुष्यरूपसे स्थित होकर आकाशमार्गमें पवनकी समान वेगसे जातेहुए हनुमान्‌जीसे कहने लगा, कि--हे पवनकुमार! मैं मैनाक हूँ और समुद्रकी आज्ञासे तुम्हें विश्राम देनेके अर्थ जलमेंसे उठा हूँ, सो तुम यहाँ आकर अमृतकी समान स्वाद पकेहुए फलमूलादिको भोजन कर कुछकाल विश्राम करके सुखपूर्वक जाओ, इसप्रकार कहनेपर पवनकुमार हनुमान्‌जी तिस मैनाकसे बोले कि--हे मैनाक! श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके निमित्त जातेहुए मुझको भोजन करनेका और विश्राम करनेका अवसर कहाँ मिल-

सक्ता है? क्योंकि मुझे शीघ्रही जाना है ॥२९॥३०॥३१॥३२॥३३॥ इसप्रकार कहकर और सन्मानार्थ अपने हाथसे मेनाकके शिखरका स्पर्श करके हनुमान्‌जी चलदिये, तदनंतर कुछ दूर जानेपर सिंहिकानाम जो छायाके द्वारा खैंचनेवाली राक्षसी थी, उसने इन हनुमान्‌जीको भी छायाके द्वारा खेंचकर पकड़ लिया ॥ ३४ ॥ वह भयंकर स्वरूप सिंहिका नाम राक्षसी सदा समुद्रके जलके मध्यमें रहती थी और उस मार्गसे उड़कर आकाशमें जो पक्षीआदि जाते थे उनको छायाके द्वारा खेंचकर भक्षण करलेतीथी ॥ ३५ ॥ जब उसने इन महाबली पवनकुमारकोभी छायाके द्वारा खैंचा तबतौ यह विचार करनेलगे, कि—यह किस विघ्नकर्त्ताने चलतेहुए मेरा वेग रोका है ॥ ३६ ॥ यहाँ कोई देखनेमें नहीं आता, इसकारण मुझे आश्चर्य्यसा होरहा है, ऐसा विचारते नीचेको दृष्टि डाली ॥ ३७ ॥ तहाँ परम भयंकररूप बड़े आकारवाली सिंहिकाको देखकर जलके भीतरको गिरे और शीघ्रही क्रोधमें हो चरणोंसे कुचलकर उसका प्राणान्त करदिया ॥ ३८ ॥ और फिर हनुमान्‌जी कूदकर दक्षिणकी ओरको चल दिये, और समुद्रके दक्षिणतटपर पहुंचकर तहाँ नानाप्रकारके पुष्पित वृक्ष, नानाप्रकारके पक्षी और मृगोंके समूह, तथा पुष्पयुक्त लता देखीं, फिर कुछ आगेको बढकर त्रिकूटाचलपर्वतके शिखरपर बहुत तरहके परकोटों करके युक्त और चारों ओर जिसके खाई है ऐसी लंकापुरी देखी, तबतौ विचार करने लगे, कि—मैं किसप्रकार उस लंकापुरीमें प्रवेश करूँ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ फिर यह निश्चय करा, कि—इस रावणकी रक्षा करी हुई लंकापुरीमें प्रवेश करूँगा, ऐसा विचार कर उससमय तौ तहाँही रहे, जब रात्रिका समय आया तब लंकापुरीमें जानेको तयार हुए ॥ ४२ ॥ और प्रतापी हनुमान् छोटासा रूप धारण करके लंकापुरीके द्वारमें घुसे, तहाँ साक्षात् लंकापुरी अर्थात् राक्षसीका रूप धारण करेहुए उस नगरीकी देवताने प्रवेश करतेहुए हनुमान्‌जीको देखकर ललकारा, और कहने लगी, कि तू कौन है? जो मुझ लंकिनीसे विना बूझे वानरके रूपसे

रात्रिके समय चोरकी समान नगरीमें घुसकर तू क्या करना चाहता है? इसप्रकार कहकर और क्रोधसे नेत्रोंको लाल लाल करके उस राक्षसीने हनुमान्‌जीके ऊपर लाथका प्रहार करा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ हनुमान्‌जीनेभी उसको कुछ न समझकर एक बांये हाथका घूंसा मारा, उसी समय वह मुखसे बहुतसा रुधिर डालती हुई पृथ्वीमें गिरपड़ी ॥ ४६ ॥ और उठकर वह लंका हनुमान्‌जीसे कहने लगी, कि-हे पवनकुमार! तुम्हारा कल्याण हो, हे पुण्यपुरुष! जाओ अब तुमने लंकाको जीतलिया ॥ ४७ ॥ क्योंकि पूर्वकालमें मुझसे ब्रह्माजीने कहाथा, कि जब अट्ठाईसवीं चौकड़ीमें त्रेतायुग आवैगा तब अविनाशी नारायण राजा दशरथके यहां श्रीरामरूपसे अवतार धारण करेंगे; और तिन भगवान्‌की योगमाया राजा जनकके यहाँ सीतारूपसें उत्पन्न होयगी, सो मेरी प्रार्थनाके अनुसार पृथ्वीका भार हरण करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजी कुछ समय अयोध्यामें वास करनेके अनंतर अपनी स्त्री सीता और लक्ष्मणजी करके सहित दण्डकारण्यको जांयगे, तहाँ महामाया सीताको रावण हरैगा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनंतर श्रीरामचंद्रजीके साथ सुग्रीवकी मित्रता होयगी, तब सुग्रीव जानकीको ढूंढनेके निमित्त वानरोंको भेजैगा ॥ ५१ ॥ उनमेंसे एक वानर रात्रिके समय तेरे समीप आवैगा, और तेरें ललकारनेपर वह घूंसा मारकर तेरा प्राणान्त करदेगा ॥ ५२ ॥ हे अनघे! उसके प्रहार करनेपर जब तू पीड़ित होगी, निःसंदेह उसकालमेंही रावणका अन्त होगा ॥ ५३ ॥ तिसकारण हे पुण्यपुरुष पवनकुमार! तुमने अब लंकाको क्या रावणके सर्वस्वकाही जीतलिया; रावणके रणवासमें एक परमरमणीय क्रीड़ा वन है ॥ ५४ ॥ उसके मध्यमें दिव्यवृक्षोंसे युक्त एक अशोकवाटिका है; उसकें विषे मध्यमें एक शिंशपा (सीसम) का वृक्ष है ॥ ५५ ॥ उस वृक्षके नीचे भयंकर रूपवाली राक्षसियोंके पहरेमें सीता है, सो तुम शीघ्रही तिन जानकीजीका दर्शन करके लौटो और श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ निवेदन करो ॥ ५६ ॥ और मैं भी आज धन्य हूँ, जो बहुत कालके अनंतर मुझे संसारबंधनसे

छुड़ानेवाला उनका स्मरण और अत्यंत दुर्लभ उनके भक्तका समागम हुआ वह श्रीरामचन्द्रजी मेरे ऊपर प्रसन्न होयँ, और सदा मेरे हृदयमें निवास करै ॥५७॥ जिस समय पवनकुमार हनुमान्‌जीने समुद्रको उल्लंघन करा उस समय सीताका (शुभसूचक) और रावणका (अशुभसूचक) वामनेत्र तथा वामभुजा फड़की और अतीन्द्रिय श्रीरामचंद्रजीका शुभसूचक दाहना अंग फड़का ॥ ५८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि-हे पार्वति! तदनन्तर हनुमान्‌जी परम शोभायमान लंकापुरीमें गये, और तिस रात्रिके समयमेंही छोटासा रूप धारण करके चारों ओर लंकापुरीमें घूमे ॥ १ ॥ और सीताके ढूंढ़नेकी इच्छासे रावणके राजमंदिरमें गये; तहाँ चारोंओर ढूँढा, परन्तु हनुमान्‌जीको कहीं भी जगन्माता सीताजीका दर्शन नहीं हुआ, इतनेहीमें लंका राक्षसीने जो कहाथा उसकी याद आई, सो तत्कालही हनुमान्‌जी परमरमणीय अशोक वनिकाको गये, ॥ २ ॥ ३ ॥ जहाँ कल्पवृक्षोंके संमूहके समूह थे, और रत्नजटित बावड़ी थीं, अनेक प्रकारके पक्षी और मृग फिर रहेथे; चारों ओर सुवर्णके महल बने हुए थे; और फलोंकरके नम रही हैं शाखा जिनकीं ऐसे अनेक वृक्ष शोभायमान हो रहे थे, उस अशोकवाटिकामें पवन कुमार हनुमान्‌जीने एक एक वृक्षके नीचे सीताको ढूँढा ॥ ४ ॥ ५॥ तदनंतर उसी अशोक वाटिकामें एक बड़ा ऊंचा राजमंदिर देखा, उस मणियों करके जड़े हुए खंभोंसे शोभायमान महलको देखकर हनुमान्‌जी आश्चर्य्यमें होगये ॥ ६ ॥ उसको उल्लंघन करके हनुमान्‌जी कुछ आगको चले, तहाँ अत्यन्त सघन पत्तोंवाला एक शिंशपाका वृक्ष देखा ॥ ७ ॥ जिस वृक्षके नीचे कहीभी धूप देखनेमें नहीं आतीथी और सुवर्णके रंगके अनेक पक्षी फिर रहेथे, उसही शिंशपावृक्षकी जड में वीर हनुमानजीने देखा, कि—जानकीजी राक्षसियोंके बीचमें पृथ्वीतल

के ऊपर देवताकी समान शयन कर रही है, जिनके सम्पूर्ण केशोंका एक जुडा बँधाहुआ है, देह अतिदुर्लभ है, मुख दीनतायुक्त है, मलिनवस्त्र धारण करेहुए हैं, शोकमें मग्न होकर 'रामराम' इसप्रकार उच्चारण कर रही हैं, उपवास (निराहारव्रत) से अत्यन्त दुर्बल होरही हैं, और किसी रक्षा करनेवालेको नहीं प्राप्त होती हैं, तिन पतिव्रता जानकीजीका हनुमान्‌ने वृक्षकी शाखाओंके बीचमें छिपकर दर्शन करा, और मनमें कहने लगे, कि आज मैं कृतार्थ हूँ, धन्य हूँ, जो जानकीजीका दर्शन मिला ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ और मुझे आशा होती है, कि—अब परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका कार्य मैं सिद्ध करसकूँगा, इतनेहीमें रणवासके द्वारपर कुछ किलकिलाहटका शब्द सुना सो विचारने लगे, कि—यह कोलाहल किसकारण होरहाहै, ऐसा विचार हनुमान् वृक्षके पत्तोंमें औरभी छुपगये, इतनेहीमें स्त्रियोंकरके सहित रावणको तहाँ आताहुआ देखा, जिसके दश मुख थे, बीस भुजा थीं, और अंजनके ढेरकी समान शरीर था, सो हनुमान्‌जी देखकर परमआश्चर्यको प्राप्त हो पत्तोंके समूहमें औरभी छुप गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अब रावण अपने यहाँ यह विचार करताथा, कि मेरे हाथसे श्रीरामचंद्रजीका मरण किस प्रकार होय? न जाने रामचंद्र सीताको ढूँढनेके लिये क्यों नहीं आते हैं? ॥ १५ ॥ इसप्रकार निरंतर चिंता करता हुआ रावण सदा हृदयमें श्रीरामचंद्रजीकाही ध्यान रखताथा, उसदिन (जिसदिन हनुमान्‌जीने लंकामें प्रवेश किया) आधी रातके अनंतर राक्षसपति रावणने स्वप्नमें देखा, कि कोई वानर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे लंकापुरीमें आकर अपनी इच्छाके अनुसार बहुत छोटा रूप धारण करके वृक्षकी शाखापर बैठाहुआ सब वृत्तान्त देखरहा है ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसप्रकार अद्भुत स्वप्न देखकर वह रावण अपने मनमें विचार करने लगा, कि कदाचित् यह स्वप्न सत्य होजाय तौ मैं ऐसा करूँ, कि-जानकीको अभी जाकर अपनी वाणीरूपी बाणोंसे वेधकर अत्यन्त दुःखित करताहूँ, जिससे वह वानर देखकर रामचंद्रजीसे कहे ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसप्रकार विचारता हुआ शीघ्रही सीताके समीप

गया, उस समय जो रावणके साथ बहुतसी स्त्रियेंथीं, उनकी पायजेबोंकी झ-नकारको सुनकर सीताजी भयभीत हो अपने शरीरहीमें सिमट रही और नीचेको मुख करके रोदन करती हुई और हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करतीहुई बैठगईं ॥ २० ॥ २१ ॥ उससमय रावणभी सीताजीको देखकर बोला, कि—हे सुमध्यमे! हे सुभ्रु! मुझको देखकर तुम अपने शरीरहीमें वृथा क्यों सुकडती हो ॥ २२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी छोटेभाई लक्षणकरके सहित वनचरोंमें रहते हैं, सो किसीको दीखता है किसीको नहीं दीखता ॥ २३ ॥ मैंने तौ उसको ढूँढनेके निमित्त बहुतसे दूत भेजे, उन्होंने बहुत कुछ यत्न करके चारोंओर रामचन्द्रको ढूँढा परन्तु कहींभी नहीं पाया, और यदि कहीं होयभी तौ कभी तेरी खबर नहीं लेताहै, इसकारण तिस प्रेम-हीन रामचंद्रका तू क्या करैगी? और देख रामचंद्रने तुझे सदा हृदयसे ल-गाया और सदा समीपमें रहा, परन्तु उस रामचंद्रके हृदयमें तेरा किंचि-न्मात्रभी स्नेह नहीं है, देख उस रामचंद्रने तेरे कारणसे सब प्रकारके भोग भोगे और अनेकप्रकारके तेरे गुणोंसे आनंदको प्राप्त हुआ, तथापि इससमय ऐसा होगया मानो तुझे बिलकुलही नहीं जानताहै; देख विचार तो वह कैसा कृतघ्नी, निर्गुण और अधम है; हे पतिव्रते! तू बड़े दुःख और शोकसे व्याकुल होरहीथी, सो मुझसे नहीं देखागया इसकारण मैं तुझे यहाँ ले आया ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ और देख रामचंद्र इससमय-तकभी नहीं आया, क्योंकि उसको तौ तेरा प्रेम है ही नहीं फिर काहेकोआता? वास्तवमें वह रामचंद्र पराक्रमरहित निर्मोही और बड़ा घमंडी तथा मूढ़ होकरभी अपनेको बड़ा पंडित माननेवाला है ॥ २८ ॥ हे भामिनि! उस मनुष्योंमें अधम और तुझसे प्रीति न करनेवाले रामचंद्रका क्या करैगी अब तू तेरे विषें अत्यन्त आसक्ति करनेवाले मुझरावणसे प्रेम कर, ॥ ॥ २९ ॥ यदि मुझसे प्रेम करैगी तौ देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष और अप्सरा इन सबके ऊपर आज्ञा करनेवाली होजायगी ॥ ३० ॥ (यद्यपि "रामो वनचरणाम्" इत्यादि रावणका कहना निंदासे भराहुआ दीखता है,

परन्तु गूढ़रीतिसे इसमें श्रीरामचंद्रजीकी स्तुति है, सोही अर्थ लिखते हैं, कि–श्रीरामचंद्र वनमें निवास करनेवाले तपस्वियोंके साथ रहतेहैं, वनवासी निर्लिप्तयोगी उनका विष्णुरूपसे अथवा अनंतरूपसे ध्यान करते है, उनकोभी वास्तविक रूपका कभी दर्शन होताहै कभी नहीं,इसकारणही नारदजीको दासीपुत्रावस्थामें समाधिके विषें एकवार दर्शन होकर फिर नहीं हुआ, यह कथा श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कंधमें प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ और रावणने यह जो कहा, कि–मैंने उसको ढूँढनेके निमित्त बहुतसे दूत भेजे उनको प्रयत्न करनेसेभी रामचंद्र कहीं नहीं मिले, इसका तात्पर्य्य यह है, कि–इस श्लोकमें लोकशब्दसे इन्द्रिय और इन्द्रियोंके देवता लिये जातेहैं, क्योंकि जिसके द्वारा देखाजाय या जिसके द्वारा जानाजाय, यह, व्याकरणकी रीतिसे लोकशब्दका अर्थ है, इसकारण रावणका अभिप्राय यह है कि–मैंने देवताओंकरके सहित अपनी इन्द्रियोंको परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके देखनेके निमित्त वारंवार प्रवृत्त करके भी उनका दर्शन नहीं करसकीं, क्योंकि श्रीरामचंद्रजी तौ बुद्धिसे पर हैं, उनका दर्शन रजोगुण युक्त इन्द्रिय किसप्रकार कर सक्तीहैं? । और सीताजीसे रावणने यह जो कहा, कि– प्रेमहीन रामचंद्रका तू क्या करैगी । इसका तात्पर्य्य यह है, कि– श्रीरामचंद्रजी तौ आत्माराम है अपने आत्माके सिवाय अन्य पदार्थमें उनकी स्वभावसेंही रति नहीं है और सीताजी तौ प्रकृतिरूप हैं फिर उनके विषे उनकी आसक्ति किसप्रकार होसक्ती है ॥ २४ ॥ और रावणने यह जो कहा, कि– उस रामने तुझे सदा हृदयसे आलिंगन किया, और सदा समीप रहा, तथापि उसके हृदयमें तेरा किंचिन्मात्रभी प्रेम नहीं है, इसका अभिप्राय यह है, कि– शक्ति और शक्तिमान्का अभेद होनेके कारण परमात्मा शक्तिकरके सदा आलिंगितसा और समीपमें स्थितसा भी है, परन्तु वास्तवमें आत्माराम होनेके कारण परिपूर्णकाम है, अतएव सांसारिक पदार्थोंमें उसका स्नेह नहीं है, और शक्तिकी प्रतीति कार्यके द्वाराही होतीहै, और परमेश्वरकी शक्तिका कार्य है जगत्, इसकारण यदि परमात्माका जगत्में स्नेह होय तौ

प्रकृतिरूप शक्तिमें भी स्नेहकी प्रतीति होय, सो कदापि परमात्मा जीवकी समान जगत्में स्नेह करताही नहीं, इस अभिप्रायसे ही रावणने कहा, कि-तुझमें श्रीरामचंद्रका स्नेह नहीं है और रावणने यह जो कहा कि–उस रामचंद्रने तेरे कारणसे सब प्रकारके भोग भोगे और तेरे गुणोंको भी भोगा, तथापि नहीं जानता, कि–मैंने कोई भोग भोगा इसकारण वह निर्गुण और अधम है, इसका अभिप्राय यह है, कि–वह रामचंद्रजी प्रकृतिके गुणोंको या प्रकृतिके उत्पन्न किये भोगोंके भोक्ता हैं, तथापि "जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः" इस श्रुतिके अनुसार "मैं भोगकरनेवाला हूँ" ऐसा अभिमान नहीं करता हैं, और इस कारणही वह कृतघ्न (कृतानि हन्ति कृतघ्नः) अर्थात् प्रकृतिके किये हुए कर्म्मोंको नाशक हैं, अथवा भक्तोंके संसारबन्धनमें डालनेवाले कर्म्मोंको ज्ञानरूपी अग्निके द्वारा भस्म करते हैं, इसकारण उन परमात्माका नाम कृतघ्न (कृतानि निजभक्तकर्माणि ज्ञानाग्निना भस्मसात् करोतीति कृतघ्नः) है, अर्थात् उनपरमात्मा श्रीरामचंद्रका दर्शन होतेही भक्तोंके संचित और क्रियमाण कर्म्म नष्ट होजाते हैं। और सच्चिदानंदस्वरूप होनेके कारण जब उनके सन्मुख मायाही स्थित नहीं होसक्ती, फिर उसके गुणोंका तौ कहनाही क्या है? इसकारण परमात्मा श्रीरामचंद्रजी निर्गुण अर्थात् सत्वादि गुणोंकरके रहित हैं। और अधम (न धमति शब्दविषयो भवतीत्यधमः) अर्थात् धम जो शब्द तिसकरके प्रतिपादन करनेके अयोग्य अर्थात् वाणीको अगोचर हैं॥ और रावणने यह जो कहा, कि-हे पतिव्रते! तुझे दुःख और शोक करके व्याकुल देखकर मैं यहाँ ले आया और रामचंद्र इससमयतकभी नहीं आया, क्योंकि उसको तो तेरा प्रेम है ही नहीं फिर वह काहेको आता, वास्तवमें वह रामचंद्र पराक्रमरहित निर्मोही और बड़ा घमंडी तथा मूढ़ होकरभी अपनेको बड़ा पंडित माननेवाला है, इसका अभिप्राय यह है, कि– रावणने तपस्या करके ब्रह्माको प्रसन्न करके सम्पूर्ण लोक वशमें कर लियेथे, यह वार्ता प्रसिद्ध ही है, तहाँ ब्रह्मा प्रकृतिका कार्य जो जगत् तिसके स्वामी हैं, और सीता प्रकृतिरूप

और परमात्मा श्रीरामचंद्रजीकी शक्ति है; अतएव सदा श्रीरामचंद्रजीके ही वशीभूत रहती है, सम्पूर्ण देवता उसके वशीभूत हैं, और सम्पूर्ण जगत् प्रकृतिरूप सीताका स्वरूप है, तहाँ ब्रह्माजीके वरदानसे रावणने जो जगत्को अपने वशमें किया, यही प्रकृतिरूप सीताका उसके कार्यके द्वारा लेआना है, और रावणके अन्यायसे सब प्राणी दुःखित और शोकयुक्त रहे, यही प्रकृतिरूप सीताका दुःख और शोकयुक्त होना है, और परमात्मा पूर्णकाम होनेके कारण किसी सांसारिक विषयमें स्नेह नहीं करते हैं, वही सीताजीके विषें स्नेहका न करना है, और व्यापक परमात्माका गमन आगमन नहीं होसक्ता ? इसकारणही रावणने कहा कि-रामचंद्र नहीं आया, और वह कहा, कि—रामचन्द्र निस्सत्त्व (पराक्रमहीन) है, इसका अभिप्राय यह है, कि—रामचन्द्र ईश्वरभावकरके किसीभी प्राणीसे पृथक् नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण प्राणियोंके विषें उनकी सत्ता है । और निर्मम कहिये वह किसी प्राणीके विषें ममता नहीं करते हैं अर्थात् वह सबके विषें समदृष्टि रखनेवाले और नित्यमुक्तस्वरूप हैं। और मानी कहिये सम्पूर्ण भक्तोंका सन्मान करनेवाले हैं । और मूढ कहिये बालककी समान निरभिमान है, अथवा मूढ कहिये (म-ब्रह्मा, उः-शिवः।मश्च उश्चमू, ताभ्यां ऊढःनियामकत्वेन अभिमतः-मूढः) ब्रह्मा और शिव यह दोनों आपको अपना नियामक मानते हैं । और अधम कहिये (नराःअधमाः यस्मादसौ नराधमः) सम्पूर्ण मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ अर्थात् मनुष्योंके समान् मायाके वशीभूत होनेवाले नहीं हो और रावणने यह जो कहा कि—वह पंडितमानवान् है, इसका अभिप्राय यह है, कि—पंडितोंका कियाहुआ जो सत्कार तिसको श्रीरामचन्द्रजी प्राप्त होतेहैं । और यह जो कहा, कि—वह त्वद्विमुख अर्थात् तुझसे विमुख है उसका तू क्या करेगी ? इसका अभिप्राय यह है, कि—वह श्रीरामचंद्रजी तुझ (प्रकृतिसे विमुख अर्थात् पर हैं, तू उनके विषें किसी प्रकारभी अपना मोह नहीं डालसक्ती है। इसप्रकार रावणने जो श्रीरामचन्द्रजीकी निंदा करी, परन्तु सरस्वतीने रावण-

के कंठपै बैठकर इन निंदाके वचनोंकरके भी श्रीरामचंद्रजीकी स्तुतिही करी ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥) इसप्रकार परमकठोर रावणके वचनोंको सुनकर सीताजी क्रोधमें भरगई और नीचेको मुख करके और तृण मात्रका बीचमें अन्तर करके रावणसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ कि–अरे नीच ! निःसंदेह तैनें श्रीरामचंद्रजीसे भयभीत होकर भिक्षुक (संन्यासी)का रूप धारण कराथा तिस परभी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणके न होनेके समय तू मुझे इस प्रकारले आया, कि–जिसप्रकार यज्ञके भागको लेकर कुत्ता भागताहै ॥ ३२ ॥ हे नीच ! तू जो मुझे हरके लाया है इसका फल शीघ्रही पावैगा, जिससमय श्रीरामचंद्रजीके बाणोंकें प्रहारसे तेरा शरीर विदीर्ण होयगा, तब जानैगा, कि–श्रीरामचंद्रजी ऐसे मनुष्य हैं, देख शीघ्रही तुझे यमराजके समीप पहुचावेंगा, अपने बाणोंसे समुद्रको सुखाकर अथवा समुद्रका सेतु (पुल) बांधकर तेरा संग्राममें प्राणान्त करनेके निमित्त श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीकरकेसहित निःसंदेह आवेंगे, हे नीच राक्षस ! तब तू देखैगा, कि क्या होरहाहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी तुझको पुत्र और सेना सहित संग्राममें प्राणहीन करके मुझे अयोध्यापुरीको ले जायँगे इसप्रकार जानकीजीके कठोर अक्षरोंको सुनकर राक्षसपति रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ ॥ ३६ ॥ और क्रोधमें भरके शीघ्रही तलवारको उठाकर लाल लाल नेत्र करताहुआ जानकीजीके मारनेको उद्यत हुआ ॥ ३७ ॥ उससमय रावणका हित चाहनेवाली मंदोदरी समझाकर कहनेलगी, कि–हे स्वामिन् ! इस दुःखित, अतिदुर्बल, दीन और कृपण मनुष्यजातीकी स्त्रीको त्याग दो ॥ ३८ ॥ तुम्हारे यहाँ तौ देव गन्धर्व और नागोंकी सुन्दरी हैं, जिनके कामदेवके मदकरके नेत्र उन्मत्त होरहे हैं और जो सबप्रकारसे तुम्हारे समागमकी इच्छा करती हैं ॥ ३९ ॥ उससमय रावणने मंदोदरीके

---

१ सीताजीने तृणको बीचमें इसकारण करा, कि पतिव्रतास्त्रीको परपुरुषसे साक्षात् वार्ता नहीं करनी चाहिये, अथवा तृण बीचमें करनेका यह प्रयोजन है, कि-सीता रावणको सूचित करता हैं, कि-हे रावण ! तू श्रीरामचंद्रजीके आगे तृणकी समान है ॥

कहनेपर तौ कुछ ध्यान न दिया, किन्तु भयंकर हैं मुख जिनके ऐसी राक्षसियोंके प्रति दशोंमुखोंसे कहनेलगा, कि—जिसप्रकार सीता अपने इच्छासे मेरे वशमें होजाय तुम सब भय दिखाकर अथवा आदर करके इसका यत्न करो ॥ ४० ॥ यदि दो महीनेके भीतर सीता मेरे वशीभूत होजायगी, तौ सबप्रकारसे मेरे साथ राज्यको भोगैगी ॥ ४१ ॥ और यदि दो मासके अनंतर सीता मेरी शय्यापर न आवै तौ इसका प्राणान्त करके इसके मांसको मेरे प्रातःकालके भोजनके निमित्त पकाओ ॥ ४२ ॥ इसप्रकार कहकर रावण स्त्रियोंकरके सहित रणवासको चलागया, और राक्षसियें जानकीजीके समीप आकर अनेक प्रकारकी अपनी तर्जनाओंसे भय दिखानेलगीं ॥ ४३ ॥ उनमेंसे एक जानकीजीसे कहने लगी, कि—तेरा यौवन अबतक वृथाही गया, अबभी यदि रावणसे तेरा समागम होय तौ सफल होजाय ॥ ४४ ॥ दूसरी राक्षसी क्रोधकरके जानकीसे कहने लगी, कि—अरी विलम्ब क्यों करती हो? अबही इसके अंगको काटकर अलग २ टुकडे करडालो ॥ ४५ ॥ और अन्य एक राक्षसी तलवार उठाकर जानकीके मारनेको उद्यत हुई, और एकने अपना भयंकर मूँ फैलाकर जानकीजीको भय दिखाया ॥ ४६ ॥ इसप्रकार वह भयंकर मुखवाली राक्षसियें जानकीजीको भय दिखारहींथीं, सो एक त्रिजटा नामवाली वृद्धा राक्षसीने उन सब राक्षसियोंको एकान्तमें बुलाकर मनाकरके इसप्रकार कहनेलगी ॥ ४७ ॥ कि—अरी दुष्टराक्षसियों सुनो ! मेरे कहनेको तब तुम्हारा हित होगा ॥ ४८ ॥ अरी ! इस रोदन करतीहुई जानकीको भय मत दिखाओ, किन्तु इनको प्रणाम करो, इसी समय मैंने स्वप्नमें देखा है कि—कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीकरकेसहित श्वेतवर्ण ऐरावत हस्तीके ऊपर चढ़कर आए हैं, और संपूर्ण लंकापुरीको जलाकर तथा पुत्रपौत्रादिसहित रावणको संग्राममें मारकर, और सीताजीको अपनी गोदमें बैठालकर पर्वतके ऊपर विराजमान होरहेहैं; और रावण शरीरको तैल मलेहुए, नग्न, हाथोंमें मुण्डोंकी माला लिये, पुत्रपौत्रादिसहित गोबरके गारमें पड़ाहुआ है, और विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके समीप बैठाहु-

आ प्रसन्नचित्तसे भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा कररहा है, सो हे राक्षसियों! निःसन्देह श्रीरामचन्द्रजी सकुटुम्ब रावणका सब प्रकारसे नाश करके और विभीषणको लङ्कापुरीका राज्य देकर, तथा सुमुखी सीताजीको अपने साथ लेकर अपने नगरको जायँगे, इसमें किञ्चिन्मात्रभी सन्देह मत करो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसप्रकार त्रिजटाके कहनेको सुनकर वह सम्पूर्ण राक्षसोंकी स्त्रियें भयभीत होगई, और चुप होकर जहाँकी तहाँ निद्राको प्राप्त होगई ॥ ५५ ॥ तिन राक्षसियोंकरके अत्यन्त तर्जना करी हुई वह सीताजी अत्यन्त व्याकुल हुई, और किसीको अपना रक्षक न देखकर दुःखकेकारण मूर्च्छित होगई॥ ५६ ॥ और फिर कुछ चेतन होकर चिन्ता करती हुई नेत्रोंमें जल भरकर इसप्रकार कहने लगीं कि—निःसन्देह प्रातःकालके समय यह राक्षसियें मुझे भक्षण कर जायँगी, सो किसी उपायसे इसीसमय मेरा मरण होजाय तो अच्छा है ॥ ५७ ॥ इसप्रकार अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुई वह सीताजी बहुतकालपर्य्यन्त मुक्तकण्ठ होकर (चिल्लाकर) रोदन करती रहीं; फिर कुछ कालके अनन्तर वह सुन्दरी और कोई उपाय न जानकर मरणके निमित्त निश्चय करके वृक्षकी शाखाको पकड़कर खड़ी होगई ॥ ५८ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी कहतेहैं, कि—हे पार्वति! उस समय सीताजी इसप्रकार विचार करनेलगीं, कि—मैं श्रीरामचन्द्रजीके विना राक्षसोंके मध्यमें जीवन धारण करनेसे मुझे कौन लाभ है? अब मैं फाँसी खाकर अपने प्राणोंको छोड़ दूँगी ॥ १ ॥ इस मेरी लम्बी वेणी (केशोंकी चोटी) की फाँसीभी बहुत ठीक बनजायगी, इसप्रकार अपनी बुद्धिसे निश्चय करके जानकीजीको मरणके निमित्त उद्यत देखकर हनुमान्‌जी कुछ विचार करके धीरे धीरे जानकीजीके कानमें पहुँचनेके योग्य महीन स्वरसे इसप्रकार कहनेलगे॥ २॥ ३॥

कि—इक्ष्वाकुवंशमें जन्मधारण करनेवाले अयोध्यापुरीके स्वामी महानुभाव राजा श्रीदशरथजी थे, उसके त्रिलोकीमें प्रसिद्ध, सबदेवताओंकी समान और सम्पूर्ण शुभलक्षणोंकरके युक्त श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न यह चार पुत्र हैं, ॥ ४ ॥ ५ ॥ तिनमेंसे ज्येष्ठपुत्र श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे भ्राता लक्ष्मण और स्त्रीसीताकरके सहित दण्डकारण्यको आये थे ॥ ६ ॥ और उदारचित्त तिस दण्डकारण्यमें गौतमी (गोदावरी) नदीके तटपर पञ्चवटीके विषें निवास करतेथे, तहाँ एकदिन श्रीरामचंद्र और लक्ष्मण नहीं थे, सो दुष्टात्मारावण महाभागा जनकनन्दिनी सीताको उनके पीछे हर लेगया तबतौ श्रीरामचंद्रजी दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो जानकीजीको ढूँढनेके निमित्त चल दिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ सो एकजगह पृथ्वीमें पडाहुआ पक्षिराज जटायुको देखा, तिसको स्वर्गलोकमें भेजकर शीघ्रही ऋष्यमूक पर्वतपर आये ॥ ९ ॥ तहाँ अपना सम्पूर्ण वृतान्त निवेदन करके श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवके साथ मित्रता करी, और उस सुग्रीवकी स्त्रीको हरनेवाले वालीका प्राणान्त करके और किष्किन्धाके राज्यमें सुग्रीवका अभिषेक करके श्रीरामचंद्रजीने मित्रका कार्य किया, तब वानरराज सुग्रीवने देश देश और दिशादिशाके वानरोंको बुलवाया ॥ १० ॥ ११ ॥ और उन सम्पूर्ण वानरोंको सीताके ढूँढनेके निमित्त भेजा, उनमेंसे सुग्रीवका मंत्री एक वानर मैं हूँ ॥ १२ ॥ सम्पातीके कहनेसे शीघ्रही सौयोजन चौडे समुद्रको उल्लंघन करके इस लंकापुरीमें शुभलक्षणा जानकीको ढूँढता ढूँढता ॥ १३ ॥ इस अशोक वनिकामें धीरे आनकर शिंशिपा वृक्षको ढूँढा, सो यहाँ शोच करतीहुई अत्यंत दुःखित श्रीरामचंद्रजीकी रानी सीतादेवीको देखा है, इसकारण मैं यहाँ आकर कृतकृत्य होगया, इसप्रकार कहकर परमबुद्धिवान् हनुमान्जी मौन होगये ॥ १४ ॥ १५ ॥ सीताजी क्रमसे यह सब वृत्तान्त सुनकर बडे आश्चर्यमें होगईं, और अपने मनमें इसप्रकार कहने लगीं, कि—क्या मैंने यह आकाशमें वायुका कहाहुआ वचन सुनाहै ? ॥ १६ ॥ या स्वप्न देखा है ? या मेरे मनको भ्रम होरहा है ? अथवा यह सत्यही है ? यह

स्वम तो है नहीं क्योंकि मुझे दुःखके कारण निद्राही नहीं आतीहै और यह भ्रमही नहीं है क्योंकि इससमय मेरा चित्त सब प्रकारसे स्वस्थ है, और सब पदार्थोंको यथार्थ रूपसे जानरही हूँ॥ १७॥ सो यह वार्त्ता सत्यही मालूम होती है, इसप्रकार सीताजी निश्चयकरके कहनेलगी, कि–जिसने यह मेरे कानोंको अमृतकी तुल्य प्रिय प्रतीत होनेवाला वचन कहा है वह प्रियवचन बोलनेवाला महाभाग मेरे सन्मुख आकर दर्शन देय ॥ १८ ॥ इसप्रकार जानकीजीके कहनेको सुनकर हनुमान्‌जी पत्तोंके समूहमेंसे धीरेसे उतरकर सीताजीके सन्मुख आकर स्थित होगये ॥ १९ ॥ उससमय हनुमान्‌जीका आकार कलविक (चटकपक्षी अर्थात् चिडिया) की समान था मुख लाल और वर्ण पीत था, उसरूपसेही हनुमान्‌जीने आगे स्थित हो हाथ जोडकर धीरेसे सीताजीके अर्थ प्रणाम करा ॥ २० ॥ उसको देखकर जानकीजी भयभीत होगईं और यह जाना कि–मुझे मोहित करनेके निमित्त मायासे यह छोटासा वानरका रूप धारण करके रावणही आया है ॥ २१ ॥ इसप्रकार विचारकर सीताजीने मौन होकर नीचेको मुख कर लिया तबलों हनुमान्‌जी सीताजीसे फिर कहनेलगे, कि-हे देवी! तुम जो अपने चित्तमें संदेह कर रही हो, मातः! वह कपटी रावण मैं नहीं हूँ, इसकारण मेरे विषयमें संदेह मत करो, मैं अयोध्यापति परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका दास हूँ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ हे कल्याणकारिणि! मैं वानरराज सुग्रीवका मंत्री हूँ, और हे शोभने! सबका प्राणरूप जो वायु तिसका पुत्र हूँ ॥ २४ ॥ इसप्रकार वचनोंको सुनकर हाथ जोड़कर आगे खडेहुए हनुमान्‌जीसे कहने लगी, कि–मनुष्योंका और वानरोंका समागम होना किसप्रकार सम्भव होसक्ता है॥ २५॥ और तुमने इसप्रकार जो कहा, कि–मैं श्रीरामचंद्रजीका दास हूँ यह वार्त्ता विना परस्पर मेलके हो नहीं सक्ती ? तब तौ आगे खडे हुए हनुमान्‌जी प्रसन्न होकर जानकीजीसे कहने लगे, ॥ २६ ॥ कि–परमबुद्धिमान् श्रीरामचंद्रजी शबरीके कहनेसे ऋषमूकपर्वतपै गये, तब सुग्रीवने ऋषमूकपर्वतपै बैठेहुएही श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको आता देखा ॥ २७ ॥

तब भयभीत होकर श्रीरामचंद्रजीके चित्तका अभिप्राय जाननेके निमित्त मुझे भेजा, मैं ब्रह्मचारीका वेश धारण करके श्रीरामचंद्रजीके पास गया ॥ २८॥ और उनके हृदयका सद्भाव (निष्कपट वृत्तान्त) जानकर और उन दोनोंको अपने कंधोंपर चढ़ाकर सुग्रीवके समीप ले आया, और सुग्रीवकी उनके साथ मित्रताभी करादी॥ २९॥सुग्रीवकी स्त्रीको वालीने हर लियाथा, सो उसको श्रीरामचंद्रजीने एक बाणसेही यमपुरीको पहुँचादिया, फिर किष्किन्धाके राज्यमें सुग्रीवका अभिषेक करा दिया, तब तिस वानर-राज सुग्रीवने तुम्हारी सुध लेनेकेनिमित्त बडे बडे बली वानरोंको सब दिशाओंमें भेजा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ श्रीरामचंद्रजी मुझे जाताहुआ देखकर आदरपूर्वक कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे पवनकुमार! मेरा सम्पूर्ण कार्य तुम्हारेही ऊपर है, तुम जाकर सीतासे मेरी और लक्ष्मणकी सर्व प्रकारसे कुशल कहो ॥ ३३ ॥ और पहिंचानके निमित्त यह मेरी उत्तम अँगूठी लो, यह सीताको दे देना इसके ऊपर स्पष्टरीतिसे मेरे नामके अक्षर खुदेहुए हैं ॥ ३४ ॥ इसप्रकार कहकर मुझे अंगुलीमेंसे उतारकर अँगूठी दी सो हे देवि! मैं बड़े उद्योगसे इस अँगुठीको लाया हूँ सो तुम देख-लो ॥ ३५ ॥ इसप्रकार कहकर पवनकुमारने सीताजीको वह मुद्रिका दी, और नमस्कार करके हनुमान्जी हाथ जोड़ेहुए दूरको खड़े होगये ॥ ३६ ॥ उस समय श्रीरामचंद्रजीके नामकरके अंकित मुद्रिकाको देखकर परमप्रसन्न हुईं, और अपना अहोभाग्य समझकर शिरपर धारण करा, उससमय सीताजीके नेत्रोंमें-से आनंदके आंसू टपकने लगे ॥ ३७ ॥ और कहने लगीं; कि—हे पवनकु-मार ! तुम परमबुद्धिमान् हो, जो तुमने मुद्रिका लाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा करी, और तुम अवश्यही श्रीरामचंद्रजीके भक्त और उनके हितकारक हो, इसकारणही श्रीरामचंद्रजीके निःसंदेह सम्पूर्ण वानरोंमें तुम्हाराही विश्वास है॥ ३८॥नहीं तो मेरे पास तुम्हें अन्य पुरुष होनेके कारण क्यों भेजते?अर्थात् विश्वास होनेके कारणही यद्यपि तुम पुरुषजाति हो तथापि तुम्हें मेरे पास भेज-दिया. हे हनुमन् ! तुम्हें मेरा दुःखआदि देखही लिया ॥ ३९ ॥ यह

सम्पूर्ण श्रीरामचंद्रजीसे इसप्रकार कहना कि जिसप्रकार मेरे ऊपर उनकी दया दृष्टि होजाय; हे साधो ! मैं दो मासपर्यन्त तौ अपने प्राणोंको धारण करूंगी ॥ ४० ॥ और यदि दो महीनेके भीतर श्रीरामचंद्रजी नहीं आवेंगे तौ यह दुष्ट रावण मुझै भक्षणकर जायगा, इसकारण यदि शीघ्रही वानर-राज सुग्रीवकरके और अन्य वानरोंकी सेनाके स्वामियोंके साथ श्रीरामचं-द्रजी संग्राममें पुत्रपौत्रादि और सेनाकरके सहित रावणका वध करके मुझे इस कष्टसे छुटावेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब तौ वह पराक्रम श्रीरामचंद्र-जीके योग्य होयगा और हे वीर हनुमान् ! ऋषियोंकरके वर्णन करे हुए उनके पहिले पराक्रमोंको उनके सन्मुख वर्णन करो, जिससे श्रीरामचद्रजी शीघ्रही रावणका प्राणान्त करके मुझे कष्टसे छुटावें ॥ ४३ ॥ हे हनुमन् तुम अपने वचनोंसे प्रेरणाकरके ऐसा यत्न अवश्यही करो, तब तुमको बडा धर्म होगा,इसप्रकार सुनकर हनुमान्जीभी सीताजीसे कहने लगे, कि-हे मातः ! जिसप्रकार मैंने देखा है सो मैं सब जानताहूँ ॥ ४४ ॥ श्रीरा-मचंद्रजी, शस्त्रोंको धारण करेहुए लक्ष्मणजी वानरराज सुग्रीव और सेनाकरके सहित शीघ्रही आवेंगे, और इस रावणको अपने बलसे यमपुरीको पहुँचाकर तुम्हें अयोध्यापुरीको ले जायँगे, हे देवि ! इस मेरे कहनेमें कुछभी सन्देह न करना, फिर सीताजी हनुमान्जीसे कहने लगी, कि-श्रीरामचंद्रजी इस बडे चौंडे समुद्रको किसप्रकार पार उतरकर वानरोंकी सेनाकरके सहित आवेंगे तबतौ हनुमान्जी कहने लगे, कि-मेरे कं-धोंके ऊपर चढ़कर वह दोनों पुरुषश्रेष्ठ आवेंगे और सेनासहित वानरराज सुग्रीव क्षणमात्रमें आकाशमार्गसे होकर इस चौंडे समुद्रको भी उल्लंघन कर आवेंगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ और तुम्हारे निमित्त निःसंदेह राक्ष-सोंके समुहोंका भस्म कर डालेंगे, हे मातः ! अब मुझे आज्ञा दीजिये जो शी-घ्रतासे जाऊँ, क्योंकि शीघ्रही लक्ष्मणसहित श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करके फिर तुम्हारे पास आनेकी भी मुझे बहुत शीघ्रता है,अब हे मातः! मुझे कुछ पहिचानकी वस्तु दीजिये जिससे श्रीरामचंद्रजीको विश्वास आजाय, तब मैं

यत्नसे उत्कंठापूर्वक श्रीरामचंद्रजीके समीप जाऊंगा, हनुमान्‌जीके इसप्रकार कहनेपर कमलनयनी सीताजीने कुछ देर विचार किया ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ फिर शिरकी जूड़ीमें बँधीहुई चूड़ामणि खोलकर हनुमान्‌जीको दी और कहा कि इसको देखकर लक्ष्मणजीकरके सहित श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा विश्वास करलेंगें ॥ ५२ ॥ और हे साधो ! और एक वार्त्ता तुम्है पहिचानके निमित्त बताती हूँ, कि—पहिले एकसमय चित्रकूट पर्वतपर एकान्तमें श्रीरामचन्द्रजी मेरी गोदीमें शिर रखकर शयन कररहे थे, ॥ ५३ ॥ उस समय इन्द्रका पुत्र जयन्त काकका रूप धारण करके आया, और मांसकी इच्छा करके बारम्बार अपनी चोंच और नखोंसे अतिलाल वर्ण है जिसका ऐसे मेरे पैरके अँगूठेको विदीर्ण करने लगा ॥ ५४ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने जगकर मेरे चरणमें उसके करेहुए घावको देखकर कहा, कि—हे भद्रे ! यह मेरे विपरीत कार्य्य किस दुष्टात्माने करा है ? ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर मेरे आगे बारम्बार आतुर हुए उस काकके नख और चोंचको रुधिरसे भीगाहुआ देखकर बड़े क्रुद्ध हुए ॥ ५६ ॥ और एक तृण (सींक) उठाकर अपने दिव्य धनुषपरमंत्र पढ़कर चढ़ाया, और अनायासही लीलासे उस काकके ऊपरको छोड़दिया, तब तौ वह सींक उसको चारोंओरसे अग्निकी समान जलाने लगी ॥ ५७ ॥ सो काक भयभीत होकर भागा, और सबलोकोंमें भ्रमता फिरा, परन्तु उस तृणने उसका पीछा नहीं छोड़ा, तब तौ इन्द्र और ब्रह्मादिकके पास गया, परन्तु वहभी उसकी रक्षा नहीं करसके, तबतौ फिर आकार भयभीत हो कृपासागर श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख आकर चरणोंमें गिरपड़ा, तब तौ श्रीरामचन्द्रजी शरणमें आयाहुआ देखकर इसप्रकार कहने लगे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ कि—अरे जयन्त ! यह मेरा अस्त्र निष्फल नहीं होसक्ता, सो इसको अपना एक नेत्र देकर यहाँसे चलाजा, तब वह काकरूप जयन्त अपना वामनेत्र देकर तहाँसे गया, सो हे हनुमान् ! तुम उनसे कहना कि—सीताने कहा है ऐसे पराक्रमी होकर वह श्रीरामचन्द्र इससमय

किसकारण मेरी उपेक्षा कर रहे हैं; इसप्रकार सीताजीके कथनको सुनकर हनुमान्‌जी कहनेलगे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ कि-हे मातः! यदि श्रीरामचंद्रजी यदि जानलेते कि-तुम यहाँ स्थित हो, तौ क्षणमात्रमें राक्षसोंसहित इस लंकाको भस्म कर डालते ॥ ६२ ॥ फिर जानकीजी कहने लगी कि–हे पुत्र! इन राक्षसोंसे तुम किसप्रकार युद्ध करोगे, तुम्हारा तो बहुतही छोटा शरीर है, और अन्य वानरों भी तुम्हारेहीसे शरीर होंगे, और यह राक्षस तौ बड़े बड़े शरीरधारी हैं; ॥ ६३ ॥ इसप्रकार सीताजीके कहनेको सुनकर हनुमान्‌जीने अपना पहिलारूप सीताजीको दिखाया, जो मेरु और मन्दराचलकी समान राक्षसोंकोभी भयभीत करनेवाला था ॥ ६४ ॥ सीताजी इसप्रकार हनुमान्‌जीका बड़े पर्वतकी समान आकार देखकर बड़े हर्षमें भरगई, और तिन कपिराज हनुमान्‌से कहने लगीं ॥ ६५ ॥ कि–हे महाबल! मैंने जानलिया कि तुम समर्थ हो अब राक्षसियें तुम्हारे इस महापराक्रमी आकारको देखलेंगी, इसकारण अब तुम श्रीरामचन्द्रजीके समीपको शीघ्रही चलेजाओ, मार्गमें तुम्हारा मंगल होय ॥ ६६ ॥ इसप्रकार जानकीजीने तौ जानेकी आज्ञा देदी, परन्तु हनुमान्‌जीको भूँख लगरहीथी, सो कहनेलगे, कि-हे देवि! अब मेरा व्रत पूरा होगया, जो तुम्हारा दर्शन हुआ, सो अब मैं पारण(व्रतके अनन्तरका भोजन)करना चाहँताहूँ, यदि आज्ञा होय तो तुम्हारे सामने लगेहुए इन सम्पूर्ण फलोंको भक्षण करके भूँखको दूर करूँ ॥ ६७ ॥ इसप्रकार कहनेपर सीताजीने आज्ञा दी तब हनुमान्‌जीने फल खाए, फिर सीताजीने विदा करा तब महाराणीको प्रणाम करके चलदिये, फिर कुछ दूरपै जाकर अपने चित्तमें विचार करनेलगे ॥ ६८ ॥ कि-जो दूत कार्य्य करनेके निमित्त आया हो, और उस स्वामीके कार्य्यको सिद्ध करके यदि स्वामीके हितकारक दूसरे (विना आज्ञा करेहुए) कार्य्यको विना सिद्ध करेही चलाजाताहै तौ वह अधम दूत कहाताहै, ॥ ६९ ॥ इसकारण मैं अभी कुछ और कार्य्य करके तथा रावणको भी देखकर और उससे कुछ संभाषण करके, फिर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेकेलिये

जाऊँगा ॥ ७० ॥ इसप्रकार मनमें विचार करके महाबली हनुमान्जीने वृक्षोंके समूहोंको उखाड़कर क्षणमात्रमें अशोकवाटिकाको ऐसा कर दिया कि कहींभी वृक्ष नहीं छोड़े ॥ ७१ ॥ केवल जिस वृक्षके नीचे सीताजी थीं उस वृक्षको छोड़कर सम्पूर्ण बगीचा शून्य करदिया, राक्षसियें उस वाटिकाको उखाड़ता हुआ देखकर, जानकीजीसे बूझने लगीं, कि—अरी! यह वानररूपधारण करेहुए कौन वीर हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तबतौ जानकीजी बोलीं कि—इस राक्षसोंकी रचीहुई मायाको तुमही जानती होओगी, मैं तौ अपने दुःख और शोकसेही व्याकुल होरही हूँ, मैं इसको क्या जानूँ, यह कौन है। ॥ ७४ ॥ जब इसप्रकार जानकीजीने कहा तब तौ भयसे व्याकुल हुई राक्षसियोंने शीघ्रही जाकर हनुमान्जीका सब कर्त्तव रावणको निवेदन करा ॥ ७५ ॥ कि हे देव! वानरके आकारका देह धारण करेहुए कोई महाबली आगया है, उसने सीतासे कुछ बातचीत करके सम्पूर्ण अशोकवाटिकाको उखाड़ डाला, और ऐसा बड़ा पराक्रमी है कि—उसने वह बड़ा ऊँचा आपका महलभी तोड़डाला ॥ ७६ ॥ और उस राजमन्दिरके सब रक्षकोंको भी मारडाला, और अभीतक वहाँही स्थित था, अशोकवाटिकाके नष्ट होनेकी अतिदुःखदायक वार्त्ताको सुनकर रावण शीघ्रही उठा ॥ ७७ ॥ और अपने दशहजार नौकरों (सेनाके मनुष्यों) को भेजा; सो तोडेहुए राजमन्दिरके पहिले चौकमें बैठेहुए, पर्वतकी समान है आकार जिनका, लोहेके खम्भेको ही बनाया है शस्त्र जिन्होंने ऐसे लाल मुख, भयंकर मूर्त्ति, कुछ कुछ पूंछको हिलाते हुए तिन हनुमान्जीने आता हुआ राक्षसोंका बडा भारी समूह देखा, सो सिंहकी समान बडे जोरसे गरजे, तिस गर्जनाको सुनकर वह राक्षस अत्यन्त मोहितसे होगए ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ फिर हनुमान्जीका भयंकर आकार देखकर राक्षस तिन राक्षसकुलघातक हनुमान्जीके ऊपर अनेक प्रकार अस्त्रशस्त्रोंके समूहों करके प्रहार करने लगे ॥ ८१ ॥ तब तौ हनुमान्जीने उठकर अपने मुद्गरसे क्षणमात्रमें चारों ओरके राक्षसोंको इसप्रकार कुचलडाला, जिस

प्रकार मतवाला गजराज मच्छरोंको कुचल डालता है ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रावण अपने सेवकोंका मरण सुनकर क्रोधमें भरगया, और तहाँ सेनाकरके सहित बड़े घमण्डी पाँच सेनापतियोंको भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमान्जीने उनको भी लोहेके खम्भेसे कुचलकर यमपुरीको पहुँचादिया, तब तौ रावण अत्यन्तही क्रुद्ध हुआ, और सेना लेकर सात मंत्रिकुमारोंको भेजा ॥ ८४ ॥ जब वह आए तब पवनकुमारने उन सबको भी क्षणमात्रमें लोहेके खम्भेसे कुचलडाला ॥ ८५ ॥ और फिर पहिले स्थानमें आकर राक्षसोंकी प्रतीक्षा करतेहुए बैठगए, इतनेहीमें परमप्रतापी बलवान् अक्षकुमार (रावणका पुत्र) आया ॥ ८६ ॥ उसको देखकर हनुमान्जी मुद्गर लियेहुए आकाशमें कूदे, फिर शीघ्र आकाशसे आकार उसके मस्तकपर मुद्गरका प्रहार करा ॥ ८७ ॥ इसप्रकार तिस अक्षकुमारको और उसकी सम्पूर्ण सेनाको मारकर निःशेष करदिया ॥ ८८ ॥ तब राक्षसपति रावण अक्षकुमारके मरणको सुनकर बड़े क्रोधमें भरगया, और अपने पुत्र इन्द्रजीत (मेघनाद) से कहने लगा ॥ ८९ ॥ कि—हे पुत्र ! अब वहाँ मैंही जाताहूँ जहाँ मेरे पुत्रका वध करनेवाला शत्रु है, उसका प्राणान्त करके अथवा उसको बाँधकर तेरे समीप लाऊँगा ॥ ९० ॥ ऐसा सुनकर मेघनाद पितासे कहनेलगा कि—हे पितः ! आप शोक मत करो, मेरे जीतेहुए आप किसकारण ऐसे दुःखयुक्त वचनोंको कहते हो ॥ ९१ ॥ हे पितः ! मैं थोड़ेही कालमें उस वानरको ब्रह्मपाशसे बाँधकर लेआऊँगा, इसप्रकार कहकर रथपर सवार होगया, और परमपराक्रमी यह वीर मेघनाद बहुतसे राक्षसोंकी सेनाको साथ लेकर पवनकुमारके समीपको चलदिया, और जाकर गर्जा, तब तौ इस भयंकर गर्जनाको सुनकर महाबली हनुमान्जी लोहके खम्भेको उठाकर आकाशमें इसप्रकार उछले, जिसप्रकार साक्षात् गरुडजी, तब आकाशमें घूमते हुए हनुमान्जीके मस्तकको मेघनादने बाणोंसे वेधकर, फिर आठ बाणोंसे हनुमान्जीके हृदयको, छः बाणोंसे दोनो चरणोंको और एक बाणसे

पूँछको वेधा, और फिर सिंहनादकी समान भयंकर गर्जना करी, तब परमपराक्रमी हनुमान्‌जीने बडी जोरसे किलकारी मारकर अपना लोहेका खम्भा उठाया ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ और क्षणमात्रमें रथ, घोडे और सारथीको कुचलकर चूराचूराकर दिया, तब महाबली मेघनादने दूसरा रथ मंगवाया ॥ १७ ॥ और शीघ्रही ब्रह्मास्त्रसे पवनकुमारको बाँधकर राक्षसपति रावणके समीप लेआया ॥ १८ ॥ जिन श्रीरामचंद्रजीके नामको निरन्तर जपनेवाले पुरुष क्षणमात्रमें अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले कर्म्मोंके बन्धनसे छूटकर शीघ्रही करोडों करोड़ों सूर्य्योंकी समान प्रकाशवान् कल्याणरूप ब्रह्मपदको प्राप्त होतेहैं ॥ १९ ॥ तिनही श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको निरन्तर अपने हृदयकमलमें स्थापन करके हनुमान्‌जी सदा सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त रहतेहैं, फिर उनको इन बन्धनो और पाशोंसे क्या दुःख होसक्ता है ॥ १०० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी कहतेहैं, कि—पार्वति ! जब मेघनाद हनुमान्‌जीको ब्रह्मपाशमें बांधकर लेचला उससमय पवनकुमार लंकापुरीको देखतेहुए भयभीतकी समान चलने लगे; उससमय पुरवासी राक्षस पवनकुमारको देखनेके निमित्त चारोंओरसे आकर कोपयुक्त हो मुष्टिप्रहार करनेलगे ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके वरदानसे ब्रह्मपाश क्षणमात्रको पवनकुमारका स्पर्श करके तत्काल अंतर्धान होगया हनुमान्‌जी ब्रह्मपाशको अंतर्धान हुआ जानकर भी अपना कार्य्य साधनेके निमित्त अर्थात् रावणको देखनेके निमित्त उन निःसार रस्सियोंमेंही बंधेहुए चलेगये ॥ २ ॥ मेघनाद सभाके बीचमें बैठेहुए रावणके आगे हनुमान्‌जीको लेजाकर कहनेलगे, कि मैं इस वानरको ब्रह्मपाशसे बांधकर लाया हूँ,इसनेही बड़े बड़े राक्षसोंका प्राणान्त करा है॥ ३ ॥ हे पितः! इसकारण मंत्रियोंके साथ विचार करके जो उचित हो सो कीजिये, परन्तु इस

वानरको साधारण मत समझिये, तब राक्षसपति रावण हनुमान्‌जीकी ओरको देखकरके सन्मुख बैठेहुए अंजनके समूहकी समान कृष्णवर्ण प्रहस्तसे कहनेलगे ॥ ४ ॥ कि–हे प्रहस्त ! इस वानरसे बूझो, कि–यह यहाँ किसकारण आया है, इसका यहाँ क्या कार्यहै, और कहाँसे आया है, तथा किसकारणसे सम्पूर्ण अशोक वाटिकाको उजाड दिया, और किस कारणसे बलकरके मेरे राक्षसोंका प्राणान्त करा ॥ ५ ॥ तब प्रहस्त मंत्री सत्कारपूर्वक हनुमान्‌जीसे बूझने लगा, कि हे वानर ! तुझे किसने भेजा है, तू भयभीत मत हो, जो कुछ वार्त्ता है सो महाराज रावणके आगे सत्य सत्य कहदे, मैं तुझे बंधनसे छुटवादूँगा ॥ ६ ॥ तबतो हनुमान्‌जी बडी प्रसन्नतासे त्रिलोकीके कंटकरूप अपने शत्रु रावणकी ओर देखकर और वारंवार चित्तसे श्रीरामचंद्रजीका स्मरण करके प्रारंभसेही श्रीरामचंद्रजीकी सत्कथा कहने लगे ॥ ७ ॥ हे राक्षसपते ! जिन जगदीश्वर श्रीरामचंद्रजीकी स्त्री जगज्जननी सीताको जैसे कुत्ता यज्ञके हविको लेकर भागता है, इसप्रकार तू अपना नाश करनेकें निमित्त ले आया है, उनही श्रीरामचंद्रजीका मैं दूत हूँ ॥ ॥ ८ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी ऋष्यमूकपर्वतपै आये और अग्निकी साक्षीपूर्वक सुग्रीवके साथ मित्रता करके केवल एक बाणसेही वालीका प्राणान्त कर सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यका अधिपति करदिया ॥ ९ ॥ वह वानरराज महाबली परमपराक्रमी सुग्रीव बड़े बड़े बली करोडों वानरोंके समूहों करके सहित तथा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी करके सहित प्रवर्षण पर्वतके ऊपर बड़ा क्रोध करेहुए स्थित है ॥ १० ॥ और उसने सीताजीकी सुध लेनेके निमित्त बडे बडे वानर दशों दिशाओंमें भेजे हैं, उनमेंसे मैं एक पवनकुमार हनुमान् नामक वानर सीताको ढूँढ़ताहुआ धीरे २ यहाँ आगया हूँ ॥ ११ ॥ सो मैंने कमलदलनयनी सीताको देखा और वानरस्वभावसे अशोक वाटिकाको उखाड डाला, फिर मेरे मारनेको धनुषबाण धारण करे हुए वेगसे आते हुए राक्षसोंको मैंने देखा ॥ १२ ॥ तब मैंने उनको मारकर अपने शरीरकी रक्षा करी, और हे राजन्! यह आप जानतेही

हैं, कि-सम्पूर्ण प्राणियोंको अपना देह प्यारा होता है, फिर मेघनाद नामक राक्षस मुझे ब्रह्मपाशसे बांधकर ले आया ॥ १३ ॥ हे रावण! यह ब्रह्मपाश ब्रह्माके वरदानके प्रभावसे मुझे स्पर्श करते हो निःसार होगया, यह मैं जानताथा, तथापि तुझको हितकारक उपदेश देनेके निमित्त चित्तमें दया आगई इसकारण निःसार पाशमें बंधाहुआही तेरे पास चला आया हूँ ॥ ॥ १४ ॥ हे रावण! तू विवेककी बुद्धिसे संसारकी गतिको विचार कर इस अनर्थ करानेवाली राक्षसी बुद्धिको त्याग दे, और संसारसे छुटानेवाली जो दैवी सम्पत्तिकी बुद्धि तिसको अपना हित जानकर ग्रहण कर ॥ १५ ॥ हे रावण! तू ब्राह्मणजाति तिसपरभी उत्तम पुलस्त्यऋषिके कुलमें जन्मा है, कुबेरसा तेरा भ्राता है और यदि देहात्मबुद्धिकरके देखो तौभी राक्षस नहीं है और आत्मविचारकी दृष्टिसे यदि देखो तबतौ कहनाही क्या है? ॥ १६ ॥ और शरीर बुद्धिइन्द्रियादिसे उत्पन्न होनेवाला दुःखोंका समूह तुमको नहीं होताहै, क्योंकि दुःखका आश्रय जो चित्त सो तुम नहीं हो तुम निर्विकारस्वरूप हो, और "मैं दुःखी हूँ" इसप्रकार की जो प्रतीति है सो स्वप्नमें देखेहुए पदार्थोंकी समान अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली और मिथ्या है ॥ १७ ॥ हे रावण! मैं सत्य कहता हूँ, कि—तुम्हारा वास्तविक स्वरूप जो आत्मा उसमें किसीप्रकारका विकार नहीं है, और विकारका हेतु जो अज्ञान वह मिथ्या है, क्योंकि वेदमें आत्माको अद्वितीय कहा है, जिसप्रकार आकाश पृथ्वीआदि सम्पूर्ण पदार्थोंमें व्याप्त होकर भी किसीके विकारसे लिप्त नहीं होताहै, तिसीप्रकार आत्मा सूक्ष्मरूप और देहमें स्थित होकरभी इस देहके विषें लिप्त नहीं होताहै, परन्तु मैं देह हूँ, मैं प्राण हूँ, मैं इन्द्रिय हूँ, मेरा शरीर है, इसप्रकार मिथ्या बुद्धि करके आत्मा देह इन्द्रियआदिसे उत्पन्न हुए सुखदुःखादिको भोगता है, और कर्म्मजालरूपी बंधनको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ और जब ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे ऐसी भावना करता है, कि—मैं अद्वितीय, चैतन्यस्वरूप जन्मरहित, अविनाशी और आनन्दस्वरूप हूँ, तबहीं संसारबंधनसे मुक्त होजाता है, और

देहतौ चैतन्यादि धर्मरहित होनेके कारण आत्मा नहीं होसक्ता, किन्तु पृथ्वीके विकारसे उत्पन्न हुआ है, और प्राण भी आत्मा नहीं होसक्ता, क्योंकि प्राण दृश्य पवनरूप जड़ पदार्थ है ॥ १९ ॥ और मनभी आत्मा नहीं होसक्ता, क्योंकि मन अहंकारका विकाररूप है, और अहंकारभी आत्मा नहीं होसक्ता, क्योंकि अहंकार प्रकृतिका विकार जो महत्तत्त्व तिससे उत्पन्न हुआ है, इसकारण आत्मा चैतन्यस्वरूप, आनन्दमय, अविकारी और देहादि समूहसे भिन्न, सर्वशक्तिमान्, निर्लेप, और उपाधियोंसे सर्वदा मुक्त है, इसप्रकार ज्ञानके प्रभावसे आत्माके स्वरूपको जानकर पुरुष इस संसारबंधनसे मुक्त होजाता है, इसकारण हे बुद्धिमान् रावण! मैं अब मोक्षका सर्वोपरि साधन कहताहूँ, तिसको तू सावधान होकर श्रवण कर ॥ २० ॥ २१ ॥ विष्णु भगवान्की भक्तिही चित्तको शुद्ध करनेका परम उपाय है, और जब अन्तःकरण शुद्ध होजाता है तब निर्म्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है, और ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे आत्माका साक्षात्कार होजाता है, और पूर्ण रीतिसे तत्वज्ञान होतेही पुरुप परमपदको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ इसकारण हे रावण ! प्रकृतिसे पर सर्वव्यापी पुराणपुरुष लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजीका भजन करो; हे रावण ! अब मूर्खताको और हृदयके शत्रुभावको त्यागकर शरणागतोंके हितकारक श्रीरामचंद्रजीका भजन कर, और सीताको आगे करके पुत्रबांधवसहित श्रीरामचंद्रजीको नमस्कार करके भयसे छूटजाओ ॥ २३ ॥ हे रावण ! हृदयके विषे स्थित सुखस्वरूप परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका भक्तिपूर्वक विना ध्यान करै पुरुष दुःखकी तरंगोंकरके युक्त संसारसमुद्रको किसप्रकार पार होसक्ता है? ॥ २४ ॥ हे रावण ! यदि तुम श्रीरामचंद्रजीकी शरणामें नहीं लोगे, और अज्ञानरूपी अग्निसे जलतेहुए अपने अंतःकरणकी रक्षा नहीं करोगे, और अपने करेहुए परस्त्रीहरण ऋषिवधआदि पातकोंके द्वारा अपनेको अधोगतिकोही प्राप्त करोगे, तौ निःसंदेह तुम अपने आत्माके शत्रु हो, और इस संसारबंधनसे तुम्हारी कदापि मुक्ति नहीं होयगी ॥ २५॥ राक्षसपति रावण इस-

प्रकार अमृतकी समान स्वादयुक्त पवनकुमारके कथनको सुनकर सह्य नहीं करसका, और जलतीहुई अग्निकी समान नेत्रोंको लाल करके अत्यन्त क्रोधपूर्वक हनुमान्‌जीसे कहने लगा, ॥ २६ ॥ अरे वानरोंमें अधम ! नीचबुद्धि! तू मेरे सामने निर्भय हुआ सा क्या बकरहा है? अरे ! वह रामचन्द्र कौन है? और वह वनचर सुग्रीव क्या वस्तु है ? मैं उस अधम मनुष्य रामचन्द्रको सुग्रीव करके सहित क्षणमात्रमें नष्ट करदूँगा ॥ २७ ॥ अरे ! अभी तुझे मारकर फिर सीताको, फिर लक्ष्मण सहित रामको, और तदनन्तर शीघ्रही वानरोंकी सेनासहित वानरराज सुग्रीवको नष्ट करदूँगा ! इसप्रकार रावणके कहनेको सुनकर हनुमानजीका इतना कोप बढगया, मानो इसी समय रावणको भस्म कर डालैंगे ॥ २८ ॥ और कहनेलगे कि—अरे नीच मैं श्रीरामचंद्रजीका दास अपारपराक्रमी हूँ, तुझसे करोड रावण आजायँ, तबभी मेरी तुल्यता नहीं करसक्ते, इसप्रकार अतिकोपयुक्त हनुमानजीके वचनको सुनकर रावण एक राक्षससे बोला ॥ २९ ॥ अरे ! इस समीपमें स्थित वानरको टुकडे टुकडे करके मारडाल; आज इस कौतुकको मेरे मित्र और बाँधव आदि सब राक्षस देखैं, इसप्रकार रावणके कहनेसे जब वह राक्षस शस्त्र उठाकर हनुमानजीके मारनेको उद्यत हुआ, सो तत्कालही विभीषणने रोंका, और रावणसे कहा कि—हे राजन् ! यह परराज कहिये शत्रुराजाका (परराजशब्दसे विभीषणका वास्तविक अभिप्राय यह है कि श्रेष्ठराजाका) दूत वानर मारनेके योग्य नहीं है, क्योंकि—जो प्रतापि राजा होते हैं, वह शत्रुके दूतके विषयमें मारनेकी संभावनाभी नहीं करते हैं, और मारते नहीं है इसमें तो कहनाही क्या है? और यहाँ विभीषणका भीतरी अभिप्राय यह है कि—(यह वानर प्रतापयुक्त जो इन्द्रादि तिनके द्वाराभी वधको नहीं प्राप्त होसक्ता और तुम्हारा तो कहनाही क्या है?) ॥ ३० ॥ हे राजन् ! रावण ! यदि तुम इस दूत वानरका प्राणान्त करदोगे तो, जिनके वधके लिये तुम उद्यत हो उन रामसे जाकर यह सब वार्त्ता कौन कहैगा, (इस श्लोकके मूलपाठसे विभीषणका भीतर अभि

प्राय यह टपकता है कि–जिन श्रीरामचंद्रजीसे तुम अपना वध करनेके निमित्त उद्यत बैठे हो उनको जाकर, यह सब संवाद कौन सुनावैगा) ॥ ॥ ३१ ॥ इसकारण इसवानरके निमित्त बधकी समान कोई दूसरा दण्ड विचारिये, जो यह वहाँसे अपने शरीरपर कुछ दण्डका चिन्ह लेकर जाय, जिसको देखकर शीघ्रही रामचन्द्र सुग्रीवकरकेसहित आवै, और तुम्हारा उनका युद्ध होय, इसप्रकार बिभीषणके कहनेको सुनकर रावण यह कहने लगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कि–यह निश्चय बात है कि वानरोंको अपनी पूँछमें बड़ी ममता होतीही है, इसकारण इसकी पूँछको यत्नपूर्वक वस्त्र आदिसे लपेटकर, और उसमें अग्नि लगाकर फिर चारों ओर नगरमें घुमाकर छोड़ दो, तब इसकी दशाको सब वानरोंके सभापति देखैंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार रावणके कहतेही राक्षसोंने हाँमेहाँ मिलाई और पवनकुमार हनुमान्‌जीकी पूँछको तत्कालही तैलसे भीगेहुए सनके वस्त्र (टाट) और अनेक प्रकारके रुई आदिके वस्त्रोंसे लपेटा, ॥ ३६ ॥ और रस्सियोंसे खूब दृढ बाँधकर हनूमान्‌जीको वडे वडे बलवान राक्षसोंने पकडलिया, फिर पूँछके अग्रभागको कुछ अग्निसे जलाकर "यह चोर है" इसप्रकार कहतेहुए चारों ओर घुमाने लगे, कोई राक्षस पीछे २ ढ़ोल बजानेलगे, और कोई लात तथा घूँसोंके प्रहार करने लगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ परन्तु हनुमान्‌जीनें अपना कुछ कार्य्य सिद्ध करनेके निमित्त यह सब तिरस्कार सह लिया फिर जब पश्चिमकी ओरके द्वारके समीप पहुँचे, तहां हनुमान्‌जीने अपना सूक्ष्म (छोटासा) रूप धारण करलिया; और सम्पूर्ण बन्धसे भी निकलगए, और निकलकर फिर पर्वतकी समान रूप धारण करके कूदकर नगरके द्वारपर चढ़गए ॥ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और उसमेंका एक खम्भा उखाडकर क्षणमात्रमें तिनके साथके राक्षसोंको कुचलकर मारडाला, फिर कुछ थोडासा कार्य्य बाकी रहाजानकर एक महलसे दूसरे महलपर, उसपरसे अन्य स्थानके ऊपर कूदकूकर जलतीहुई अपनी पूँछसे हनुमानजीने अटारी महल

और नगरके द्वारोंसहित सम्पूर्ण लंकाको भस्म करने लगे ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ उस समय महलोंकी अटारियों और शिखरोंपर चढीहुई राक्षसोंकी स्त्रियें हा तात! हा पुत्र! हा नाथ! इसप्रकार चारों ओरसे पुकारने लगीं ॥ ४३ ॥ उस समय अग्निसे झुलसझुलसकर ऊँचे ऊँचे महले सो गिरती हुईं राक्षसी ऐसी प्रतीत होतीथीं, मानो आकाशसे सम्पूर्ण देवता आरहे हैं, एक विभीषणके स्थानको छोड़कर सम्पूर्ण नगर भस्म करदिया ॥ ॥ ४४ ॥ फिर पवनकुमार हनुमान्‌जी कूदकर समुद्रमें गए, और उसमें पूँछको बुझाकर स्वस्थचित्त हुए ॥ ४५ ॥ सीताजीकी प्रार्थना करनेसे और अपने प्रियमित्र पवनका पुत्र होनेके कारण अग्निने हनुमान्‌जीकी पूँछको नहीं जलाया, किन्तु अत्यन्त शीतल होगया ॥ ४६ ॥ जिन श्रीरामचन्द्रजीके नामका स्मरण करनेसे पुरुष समस्त पापोंसे छूटकर आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिकरूप त्रिविध तापों (अग्नियों) से छूटजाते हैं, फिर तिनही रघुनाथजीके मुख्य दूत इस प्राकृतअग्निसे किसप्रकार तापको प्राप्त होसक्के ॥४७॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थःसर्गः

पञ्चमःसर्गः ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति ! फिर हनुमान् सीताजीके समीप जाय नमस्कार करके कहने लगे कि—हे मातः ! अब मुझे तुम श्रीरामचन्द्रजीके समीप जानेकी आज्ञा दो ॥ १ ॥ अब मैं जाता हूँ, लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही आवेंगे, इसप्रकार कहकर और जानकीजीकी तीन परिक्रमा करके हनुमान्‌जीने प्रणाम करा, और चलनेको उद्यत होकर इसप्रकार कहा कि—हे मातः ! अब मैं जाता हूँ, तुम्हारा मंगल हो, अब तुम शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी और करोड़ों वानरोंकरके सहित सुग्रीव यहाँ आया देखोगी, तदनन्तर दुःखकरके अति दुर्बल जानकी हनुमान्‌जीसे कहने लगीं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ कि—हे पवनकुमार ! तुमको देखकर मैं सम्पूर्ण दुःखोंको भूलगई थी, अब तुम जाओगे, सो अब आगे-

को मैं श्रीरामचन्द्रजीकी वार्त्ता विना सुने किस प्रकार रहूँगी ॥ ५ ॥ हनुमान्जी बोले कि—हे मातः! यदि ऐसा है तौ मेरे कन्धेपर चढ़जाओ, मैं क्षणमात्रमें श्रीरामचन्द्रजीसे मिलादूँगा, यदि इस वार्त्ताको स्वीकार करो तौ ॥ ६ ॥ सीताजी कहनेलगीं कि--श्रीरामचन्द्रजी बाणोंसे समुद्रको सुखाकर अथवा बाणोंकेही जालसे पुल बाँधकर वानरोंकरके सहित आकर और संग्राममें रावणको मारकर ॥ ७ ॥ यदि मुझे लेजायँगे तौ श्रीरामचन्द्रजीकी सदाँके लिये बड़ी भारी कीर्त्ति होयगी, इसकारण अब तुम जाओ, जिसप्रकार हो सकेगा मैं अपने प्राणोंको धारण करूँगी ॥ ८ ॥ इसप्रकार सीताजीकरके विदाकरे हुए हनुमान्जी तिन सीताजीको प्रणाम करके समुद्रके पार जानेके निमित्त पर्वतके शिखरपर गए ॥ ९ ॥ तहाँ जाकर महाबली पवनकुमार चरणोंसे पर्वतको दबाकर पवनकी समान वेगसे चलदिये, और पर्वतभी धरातलमें घुसगया, ॥ १० ॥ उससमय तीस योजन (१२० कोश) ऊँचापर्वत हनुमान्जीके चरणकी दाबसे पृथ्वीके बराबर होगया, और हनुमान्जीने बीचमार्गमें आकर आकाशमेंही बड़े जोरसे शब्द करा ॥ ११ ॥ उस शब्दको सुनकर सम्पूर्ण वानरोंने हनुमान्जीको लौटकर आयाहुआ जानकर परमप्रसन्न होकर बडे जोरसे गर्जना करी ॥ १२ ॥ और परस्पर कहने लगे कि—हमै शब्दसेंही प्रतीत होता है कि—पवनकुमार कार्य्य सिद्ध करके आया है, अरे वानरो! देखो वह हमारा शिरोमणि आगया ॥ १३ ॥ इसप्रकार तिन वीर वानरोंके वार्त्तालाप करते हुएही पवनकुमार आकाशसे पर्वतके शिखरपर उतरकर वानरोंसे इसप्रकार कहनेलगे, ॥ १४ ॥ कि अरे वानरो! मैंने सीताजीका दर्शन करा, वाटिकासहित लंकापुरी उजाडदी, और रावणसे वार्त्तालाप करा, तब फिर मैं यहाँ आयाहूँ ॥ १५ ॥ चलो इससमयही श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवके समीप चलैंगे, इसप्रकार कहनेके अनन्तर वानरोंने प्रसन्न होकर पवनकुमारको हृदयसे लगाया ॥ ॥ १६ ॥ कोई उनमेंसे हनुमान्जीको पूँछको चुम्बन करने लगे, कोई बडी प्रसन्नताके साथ नृत्य करनेलगे, फिर हनुमान्जी करके सहित वह

सब वानर प्रवर्षणपर्वतको चलदिये ॥ १७ ॥ और चलते २ उन वीरवानरोंने सुग्रीवका रक्षा कराहुआ मधुनामक वन देखा, तब सब वानर अंगदसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे वीर ! हे प्रवीण ! हम बुभुक्षित होरहेहैं, सो हमैं आज्ञा दो, जो अब हम अमृतकी समान स्वादु मधुको पान करैं और इनफलोंको भक्षण करैं ॥ १९ ॥ फिर सन्तुष्ट होकर अभी लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके निमित्त चलैंगे ॥ २० ॥ अंगद बोला कि-यह पवनकुमार हनुमान्‌जी कार्य्यको सिद्ध करके आए हैं, सो इनके प्रसादसे हे वानरो ! शीघ्रही जलपान करके फलमूल भक्षण करलो ॥ २१ ॥ जब इसप्रकार अंगदने कहा तबतौ वानर घुसकर सुग्रीवके मामा दधिमुखके भेजेहुए रक्षा करनेवालोंकी कुछ न सुनकर मधुपान करने लगे, ॥ २२ ॥ तब तौ पान करतेहुए उन वानरोंको रक्षा करनेवाले ताड़ना करने लगे, तब सब वानर उन रक्षाकरनेवालोंको मुष्टि और लातोंके प्रहारोंसे कुचलकर फिर मधु पीनेलगे ॥ २३ ॥ तबतौ दधिमुख सुग्रीवका मामा क्रुद्ध होकर रक्षकोंके साथ जहाँ राजा सुग्रीव थे तहाँ गया ॥ २४ ॥ और जाकर सुग्रीवसे कहा कि--हे राजन् ! बहुतकालसे रक्षा कराहुआ आपका मधुवन आज पवनकुमार हनुमान्‌ने नष्ट करदिया ॥ २५ ॥ इसप्रकार दधिमुखके कहनेको सुनकर सुग्रीव चित्तमें बड़ा प्रसन्न हुआ, और कहने लगा कि--पवनकुमार सीताजीका दर्शन करके आया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, ॥ २६ ॥ नहीं तौ मेरे मधुवनकी ओरको देखनेकी भी, किसकी सामर्थ्य थी, सो निःसन्देह उन वानरोंमें पवनकुमार कार्य्यको सिद्ध करके आया है॥ २७॥ इसप्रकार सुग्रीवके कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर तिससे कहने लगे कि—हे राजन् सुग्रीव! सीताकी कथाकरके युक्त तुमने इस समय क्या कहा?॥ २८॥ तब सुग्रीव बोला कि—हे देव पवनकुमार सीताको देख आया, जो हनुमान् आदि सम्पूर्ण वानर मधुवनमें घुसगए, और वनके सम्पूर्ण फलोंको भक्षण करलिया, तथा रक्षकोंको भी ताडना दी, आपके कार्य्यको विना करै, मेरे मधुवनकी ओरको वह देखभी

नहीं सके, इससे निश्चय होता है कि—हनुमान् सीतादेवीको देखकर आया है; और सुग्रीव मधुवनके रक्षकोंसे कहने लगा कि—अरे! तुम भय मत करो, और तहाँ जाकर मेरी आज्ञासे अंगदआदि सब वानरोंको मेरे समीप लिवालाओ, इसप्रकार सुग्रीवके कहनेको सुनकर वह मधुवनके रक्षक पवनकी समान वेगसे गए ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और वानरराज सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार हनुमान् आदि वानरोंसे कहने लगे कि— श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी करके सहित महाराज सुग्रीव तुम सबको देखना चाँहते हैं ॥ ३३ ॥ वह परमप्रसन्न होरहे हैं और तुमको बहुत शीघ्र बुलाया है, इस वार्ताको स्वीकार करके वह वीर वानर आकाशमार्गसे गए ॥ ३४ ॥ और सबसे आगे हनुमान्जी तथा युवराज अंगदको करके सब श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीवके आगे आकर शीघ्रतासे पृथ्वीपर उतरे॥ ३५॥ तब हनुमान्जीने श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि—महाराज! मैंने सीताजीको नीरोग देखा, फिर श्रीरामचन्द्रजीको और सुग्रीवके आगे प्रणाम करके कहा कि—हे महाराज श्रीरामचन्द्रजी! शोकसे व्याकुल हुई जानकीजीने आपको कुशल कही है; हे प्रभो! अशोकवाटिकाके विषे शिंशपावृक्षकी जडमें बैठीं थीं, राक्षसी उनको चारों ओरसे घेरेहुए थीं, और भोजन न करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं, और मलिन वस्त्र धारण करे हुए हा राम! हा राम! इसप्रकार कहकर शोक कर रहीं थीं, एक वेणी बँधी हुई थी, सो मैंने उनकी यह दशा देखकर, तिन शुभलक्षण जानकीजीको धीरे धीरे सावधान करा, और छोटेसे रूपमें वृक्षकी शाखाओंके विषे बैठकर जन्मसे लेकर आपकी कथा कही, फिर दण्डकारण्यका आगमन, फिर आपके न होनेपर सीताका हरण तदन्तर सुग्रीवके साथ मित्रता करके वालिका मारना, फिर सीताकी सुध लेनेके निमित्त सुग्रीवने महाबली और परम पराक्रमी संग्रामोंके जीतनेवाले वानर भेजे, वहा सब चारों ओरको गए, उनमेंसे एक मैं यहाँ आया हूँ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

मैं सुग्रीवका मंत्री और श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ, सो मैंने भाग्यसे जानकी जीका दर्शन करा, इसकारण मेरा परिश्रम सफल होगया॥ ४३॥ इसप्रकार मेरे कहनेको सुनकर सीताजी नेत्रोंको फैलाकर देखने लगीं कि—किसने यह मेरे कर्णोंको अमृतकी समान शुभ अक्षर सुनाए हैं ॥ ४४ ॥ यदि यह सत्य-वार्ता है तो वह मेरे दृष्टिके सामने आवै तबतौ मैं सूक्ष्मरूप वानरके आ-कारसे जानकीजीको प्रणाम करके और हाथ जोड़कर हे प्रभो ! मैं दूरको खड़ा होगया, तब सीताजीने मुझसे बूझा कि—तू कौन है ? तब हे प्रभो ! मैंने सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक क्रमसे वर्णन करा, और पीछेसे मैंने देवीको आपकी दीहुई अँगूठी समर्पण करी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तब मेरा पूर्ण विश्वास करके इसप्रकार कहनेलगीं कि—हे हनुमन्! तुमने मुझे जिसप्रकार रात्रिदिन पीड़ित देखा है, और राक्षसियोंने मुझे तर्जना दी है, सो सब श्रीरामचन्द्रजीसे कहदेना, तब मैंने क-हा कि—हे देवि ! श्रीरामचन्द्रजीभी तुम्हारीही चिन्तामें मग्न रहते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ और तुम्हारी किसी प्रकारकी कुशलवार्त्ताको न पाकर रात्रिदिन शोकमें रहते हैं, सो मैं इसी समय जाकर तुम्हारी सम्पूर्ण दशा श्रीरामचन्द्रजीको निवेदन करदूँगा ॥ ५० ॥ और श्रीरामचन्द्रजी सुनतेही लक्ष्मणजी—सुग्रीव और वानरोंकी सेना करके सहित तुम्हारे स-मीप आवैंगे ॥ ५१ ॥ और सकुटुम्ब रावणको नष्ट करके तुम्हे अपनी नगरीको लेजायँगे, अब तुम मुझे कुछ पहिचानकी वस्तु दो जिससे श्रीरा-मचन्द्रजीकोभी विश्वास हो जाय ॥ ५२ ॥ ऐसा कहनेपर उन्होंने चूडा-पाशमेंका रखाहुआ परमप्रिय अपना चूड़ामणी देकर, चित्रकूट पर्वतपर जयन्तने काकरूपधारण करके जो कौतुक पहिले कराथा सो कहा, और फिर नेत्रोंमें जलभरकर कहा कि जाओ श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल कहो, और लक्ष्मणजीसे कहना कि मैंने पहिले तुमसे जो कुछ अनुचित वाक्य अज्ञानतासे कहे उसका क्षमा करो, क्योंकि हे कुलनन्दन! वह सब अज्ञा-नसे कहा है, और जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी कृपायुक्त होकर मुझे इस

कष्टसे छुटावै सो यत्न करो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इसप्रकार कहकर सीताजी रुदन करती हुई बड़ी दुःखित हुई, और हे श्रीरामचन्द्रजी! मैंने भी सब कुछ आपकी ओरसे कहकर उन्हें समझाया॥५६॥ फिर मुझे विदा करदिया,तब हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ, और आते समय रावणकी परमप्यारी अशोकवाटिकाको उखाडकर और बहुतसे राक्षसों को क्षणमात्रमें मारकर, तथा रावणके पुत्रको संग्राममें मारकर, रावणसे संभाषण करके, फिर लंकापुरीको भस्म करके क्षणमात्रमें यहां आगया हूँ, इसप्रकार हनुमान्‌जीके कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी चित्तमें अत्यन्तही प्रसन्न हुए ॥५७॥५८॥५९॥ और कहने लगे कि—हे पवनकुमार! तुमने देवताओंकरके भी सिद्ध न होनेयोग्य कार्य्यको सिद्ध करा, इसकारण तुम्हारे उपकारके समान मुझे कोईभी वस्तु नहीं दीखती, जिसको देकर तुमसे उद्धार होऊँ ॥ ६० ॥ इसकारण हे पवनकुमार! अब मैं तुमको अपना सर्वस्व तुमको देता हूँ, इसप्रकार कहकर पवनकुमारको समीप खैंचकर हृदयसे लगाया, ॥ ६१ ॥ और रघुकुलमणि भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी नेत्रोंमें जल भरकर परमप्रसन्न होकर हनुमान्‌जीसे कहने लगे ॥६२॥ कि—हे पवनकुमार! संसारमें मुझ परमात्माका आलिङ्गन परमदुर्लभ है, इसकारण हे पवनकुमार! तुम मेरे प्रिय भक्त हो, जो मैंने तुम्हें अपना आलिङ्गन दिया ॥ ६३ ॥ जिन परमात्माके दोनों चरणकमलोंको तुलसीदलादिकेद्वारा पूजन करके भी पुरुष अनुपम विष्णुपदर (वैकण्ठ) को प्राप्त होतेहैं, तिनही श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्तिके आलिङ्गनको प्राप्त होनेवाले पवनकुमार हनुमान्‌जीके पुण्यसमूहोंका तौ वर्णनही कौन करसक्ते हैं? ॥ ६४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजभारद्वाजरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

इति सुन्दरकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीः।

अध्यात्मरामायणभाषा।

लङ्काकाण्ड।

श्रीयुत पण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मणाविरचित

जिसमें

समुद्रसेतुबन्धन, इन्द्रजित्कुम्भकर्णादिवध, सेनासहित-रावणमारण, विभीषणलंकाराज्यप्राप्ति, देवादिकृतरामस्तुति, सीतामिलन, अयोध्यागमन, भरतसंमिलन, रामराज्याभिषेकादिकथा सविस्तर लिखी है.

वही

रामकथाभिलाषियोंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजीने

'गूजरार्ता प्रिंटिंग' प्रेसमें छपवायके

प्रसिद्ध किया.

आषाढ सं० १९५२ शाके १८१८

॥ लङ्काकाण्ड ॥ ६ ॥

दोहा–रावणि रावण अनुजवध, रावणके शिरभंग ॥
रावणारि आगम अवध, लङ्काकाण्ड प्रसङ्ग ॥ १ ॥

दोहा–उत्तमलङ्का काण्डको, कथासुने नरजोय ॥
रामकृपा भवसिन्धु तरि, मुक्ति पदारथ सोय ॥ २ ॥

दोहा–रामराम सियराम कहु, रामराम कहु राम ॥
रामबिना रघुवंश हूँ, खानपान के काम ॥ ३ ॥

दोहा–रामचरित कलिदुरितहर, नवरस भरितललाम ॥
पढ़ै सुनै चित लायजो, सो पावै हरिधाम ॥ ४ ॥

॥ श्रीः ॥

लंकाकाण्ड.

श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि—हे पार्वति! श्रीरामचन्द्रजी हनुमानजीने जो कुछ कहा उसको पूर्णरीतिसे सुनकर, परमप्रसन्नताको प्राप्त हुए, और फिर यह वाक्य कहनेलगे ॥ १ ॥ कि—पवनकुमारने वह कार्य्य किया है, जो देवताओंको भी करना कठिन है, और भूतलपर तो इसकार्य्यके करनेका कोई मनसे स्मरणभी नहीं करसक्ता ॥ २ ॥ सौयोजन (चारसौकोश) चौड़े समुद्रको कौन उल्लंघन करैगा, और राक्षसोंकरके रक्षाकरीहुई लंकाको भस्म करनेकी किसकी सामर्थ्य है? ॥ ३ ॥ पवनकुमारने दूतका सम्पूर्ण कार्य पूर्णरीतिसे करा, सुग्रीवका ऐसा दूसरा भृत्य न हुआ और न होगा ॥ ४ ॥ आज जानकीका दर्शन करके हनूमान्ने मेरी और लक्ष्मणकी क्या सम्पूर्ण रघुवंशकी और सुग्रीवकी रक्षा करी ॥ ५ ॥ जानकीका ढूँढनारूप कार्य्य पवनकुमारने तो भलीप्रकार करा, परन्तु मनमें समुद्रका स्मरण करके मेरा चित्त खिन्न होजाताहै ॥ ६ ॥ कि नाके और मत्स्योंसे भरेहुए और सौयोजन चौड़े समुद्रको किसप्रकार उल्लंघन करके मैं शत्रुका प्राणान्त करूँगा? और जानकीको देखूँगा? ॥ ७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार कथनको सुनकर सुग्रीव कहने लगा, कि—हे रघुकुलशिरोमणे! हम सब बड़े बड़े नाके और मत्स्योंसे भरेहुए समुद्रको उल्लंघन करैंगे ॥ ८ ॥ लंकाको फिर भस्म करैंगे, और रावणको शीघ्रही जाकर यमपुरीमें पहुँचावेंगे; हे रघुनाथजी! आप चिन्ताको त्यागिये क्योंकि—चिंता कार्यको नष्ट करदेती है ॥ ९ ॥ इन महाबली परमशूर वानरश्रेष्ठोंको देखिये यह आपका हितकारक कार्य्य करनेके निमित्त अग्निमें भी प्रवेश करनेको भी उद्यत हैं॥ १० ॥ अब पहिले समुद्रको उल्लंघन करनेके विषयमें सम्मति करिये, फिर

लंकाको जहाँ देखा, कि—रावणका मरण हुआही समझते हैं ॥ ११ ॥ हे रघुनाथजी ! मैं तीनों लोकमें किसीको भी ऐसा नहीं देखता, कि तुम्हारे धनुष धारण करनेपर संग्राममें सन्मुख खड़ा रहै ? ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! निःसंदेह हमारी सबप्रकारसे जय होयगी, क्योंकि- इस समय मुझे सब प्रकारसे जयको सूचित करनेवाले ही शकुन दीखते हैं ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीने भक्ति और पराक्रमकरके युक्त सुग्रीवका कथन सुनकर अंगीकार किया, और अपने सन्मुख बैठेहुए हनुमान्‌जीसे कहने लगे॥ १४॥ कि— हे पवनकुमार ! हम जिस किसीप्रकारसे समुद्रको उल्लंघन करेंगे, सो तुम लङ्कापुरीका स्वरूप मुझसे कहो, क्योंकि—तहाँ देवता और दानवभी अति कठिनसे प्रवेश करसक्के हैं ॥ १५॥ उस लंकापुरीके स्वरूपको जानकर हे पवनकुमार ! मैं कुछ उपाय करूंगा, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके वचनको सुनकर हनुमान् नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहनेलगे, कि—हेदेव ! जो कुछ मैंने देखा है, सो आपके सन्मुख निवेदन करताहूँ, वह दिव्य लंकापुरी त्रिकूटपर्वतके शिखरपर वशीहुई है ॥ १६ ॥ १७ ॥ चारे ओर सुवर्णका परकोटा है, नगरमें सुवर्णके ऊंचे ऊंचे महल बनेहुए हैं, उस लंकाके चारों ओर निर्म्मल जलसे भरीहुई अनेक खाई हैं ॥ १८ ॥ नगरके भीतर सुन्दर सुन्दर अनेक बगीचे हैं, अनेक स्थानोंपर बावडी बनीहुई हैं, मणिजटित स्तम्भोंकी शोभाकरके युक्त ग्रहोंकी विचित्रही शोभा है ॥ १९ ॥ पश्चिमके द्वारपर हजारों हाथियोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले योद्धा रहते हैं उत्तरके द्वारपर घोड़ोंके सवार और पैदल रहते हैं, पूर्वके द्वारपरभी वीर अरबों राक्षस स्थित रहते हैं, और दक्षिणके द्वारपरभी बड़े बड़े वीर राक्षस रक्षा करनेके निमित्त रहते हैं, ॥ २० ॥ २१ ॥ और हे श्रीरामचन्द्रजी ! लंकाके बीचके चौकमेंभी हाथी और घोड़ोंपर चढ़नेवाले तथा पैदल अनगिन योधा सदा लंकाकी रक्षा करते रहते है, वह सम्पूर्ण योद्धा नानाप्रकारके शस्त्रोंको चलानेमें परम प्रवीण हैं ॥ २२ ॥ तिस लंकापुरीमें आने जानेके मार्गोंपर जहाँ तहाँ पैरे खड़ेहुए हैं, और जहाँ तहाँ तोपैं चढ़ीहुई हैं, हे रघुनाथजी !

ऐसी दशा होनेपरभी मैंने तहाँ जो चरित्र किया उसको सुनिये ॥ २३ ॥ मैंने रावणकी सेनाके समूहका चतुर्थांश नष्ट करदिया, और लंकापुरीको भस्म करके सुवर्णका राजमहल ढादिया ॥ २४ ॥ और हे रघुनाथजी ! मैंने तोपोंको तोड़ डाला, और यत्र तत्र परकोटेको गिरकर आनेजानेके छोटे मार्गोंको बड़ा करदिया, और टूटेहुए पत्थरोंसे खाइयोंको पाट दिया, फिर लंकापुरीको भस्म करा, सो आपके दर्शनकाही प्रताप है ॥ २५ ॥ हे देव ! अब आप प्रस्थान करिये, हम सब शूरवीर वानरोंकरके सहित समुद्रके तटपर चलैं, ॥ २६ ॥ रघुनाथजी पवनकुमारके इसप्रकार कथनको सुनकर कहने लगे, कि—हे सुग्रीव ! सम्पूर्ण सेनापतियोंको चलनेके लिये प्रेरणा करो ॥ ॥ २७ ॥ इस समयही विजयनामक मुहूर्त्त है, इस मुहूर्त्तमें जाकर राक्षसोंसे भरी हुई परकोटेकरके युक्त कठिनसे नाश होनेयोग्य ही लंकापुरीको रावणसहित नष्ट करदूँगा, और सीताको लेआऊंगा, क्योंकि— इससमय मेरे दाहिने नेत्रके भाग फड़क रहा है ॥ २८ ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण बलवान् वानरोंकी सेना चलै, और उस सेनाके आगे पीछे तथा दोनों ओर रक्षा करनेके निमित्त सेनापति चलैं ॥ ३० ॥ पहिले मैं हनुमान्‌के ऊपर चढ़कर आगे जाताहूँ, फिर अंगदके ऊपर चढ़कर लक्ष्मणजी चलैं, और हे सुग्रीव ! तुम मेरे साथ चलो ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द, और द्विविद, नल, नील, सुषेण, और जाम्बवान्, तथा औरभी सम्पूर्ण शत्रुओंको नष्ट करनेवाले सेनापति अपनी सेनाके साथ चलैं, इसप्रकार वानरोंको आज्ञा देकर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजी सहित चल दिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सुग्रीव करके सहित परमप्रसन्न श्रीरामचंद्रजी सेनाके मध्यमें चलरहेथे, और गजराजोंकी समान शरीरधारी सम्पूर्ण वानर अपनी इच्छाके अनुसार धारण करके कूदतेहुए और गरजतेहुए दक्षिणदिशाकी ओरको चले, और मार्गमें मधुपान तथा फलभक्षण करतेहुए जातेथे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ श्रीरामचंद्रजीके आगे कहते जातेथे, कि—आज हम रावणका नाश करेंगे, इसप्रकार वह वीर परमपराक्रमी वानर जारहे थे ॥ ३६ ॥ उससमय पवनकुमार

और अंगदके ऊपर विराजमान श्रीरामचंद्रजी और लक्षणजी इसप्रकार शोभायमान होतेथे, जैसे आकाशमें तारागणोंकरके युक्त सूर्य और चंद्रमा ॥ ३७॥ वह बड़ी भारी सम्पूर्ण सेना पृथ्वीको घेरकर चली, सम्पूर्ण वानर अपनी पूछोंके अग्रभागको फटकारते युद्ध करनेके निमित्त वृक्षोंको उखाड़-कर लेते हुए, पवनकी समानवेगसे चले, उससमय सर्वत्र असंख्यात वानर भर रहेथे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वह सम्पूर्ण वानर बड़े प्रसन्न होकर चलरहेथे श्रीरामचंद्रजी उनके रक्षक थे वह सेना रात्रिदिन बराबर चलती रही, क्षण-मात्रभी कहीं नहीं ठहरी ॥ ४० ॥ आगे जाकर श्रीरामचंद्रजीने मलय और सह्यपर्वतके परम रमणीय वन देखे, सम्पूर्ण वानर सह्य और मलय पर्वतको उल्लंघन करके क्रमसे भयंकर है शब्द जिसका ऐसे समुद्रके तटपर पहुँचगये, तहाँ श्रीरामचंद्रजी पवनकुमारके ऊपरसे उतरकर सुग्रीवकरके सहित जलके समीप आकर कहने लगे, कि— हम सब मगरमत्स्योंसे भरेहुए समुद्रके तटपर आगये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे वानरो ! अब यहांसे विना उपाय कर चलना अति कठिन है, इसकारण यहां सम्पूर्ण सेना ठहर जाय; और हम इस समुद्रको तरनेकी सम्मति करते हैं ॥ ४४ ॥ श्रीरामचं-द्रजीके इसप्रकार कथनको सुनकर समुद्रके समीपमें शीघ्रतासे सम्पूर्ण से-नाको ठहरादिया; और रक्षा करनेके निमित्त वीर वानरोंको नियत करादिया ॥ ४५ ॥ वह सम्पूर्ण वानर भयंकर समुद्रको देखकर चित्तमें खिन्न हुए और बड़ी ऊंची २ तरंगोंकरके युक्त तथा भयंकर नाकोंसे भरेहुए अथाह और आकाशकी समान अपार समुद्रको देखकर परमदुःखित हुए, और परस्पर कहने लगे, कि— हम इस वरुणके स्थानरूप इस घोर समुद्रको किसप्रकार उल्लंघन करेंगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हमें तौ शीघ्रही जाकर राक्षसाधम रावणका नाश करना है, इसप्रकार चिंतासे व्याकुल होकर श्रीरामचंद्रजीके समीप चारोंओर बैठगये ॥ ४८ ॥ कार्यवश मनु-ष्यावतार धारण करनेवाले सीताका स्मरण करके परमदुःखको प्राप्त हो, जानकीके निमित्त बहुत विलाप करतेहुए ॥ ४९ ॥ वास्तवमें

श्रीरामचंद्रजीको किसी प्रकारका दुःख नहीं था, क्योंकि वेदमें ऐसी श्रुति है, कि—"द्वितीयाद्धि भयं भवति" इस श्रुतिके अनुसार भय और दुःख तौ द्वैतभावमें होता है, और श्रीरामचंद्रजी तौ अद्वितीय चैतन्यस्वरूप केवल सनातन परमात्मा हैं, जो पुरुष 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्योंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपको जानलेता है, वह भी दुःख भय आदिसे मुक्त होजाता है, फिर स्वयं आनंदस्वरूप तिन भगवान्‌को दुःख होता है, यह कथन तौ बनही नहीं सकता तिन श्रीरामचंद्रजीको दुःख भयादि कदापि स्पर्श नहीं करता है, क्योंकि वह तौ सर्वदा आनन्दस्वरूप अविनाशी हैं, दुःख, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह और मद आदि सब अज्ञानके चिन्ह हैं, सो चैतन्यस्वरूप श्रीरामचंद्रजीके विषें किसप्रकार होसक्ते हैं? दुःखकी प्राप्ति देहाभिमानीको होती है, और देहाभिमानरहित चैतन्यस्वरूप परमात्माको नहीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जैसे सुषुप्ति अवस्थामें द्वितीयकी प्रतीति नहीं होती है केवल सुखमात्रकी प्रतीति होती है, क्योंकि—उससमय बुद्धि आदिके न होनेसे शुद्ध आत्माके विषें दुःखादिकीभी प्रतीति नहीं होती है इससे प्रतीत होता है, कि—निःसन्देह दुःखादि सम्पूर्ण धर्म्म बुद्धिके ही हैं आत्माके नहीं ॥ ५३ ॥ श्रीरामचंद्रजी प्रकृतिसे पर आत्मस्वरूप, पुराण पुरुष, सर्वान्तर्यामी, नित्य प्रकाशवान्, अविनाशी, निरीह (किसी प्रकारकी इच्छा न करनेवाले) और सुखरूप हैं, तथापि मायाके गुणोंको अंगीकार करके अज्ञानी पुरुषोंको सुखी और दुखको प्राप्त हुएसे प्रतीत होते हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीय मुरादाबादवास्तव्य पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति ! इधर लंकापुरीमें रावणने जिसको देवताभी कठिनसे करसकैं ऐसे हनुमान्‌जीके करेहुए कर्मको देखकर लज्जासे कुछ नीचेको मुख करलिया ॥ १ ॥ और सम्पूर्ण मंत्रियोंको बुलाकर इसप्रकार कहा कि—हनुमान्‌ने जो कुछ कर्म किया सो तुमने सब

देखही लिया ॥ २ ॥ वह वानर कठिनसे प्रवेश करने योग्य लंकामें घुसकर, अनेक प्रकारसे रक्षा करी हुई सीताको देखकर वीर राक्षसोंको नष्ट करके, मंदोदरीके प्रियपुत्र अक्षकुमारका प्राणान्त करके, सम्पूर्ण लंकापुरीको भस्म करके, और फिर समुद्रको लांघकर तुम सवोंका तिरस्कार करके आनन्दसे स्वस्थतापूर्वक लौटगया ॥ ३ ॥ ४ ॥ अब आगेको हमें क्या करना उचित है सो कहो ? क्योंकि–तुम सब सम्मति देनेमें परम प्रवीण हो इसकारण यत्नपूर्वक ऐसी सम्मति करो, जिसके करनेसे मेरा हित होय ॥ ५ ॥ इसप्रकार रावणके कथनको सुनकर वह सब राक्षस कहने लगे, कि–हे देव ! तुमने तौ सम्पूर्ण लोकोंको जीतलिया, फिर संग्राममें रामचंद्रसे क्या संदेह करतेहो ॥ ६ ॥ इन्द्रको तौ तुम्हारे पुत्रने बांधकर लंकापुरीमें डाल रक्खाहै, कुवेरको जीतकर उसके पुष्पकविमानको लाकर आप भोग रहे हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! आपने यमराजको जीतलिया, और उसके कालदंडसे भी आपको भय नहीं हुआ, और वरुणको तौ हुंकारमात्रसे ही जीतलिया, और सम्पूर्ण राक्षस तौ जीतेहुए हैं ही ॥ ८ ॥ और मयनामक महाअसुर भयसे आपको अपनी कन्या दे गया, और अबभी आपके वशमें ही रहता है, फिर और असुरोंका तौ कहनाही क्या है ॥ ९ ॥ और हनुमान्‌के विषयमें जो आप कहते हैं, कि–हनुमान्‌ने हमारा तिरस्कार करा, सो वह वानर था, उसमें पुरुषार्थ दिखलानेसेही हमको क्या फल प्राप्त होता ? ॥ १० ॥ इसकारण हमने उपेक्षा करदी, सो उसके तिरस्कार करनेसे होताही क्या है? इसकारणही हम असावधान रहे, और वह वानर हमें ठगकर लेगया ॥ ११ ॥ यदि हम ऐसा जानते होते तौ क्या वह जीता चलाजाता ? अब आप आज्ञा दीजिये, तौ सम्पूर्ण संसारको मनुष्य और वानररहित करसक्तेहैं ॥ १२ ॥ और इससमय सम्पूर्ण संसारको सब जने वानर और मनुष्यरहित करके आवेंगे, आप इसही समय प्रत्येकको आज्ञा करिये, उससमय राक्षसपति रावणसे कुंभकर्ण कहनेलगा, ॥ १३ ॥ कि हे रावण! जब तूने केवल

अपना नाश करनेके लिये सीताका हरणरूप कार्य आरंभ कियाथा, उस-समय कोई तुम्हारी प्रारब्धही थी जो महात्मा श्रीमराचंद्रजीने नहीं देखा ॥ १४ ॥ हे रावण! यदि श्रीरामचंद्रजी तुम्हें देखलेते तो तुम जीतेहुए लौट करनही आते, श्रीरामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं, किन्तु साक्षात् अविनाशी दिव्यरूप नारायण हैं ॥ १५ ॥ भगवती लक्ष्मीही सीतारूपसे श्रीरामचंद्रजीकी कीर्तिमती स्त्री हैं, उनही जगन्माता सीताको तुम राक्षसोंका नाश करनेके निमित्त ले आये हो ॥ १६ ॥ हे रावण! जिसप्रकार कोई बड़ा भारी मत्स्य विषयुक्त पिंडको अपने नाशके लिये निगल जाय, तिसही प्रकार अपना नाश कर-नेके निमित्त तुम जानकीको लाये हो, अब न मालूम आगे क्या होगा॥ १७ ॥ यद्यपि तुमने विना जाने यह अनुचित कर्म्म करलिया है, तथापि हे प्रभो! मैं सब सँभाल दूँगा, तुम चित्तको सावधान करो ॥ १८ ॥ इसप्रकार कुंभ-कर्णके कथनको सुनकर रावणका पुत्र मेघनाद इसप्रकार कहने लगा, कि– हे देव! मुझे आज्ञा दीजिये, अबही लक्ष्मणसहित रामचंद्रको तथा सुग्रीव और सम्पूर्ण वानरोंको मारकर फिर तुम्हारे पास आता हूँ ॥ १९ ॥ इतने-हीमें तहाँ भगवद्भक्तोंमें प्रधान बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके चरण कमलोंमें निरंतर भक्ति करनेवाला विभीषण आया, और राक्षसपति राव-णको प्रणाम करके बैठगया ॥ २० ॥ और अत्यन्त मदोन्मत्त कुम्भकर्ण आदि दैत्योंको आश्चर्य्यपूर्वक देखकर और रावणको कामातुर देखकर निर्मलबुद्धि विभीषण सावधानतासे रावणके प्रति कहने लगा ॥ २१ ॥ हे राजन्! यह कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत (मेघनाद), तथा महापार्श्व, और महो-दर, निकुम्भ, कुम्भ तथा अतिकाय इनमेंसे एकभी युद्धमें श्रीरामचन्द्र-जीके सन्मुख खड़े होनेको समर्थ नहीं होयगा, फिर औरोंकी तो गणनाही क्या है ॥ २२ ॥ हे राजन्! तुम्हे सीतानामक बडेभारी ग्राहने ग्रस लिया है, इससे तुम्हारा छूटना नहीं होगा, इसकारण तिस सीताकाही सत्कार करके, और बहुत कुछ रत्नादि धन करकेसहित श्रीरामचन्द्रजीको सम-र्पण करके सुखी होओ ॥ २३ ॥ हे राजन्! जबतक श्रीरामचन्द्रजीके तीक्ष्ण

बाण लंकामें आकर एक साथ सम्पूर्ण राक्षसोंके शिरोंको नहीं काटते हैं, तिससे प्रथमही तुम श्रीरामचन्द्रजीकी वह जानकी देदो, यहही इस समय उचित है ॥ २४ ॥ जिससमयपर्य्यन्त नख और दाढ़ोंसे युद्ध करनेवाले पर्वतोंकी समान शरीरधारी सिंहोंकी समान महाबली वानर तुम्हारी लंकाको चारोंओरसे घेरकर नष्ट नहीं करतेहैं तिससे प्रथमही तुम शीघ्रतासे रघुनाथजीको जानकी देदो ॥ २५ ॥ और यदि जानकी नहीं दोगे तौ, क्या हे कुबेरादि लोकपाल और शिव तुम्हारी रक्षा करें, क्या इन्द्रकी गोदमें जाकर बैठजाओ क्या चाहे मृत्युकी गोदमें जाय बैठो, और चाहे पातालके लोकोंमें प्रवेश करो, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें जीवित नहीं छोडेंगे ॥ २६ ॥ इस शुभ हितकारक और परमपवित्र विभीषणके वचनको दुष्ट रावणने मानो इसप्रकार ग्रहण नहीं करा, जिसप्रकार मरणको प्राप्त हुआ भी प्राणी औषधिको स्वीकार नहीं करै है ॥ २७ ॥ और विभीषणके कथनके अनन्तर मृत्युका प्रेराहुआ वह राक्षस रावण विभीषणसे कहने लगा कि—अरे! मेरे दिये हुए भोगोंसेपुष्ट होकर मेरेही पास निवास करता हुआ भी, मुझ हितकारीकाही प्रतिकूल कार्य्य करता है, इसकारण तू निःसन्देह मेरा मित्र बना हुआ शत्रु है ॥ २८॥ ॥ २९ ॥ और तुझ दुष्ट कृतघ्नीके साथ मुझे संगति करनाभी योग्य नहीं है, सत्य है, कुटुम्बी कुटुम्बीयोंका सदा नाश होनाही चाँहते हैं॥ ३०॥ यदि कोई दूसरा राक्षस इसप्रकारका एक वाक्यभी कहता तो मैं उसको तत्कालही यमपुरीको पहुँचा देता, अरे राक्षसकुलमें नीच ! तुझे धिक्कार है ॥ ३१ ॥ जब रावणने इसप्रकार कठोर वाक्य कहे तब तौ परम पराक्रमी विभीषण हाथमें अपनी गदा लिये हुए सभामेंसे चार मंत्रियोंकरके सहित आकाशमार्गको उड़ा, और आकाशमें ही स्थित होकर बड़े क्रोधमें होकर दशकण्ठ रावणसे कहने लगा कि—हे रावण! मेरे विनाही अब तुम आनन्दको भोगना, प्रिय हितकारक वार्त्ता कहनेपर भी तुमने मुझे धिक्कार दिया है, परन्तु कुछ खेदकी वार्त्ता नहीं क्योंकि तू मेरे बड़े भ्राता होनेके कारण

पिताकी समान हो, काल श्रीरामरूप दशरथके यहाँ उत्पन्न हुआ है॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ और काली सीता नाम करके जनकके यहाँ उत्पन्न हुई है, और वह दोनोही इस पृथिवीका भार दूर करनेके निमित्त यहाँ आए हैं ॥ ३५ ॥ और उनकीही प्रेरणासे तुम मेरे हितकारक वचनकोभी नहीं सुनते हो, श्रीरामचन्द्रजी सदा मायासे पर स्थित रहतेहैं ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर भीतर सर्वत्र भगवान् समानभावसे स्थित हैं, और वह निर्मलस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीही नामरूपके भेदकरके नानाभाँतिके प्रतीत होतेहैं ॥ ३७॥ जिसप्रकार एकही महाअग्नि नानाप्रकारके छोटे बड़े वृक्षोंके आकारका प्रतीत होताहै; तिसीप्रकार परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीभी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशोंके भेदकरके तिसतिस आकारका प्रतीत होताहै; और जिसप्रकार स्वच्छ स्फटिक भी नील पीत आदिके योगसे नील पीतसा प्रतीत होनेलगता है, तिसीप्रकार नित्यमुक्तभी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी अपनी मायाके गुणोंके विषे प्रतिबिम्बित होतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥४०॥ वह अजन्मा श्रीरामचन्द्रजी प्रधान (प्रकृति) और पुरुषरूपसे संसारको रचते हैं, और वही अविनाशी परमात्मा कालरूपसे सम्पूर्ण जगत्का संहार करतेहैं ॥ ४१ ॥ वह कालस्वरूप भगवान् मायाके द्वारा रामरूप धारण करके, ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे तुम्हारा वध करनेके निमित्त यहाँ आए हैं, वह सत्यसङ्कल्प ईश्वर अपनी वार्त्ताको किसीप्रकार अन्यथा करेंगे? अर्थात् अन्यथा नहीं करेंगे, किन्तु अवश्यही तुम्हारा संहार करेंगे, अरे! श्रीरामचंद्रजी तुझे पुत्र और सेना तथा वाहनो सहित यमपुरी पहुँचावेंगे, सो हे रावण! तेरेविषें स्वामीपनेकी बुद्धि और कुटुम्बीपनेकी बुद्धि रखकर और राक्षसोंके विषें निजत्वकी बुद्धि रखकर इस सम्पूर्ण राक्षस कुलका वध मुझसे नहीं देखाजायगा, इसकारण तेरेमें और इन राक्षसोंमें उस निजत्वकी बुद्धिको त्यागकर और श्रीरामचन्द्रके विषें तथा वानरोंके विषें निजत्व (अपने पन) की बुद्धि करके मैं श्रीरामचन्द्रजीकीही शरणागत जाताहूँ, मेरे जानेके अनन्तर तुम

चिरकालपर्य्यन्त सुखपूर्वक अपने स्थानपर आनन्द करना ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इसप्रकार कहकर विभीषण रावणके कठोर वाक्योंसे क्षणमात्रमें अपने धन-पुत्र—कलत्र आदि सम्पूर्ण सामग्रीयुक्त स्थानको त्यागकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंको सेवन करनेकी पूर्ण इच्छा करके चिरकालके अपने मनोरथ पूर्ण करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजीके समीपकोंही चलदिया ॥ ४६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृत भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति! महाभाग विभीषण चार मंत्रियों करके सहित आकर आकाशमेंही श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख खड़ा होगया ॥ १ ॥ और ऊँचे स्वरसे कहने लगा कि—हे स्वामिन्! हे कमलनेत्र! हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं आपकी स्त्रीका हरण करनेवाले रावणका छोटा भ्राता विभीषणनामक हूँ ॥ २ ॥ भ्राताके तिरस्कार करनेपर मैं आपकी शरणागत आया हूँ, हे देव! अपने स्वरूपको भूलेहुए रावणसे मैंने हितकारक वार्त्ता कही थी, ॥ ३ ॥ कि— विदेहपुत्री सीताको तू श्रीरामचन्द्रजीके समीप भेज दे, परन्तु कालरूप फाँसीसे बँधेहुए उस रावणने वारंवार कहने परभी नहीं सुना ॥ ४ ॥ किन्तु और उलटा वह राक्षसाधम खड्ग लेकर मुझे मारनेको दौड़ा, तब मैं भयभीत होकर शीघ्रही चार मंत्रियोंकरके सहित मुमुक्षु होकर संसारबन्धनसे मुक्त होनेके लिये आपकी शरणमें आया हूँ, इसप्रकार विभीषणके कथनको सुनकर सुग्रीव कहने लगा, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी! माया करनेवाला नीच राक्षस विश्वास करनेके योग्य नहीं है, तिसपर सीताको हरनेवाले रावणका छोटा भ्राता परम बलवान् है ॥५॥ ६॥७॥ यह किसी न किसी समय अवसर पाकर शस्त्रधारण करेहुए अपने मंत्रियोंके द्वारा हमें मरवादेगा, इसकारण आप मुझे आज्ञा दें तो, इसको वानरोंसे मरवादूँ ॥ ८ ॥ मुझे तो ऐसाही ठीक प्रतीत होताहै, अब आपने अपनी बुद्धिसे

क्या निश्चय करा है? सो कहिये? इसप्रकार सुग्रीवके कथनको सुनकर श्री-रामचन्द्रजी मुसकुराते हुए, यह बोले ॥ ९ ॥ हे वानरराज सुग्रीव! यदि इच्छा करूँ तौ आधे पलमेंही लोकपालोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको नष्ट करदूँ, और आधे पलमेंही फिर रचदूँ ॥ १० ॥ इसकारण मैंने अभय दिया, इस राक्षसको शीघ्रही बुलालाओ ॥ ११ ॥ क्योंकि–मेरा यह व्रत है कि–जो प्राणी मेरे सामने आकर एकवारभी " तवास्मि–तुम्हारा हूँ" इसप्रकार कहता है, और मेरी शरणागत आता है, तथा अभय माँगता है; तौ कोई भी अधमसे अधम प्राणी हो मैं उसको अभय देताहूँ, सो यदि मैं इसको अभय नहीं दूँगा तौ मेरा व्रत भङ्ग होजायगा, इसकारण तुम इसको लिवा-लाओ ॥ १२ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर सुग्रीव चि-त्तमें परम प्रसन्न हुए, और विभीषणको लाकर श्रीरामचन्द्रजीके दृष्टिगोचर करा ॥ १३ ॥ विभीषणभी श्रीरघुनाथजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हर्षके कारण गद्गद वाणीसे परम भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर श्यामवर्ण विशाल नेत्र और प्रसन्न है मुखकमल जिनका ऐसे धनुषबाणधारी लक्ष्मणजीकरके सहित शान्तस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगा ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे राजराज श्रीरामचन्द्रजी! आपके अर्थ नम-स्कार है, हे सीताके चित्त प्रसन्न करनेवाले आपके अर्थ नमस्कार है; हे प्रचण्ड धनुषधारिन् ! आपके अर्थ नमस्कार है, हे भक्त-वत्सल ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे अनन्त ! शान्तस्वरूप ! परमतेजस्विन् ! श्रीरामचन्द्रजी आपके अर्थ नमस्कार है, हे सुग्रीवके मित्र! रघुकुलशिरोमणे ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे जगत्की उत्प-त्ति और नाशके कारण ! हे महात्मन् ! हे त्रिलोकीके गुरु ! हे अनादि गृ-हस्थ (सदाकाल अपनी शक्तिरूप मायाकरके युक्त) आपके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुमही इस जगत्को उत्पन्न करनेवाले हो, तुमही स्थितिके कारण हो अर्थात् पालन करनेवाले हो, और तुमही अन्तमें प्रलयके करनेवाले हो, हे भगवन् ! इसकारण तुम अपनी इ-

च्छाचारी हो, पराधीन नहीं हो ॥ २० ॥ हे रघुनाथजी ! तुमही चर और अचर प्राणियोंके बाहर तथा भीतर व्याप्य व्यापक रूपसे प्रतीत होते हो, इसकारण हे भगवन् ! तुम जगद्रूप हो ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आपकी मायाके जालकरके मोहित पुरुष ज्ञानहीन होनेके कारण अर्थात् जगद्रूप तुमही हो इसप्रकार न जाननेके कारण कण्ठमें स्थित मणिकी समान अपने वास्तविक स्वरूपको न जानते हुए इसकारणही प्रवृत्तिमार्गमें है चित्त जिनका ऐसे अज्ञानी पुरुष जन्ममरण रूप संसारको सदा पुण्यपापके वशीभूत होकर प्राप्त होते रहते हैं ॥ २२ ॥ जबतक अन्यविषयोंकी भावना करके रहित और ज्ञानस्वरूप आपके विषे लगे हुए चित्तके द्वारा आप नहीं जाने जाते हो, तबतकही यह जगत् सत्य प्रतीत होता है, जिसप्रकार जबतक शुक्ति (सीपी)के स्वरूपका ज्ञान नहीं होय है, तबतकही उसमें रजतकी प्रतीति सत्य मालूम होय, और जब सीपीके स्वरूपका ज्ञान होजाय हैं, तब मिथ्या प्रतीत होने लगे है, इसीप्रकार हे भगवन् ! आपके स्वरूपका ज्ञान होनेपर जब सर्वरूपसे आपकी ही प्रतीति होनेलगती है, तब यह सम्पूर्ण जगत् मिथ्या प्रतीत होनेलगे है ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे वास्तविक स्वरूपका ज्ञान न होनेसे प्राणी संसारकोही सत्य मानकर सदा पुत्र स्त्री गृह आदिके विषें ही रमण करते रहते हैं, और अन्तमें दुःख देनेवाले सम्पूर्ण विषयोंमें भी सत्यत्व बुद्धि करके रमते रहते हैं ॥ २४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हे पुरुषोत्तम ! इन्द्र तुमही हो, अग्नि तुमही हो, यम तुमही हो, राक्षसरूप तुमही हो, वरुण तुमही हो, वायु तुमही हो, कुबेर तुमही हो और रुद्ररूपभी तुमही हो ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! तुम सूक्ष्मसे सूक्ष्म हो, और स्थूलसे स्थूल हो, सम्पूर्णलोकोंके माता पिता तुमही हो, और तुमही सबका पालन करनेवाले हो ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! तुम आदि मध्य और अन्तकरके रहित हो, सर्व व्यापी हो, और अच्युत कहिये सर्वशक्तिमान् हो और अव्यय कहिये न्यूनाधिकभावकरके रहितहो, तुम हस्तचरणादिरहित हो तथा नेत्र और कर्णोंकरके रहित हो, सोई "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता" इस श्रुति

मैंभी तुम्हारे स्वरूपका निरूपण करा है ॥ २७॥ हे भगवन्!तथापि तुम श्रवण करते हो, देखते हो, ग्रहण करते हो,और वेगपूर्वक गमन करते हो,और संसारबंधनका मूलरूप जो खर राक्षसकी समान अहंकार तिसको नष्ट करनेवाले हो, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय इन पांचों कोशोंके दोष आपका स्पर्श नहीं करसक्ते हैं, क्योंकि तुम निर्गुण और निराधार हो, अर्थात् आप किसीके आश्रय नहीं हो ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! वास्तवमें आपके विषें किसी प्रकारका भेद नहीं है, इसप्रकार आप निर्विकल्प हो, विकाररहित हो, निराकार हो, आपका कोई पूज्य ईश्वर नहीं है, वेदान्त शास्त्रमें जो "जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, नश्यति" अर्थात् उत्पन्न होना, सद्भावको प्राप्त होना, परिणामको प्राप्त होना, वृद्धिको प्राप्त होना, क्षीण होना और नाशको प्राप्त होना, यह छः विकार कहे हैं, शुभ आपके विषें नहीं, आप अनादि हो, पुराण पुरुष हो, और प्रकृतिसे पर हो, ॥ २९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मायाको ग्रहण करके मनुष्य रूपको धारण करे हुएसे प्रतीत होते हो, जो विष्णुभक्त आपको निर्गुण और अजन्मा जानते हैं, वह अन्तमें मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! अब मैं आपके चरणारविंदोंकी सद्भक्तिरूप सीढीको प्राप्त होकर ज्ञान और योगरूप महलके ऊपर चढ़नेकी इच्छा करता हूँ; हे प्रभो! यह कार्य आपकी कृपादृष्टीसे ही होगा ॥ ३१ ॥ हे सीतापते! आपके अर्थ नमस्कार है, हे सर्वश्रेष्ठ दयालु श्रीरामचंद्रजी! आपके अर्थ नमस्कार है, हे गर्वरूप रावणके नष्ट करनेवाले आपके अर्थ नमस्कार है, हे भगवन् ! संसाररूपी समुद्रसे मेरी रक्षा करिये ॥ ३२ ॥ इसप्रकार विभीषणकी स्तुतिको सुनकर भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—हे विभीषण ! तेरा कल्याण होय, अब तू अपना वांछित वर मांग, मैं वर देनेको उद्यत हूँ ॥ ३३ ॥ विभीषण बोला, कि—हे रघुनाथजी ! मैं धन्य हूँ कृतकृत्य हूँ मेरे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगये, और निःसंदेह आपके चरणकमलोंका दर्शन करनेसे मैं मुक्त होगया ॥ ३४ ॥

हे श्रीरामचंद्रजी ! आपकी मूर्तिका दर्शन करनेके कारण मेरी समान धन्य और पवित्र कोई दूसरा पुरुष नहीं है, और संसारमें कोई मेरी समान भाग्यशाली भी नहीं है ॥ ३५ ॥ हे रघुनाथजी ! कर्मबंधनसे मुक्त होनेके निमित्त मुझे आपकी भक्ति ही है साधन जिसका ऐसा ज्ञान और परमार्थरूप अपना ध्यान दीजिये ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र श्रीरामचंद्रजी ! मैं विषयोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखको नहीं याचना करता हूँ, मुझे आप यही वरदान दीजिये, कि- सदा आपके चरणकमलोंसे मेरी भक्ति लगी रहे॥ ३७॥ श्रीरामचंद्रजीने यही वरदान दिया, और फिर प्रसन्न होकर विभीषणसे कहने लगे, कि- हे विभीषण ! अपनी निश्चय करी हुई कल्याणकारक एक रहस्य वार्ता तुझसे कहता हूँ श्रवण कर ॥ ३८॥ कि-हे विभीषण ! मैं शान्तचित्त रागद्वेषादिरहित, मेरी भक्तिरूप योगको साधन करनेवाले अपने भक्तोंके हृदयमें निःसंदेह नित्य निवास करताहूँ, ॥ ३९ ॥ तिसकारण हे सुग्रीव ! तुम सदा शान्तभावसे सम्पूर्ण पापोंकरके रहित होकर नित्य मेरा ध्यान करके इस घोर संसारसागरसे छूटजाओगे ॥ ४० ॥ हे विभीषण ! मेरी प्रसन्नताके अर्थ मेरे प्रिय इस स्तोत्रको जो पढ़ेगा, और जो लिखेगा, तथा जो श्रवणभी करैगा, वह मेरे सायुज्यको प्राप्त होयगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कहकर अपने भक्तोंके विषें प्रीति करनेवाले श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे कहनेलगे, कि– तुम अबही मेरे दर्शनका फल देखो ॥ ४२ ॥ जाओ समुद्रमें से जल लेआओ मैं लंकाके राज्यमें अभिषेक करताहूँ; इसप्रकार कहकर और लक्ष्मणजीके द्वारा कलशमें जल मँगवाकर लंकाके राज्यके स्वामित्वके अर्थ उस विभीषणका उसके मंत्रियोंके द्वारा और विशेष करके लक्ष्मणजीके हाथसे लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजीने अभिषेक करवाया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उससमय वह सम्पूर्ण वानर साधुवाद (वाह वाह) करने लगे, और श्रीरामचंद्रजीकी परमप्रशंसा करी, और सुग्रीवभी विभीषणको हृदयसे लगाकर कहने लगे ॥ ४६ ॥ कि–हे विभीषण ! हम सब परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके सेवक हैं, और तिन सबमें तुम मुख्य हो, क्योंकि श्रीरामचंद्रजीने तुम्हें

प्रीतिपूर्वक ग्रहण करा है ॥ ४७ ॥ अब तुम्हें रावणके नाश करनेमें सहायता करना उचित है, विभीषण कहने लगा, कि—हे सुग्रीव ! मैं परमात्मा श्रीरामचंद्रजीकी क्या सहाय कर सक्ता हूँ, ? परन्तु हाँ अपनी निष्कपट भक्ति और शक्तिसे महाराजकी सेवकाई करूँगाही ॥ ४८ ॥ रावणका भेजा हुआ एक शुकनामक महाराक्षस उसी समयमें आकाशमें आकर सुग्रीवसे यह वाक्य कहनेलगा, कि-हे सुग्रीव! राक्षसपति रावणने तुमको भ्राता समझकर यह कहा है कि—हे सुग्रीव ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो; और वानरोंके राजा हो, तथा तुम मेरे भ्राताकी समान हो, मैंने कुछ तुम्हारा धन नहीं लेलिया है, और न कोई तुम्हारा कार्य बिगाड़ा है, और जो मैं राजपुत्र रामचन्द्रकी स्त्रीको हरलाया हूँ, उसमें तुम्हारी क्या हानि है? ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकारण अपने वानरोंको लेकर किष्किन्धामें चले जाओ, क्योंकि लंकामें प्रवेश करनेकी देवताओंकोभी सामर्थ्य नहीं है, फिर थोड़ीसी शक्तिवाले मनुष्य और वानरसेनापतियोंका तो कहनाही क्या है? ॥ ५२ ॥ इसप्रकार कहते हुए शुकनामा राक्षसको वानरोंने शीघ्रही कूदकर पकड़ लिया, और उसको जोर जोरसे घूँसोंसे मारने लगे ॥ ५३ ॥ वानरों करके पिटता हुआ शुकराक्षस श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा, कि—हे राजेंद्र ! दूतोंको मारना अनुचित है, इसकारण आप वानरोंको रोकिये, ॥ ५४ ॥ श्रीरामचंद्रजी उससमय शुक राक्षसके विलापयुक्त वाक्यको सुनकर वानरोंको निषेध करतेहुए कहनेलगे, कि—हे वानरों ! इसको मत मारो, ॥ ५५ ॥ फिर शुक राक्षस आकाशमें जाकर सुग्रीवसे कहने, लगा, कि— हे राजन् ! अब मैं जाताहूँ और रावणसे क्या कहूँ सो बताओ ॥ ५६ ॥ सुग्रीव कहनेलगा, कि— हे शुक ! रावणसे यह कहना कि— जिसप्रकार मेरा भ्राता-वाली मारागया, तिसी प्रकार तुझको मैं यत्नकरके पुत्र, सेना, और वाहनों-करके सहित नष्ट करदूँगा, ॥ ५७ ॥ मेरे स्वामी श्रीरामचंद्रजीकी भार्याको हरकर कहाँ जायगा, तदनंतर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे उस शुक-राक्षसको बांधकर वानरोंके पहरेमें रखदिया; इसका अभिप्राय यह है, कि

श्रीरामचंद्रजीने यह विचार करा कि- यदि अभी इस शुकराक्षसको जाने देंगे तौ रावण इसके द्वारा यह जान जायगा, कि—सुग्रीवका रामचंद्रसे भेद कराया, परंतु नहीं हुआ, यह जानकर वानरोंको नष्ट करनेकी कोई युक्ति विचारैगा ॥ ५८ ॥ एक शार्दूलनामक राक्षस रावणने और भेजा, सो वह तौ पहिलेही वानरोंकी बड़ी भारी सेनाको देखकर लौटगया, और रावणको सब वृत्तान्त यथावत् कह सुनाया ॥ ५९ ॥ तब तौ रावण चिंतासे अत्यन्त व्याकुल होकर स्वासैं भरताहुआ, अपने मंदिरमें पड़ा-रहा, इधर समुद्रको देखकर श्रीरामचंद्रजी क्रोधसे नेत्रोंको लाललाल करके लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ६० ॥ कि—हे लक्ष्मण ! देखो यह दुष्टा-त्मा समुद्र मुझे अपने तटपर आया हुआ जानकरभी मेरा दर्शन क-रनेके निमित्त नहीं आया ॥ ६१ ॥ यह जानता है कि—यह मनुष्य हैं और वानरोंके द्वारा मेरा क्या कर सक्केहैं ? हे महाबाहो लक्ष्मण देखो अभी इस समुद्रको सुखाये देताहूँ ॥ ६२ ॥ तब अनायासमेंही वानर पैदल उतर जायँगे, इसप्रकार कहकर क्रोधसे लाल लाल हुए हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीरामचंद्रजी धनुषको उठाकर और तरकसमेंसे प्रलयकालकी अग्निके समान बाणको निकालकर धनुषपर चढ़ाया, और प्रत्यंचाको खैंच-कर कहने लगे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ कि—अब सम्पूर्ण प्राणी रामचंद्रके बाणके पराक्रमको देखैं, इसी समय नदीपति समुद्रको भस्म कर देता हूँ ॥ ॥ ६५ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर पर्वत और वनोंकरके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी डगमगा गई, आकाश और सब दिशाओंमें अंधकार छागया ॥ ६६ ॥ समुद्र भयके कारण चलायमान होकर एक योजन तटको छोड़कर आगे बढ़गया, और समुद्रमेंके तिमिनामक, मत्स्य, नाके, मच्छ, तथा अन्य मत्स्य, तापको प्राप्त होकर अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ॥ ६७ ॥ ऐसी दशा होतेही साक्षात् समुद्र दिव्यरूप धारण करके दिव्य आभूषणोंको धारण करे हुए अपने भीतरके दिव्य रत्नोंको दोनों हाथोंमें लेकर अपनी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ आया,

और श्रीरामचंद्रजीके आगे चरणोंमें बहुतसी भेंट रखकर और दण्डवत् प्रणाम करके लाल लाल हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा, कि—हे त्रिलोकीनाथ! हे संसारके पालक! मेरी रक्षा करिये ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे रघुनाथजी! आपने जगत्‌की रचना करते समय मुझे जड़ बनाया, फिर आपके रचनाकरेहुए मेरे स्वभावको कौन पलट सक्ता है? ॥ ७१ ॥ स्थूलपंचभूतोंको आपने स्वभावसे जड़ रचा है, और यह आकाश आदि पंचभूत आपकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं करतेहैं ॥ ७२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तमोगुण है प्रधान जिसमें ऐसे अहंकारसे आकाश आदि पंच भूत उत्पन्न होतेहैं, और तिस कारण रूप अहंकारका जड़त्वरूप धर्म्म कार्यरूप पंचभूतोंमें स्वाभाविकही आजाताहै ॥ ७३ ॥ हे भगवन्! तुम निर्गुण और निराकार हो, तथापि जिससमय लीलाकरके मायाके गुणोंको अंगीकार करतेहो तब तुम्हारा वैराज नाम होताहै, तिस सगुणरूप आपके वैराजस्वरूपके सत्वगुणसे देवता उत्पन्न हुए हैं, और रजोगुणसे मनुआदि और इन्द्रादि उत्पन्न हुए हैं, तथा तमोगुणसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हे भगवन्! लीलाकरके मनुष्यरूपधारी मायासे ढकेहुए आपको मैं जानता हूँ ॥ ७६ ॥ परंतु जड़बुद्धि और स्वरूपकरकेभी जड़ ऐसा जो मैं मूर्ख सो आपके निर्गुण स्वरूपको किसप्रकार जानसक्ता हूँ? हे प्रभो! दंड देनाही मूर्खोंको श्रेष्ठ मार्गमें लेजाताहै ॥ ७७ ॥ हे देवेन्द्र! जैसे कि—प्राणियोंमें पशुओंको दंड ही मार्गपर चलाताहै. हे ईश! हे शरणागतरक्षक! हे भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजी! मुझे अभय दीजिये, मैं आपको लंकापुरीमें जानेके निमित्त मार्ग देताहूँ ॥ ७८ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहनेलगे; कि—यह मेरा बाण निष्फल नहीं होसक्ता? अब इसको किसके ऊपर छोडूं वह निशाना मेरे अमोघ बाणको शीघ्रही दिखाओ ॥ ७९ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके वचनको सुनकर और हाथमें अमोघ बाणको देखकर महातेजस्वी समुद्र श्रीरामचंद्रजीसे यह वाक्य बोला, कि—हे रघुनाथजी! दक्षिणकी ओर द्रुमकुल्यनामक प्रसिद्ध देश हैं, तहाँ बहुतसे पापात्मा मुझे रातदिन पीडा देतेहैं सो

आप उस देशके ऊपरही इस बाणको छोड़िये, तदनंतर श्रीरामचंद्रजीका छोड़ा हुआ यह बाण क्षणमात्रमें उस भीलोंके समूहको नाश करके फिर लौट आया और पहिलेकी समान तरकसमें स्थित होगया, तब समुद्र नम्रतापूर्वक श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कि–हे रघुनाथजी! इस मेरे जलमें परम बुद्धिवान् विश्वकर्माका पुत्र नल नामक वानर पुल बांधनेको समर्थ है, क्योंकि उसको इसकार्यके विषे वरदान मिलचुका है, ॥ ८४ ॥ सेतु बांधनेपर सम्पूर्ण लोक पापोंको दूर करनेवाली आपकी कीर्तिको जानेंगे, इसप्रकार कहकर और रघुनाथजीको प्रणाम करके समुद्र अंतर्धान होगया ॥ ८५ ॥ तदनंतर सुग्रीव और लक्ष्मणजीकरकेसहित श्रीरामचंद्रजीने शीघ्रही सेतु बांधनेके निमित्त वानरोंसहित नलको आज्ञा करी ॥ ८६ ॥ तब पर्वतके तुल्य शरीरधारी यूथपति वानरोंकरके सहित नलने पर्वत और वृक्षोंके द्वारा अत्यन्त दृढ़ सौयोजन लम्बा और बहुत चौड़ा पुल बांधा ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि–हे पार्वति! सेतुका आरम्भ करतेसमय, श्रीरामचन्द्रजीने तहाँ संसारके हितकी इच्छासे विधिपूर्वक रामेश्वरनामक शिवकी स्थापना करके पूजन करा और यह वचन कहा ॥ १ ॥ कि जो मनुष्य सेतुबन्धरामेश्वर शिवको प्रणाम करेगा, वह मेरे अनुग्रहसे ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण पापोंसे छूटजायगा ॥ २ ॥ सेतुबन्धपर स्नान करके और रामेश्वर शिवका दर्शन करके जो मनुष्य संकल्पपूर्वक उसके अनन्तरही वाराणसी (काशीपुरीको) जाकर, तहाँसे गङ्गाजल लाकर सेतुबन्धरामेश्वरको स्नान करावै, और स्नान करानेके अनन्तर जल लानेके पात्रोंको समुद्रमें डालेगा, वह निःसन्देह ब्रह्मको प्राप्त होयगा ॥ ३ ॥ ४ ॥ नलने पहिले दिन चौदह योजनपर्य्यन्त सेतु बनाया, दूसरे दिन बीस योजन, तिसरे

दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाईस योजन, और पाँचवे दिन तेईस योजन सेतु बनाया, इसप्रकार वानरश्रेष्ठ नलने समुद्रमें सम्पूर्ण पुल बाँध दिया॥५॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ तिसही पुलपै होकर असंख्य वानर थोडीसी देरमेंही सौयोजन चौंडे समुद्रके परलेपार उतरगए और उन सम्पूर्ण वीर वानरोंने जाकर सुवेलनामक पर्वतको घेर लिया ॥ ८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पवनकुमारके ऊपर और लक्ष्मणजी अंगदके ऊपर चढ़कर लङ्काको देखनेकी इच्छा करके उस बडे पर्वतको उपर चढ़े ॥ ९ ॥ सो नानाप्रकारके चित्रविचित्रवर्णोंकी पताकाओंसे भरी हुई, नानाप्रकारके विचित्र २ महलोंकरके युक्त और सुवर्णका है परकोटा तथा नगरका द्वार जिसका, और खाइयोंकरके, तथा तोपोंकरके, और फाटक बन्दियोंकरके शोभायमान बड़ी लम्बी चौड़ी लङ्काको देखकर, एक महलके ऊपर बहुत चौड़े स्थानमें देखा कि–बड़े बड़े वीर मंत्रियोंकरके सहित, प्रकाशवान् दशमुकटोंको धारण करेहुए, नीलपर्वतके शिखरकी समान शरीरधारी, प्रलयकालके मेघकी समान कान्तियुक्त, और रत्नजटित दण्डोंवाले अनेक श्वेतछत्रोंकी छायामें रावण बैठा हुआ है, सो उसीसमय श्रीरामचन्द्रजीने उस बँधेहुए शुकराक्षसको छोड़दिया ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ वानरोंकरके खुब पीटाहुआ, वह शुक राक्षस रावणके समीप आया, सो रावण हँसताहुआ कहने लगा कि–हे शुक! क्या तुझे शत्रुओंने पीड़ा दी है? ॥ १४ ॥ इसप्रकार रावणके वचनको सुनकर शुक कहनेलगा कि–हे राजन्! समुद्रके उत्तरकी ओर के तटपै जाकर मैंने तुम्हारे कहनेके अनुसार वचन कहे, सो वानरोंने कूदकर मुझे क्षणमात्रमें पकड लिया ॥ १५ ॥ और घूँसोंसे मारनेलगे, नखोंसे बकोटने लगे, दाढ़ोंसे काटने लगे, जब उन्होंने मेरी बहुत दुर्दशा करी तब मैंने पुकारकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा, कि–हे रामचन्द्र! मेरी रक्षा करो, तो उन्होने कहा कि छोडदो, तब उन वानरोंने मेरा पीछा छोड़ा, तब मैं भयभीत होकर उस वानरोंकी सेनाको देखकर आया हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे राजन्! राक्षसोंकी सेनाके समूहकी और सुग्रीवके वानरोंकी सेनाकी

देवता और दानवोंकी समान परस्पर संधि (सुलह) कदापि नहीं होयगी ॥ १८ ॥ और अब वानर लङ्कापुरीके परकोटेपर आयाही चाहतेहैं, सो हे प्रभो! यातौ रामचन्द्रजीको जानकी देदो, नहीं तौ शीघ्रही युद्ध करो ॥ १९ ॥ और मुझसे यहाँको आतेसमय रामचन्द्रजीने कहदिया था कि रावणसे यह मेरा वाक्य कह देना कि--जिस बलके भरोसेसे तू मेरी सीताको हरकर लेगया है ॥ २० ॥ अब उस बलको सेना और बान्धवोंकरके सहित दिखा, कल प्रातःकाल होतेही परकोटा और तोरण (शहरपनाह) सहित लङ्कापुरीको, तथा सम्पूर्ण राक्षसोंकी सेनाको मेरे बाणोंसे विध्वंस हुआ देखैगा, अब मैं अपने घोर क्रोधको छोडूंगा, अब हे रावण तूभी अपने बलको धारण कर ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसप्रकार कहकर कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजी चूप होगए, हे राजन्! श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण--सुग्रीव--और विभीषण, यह चारों वीर जहाँ एकत्र होकर आए कि--यही लङ्कापुरीको नष्ट कर डालेंगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ चाहे सम्पूर्ण वानर और लक्ष्मण--सुग्रीव--तथा विभीषण यह तीनोभी बैठेही रहैं, जैसा मैने श्रीरामचन्द्रका बल- रूप- तथा शस्त्र देखे हैं, उससे प्रतीत होता है कि--वह इकलेही लंकापुरीको उखाड़कर भस्म करदेंगे, और सम्पूर्ण पुरवासियोंका संहार कर डालेंगे, देखो ! वह असंख्यात वानरोंकी सेना चारों ओर भररही है ॥ २५ ॥ २६ ॥ देखो तहाँ पर्वतोंकी समान शरीरधारी वानर गरज रहेहैं, उन सबकी गणना तौ नहीं होसक्ती, परन्तु मैं तुमको प्रधान प्रधान वानर बताता हूँ ॥ २७ ॥ यह जो वानर लङ्काके संमुख बैठाहुआ गरज रहा है, और जिसके चारों ओर सहस्रों सेनापति वानर बैठे हैं, वह सुग्रीवकी सेनाका अधिपति अग्निका पुत्र नील है, और यह पर्वतके शिखरकी समान शरीरधारी कमलके केशरकी समान वर्णवाला वानर अत्यन्त क्रोधमें होकर वारंवार पूँछको पटक रहा है, वह अतिपराक्रमी वालिका पुत्र युवराज अंगद है ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ और जिसने रामचंद्रकी परमप्रिया सीताको आनकर देखा था, और तुम्हारे प्रसिद्ध पुत्र अक्ष कुमारको माराथा, वह हनुमान् है, और जो

सुग्रीवके पास आकर फिर शीघ्रही लौटकर जारहा है वह रजत(चाँदी)की समान कान्तिमान् परमपराक्रमी श्वेतनामक सुग्रीवका सेनापति है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और यह जो सिंहकी समान परमपराक्रमी महाबली वानर देखरहा है,इसका नाम रंभ है, यह इकलाही लंकाको नष्ट करनेको समर्थ है ॥ ३३ ॥ और यह जो वानर लंकापुरीको इसप्रकार देख रहा हैं, मानो भस्मही करडालैगा, हे राजन्! इसका नाम शरभ है, और यह एक करोड़ वानरोंकी सेनाका स्वामी है ॥ ३४ ॥ और वह महावीर पनस मैन्द और द्विविद बैठे हैं और वह जो नलनामक वानर बैठा है सो विश्वाकर्म्माका पुत्र है, और इसनेही समुद्रका पुल बाँधा है, यहभी बड़ा ही बलवान् है ॥ ३५ ॥ हे राजन्! सम्पूर्ण वानरोंका वर्णन करनेको अथवा गणना करनेको कौन समर्थ होसक्ता है? यह सबही वानर शूर-बडे २ देहधारी हैं, और सबही युद्ध करनेकी इच्छा कररहे हैं ॥ ३६ ॥ और सबही राक्षसगणोंकरके सहित लंकाके चूर्ण करनेको समर्थ हैं, अब इनमेंसे प्रत्येक सेनापतिकी सेनाकी संख्या तुमसे कहताहूँ सो सुनो ॥ ३७ ॥ इनमेंसे सुग्रीवके मंत्रियोंके अधिकारमें इक्कीस सहस्र करोड, हजार शंख और सो अर्बुद, सेना है, यह सुग्रीवके नल-नील-हनुमान्-अंगद-श्वेत-रंभ-शरभ—पनस-मैन्द-और द्विविद इन दश मंत्रियोंकी सेना है, हे रावण! औरोंके अधिकारकी सेनाका वर्णन करनेको तौ मेरी सामर्थ्य है नहीं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और हे रावण! श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य नहीं हैं किन्तु साक्षात् आदिदेव परमात्मा नारायण हैं, और सीता साक्षात् जगतकी हेतुभूत जगत्स्वरूप चित्शक्ति हैं ॥ ४० ॥ इन दोनोसेही सम्पूर्ण स्थावर जंगमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है, तिसकारण वह सीता और श्रीरामचन्द्रजी स्थावर जंगमरूप संसारके माता पिता हैं, फिर उन दोनोंका पृथिवी और पातालमें कोई किसप्रकार शत्रु होसक्ता है? तुम बिना जानेही जगत्की माता जानकीको लेआए हो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राजन्! क्षणमात्रमें नष्ट होनेवाले संसारमें पञ्चभूतात्मक चौवीसतत्त्वोंके रचेहुए, मल- मांस- अस्थि- और दुर्गन्धकरके भरेहुए और अहंकारके स्थान

क्षणभङ्गुर इस जडभूत शरीरके विषें, चेतनस्वरूप होकर तुम क्या विश्वास करते हो ? ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जिस देहके निमित्त तुमने इस संसारमें ब्रह्महत्यादि पाप करेहैं, यह भोगोंका भोगनेवाला शरीर इस संसारमेंही नष्ट होजायगा ॥ ४५ ॥ और सुखदुःखके कारणभूत जो पुण्य पाप वहही जीवात्माके साथ परलोकको जातेहैं, वास्तवमें वह पुण्यपापभी जीवात्माके नहीं हैं, परन्तु देहके सम्बन्धसे आत्माके विषें प्रतीत होतेहैं, और देहसम्बन्धरहित केवल चैतन्यस्वरूप आत्माको पाप पुण्य नहीं स्पर्श कर सक्ते हैं ॥ ४६ ॥ जबतक आत्मा मायाके वशीभूत हुआ, "मैं देह हूँ, मैं कर्त्ता हूँ" इसप्रकार अहंकार करता है, तबतकही अहंकारके तादात्म्याध्याससे आत्माको जन्म और मरणकी प्राप्ति होतीहै, इससे यह सिद्ध हुआ कि देहसम्बन्धमात्रही सुखदुःखादिकी प्राप्तिका मुख्य कारण नहीं है, किन्तु अध्यासही मुख्य कारण है, इसकारणही ज्ञानीको प्रारब्धवशसे देहका सम्बन्ध रहनेपरभी सुखदुःखादिकी प्राप्ति नहीं होती है, क्योंकि उसका अध्यास अर्थात् जड जो शरीरादि और चेतन आत्मा इन दोनोंमें परस्पर एकाकार बुद्धि दूर होजाती है ॥ ४७ ॥ इसकारण हे परमप्रवीण रावण ! तुम देहादिके अभिमानको त्याग दो, क्योंकि तुम्हारा आत्मा अत्यन्त निर्मल, शुद्ध, विज्ञानस्वरूप, अचल, और अविनाशी है ॥ ४८ ॥ इस अपने स्वरूपको न जाननेके कारणही पुरुष बन्धनको प्राप्त होकर मोहित होजाताहै, अर्थात् वारंवार कर्म्ममार्गमें प्रवृत्त होताहै, इसकारण हे रावण! सर्व शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अपने आत्माके स्वरूपको जानकर स्मरण करो ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! पुत्र-कलत्र-स्थान आदि संपूर्ण वस्तुओंमें आसक्ति न करके वैराग्यको धारण करो, क्योंकि यह विषयभोग तौ नरकमें और कुत्ता शूकर आदिका शरीर धारण करनेपर भी प्राप्त हो जातेहैं ॥ ५० ॥ और ज्ञानकी प्राप्ति करनेके योग्य मनुष्य देह तिसपरभी विशेषकरके ब्राह्मणशरीर और तिसपरभी कर्म्मभूमि जो भारतवर्ष तिसके विषें परमदुर्लभ जन्मको प्राप्त होकर कौन बुद्धिमान् अपने अधीन हुए देहसे विषयोंको

भोगैगा ! तिसकारण तुम ब्राह्मण जाति-तिसपरभी पौलस्त्यके पुत्र होकर सदा अज्ञानीकी समान इन मिथ्याभूतभोगोंके पीछे क्यों वृथा दौड़ते हो, अब आगे तुम सब संगको त्याग कर सदा भक्तिपूर्वक परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीका ही ध्यान करो, और सीता श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण करके उनकेही चरणोंकी सेवा करो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तब तुम सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होओगे, नहीं तो उत्तम लोकोंसे दूर होकर नीचे नीचेके लोकोंको (अधोगतिको) प्राप्त होओगे, मेरे कहनेको स्वीकार कर लो, मैं तुम्हारे हितकी वार्त्ता कहरहा हूँ॥५५॥ हे रावण ! सत्संगति करो, और शरणागतरक्षक, मरकतमणिकी समान श्यामवर्ण, सीताकरके सहित, सदा धनुष बाणधारी, सुग्रीव-लक्ष्मण-और विभीषणकरके सेवित हैं चरण जिनके ऐसे साक्षात् नारायणरूप श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृत भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि- हे पार्वति ! अज्ञानको नष्ट करनेवाले इन शुकके मुखसे निकलेहुए वाक्योंको सुनकर रावणने क्रोधसे ऐसे लाल नेत्र करलिये मानो इस शुकको भस्मही कर डालैगा, और कहने लगा कि ॥ १ ॥ अरे दुर्बुद्धे ! मेरा सेवक होकर मुझे गुरुकी समान उपदेश कैसे करताहै ! अरे निर्लज्ज ! त्रिलोकीको तो मैं शिक्षा देताहूँ, और तू मुझे शिक्षा देताहै ॥२॥ अरे इसी समय तुझे यमपुरी पहुँचा देता, परन्तु पहिले तूने मेरे बहुत कार्य्य सिद्ध करेहैं, उनको स्मरण करके, मारनेके योग्य होनेपरभी तुझे नहीं मारता हूँ ॥ ३ ॥ अरे मूढ ! यहाँसे चला जा, मैं तेरे इन वचनोंको सुनकर नहीं सह सक्ता, इस प्रकार रावणके कहनेपर वह शुकराक्षस "आपने मेरे ऊपर बडा अनुग्रह करा" इसप्रकार कहकर गृहको चलागया (अर्थात् राक्षसभावको त्याग शुद्धब्राह्मणभावको प्राप्त होकर

तप करनेके निमित्त अपने पहिले वैखानस आश्रमरूप गृहको चलागया) ॥ ४ ॥ क्योंकि यह शुक पहिले ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण था और ब्रह्मविचारमें तत्पर होकर वनमें वेदोक्त वानप्रस्थकी विधिसे अपना कर्म्म करताथा ॥ ५॥ इस बुद्धिमान् शुकने देवताओंकी वृद्धिके अर्थ और राक्षसोंका नाश होनेके निमित्त निरन्तर बहुतसे यज्ञ करे ॥ ६ ॥ तब तौ देवताओंका हित करनेमें उद्यत इस शुकके साथ राक्षसोंको बड़ा विरोध बढ़गया, तबतौ उनमेंसे वज्रदंष्ट्र नामसे प्रसिद्ध एक महाराक्षस उस शुक ब्राह्मणका तिरस्कार करनेको निमित्त उद्यत होकर छिद्र देखनेमें तत्पर रहने लगा, सो एक समय तिस शुक ब्राह्मणके आश्रमको अगस्त्यमुनि आए ॥ ७ ॥ ८ ॥ सो शुक ब्राह्मणने अगस्त्यजीका सत्कार करा. और भोजन करनेके निमित्त निमन्त्रण करा तब अगस्त्य मुनि तो स्नान करने गए, सो इस राक्षस वज्रदंष्ट्रने छिद्र पाकर अगस्त्यका रूप धारण करा, और आकर शुक ब्राह्मणसे कहने लगा कि—हे विप्र! यदि मुझे भोजन देनेकी इच्छा है तो मांसयुक्त दो ॥ ९ ॥ १० ॥ मैंने बहुत दिनोंसे छाग (बकरे) के शरीरका मांस भोजन नहीं करा है, सो शुक ब्राह्मणने इस कथनको स्वीकार करके मांसयुक्त अनेक प्रकारका भोजन बनवाया ॥ ११ ॥ सो जब स्नान करके अगस्त्य मुनि आए और भोजन करनेके निमित्त बैठे, उसी समय उस वज्रदंष्ट्र राक्षसने अति सुन्दर शुककी स्त्रीका रूप धारण करा, और शुककी स्त्रीको माया करके ऐसा मोहित करदिया कि वह भोजन परोसनेको नहीं आई, सो अपने आप उस शुकस्त्रीके वेषसे तिन अगस्त्य मुनिको बहुतसा खूब पका हुआ मनुष्यका मांस परोस दिया, और परोसनेके अनन्तर तत्कालही वह राक्षस अन्तर्धान होगया, तब तौ अगस्त्य मुनि उस अपवित्र मनुष्यके मांसको देखकर बड़े क्रुद्ध हुए और उस शुक ब्राह्मणसे कहने लगे कि—अरे दुष्ट! मतिहीन! तैंने मुझे अभक्ष्य मनुष्यका मांस दिया है, सो तू जा राक्षस होजा और सदा मनुष्यकाही मांस भक्षण करता रह, जब इसप्रकार अगस्त्यमुनिने शाप

देदिया तब तौ शुकब्राह्मण भयभीत होकर अगस्त्यमुनिसे कहने लगा, कि हे मुने! आपने मुझसे अबही कहा था कि—मुझे आज बहुतसा मांस दे, सो हे देव! मैंने आपके कहनेके अनुसार मांस परोस दिया है, फिर मुझे किस कारण शाप देतेहो ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसप्रकार शुकके कथनको सुनकर अगस्त्यमुनिने एक मुहूर्तपर्य्यन्त ध्यान करा सो यह सब कार्य्य राक्षसका कराहुआ जानकर परम प्रवीण अगस्त्यजी शुक ब्राह्मणसे कहने लगे, ॥ १७ ॥ कि—हे शुक! यह सब कार्य्य तेरे शत्रु राक्षसने करा है, और हे साधो! मैंने विना विचारेही तुझे शाप देदिया॥ १८॥ तथापि यह मेरा वचन निष्फल हो नहीं सक्ता, परंतु तुम तबतक राक्षसका शरीर धारण करके रावणकी सहाय करते रहो, जबतक रावणका वध करनेके निमित्त श्रीमराचंद्रजी वानरों करके सहित लंकाके समीप आवें, जब वह रघुनाथजी आवैंगे तब रावण दूत बनाकर तुम्है श्रीरामचंद्रजीके पास भेजैगा, उस समय तुम श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करके शापसे छूट जाओगे, और लौटकर रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेश करके इस शरीरसे छूटकर परंपदको प्राप्त होओगे, इसप्रकार अगस्त्यमुनिने शुक ब्राह्मणसे कह दियाथा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ सो वह ब्राह्मण तत्कालही राक्षस हो रावणके समीप आकर रहता रहा, और इस समय दूतरूपसे लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करके और रावणको तत्वज्ञानका उपदेश करके फिर शीघ्रही पहिलेकी समान ब्राह्मण होकर वैखानस (वानप्रस्थ) ब्राह्मणोंकरके सहित रहने लगा ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनंतर माल्यवान् नामक बड़ाभारी एक वृद्ध राक्षस आया, वह परमबुद्धिमान् नीतिमें निपुण और रावणकी माताका पिता (नाना) होनेके कारण रावणको अत्यंत प्रिय था ॥ २५ ॥ वह माल्यवान् शान्तचित्तसे तिस वीर रावणके प्रति कहने लगा,कि—हे राजन्! जो मैं कहता हूँ उसको सुनो फिर जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करना ॥ २६ ॥ हे रावण! जिस समयसे रामवल्लभा जानकीका लंकापुरीमें प्रवेश हुआ है, तबसेही नाशको

सूचित करनेवाले बड़े भयानक अशुभ शकुन दीखते हैं, सो मैं कहता हूँ तुम श्रवण करो, सदा लंकामें कठोर गर्जना करनेवाले विजलीकरके युक्त अतिभयंकर मेघ गरमरुधिरकी वर्षा करतेहैं, देवताओंकी प्रतिमा रुदन करती हैं, और वारंवार पसीनेमें भीगकर स्थापन करेहुए स्थानसे चलाय मान हो जातीहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ और काले वर्णकी अपूर्व स्त्रीका रूप धारण करेहुए देवी श्वेत दाँतोंको निकाल कर राक्षसोंके आगे खड़ीहुई हँसती है, गौओंसे गर्दभ उत्पन्न होते हैं, नकुल और मूसे बिडालों (बिल्लियों) से युद्ध करते हैं, सर्प गरुडके साथ युद्ध करतेहैं (इसका अभि- प्राय यह है, कि—जब नकुल और चूहे बिडालोंका भोजनरूप होकर भी बिडालोंको मारने लगे, तबतौ हमारे भोजनरूप मनुष्य अवश्यही हम राक्ष- सोंको नष्ट करदेंगे, और यही वार्ता गरुड और सर्पके युद्धसे प्रतीत होतीहै) और एक कराल विकटरूप और काला पीला है वर्ण जिसका ऐसे मुंड (शिर रहित) पुरुषका रूप धारण करेहुए काल समय समय अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल सब राक्षसोंके स्थानोंमें आकर दिखाई देताहै, हे राजन्! यह तथा औरभी बहुत अपशकुन होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ इसकारण हे राजन्! अपने कुलकी रक्षा करनेके निमित्त शान्तिकर्म (इन अपशकुनोंने सूचित दुःखको नष्ट करनेवाला कर्म्म) करो, हे प्रभो! वह शातिकर्म्म यह है, कि—सीताका सत्कार करके धनस- हित जानकी शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजीको देदो, हे रावण! श्रीरामचन्द्रजीको नारायणरूप जान, और तिन रघुनाथजीके साथ द्वेषको त्याग दे, जिन श्रीरामचंद्रजीके चरणरूपी नौकाका आश्रय लेकर भक्ति करके पवित्र हुआ है अंतःकरण जिनका ऐसे ज्ञानी पुरुष संसारसमुद्रको तरजाते हैं इस- कारण श्रीरामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं, ऐसा जानकर तुम भक्ति पूर्वक सबके घटघटवासी श्रीरामचंद्रजीका भजन करो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यद्यपि तुम दुराचार हो तथापि भक्तिकरके पवित्र होजाओगे, हे राजेन्द्र! यदि कुलकी कुशल चाहते हो तौ यह मेरा कहना करो ॥ ३६ ॥ रावण

इस हितकारक भी माल्यवान्‌के कथनको न सहसका, क्योंकि वह दुष्टात्मा तौ कालके वशीभूत होरहाथा ॥ ३७॥ सो कहने लगा, कि—हे माल्यवान्! जिसको पिताने निकाल दिया है, जिसने वानरोंका आश्रय लिया हैं, ऐसे इकले कृपण, दीन, मनुष्य रामचन्द्रजीको तुम किसकारणसे समर्थ जानते हो, वह तौ सदा वनवासी मुनियोंसेही प्रेम रखता है, फिर किसप्रकार मुझसे जीत सकैगा? ॥ ३८ ॥ अरे माल्यवान्! प्रतीत होता हैं, कि—तुझे उस रामचंद्रनेही भेजा है, जो ऐसा अनर्गल बकवाद कररहाहै, जा तू वृद्ध है और नातेमें भी मेरी माताका पिता है, इसकारण तेरा कहाहुआ मैंने सब सहलिया ॥ ३९ ॥ अब तेरा कहाहुआ वचन मेरे कर्णोंको भस्म करता है, इसप्रकार कहकर रावण अपने मंत्रियों करके सहित उठकर चलदिया ॥४०॥ और महलके ऊपर चढ़के ऊंची अटारीपै बैठकर वानरोंकी सेनाको देख युद्धके निमित्त पास बैठेहुए संपूर्ण राक्षसोंको आज्ञा करी ॥ ४१ ॥ इधर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके लायेहुए धनुषको लेकर सिंहासनके ऊपर बैठेहुए रावणको देखकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए ॥४२॥ और अर्द्धचन्द्राकार एक बाणसेही रघुनाथजीने किरीट धारण करेहुए मंत्रियोंकरके सहित बेठेहुए रावणके हजारों श्वेत छत्र और दशों मुकुटोंको क्षण मात्रमें काटकर पृथ्वीपर गिरादिया,यह एक आश्चर्यसा होगया॥४३॥४४ तब रावण लज्जित होकर चुपचाप शीघ्रही अपने मंदिरमें चलागया,और उस दुष्ट रावणने प्रहस्त और प्रमुख आदि सम्पूर्ण राक्षसोंको बुलाकर शीघ्रही वानरोंके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा करी, तबतौ भेरी, मृदंग,पणव, और नफारी आदि बाजे बजातेहुए भैंसे, ऊंट, गधे, सिंह और व्याघ्रोंपै चढ़कर खड्ग, शूल धनुष, पाश, भाले, तोमर और शक्तिआदि शस्त्रोंको धारण करेहुए अनेक राक्षस लंकाके चारोंओर सम्पूर्ण द्वारोंपर आगये, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके प्रेरणा करेहुए वीर वानर इससे प्रथमही पर्वतोंके शिखरोंको उखाड़कर और अनेकप्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर हाथमें लियेहुए युद्ध करनेके निमित्त तिन रावणकी सेनाओंकी बाट देखतेहुए अपनी सेनाका विभाग करके स-

म्पूर्ण लंकाके द्वारोंपर पहुँच गयेथे और श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेके अर्थ उससमय लंकाके ऊपर चढ़गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वह वानर वृक्षोंकरके पर्वतोंके शिखरोंकरके और मुष्टिप्रहारोंकरके राक्षसोंके मारनेको उद्यत बैठेथे, कहीं हजार वानरों-का यूथ, और कहीं सेनापतियोंकरके सहित करोड़ वानरोंका यूथ, और कहीं सैंकड़ों करोड़ वानरोंका यूथ था, इसप्रकार उन करोड़ों वानरोंने लंका-पुरीको चारों ओरसे खूब घेर लिया, कोई वानर ऊपरको कूदने लगे, कोई वानर नीचेको कूदने लगे, और कोई किलकिलाकर गर्जने लगे, ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ उनमेंसे कोई कहते थे, कि—अतिबलवान् श्रीरामचंद्रजीकी जय हो, कोई कहते थे परमपराक्रमी लक्ष्मणजीकी जय होय, और कोई वानर कहते थे, कि— श्रीरामचंद्रजीकरके रक्षा करेहुए महाराज सुग्रीवकी जय हो; ॥ ५३ ॥ इसप्रकार जय जय शब्द करतेहुए वह वानर अपने शत्रु राक्षसोंके साथ युद्ध करनेलगे, और हनुमान्, अंगद, कुमुद नील, नल, शरभ, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, दधिमुख, केशरी, तार तथा और भी बलवान् सम्पूर्ण सेनापति वानरोंने कूदकूदकर चारोंओरसे लंकाके द्वारोंको खूब रों-कलिया, उससमय बड़े बड़े शरीरधारी वानर पर्वतोंके शिखरोंसे राक्षसोंको कुचलने लगे, कोई नखोंसे बकोटने लगे, और कोई जल्दी २ दांतोंसे काट-ने लगे, उससमय भयानक राक्षस अत्यंत क्रोधमें हो लंकाके सम्पूर्ण द्वारोंमें से निकल निकलकर भिन्दिपाल खड्ग, शूल, और फरसोंकी धारोंसे वानरों-की सेनाके ऊपर प्रहार करने लगे, और बड़े बड़े शरीरधारी महाबली समर-जीत वानरभी राक्षसोंको मारने लगे, उससमय रणभूमिमें मांस और रुधिर-की कींच होगई ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ वह राक्षस और वानरोंका संग्राम अत्यंतही अद्भुत हुआ, मानो पहिले जो सं-सारमें घोर युद्ध होगये, और जो आगेके होयँगे उन सबका यह युद्ध दृष्टान्तरूप होगया, वह वीर राक्षस घोडे, हाथी और सुवर्णकी समान प्रकाशवान् रथोंपर चढ़चढकर युद्ध करने लगे, परस्पर जयकी इच्छा करनेवाले वानर और राक्षसों

गरजगरजकर दशोंदिशाओंको शब्दायमान करदिया, ॥ ६० ॥ ६१ ॥ उससमय राक्षसों ऊपर वानर प्रहार करतेथे, और वानरोंके ऊपर राक्षस प्रहार करतेथे, उससमयमें साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजीने तिन देवताओंके अंशरूप वानरोंके ऊपर दृष्टिपात करा, सो वह संपूर्ण वानर उस समय ऐसे प्रसन्न और बलवान् होगये मानो अमृतही पान कर लिया, और सीताको दुष्टभावसे स्पर्श करनेके कारण परम पापी रावणकरके रक्षा करेहुए श्रीहीन और बलहीन राक्षसोंको बडे बलसे मारनेलगे, इस प्रकार युद्ध होनेपर राक्षसोंकी सम्पूर्ण सेना मारीगई केवल चतुर्थभाग सेना बची, ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तबतौ ब्रह्माजीसे प्राप्त हुआ है वरदान जिसको ऐसा कान्तिमान् दुष्टात्मा मेघनाद अपनी सेनाको नष्ट हुई देखकर अंतर्धान होगया, ॥ ६५ ॥ और संपूर्ण अस्त्रोंकी विद्यामें चतुर वह मेघनाद आकाशमें जाकर ब्रह्मास्त्रकरके सहित अनेक प्रकारके शस्त्रोंकरके वानरोंकी सेनाको पीडित करनेलगा, और बाणोंके समूहोंकी वर्षा करनेलगा, यह एक आश्चर्य्य होगया, यद्यपि श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण अस्त्रविद्याके जाननेवालोंमें अग्रगण्य थे, तथापि ब्रह्मास्त्रका सन्मान किया ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ और क्षणमात्रको मौन होकर बैठगये, फिर सौ वानरोंकी सेनाको गिराहुआ देख श्रीरामचंद्रजी क्रोधकरके प्रलयकालकी अग्निसमान होगये, और कहने लगे कि—हे रघुकुलशिरोमणे लक्ष्मण! मेरा धनुष लाओ, देखो मेरे बलको. क्षणमात्रमें राक्षसोंकी सेनाको ब्रह्मास्त्रसे भस्म करे देताहूँ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ मेघनादभी रामचन्द्रजीके इस वाक्यको सुनकर सावधान हो शीघ्रही मायाकरके लंकापुरीको चलागया, क्योंकि—यह राक्षस मेघनाद तौ बडा मायावी था ॥ ७० ॥ तब तौ श्रीरामचन्द्रजी वानरोंकी सेनाको गिराहुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, और हनुमान्जीसे कहने लगे, कि—तुम शीघ्रही क्षीरसमुद्रमें जाकर तहाँ जो दिव्य औषधियोंके उत्पन्न होनेका स्थान द्रोणगिरिनामक पर्वत है, उसको शीघ्रही जाकर लेआओ, और हे महामते! इन महाबली वानरोंके समूहोंको जीवित करो, यह कार्य करनेसे संसारमें

तुम्हारी बड़ी भारी कीर्ति होयगी, तबतौ पवनकुमार कहने लगे, कि—हेम-हाराज! आप जो आज्ञा करै सो मुझे स्वीकार है, ऐसा कहकर पवनकुमार चलेगए, और उस द्रोणगिरिको लाकर संपूर्ण वानरोंको जीवित करा, और फिर तहाँही उस पर्वतके स्थापन करके शीघ्रतासे लौट आये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ तबतौ वानरोंकी सेनाके समूहसे फिर पहिलेकी समान बड़ा भयंकर शब्द निकलने लगा, उसको सुनकर रावण अतिआश्चर्य को प्राप्त हुआ, और इसप्रकार कहने लगा ॥ ७५ ॥ कि—अरे सेनापतियों यह रामचंद्र तौ देवताओंका रचाहुआ मेरा बड़ाभारी शत्रु आगया है, उसके मारनेके निमित्त रणमें शीघ्रही जाओ. ॥ ७६ ॥ मंत्री, बांधव और जो मेरे हितकारक शूर हैं वह शीघ्रही मेरी आज्ञासे युद्ध करनेके निमित्त जायँ ॥ ७७ ॥ और जो डरपोक अपने प्राणोंके नाशके भयसे मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके युद्ध करनेके निमित्त नहीं जांयगे, उन सबोंका मैं प्राणान्त करदूँगा ॥ ७८ ॥ इसप्रकार रावणके कथनको सुनकर रावणसे भयभीत हुए, युद्ध करनेमें परम प्रवीण अतिकाय, प्रहस्त, महानाद, महोदर, देवशत्रु, निकुम्भ, देवांतक और नरांतक, तथा अन्यभी बहुतसे बली राक्षस सब इकट्ठे होकर वानरोंसे युद्ध करनेके निमित्त गये ॥ ७९ ॥ ८० ॥ यह सब तथा अन्यभी बहुतसे सैंकड़ों और हजारों बलके घमंडी शूर राक्षस वानरोंकी सेनामें जाकर वानरोंको दहीकी समान मथने लगे ॥ ८१ ॥ वह राक्षस भुसुण्डी, भिन्दिपाल, बाण और फरसोंकी धारैं तथा औरभी अनेक प्रकारके अस्त्रोंकरके वानरोंके सेनापतियोंको मारने लगे ॥ ८२ ॥ उन वानरोंनेभी तिन सम्पूर्ण राक्षसोंके सेनापतियोंको पर्वतोंके शिखरोंसे कुचलकर नखोंसे वकोटकर, दाढ़ोंसे काटकर, और घूंसोंसे गुथलकर मारडाला ॥ ८३ ॥ किन्हींको श्रीरामचंद्रजीने यमपुरी पहुँचाया, और किन्हींका सुग्रीवने प्राणान्त करा, कुछ राक्षसोंका पवनकुमारने वध करा कुछ राक्षसोंको अंगदने कुचला और किन्हीं राक्षसोंको महात्मा लक्ष्मणजीने बाणोंसे वेध दिया, इसप्रकार वह

सम्पूर्ण राक्षस वानरोंके सेनापतियोंसे मारेगये ॥ ८४ ॥ सो उचितही है, क्योंकि— वानर तौ श्रीरामचंद्रजीके तेजको प्राप्त होकर बलवान् होरहेथे, और राक्षस रामचंद्रजीकी शक्ति करके हीन थे, फिर उनको किसप्रकार शक्ति होसक्ती थी ॥ ८५ ॥ सर्वेश्वर, सर्वरूप, सबके कर्त्ता और त्रिकालमें चिदानंदस्वरूप, श्रीरामचंद्रजी अपनी मायासे मनुष्योंका अनुकरण करके उस मनुष्यत्वके ही अनुसार युद्ध आदि लीलारूप अपनी मायाको फैलारहेथे ॥८६॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः ५

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि— हे पार्वति ! रावण युद्धमें अतिकाय आदि बड़ी भारी सेनाकाभी मरण सुनकर अत्यन्त दुःखित हुआ, और बड़े क्रोधमें भरगया ॥ १ ॥ और अपने पुत्र मेघनादको लंकाकी रक्षाका भार सौंपकर वह परम कान्तिमान् राक्षस रावण श्रीरामचंद्रजीसे स्वयं युद्ध करनेको गया, ॥ २ ॥ उस महाबली राक्षसपति रावणने सम्पूर्ण शस्त्र और अस्त्रोंकरके युक्त दिव्य रथमें बैठकर श्रीरामचंद्रजीके ही ऊपरको धावा करा ॥ ३ ॥ सर्पोंकी समान अपने बाणोंकरके बहुतसे वानरोंको मारकर गिरादिया और सुग्रीव आदि सेनापतियोंको भी गिरादिया, हाँ रावणने हाथमें गदा लिये हुए महाबली विभीषणको देखकर उसको मारनेके निमित्त मयदैत्यकी दीहुई बड़ीभारी शक्ति छोड़ी ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ तब तौ विभीषणको नाश करनेके निमित्त आतीहुई उस अमोघ शक्तिको देखकर महाबली लक्ष्मणजीने विचारा, कि— श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अभयदान देदिया है, इसकारण यह वधके योग्य नहीं हैं ॥ ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर अतिवीर्यवान् लक्ष्मणजी अपने भयानक धनुषको लेकर अचलपर्वतकी समान विभीषणके आगे खड़े होगये ॥७॥ वह शक्ति अमोघ होनेके कारण लक्ष्मणजीके शरीरमें प्रवेश करगई, संसारमें जितनी शक्ति हैं सब मायाकी रचीहुई हैं ॥ ८ ॥ तिन सब शक्तियोंके आधाररूप

शेषावतार विष्णुभगवान्के शरीररूप महात्मा लक्ष्मणजीका मायाकरके रचीहुई शक्तिसे कुछभी नहीं होसक्ता ॥ ९ ॥ तथापि मनुष्यभावको प्राप्त हुए लक्ष्मणजी मनुष्यस्वभावकेही अनुसार मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े रावण उनको उठानेके निमित्त आया ॥ १० ॥ परन्तु अपने हाथोंसे हिलाभी न सका और बड़े आश्चर्यमें होगया, सो ठीकही है, क्योंकि— सम्पूर्ण जगत्के सारभूत परमेश्वर जगदाधार विष्णुभगवान्को एक जरासा राक्षस किसप्रकार हिलासक्ता है? पवनकुमार रावणको लक्ष्मणजीके उठानेकी इच्छा करताहुआ देखकर बड़े क्रुद्ध हुए, और जाकर रावणकी छातीपर वज्रकी समान एक घूंसा मारा, तिस घूंसेके लगनेसे रावण घुटुओंके बल पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ उससमय रावणके सम्पूर्ण मुख, नेत्र और कानोंमेंसे बहुतसा रुधिर निकलनेलगा, और नेत्रोंको चलायमान करताहुआ रावण जैसे तैसे अपने रथमें जाकर बैठगया ॥ १४ ॥ तब पवनकुमार रावणकी शक्तिसे पीडाको प्राप्त हुए लक्ष्मणजीको अपनी भुजाओंसे उठाकर श्रीरामचंद्रजीके समीप लेआये ॥ १५ ॥ उससमय अजन्मा, सर्वशक्तिमान्, दिव्यरूप; परमेश्वर लक्ष्मणजी यद्यपि भारीसे भारी थे, परन्तु पवनकुमारकी मित्रता और भक्तिके कारण हलके होगये ॥ १६ ॥ वह शक्तिभी लक्ष्मणजीको नारायणके अंशसे उत्पन्न हुआ जानकर त्यागकर फिर रावणके रथहीमें जाकर प्राप्त होगई ॥ १७ ॥ इतनेमें रावणभी धीरे चेतन हुआ तबतौ धनुष बाण उठाया, और क्रोधकरके श्रीरामचंद्रजीके संमुख दौड़ा, त्रिलोकीनाथ श्रीरामचन्द्रजीभी क्रोधकरके आतेहुए रावणको देखकर महाबली हनुमान्के ऊपर चढ़े, और रावणको रथमें बैठाहुआ देखकर रावणके संमुखको दौडगये ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ और रघुनाथजीने बिजलीके गिरनेकी समान महाभयंकर और परमकठोर धनुषकी प्रत्यंचाका शब्द करा, तथा गंभीरवाणीसे राक्षसपति रावणके प्रति कहनेलगे ॥ २० ॥ कि— अरे नीच ! राक्षस ! अब मेरे सामने खड़ा रह, मेरे आगेसे कहाँ जायगा, मैं सर्वत्र समानरूपसे रहताहूँ,

इसकारण यहाँसे चलाजायगा, तौभी मुझसे छुपा नहीं रहैगा, और यद्यपि मैं समदर्शी हूँ अर्थात् संसारके प्राणीमात्रमें समानदृष्टि रखताहूँ, तथापि मेरा अपराध करके तेरा जीवन दुर्लभ है, क्योंकि—मेरा समदर्शीपना यही है कि—कर्म्मोंके अनुसार फल देताहूँ, इसीकारण मैं सदा दुष्टोंका नाश और साधुओंकी रक्षा करताहूँ, और तेरी दुष्टता संसारमें प्रसिद्धही है ॥ २१ ॥ सो अरे रावण! जिस बाणोंसे जनस्थानमें तेरे खर दूषणादि राक्षसोंका नाश कराथा, उसही बाणसे अब तेराभी प्राणान्त करूँगा, आज मेरे आगे खडा रह ॥ २२ ॥ रणभूमिमें इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेको सुनकर रावणने श्रीरघुनाथजीको उठानेवाले पवनकुमारको अति तीखे बाणोंसे ताडना दी॥ २३ ॥ तीक्ष्णबाणोंकरके विंधे हुएभी हनुमान्‌जी अपने रौद्र तेजको स्मरण करके अति बढ़ेहुए तेजयुक्त होकर अत्यन्त गरजने लगे ॥ ॥ २४ ॥ तब रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको बाणोंसे विंधाहुआ देखकर प्रलयकालके रुद्रकी समान अति क्रोधको उत्पन्न करा ॥ २५ ॥ और शीघ्रही रावणके घोडे, रथ, ध्वजा, सारथी, शस्त्रोंका समूह, धनुष, छत्र और पताका इन सबको तीखे बाणोंसे काटडाला ॥ २६ ॥ फिर रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने अपने वज्रकी समान महाबाणसे शीघ्रही रावणके ऊपर ऐसा प्रहार करा जैसे इन्द्र पर्वतके ऊपर वज्रका प्रहार करता है॥ २७॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाणका ताड़ना कराहुआ वीर रावण चलायमान होगया और मूर्च्छितभी होगया, और रघुनाथजीको देखकर रावणके हाथमेंसे धनुष छूटकर गिरपडा ॥ २८ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने अर्धचन्द्राकार बाणसे रावणका सूर्य्यकी समान प्रकाशवान् किरीट काटकर गिरादिया, और महाराज कहने लगे कि—हे रावण! अब मैं तुझे आज्ञा देताहूँ, जा इस समय यहाँसे चलाजा, क्योंकि—बाणके प्रहारसे पीडित हो रहा है ॥ २९ ॥ लंकामें जाकर आराम करके कल आनकर फिर मेरे बलको देखना, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके अनन्तर नष्ट होगया है अभिमान जिसका ऐसा श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे विंधाहुआ रावण शीघ्रही

लज्जित होकर लंकापुरीमें चलागया, इधर श्रीरामचन्द्रजीभी लक्ष्मणजीको मूर्छित होकर पृथ्वीपर पडाहुआ देखकर मनुष्य स्वभावको स्वीकार करके शोक करनेलगे, और हनुमान्‌जीसे बोले कि— हे पुत्र ! लक्ष्मणको जीवित करो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तिस द्रोणगिरि फिर पहलेकी समान संजीविनी औषधिको लाकर लक्ष्मणको और इन वानरोंको भी जीवित करो, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको स्वीकार करके पवनकुमार तत्कालही चलेगये ॥ ३३ ॥ सो हनुमान्‌जी पवनकी समान वेगसे क्षणमात्रमेंही समुद्रको उल्लंघन करके आगे चले, इतनेहीमें दूतोंने जाकर रावणसे कहा ॥ ३४ ॥ कि—हे राजन् ! रामचन्द्रजीने हनुमान्‌को क्षीरसमुद्रके पार भेजा है, वह लक्ष्मणको जीवित करनेके निमित्त महौषधि (संजीविनी) लेनेको गया ॥ ३५ ॥ इसप्रकार दूतोंके वचनोंको सुनकर रावण चिन्तासे व्याकुल होगया, और रात्रिके समयमें इकलाही क्षणभरमें कालनेमिराक्षसके स्थानको गया ॥ ३६ ॥ कालनेमि रावणको देखकर आश्चर्य्यमें होगया, और अर्घ्यादिसे पूजन करके रावणके सन्मुख खड़ा हुआ भयभीतहो हाथ जोड़कर इसप्रकार कहने लगा कि—हे राजेन्द्र ! इससमय आपके आनेका क्या कारण है ? और मुझे क्या आज्ञा है जिसको मैं पूर्ण करूँ ? इसप्रकार कालनेमिके कहनेपर दुःखसे पीडित रावण यह बोला ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कि—हे मित्र ! कालकी विकराल गतिसे मुझेभी वह दुःख आनकर प्राप्त होगया है कि—मैंने मेरी शक्ति लगनेसे वीर लक्ष्मण पृथ्वीपर गिरपड़ाथा, सो अब उसको जीवित करनेके निमित्त हनुमान् औषधि लेनेगया है, सो हे ! महामते ! जिसप्रकार हो सकै तुम उस कार्य्यमें विघ्न करो ॥ ३९ ॥ ४० ॥ मायासे मुनिका वेष धारण करके उस पवनकुमार हनुमान्‌को मोहितकर, अभिप्राय यह है कि—जिसप्रकार औषधि लानेमें हनुमान्‌को देरी लगै सो कार्य्य करो ॥ ४१ ॥ इसप्रकार रावणका वचन सुनकर उससे कालनेमि कहनेलगा कि—हे प्रभो रावण ! अब तुम मेरा वचन सुनो और उसका तत्त्व विचारो ॥ ४२ ॥ और मैं तो

आपकी प्रसन्नताका कार्य्य करूँगा ही, मेरे प्राण रहैं चाहें जायँ, हे रावण ! पहिले वनमें जो दशा मृगरूपधारी मारीचकी हुई थी, निःसन्देह वही दशा मेरी भी होयगी, तुम्हारे पुत्र पौत्र बान्धव तथा और जो कुछ राक्षस थे वह प्रायः सबही मारेगये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे रावण यदि सम्पूर्ण राक्षसकुल मरवाकर तुम जीवित भी रहे तौ तुम्हारे जीवनका क्या फल है, और इस राज्य करके, सीताकरके, तथा तुम्हारे जड देहकरके फिर क्या प्रयोजन निकलेगा॥ ॥ ४५ ॥ इसकारण हे रावण ! अब तुम सीता तौ श्रीरामचन्द्रजीको दे दो और लंकाका राज्य विभीषणको देकर, हे महाबाहो ! जहाँ मुनियोंके समूह निवास करते हैं ऐसे वनमें चलेजाओ ॥ ४६ ॥ तहाँ प्रातःकालके समय पवित्र जलमें स्नान करके और तदनन्तर संध्या आदि क्रियायें करके फिर एकान्तमें सुखासनको अंगीकार करो ॥ ४७ ॥ और बाहरके सम्पूर्ण विषयोंका संग त्यागकर फिर बाहरके विषयों प्रवृत्त होनेवाले इन्द्रियोंके समूहको धीरे धीरे परमात्माके विषें लगाओ ॥ ४८ ॥ हे अनघ ! प्रकृतिसे भिन्न आत्माको विचार ! स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण संसार और बुद्धि इन्द्रिय आदि ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्य्यन्त जो कुछ दीखता है, और श्रवण करनेमें आता है, सो सब प्रकृति कहाती है, और यही माया नामसे कहा जाता है, ॥ ४९ ॥ ५० ॥ संसाररूपी वृक्षकी सृष्टि–स्थिति–और प्रलयका कारण यही माया है, यही प्रकृति सदा लोहित कहिये तमोगुण प्रधान, श्वेत कहिये रजोगुणप्रधान, और कृष्ण कहिये तमोगुणप्रधान प्रजाओंको उत्पन्न करती है ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! यही प्रकृति कामक्रोधादि रूप पुत्रोंको, और हिंसा तृष्णा आदि कन्याओंको उत्पन्न करती है, और यही सर्वदा दिव्यस्वरूप आत्माको अपने गुणोंकरके मोहित करती है, अर्थात् प्राणी जो अपने वास्तविक स्वरूपको भूलकर 'अहं, मम' इत्यादि अध्यासयुक्त होय है, इसका कारणभी प्रकृति है ॥ ५२ ॥ यह प्रकृतिही कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि अपने गुणोंको आत्माके विषें आरोपण करनेके द्वारा आत्माको अपनी वशमें करके सदा उसके साथ क्रीडा करती है ॥ ५३ ॥ शुद्ध

आत्माभी जिस प्रकृतिसे युक्त होकर अपने स्वरूपको भूलकर मायाके गु-णोंसे मोहित होताहुआ, बाहरके विषयोंको देखताहुआ सा प्रतीत होने-लगता है ॥ ५४ ॥ और वह मायाकरके मोहित प्राणी जब ज्ञानवान् परम दयालु सत्‌गुरुके द्वारा ज्ञानको प्राप्त होता है, तब बाह्यविषयोंमेंसे दृष्टिको हटाकर सदा, अपने निर्मल आत्मस्वरूपको देखता है ॥ ५५ ॥ फिर वह आत्माका ध्यान करताहुआ जीवन्मुक्त प्राणी सदाकाल मायाके गुणोंसे मुक्त होजाता है, हे राजन् ! तुमभी इसीप्रकार सदा जितेन्द्रिय हो-कर और आत्माका विचार करके आत्माको मायासे अलग जानकर मुक्त होजाओगे, और यदि निर्गुण परमात्माका ध्यान करनेकी तुम्हारी शक्ति नहीं होय तौ, सगुण परमात्माका सेवन करो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हृदयरूपी कमलकी कलीके विषें मणियोंकरके जड़ेहुए कोमल और अतिचिकने सुवर्णके सिंहासनपर जानकीकरके सहित वीरासनसे बैठेहुए, विशालनेत्र, बिजलीके पुंजकी समान पीतपटधारी, मुकुट, हार, बाजूबन्द और कौस्तुभ आदि मणियोंको धारण करेहुए, पावटे-खंडुवोंकरके शोभायमान, वनमा-लाधारी, और द्विभुज धनुर्धारी लक्ष्मणजीकरके सेवित, सदा हृदयके विषें स्थित रहनेवाले, परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको परमभक्तिपूर्वक ध्यान करके पुरुष निःसन्देह संसारबन्धनसे मुक्त होजाता है, सो तुमभी उनही श्रीराम-चन्द्रजीका ध्यान करो ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ और हे रावण! फिर एकाग्रचित्त होकर सदा श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंके द्वारा उनके पवित्र चरित्रको श्रवण करो, इसप्रकार वर्त्ताव करनेसे पूर्वजन्मोंमें करेहुए बडे पापभी क्षणमात्रमेंही इसप्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे कि—अग्निसे रुईके ढेर ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! वैरभावको त्यागकर सर्वव्यापी, अद्वितीय नामरूप-रहित, पुराणपुरुष श्रीरामचन्द्रजीको अपनी भक्तिसे हृदयके विषे सदा-काल ध्यान करो, और उनकाही भजन करो ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्या-त्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त-व्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि- हे पार्वति ! रावण इसप्रकार अमृतकी तुल्य कालनेमिके वचनको सुन क्रोधसे लाल २ नेत्र करके ऐसा भभक उठा जैसे अग्निसे लपायाहुआ घृत जलकी बूँदोंके पडनेसे प्रज्वलित होजाता है ॥ १ ॥ और कहने लगा कि- अरे दुष्टात्मा मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, कहै तौ अभी तेरा प्राणान्त कर दूँ, प्रतीत होता है शत्रुओंने तुझे कुछ धन आदि दे दिया है, जिससे रामका किंकर होताहुआसा इसप्रकार बकवाद कर रहा है ॥ २ ॥ तब कालनेमि यह कहने लगा कि- हे राजन् ! क्रोध क्यों करते हो, यदि आपको मेरा कहना अच्छा नहीं लगता है तौ मैं जाकर आपके कहनेके अनुसार ही कार्य्य करताहूँ ॥ ३ ॥ कालनेमि नामक महाराक्षस इसप्रकार कहकर शीघ्रही तहाँसे चलदिया, और हनुमानके कार्य्यमें विघ्न करनेके लिये रावणने जो कहाथा, सो जाकर हिमालयके समीपमें एक तपोवन रचा, वह दुष्ट कालनेमि राक्षस तिस अपने रचे हुए तपोवनमें मुनिका वेष धारण करके शिष्योंकरके सहित, हनुमान्‌जीके जानेके मार्गमें स्थित होगया, सो इतनेहीमें महात्मा हनुमान्‌जीने तहाँ आकर वह रमणीय आश्रम देखा ॥४॥५॥६॥ तब तौ श्रीमान् पवनकुमार मनमें विचार करने लगे, कि- यह सुन्दर मुनियोंका तपोवन पहिले तौ मैंने नहीं देखाथा, ॥ ७ ॥ सो मैं मार्गको भूलगया, या मेरे चित्तको भ्रम होरहा है, खैर जो हो सो हो इस आश्रममें जाके सम्पूर्ण मुनियोंका दर्शन करके और जलपान करके फिर उस अत्युत्तम द्रोणाचल पर्वतको जाऊंगा इसप्रकार कहकर हनुमान्‌जी उस आश्रममें घुसे, तौ क्या देखते हैं कि- वह आश्रम सब ओरसे एक योजन चौडा है, और पकेहुए फलोंसे झुकी हुई है शाखा जिनकी ऐसे केला, साल, खजूर और पनस आदिके वृक्ष चारों ओर गछेहुए हैं, ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ और वैरभावको छोडकर वनके जीव विचर रहे हैं, ऐसा शुद्ध और निर्म्मलस्वरूप जो वह रमणीय आश्रम तिसमें वह कालनेमि राक्षस कपट योगको साधकर शिवपूजन कर रहाथा,

हनुमान्‌जी तिस कालनेमि राक्षसको बड़े गौरवके साथ प्रणाम करके बोले ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि-हे-भगवन् ! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ, और मेरा नाम हनुमान् है, श्रीरामचन्द्रजीके बड़े भारी कार्यके निमित्त क्षीरसमुद्रको जानेको उद्यत हुआ हूँ ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे पिपासा पीडित कर रही है, सो मुझे बताईयें, कि-जल कहाँ है ? हे मुनीश्वर ! जल होय तौ मैं यथेष्ट पान करूँ ॥ १४ ॥ इसप्रकार पवनकुमारके वाक्यको सुनकर कालनेमि कहनेलगा कि- हे पवनकुमार ! यह जो मेरे कमंडलुमें जल है तिसको तुम पियो ॥ १५ ॥ और फिर इन पकेहुए फलोंको भोजन करके यहाँ सुखसे निवास करो, और निद्रा लो, शीघ्रता मत करो ॥ १६ ॥ भूत, भविष्यत, और वर्त्तमान, सब कालकी वार्त्ताको मैं अपने तपके प्रभावसे जानता हूँ, इससमय रामचंद्रजीके देखनेमात्रसे ही लक्ष्मणजी और सम्पूर्ण वानर उठखड़े हुए हैं ॥ १७ ॥ इस वार्ताको सुनकर हनुमान्‌जी कहने लगे, कि—इस कमण्डलुमात्रसे मेरी प्यास शान्ति नहीं होयगी, इसकारण बहुतसा जल बताइये ॥ १८ ॥ हनुमान्‌जीके इस वचनको सुनकर वह कालनेमि राक्षस मायासे रचेहुए शिष्यके प्रति कहनेलगा, कि—हे वटो ! पवनकुमारको वह बहुत चौंड़ा सरोवर दिखादो ॥ १९ ॥ और हनुमान्‌जीसे बोला, कि—हे पवनकुमार ! तुम नेत्रोंको मींचकर यथेष्ट जलपान करके मेरे समीप आओ, तब मैं मंत्रका उपदेश करूँगा; जिसके प्रभावसे तुम शीघ्रही औषधियोंको देखलोगे ॥ २० ॥ हनुमान्‌जी 'तथास्तु' कहकर उस ब्रह्मचारी शिष्यके साथ गये, और उसने शीघ्रही सरोवर दिखादिया, हनुमान्‌जीने उसमें घुसके नेत्र मूंदकर जलपान करा ॥ २१ ॥ इतनेहीमें बड़ी मायाके जाननेवाली घोररूप मछली बडे वेगसे आकर पवनकुमारको ग्रसने लगी ॥ २२ ॥ तब हनुमान्‌जीने ग्रसतीहुई उस मछलीको क्रोधसे, पकड़कर दोनों हाथोंसे उसका मुख चीरडाला, जिससे वह उसी समय मरणको प्राप्त होगई ॥ २३ ॥ इतनेहीमें क्या देखते हैं कि— आकाशमें एक दिव्यरूपवती धान्यमाली

नामसे प्रसिद्ध स्त्री हनुमान्‌जीसे कहनेलगी ॥ २४ ॥ कि- हे पवनकुमार आपके अनुग्रहसे मैं छूटगई, मुझे पूर्वकालमें अप्सरायोनिके विषें एक मुनिने किसीकारणसे शाप दियाथा, कि– जा तू मछली होजा ॥ २५ ॥ और आपने जो आश्रममें कालनेमिनामक महाराक्षसको मुनिवेषमें देखा है, वह रावणका भेजाहुआ तुम्हारे मार्गमें विघ्न करनेके निमित्त आया है॥ २६॥ यह वास्तवमें मुनि नहीं है, किन्तु मुनिके वेषमें ब्राह्मणोंको नष्ट करनेवाला राक्षस है, तुम इस दुष्टको मारडालो, और शीघ्रही द्रोणाचल पर्वतको चले जाओ ॥ २७ ॥ और मैं तुम्हारे स्पर्शसे होकर ब्रह्मलोकको जातीहूँ, इस प्रकार कहकर वह धान्यमाली अप्सरा स्वर्गलोकको चलीगई, और हनुमान्‌जीभी आश्रममें चले आये ॥ २८ ॥ वह मुनि वेषधारी कालनेमि राक्षस इनको आयाहुआ देखकर कहने लगा, कि– हे पवनकुमार! तुम्हें इतना विलंब किसकारणसे हुआ? ॥ २९ ॥ अब तुम मुझसे मंत्रका उपदेश लो, और मुझे गुरुदक्षिणा दो; इसप्रकार कालनेमिके कहनेपर हनुमान्‌जी एक बड़ा दृढ़ घूंसा बनाकर उस राक्षससे कहने लगे ॥ ३० ॥ कि– यह ले दक्षिणा! इसप्रकार कहकर हनुमान्‌जीने उसके घूंसा मारा, तब तो वह कालनेमि राक्षस मुनिके वेषको त्यागकर हनुमान्‌जीके साथ युद्ध करनेलगा; उस कालनेमिने अनेक प्रकारकी माया करी, परन्तु हनुमान्‌जीभी सम्पूर्ण जगत्‌की आदिकारण महामायावी जिनके वशीभूत है, ऐसे श्रीरामचन्द्रजीके दूत और माया करनेवाले राक्षसोंके परम शत्रु थे, सो उसके मस्तकमें एक घूंसा मारा, जिससे उस कालनेमिका शिर फटकर मरण होगया, तब पवनकुमारने क्षीरसमुद्रके तटपर द्रोणाचलपर्वतपर औषधि नहीं देखी, तबतो उस द्रोणाचल पर्वतको ही शीघ्रतासे उखाडकर हाथमें लेलिया, और वायुकी समान वेगसे श्रीरामचंद्रजीके समीप जाकर हनुमान्‌जी कहने लगे, कि--हे रघुनाथजी! मैं इस महापर्वतको लेआया, अब जो उचित होय सो करिये, हे देवदेव! अब विलंब करना योग्य नहीं है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार पवनकु-

मारके कथनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मनमें परम प्रसन्न हुए, और शीघ्रही उस द्रोणगिरिके ऊपरसे औषधि लेकर परम प्रवीण श्रीरामचन्द्रजीनें सुषेणके द्वारा महात्मा लक्ष्मणजीकी चिकित्सा करवाई, तबतौ शयन करनेके अनन्तर उठेहुएसे लक्ष्मणजी कहने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अरे रावण ! खडा रह! खडा रह ! कहाँ जायगा, अभी तुझे मारताहूँ, लक्ष्मणजीको इसप्रकार कहता हुआ देखकर श्रीरामचन्द्रजीने मस्तकमें चुम्बन करा ॥ ३८ ॥ और पवनकुमारसे कहनेलगे कि--हे पुत्र ! आज तुम्हारेही अनुग्रहसे मैने अपने भ्राता लक्ष्मणको नीरोग देखा है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण वानरों और सुग्रीवकरके सहित, विभीषणकी बताईहुई रीतिके अनुसारही युद्ध करनेके निमित लङ्कापुरीको गए (क्योंकि विभीषणको लङ्कापुरीका सब भेद मालूम था) ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण वानर युद्धकरनेकी इच्छासे पत्थर वृक्ष-और पर्वतोंके शिखर लेलेकर रणभूमिमें युद्ध करनेको उद्यत होकर आगए ॥ ४१ ॥ इधर श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंकरके घायल हुआ, जैसे सिंहके प्रहारसे हाथी और गरुड़के प्रहारसे सर्प पीड़ित होता है ॥ ४२ ॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकरके तिरस्कारको प्राप्तहुआ राजा रावण सिंहासन पर बैठके राक्षसोंसे इसप्रकार कहने लगा ॥ ४३ ॥ कि-- हे राक्षसों ! पूर्वकालमें ब्रह्माने मनुष्योंके द्वाराही मेरी मृत्यु कहीथी, सो भूतलपर कोई मनुष्य तौ मेरे मारनेको समर्थ, है नहीं ॥ ४४ ॥ इसकारण निःसन्देह साक्षात् नारायण मनुष्यका अवतार धारण करके दशरथकुमार श्रीरामचन्द्ररूपसे मुझे मारनेको निमित्त आए हैं ॥ ४५ ॥ हे राक्षसों ! पूर्वकालमें अनरण्य राजाने मुझे शाप दिया था कि--मेरे वंशमें साक्षात् सनातन परमात्मा अवतार धारण करैंगे ॥ ४६ ॥ तिनको द्वारा तुम निःसन्देह पुत्र पौत्र और बान्धवोंकरके सहित मरणको प्राप्त होओगे, और इसप्रकार कहकर वह स्वर्गलोकको चलागया था ॥ ४७ ॥ सो वहही परमात्माने मेरे निमित्त श्रीरामचन्द्र अवतार धारण करा है, सो मेरा वध करैंगे, और मूढबुद्धि कुम्भकर्ण सदा निद्राकेही वशीभूत रहताहै ॥ ४८ ॥ सो तुम उस

महापराक्रमीको जगाकर मेरे समीप लाओ, इसप्रकार रावणके कहनेपर वह बडे २ शरीरधारी राक्षस शीघ्रही जाकर और यत्नपूर्वक कुम्भकर्णको जगाकर रावणके समीप लिवालाए, वह आकर रावणको नमस्कार करके आसनके ऊपर बैठगया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राजा रावण भ्राता कुम्भकर्णसे दीनवाणी कहनेलगा, कि—हे भ्रातः कुम्भकर्ण ! निद्राको छोडकर चेतन होओ, इससमय बड़ाभारी कष्ट आकर प्राप्त हुआ है ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रने पुत्र-पौत्र-बाँधव-और बड़े २ शूर राक्षसोंको मारडाला, अब मुझे क्या करना उचित है ? मृत्युका समय आकर प्राप्त होगया ॥ ५२ ॥ यह दशरथका पुत्र बलवान् रामचन्द्र सुग्रीव और सम्पूर्ण वानरोंकी सेनाकरके सहित समुद्रके इस पार उतर आया है, और हमारी जड़को काटरहा है ॥ ॥ ५३ ॥ जो मुख्य २ राक्षस थे वह सब संग्राममें वानरोंने मारडाले, और मैंने संग्राममें वानर एकभी मरताहुआ किसी समय नहीं देखा॥५४॥ हे महाबाहो ! तुम्हे इसी प्रयोजनसे जगाया है कि—तुम इन शत्रुओंका नाश करो, हे महापराक्रमी अब मुझ भ्राताके निमित्त इस दुष्कर कर्म्मको करो ॥ ५५ ॥ इसप्रकार राक्षसपति रावणके विलापके वचनोंको सुनकर कुम्भकर्ण जोरसे हँसा, और यह वचन बोला ॥ ५६ ॥ कि—हे राजन् ! पहिले सम्मति करनेके समय जो मैंने कहाथा, सो इस समय तुमको पापकर्म्मका फल प्राप्त होगया॥५७॥ पहिलेही मैंने कहा था, कि—रामचन्द्र साक्षात् परमात्मा नारायण हैं,और सीता योगमाया है,सो तुम समझानेपरभी नहीं समझते हो ॥५८॥एकसमय मैं वनमें पर्वतके शिखरपर विशाल शिलाके ऊपर रात्रिके समय बैठाहुआथा, सो मैंने साक्षात् दिव्यदर्शन नारदमुनिको देखा ॥ ५९ ॥ और उनसे कहा कि—हे महाभाग ! इस समय कहाँसे आरहेहो सो मुझे बताओ, मेरे इसप्रकार कहनेपर नारदजी बोले कि—मैं देवताओंकी गुप्तसम्मतिमें बैठाथा ॥ ६० ॥ उस गुप्तसम्मतिमें जो वृत्तान्त निश्चय हुआ है, सो मैं तुझसे कहता हूँ, उसको सुनो, और तत्वविचार लो, जब तुम दोनो भ्राताओं देवताओंको अधिक पीड़ा दी, तब वह सब

मिलकर विष्णुभगवान्के पास गए ॥ ६१ ॥ और वह देवदेव सर्वेश्वर विष्णुभगवान्की सावधानीसे भक्तिपूर्वक स्तुति करके कहनेलगे, कि—हे देव! यह रावण त्रिलोकीका कण्टक(दुःख देनेवाला)है, और इसका कोई भी बाल बांका नहीं करसक्ता है, आप इसका संहार करिये, ॥ ६२ ॥ और पूर्व कालमें ब्रह्माजीने उसका मरण मनुष्यके हाथसे रचा है, इसकारण आप मनुष्यका अवतार धारण करके, इसकण्टक रावणका संहार करिये॥ ६३ ॥ सर्वशक्तिमान् सत्यसंकल्प विष्णुभगवान्ने उस देवताओंकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया, सो वह देव अब रघुकुलमें परम प्रसिद्ध रामचन्द्रनामसे प्रकट हुए हैं ॥ ६४ ॥ और तुम सबको नष्ट करैंगे, इसप्रकार कहकर नारदमुनि चलेगए, इसकारण तुम श्रीरामचन्द्रजीको सनातन परब्रह्मरूप जानो ॥ ६५ ॥ वैरभावको त्याग दो, और मायाकरके मनुष्यरूपधारी भगवान्का भजन करो, भक्तिपूर्वक भजन करतेहुए पुरुषके ऊपर रघुनाथजी प्रसन्न होजाते हैं ॥ ६६ ॥ भक्तिही ज्ञानकी उत्पन्न करनेवाली है, और भक्तिही मोक्ष देनेवाली है,भक्तिहीन पुरुषका कराहुआ सम्पूर्ण कर्म्म न करेकी समान होता है ॥ ६७ ॥ लीलाकरके अनेक प्रकारसे अनुकरण करनेवाले विष्णुभगवान्के हजारों अवतार हैं, तिन सब अवतारोंमें ज्ञानमय शान्तस्वरूप यह रामावतार सहस्रों अवतारोंकी तुल्य सबमें मुख्य है ॥ ॥ ६८ ॥ जो प्रवीण पुरुष मन वाणी और कर्म्मकरके निरन्तर रात्रिदिन श्रीरामचन्द्रजीका भजन करते हैं, वह अनायासमेंही संसारसमुद्रको तरकर विष्णुभगवान्के परमपद (वैकुण्ठ) को प्राप्त होते हैं ॥ ६९ ॥ पृथ्वीतलमें शुद्धान्तःकरणवाले जो सत्पुरुष निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकाही ध्यान करते हैं, और तिन श्रीरामचन्द्रजीके ही चरित्रोंको पढ़ते हैं, वह पुरुषही संसारके भोगरूप बड़े २ सर्पोंके फाँसियोंसे छूटेहुए हैं अथवा वही पुरुष संसार है शरीर जिसका ऐसे कालरूपी सर्पसे मुक्त हैं, और अन्तमें सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके अनन्त सुखरूप पद (शुद्धब्रह्म) को प्राप्त होते हैं॥ ७० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि–हे पार्वति ! कुम्भकर्णके ऐसे कथनको सुनकर विकराल मुखपर भृकुटी चढ़ाए हुए रावण क्रोधके कारण आसनपरसे उछलताहुआसा इसप्रकार कहनेलगा ॥ १ ॥ कि–अरे बुद्धिमान् ! मैंने तुझे ज्ञानका उपदेश लेनेके निमित्त नहीं बुलवाया है, यदि अच्छा लगै तौ मेरे कहनेको अंगीकार करके युद्ध करो ॥ २ ॥ नहीं तौ सोनेके निमित्त जाओ, मालूम होताहै इससमय तुम्हे निद्रा बहुत पीडित कररही है ? महाबली कुम्भकर्णने इसप्रकार रावणके वचनको सुनकर जाना कि यह रुष्ट होगया, सो इसी समय युद्ध करनेके निमित्त चलदिया, वह महापर्वतकी समान शरीरधारी कुम्भकर्ण परकोटेको लाँघकर शीघ्रही नगरसे बाहर निकल आया, और वानरोंकी सेनाको भय दिखाता हुआ बड़े जोरके शब्दसे गरजनेलगा, जिससें समुद्रमेंसेभी प्रतिशब्द निकलने लगा ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ और दोनो हाथोंसे भक्षण करताहुआ वानरोंको पीड़ा देनेलगा, तबतौ पक्षधारी पर्वतकी समान अतिक्रोधयुक्त जो कुम्भकर्ण तिसको देखकर सम्पूर्ण इसप्रकार भागने लगे, जिसप्रकार काल अथवा यमको देखकर सम्पूर्ण प्राणी भागते हैं, और वह महाबली वानरोंकी सेनामें मुद्गर लेकर घूमने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ वानरोंको पीडा देतेहुए, और चारोंओरसे जल्दी २ भक्षण करतेहुए, मुद्गरसे-हाथोंसे-पैरोंसे-तथा औरभी अनेक प्रकारसे वानरोंको नष्ट करतेहुए कुम्भकर्णको उस समय हाथमें गदालियेहुए बुद्धिमान् विभीषणने देखकर तिस ज्येष्ठभ्राताके चरणोंमें प्रणाम करा ॥ ८ ॥ ९ ॥ और विभीषण कहनेलगा कि–कि–हे महामते ! मुझ भ्राताके ऊपर दया करो, हे भ्रातः ! देखो मैंने रावणको अनेकबार समझाया, कि--श्रीरामचंद्रजी साक्षात् विष्णुभगवान्‌का रूप हैं, तुम उनको सीता देदो, परन्तु उसने मेरी एक न सुनी, और उलटा खड्ग उठाकर मेरे मारनेको उद्यत होगया, और कहने लगा ॥ १० ॥ ११ ॥ तुझे धिक्कार है, तथा पापियोंकरके युक्त उस रावणने मेरे एक लातभी मारी, तब मैं चार मंत्रि-

योंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आगया ॥ १२ ॥ इसप्रकार विभीषणके कथनको सुनकर और भ्राताको पास आयाहुआ जानकर कुम्भकर्णने हृदयसे लगा लिया, और कहा कि--हे भ्रातः ! तुम श्रीरामचन्द्रजीके चरणके आश्रयसे बहुतकालपर्य्यन्त जीवित रहो ॥ १३ ॥ और मैंने पहिले नारदजीके मुखसे सुना है कि--तुम कुलकी रक्षाकरनेके निमित्त और राक्षसोंका हित करनेके निमित्त हमारे कुलमें परम भगवद्भक्त उत्पन्न हुवे हो ॥ १४ ॥ हे तात ! अब इस समय मेरे आगे से चलेजाओ । क्योंकि मेरे नेत्रोंमें वीर रसका मद छाजानेके कारण इस समय मुझे अपना बिराना कुछ नहीं सूझता है ॥ १५ ॥ जब इसप्रकार कुम्भकर्णने कहा तब तौ विभीषणके नेत्रोंमेंसे आँसुओंका प्रवाह बहनेलगा, सो इस दशामेंही विभीषण भ्राताके चरणोंमें प्रणाम करके लौट आया, और श्रीरामचन्द्रजीके समीप चिन्तासे व्याकुल होताहुआ बैठरहा ॥ १६ ॥ इधर कुम्भकर्णभी हाथों और चरणोंसे वानरोंको मसलताहुआ और मदोन्मत्त हस्तीकी समान वानरोंकी सेनाको पीडित करताहुआ विचरने लगा ॥ १७ ॥ कुम्भकर्णकी यह दशा देखकर क्रुद्ध होकर रघुनाथजीने, सम्हालकर वायव्य अस्त्रको कुम्भकर्णके ऊपर छोडा, उस वायव्यबाणसे कुम्भकर्णका मुद्गरसहित दाहिना हाथ काटदिया, तब कुम्भकर्ण बड़ा भयंकर शब्द करके गर्जा, और उस कुम्भकर्णके हाथने भूमिपर गिरतेमेंभी अनेक वानरोंको पीचदिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण वानर उस गिरती हुई भुजाके कम्पायमान होकर चारों ओरको अलग हटकर खडे होगए, और अलगको खड़े हुए ही श्रीरामचन्द्र और कुम्भकर्णका मुख देखनेलगे ॥ २० ॥ अब कटगया है दाहिना हाथ जिसका ऐसा कुम्भकर्ण वामहाथसे शालका वृक्ष उखाडकर रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके मारनेको बडे वेगसे दौडा, सो श्रीरामचंद्रजीने शालके वृक्षकरके सहित वामहाथको भी ऐन्द्रबाणसे काटडाला, तबतौ विना भूजाओंके ही कुम्भकर्णको गरजताहुआ आता देखकर श्रीरघुनाथजीने अर्द्धचन्द्राकार अतितीक्ष्ण दो बाण लेकर इसके दोनो

चरणभी काट दिये, वह दोनो चरण बडे शब्दके साथ लंकाके द्वारपै जाकर गिरे ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ हाथपैर कटजानेपरभी वह अतिभयंकर कुम्भकर्ण बडवानल अग्निके समान सौ योजन चौडे मुखको फैलाकर गरजताहुआ श्रीरामचन्द्रजीके ऊपरको इसप्रकार दौडा, जैसे चन्द्रमाके ऊपर राहु दौडताहै, तब तौ श्रीरामचन्द्रजीने तीक्ष्ण हैं अग्रभाग जिनके ऐसें बाणोंसे कुम्भकर्णके सम्पूर्ण मुखको वेध दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ तबतौ कुम्भकर्ण बाणोंसे विधेहुए मुखसेही अतिभयंकर शब्द करके चिल्लाने लगा, तबतौ श्रीरामचन्द्रजीने सूर्य्यकी समान प्रकाशवान् अत्युत्तम, वज्रकी तुल्य ऐन्द्रबाणको तिस कुम्भकर्णका संहार करनेके निमित्त छोड़ा, उस बाणने राक्षसपति कुम्भकर्णका प्रकाशवान् कुण्डल और दाढोंकरके युक्त पर्वताकार शिर इसप्रकार काटडाला, जैसे कि—इन्द्रके वज्रने वृत्रासुरके शिरको काटाथा, वह कटाहुआ कुम्भकर्णका शिर लंकाके द्वारपै जाकर गिरा, और शरीर समुद्रमें जाकर गिरा ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ उस शिरने जाकर लंकाके द्वारका मार्ग रोकदिया, और शरीरने समुद्रमें नक्रादिका चूरा कर दिया, तब तौ देवता, ऋषि, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, यक्ष, गुह्यक अप्सराओंकरके सहित आकाशमें आकर श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगे, और परम प्रसन्न होकर आकाशमें पुष्पोंकी धारा वर्षाने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ उससमय शीघ्रही देवर्षि मुनिवर नारदजी आकाशसे उतरकर अपनी कान्तिसे दशोंदिशाओंको प्रकाशित करतेहुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके निमित्त "श्रीमन्नारायण ! नारायण ! नारायण !" इसप्रकार गान करते हुए आए, ॥ ३१ ॥ और नीलकमलकी तुल्य श्यामवर्ण, सुन्दर है शरीर जिनका, धनुषधारी, कुछ एक लाल और विशाल हैं नेत्र जिनके, ऐन्द्र अस्त्रोंकरके शोभायमान है भुजा जिनकी ऐसे, कृपायुक्त दृष्टिसे बाणोंकरके पीडित वानरोंकी ओर देखतेहुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके भक्तिपूर्वक गद्गदवाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले, कि—हे देवदेव ! जगन्नाथ !

परमात्मन् ! सनातन ! नारायण ! सर्वाधार ! विश्वसाक्षिन् ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! वास्तवमें तुम विशुद्ध ज्ञानस्वरूप हो, तथापि अपनी मायाकरके सब लोकोंको मोहित करतेहुए मायासेही मनुष्यावतारको धारण करके सुखदुःखादिमान्से प्रतीत होते हो ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! सबके हृदयोंके विषे स्थितभी आप मायासे आच्छादित होनेके कारण किसीको प्रतीत नहीं होते हो, और अपने ज्योतिःस्वरूप करके शुद्धान्तःकरणवाले पुरुषोंके अनुभवसे आते हो ॥ ३६ ॥ हे भगवन् ! श्रीरामचंद्रजी ! तुम योगनिद्रासे नेत्रोंको खोलतेहुए इस त्रिलोकीको रच देते हो, और योगनिद्राके समय नेत्रोंको मींचतेहुए तुम इस संपूर्ण त्रिलोकीका संहार करदेते हो ॥ ३७॥ जिसके विषे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रतीत होरहा है, और जिससे उत्पन्न हुआ है, तथा जिसके कारणसे प्रलयकालमें इस त्रिलोकीमें कुछभी नहीं रहता है, ऐसे मायासे परब्रह्मरूप आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३८ ॥ मुनीश्वर जिन आपको ही प्रकृति, पुरुष, काल, व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप जानते हैं,हे श्रीरामचन्द्रजी ! तिन आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! वेद आपको निर्विकार शुद्ध ज्ञानस्वरूपकरके वर्णन करता है, और वही वेद आपको सम्पूर्ण जगत्के आकार मूर्तिमान् (विराट्स्वरूप) भी कहता है ॥ ४० ॥ हे देव ! वेदवेत्ताओंको वेदमें परस्पर विरोध दिखाई देता है, इसकारण विद्वान्भी आपकी कृपादृष्टिके विना निश्चयको नहीं प्राप्त होते हैं, और जिनके ऊपर आपकी कृपादृष्टि होती है उनको तौ किसीप्रकार विरोध नहीं दीखता है, क्योंकि जो कुछ विकार देखनेमें आता है वह सब जगत्का है, और आप तौ निर्विकार हैं ॥ ४१ ॥ हे देव ! मायाकरके क्रीड़ा करतेहुए आपके विषे किञ्चिन्मात्रभी विरोध नहीं है, और जगत्के आकार करके जो आपकी प्रतीति है, वह मायाके कारण है जैसे मरु (निर्जल) देशमें सूर्य्यकी किरणैं मृगोंको भ्रमके कारण जलरूप प्रतीत होनेलगती हैं, तिसीप्रकार जगत्रूपसे आपकी जो प्रतीति है सो भी भ्रममूलक है, आप तौ सदा मायासे

पर आनन्दस्वरूप हो ॥ ४२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! भ्रमात्मक ज्ञानसे जिसप्रकार सीपीमें रजतकी कल्पना होजातीहै, तिसीप्रकार आपके विषे जो जगत्‌की कल्पना है सोभी भ्रमात्मक ज्ञानसेही है, और हे देव ! आपका जो मायासे पर निर्गुण रूप है उसकी प्रतीति तौ शुद्ध अन्तःकरणसे ही होतीहै ४३ ॥ सो वह आपका निर्गुणरूप इन स्थूल नेत्रोंके गोचर नहीं होसक्ता, इसकारण प्रवीण भक्तपुरुष अवतारोंके विषे धारण करे हुईं आपकी सगुणमूर्त्तियोंका भजन करतेहैं, और वह प्रवीण पुरुष उस भजनके प्रभावसे संसाररूपी समुद्रको तरही जातेहैं, परन्तु उस आपके भजनमेंभी काम क्रोध आदि बहुतसे विघ्नकर्त्ता हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह भक्तोंके चित्तोंको इसप्रकार भय दिखातेहैं जिसप्रकार चूहोंको बिल्लियें, परन्तु जो पुरुष अपने चित्तमें नित्य आपके नाम और रूपका स्मरण करते हैं, आपकी पूजा करनेमें तत्पर रहतेहैं. आपकी कथारूपी अमृतको पान करनेमें मनको लगाए रखते हैं, और तुम्हारे भक्तोंकी संगति करते हैं, हे श्रीरामचंद्रजी ! उन आपके भक्तोंको यह संसाररूपी समुद्र गौके चरणके समान हो जाता है॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इसकारणही हे श्रीरामचंद्रजी ! मैं आपके सगुणरूपका सदा हृदयमें ध्यान करके संसारबन्धनसे मुक्त होकर सम्पूर्ण देवताओंका पूज्य होकर त्रिलोकीमें विचरताहूं ॥ ४८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपने देवताओंके हितकी इच्छाकरके बड़ाभारी कार्य्य सिद्ध करा, जो–आज रावणका संहार करके भूमिका भार दूर करा ॥ ४९ ॥ अब कलको लक्ष्मणजी संग्राममें मेघनादका वध करैंगे, और परसौंको हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम रावणका संहार करोगे ॥ ५० ॥ और मैं सिद्धोंकरके सहित आकाशमें स्थित होकर

---

१ यहां कलपरसों शब्दसे नारदजीका शीघ्रतासे तात्पर्य्य है, क्योंकि वाल्मीकि और अग्निवेशरामायण (जिसका हमने सान्वयभाषानुवाद करा है) के देखनेसे तौ वह प्रतीत होता है कि लक्ष्मणजीने निरन्तर तीन दिन संग्रामकरके मेघनादको मारा है, यही वार्त्ता इस अध्यात्मरामायणके युद्धकाण्डमेंके नवमसर्गके ५७ सत्तावनवे श्लोकसे प्रतीत होतीहै और वाल्मीकि तथा अग्निवेशमें रावणका अठारहदिन संग्राम हुआ ऐसा लिखा है ॥

देखूँगा, और हे देवेश! अब मुझे अनुग्रह करके आज्ञा दीजिये, मैं देवलो-कको जाऊँगा ॥ ५१ ॥ इसप्रकार कहकर और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा लेकर भगवान् नारदऋषि देवताओंसे पूजित होतेहुए परम पावन ब्रह्मलोकको चलेगए ॥ ५१ ॥ इधर रावण अनायाससेंं (विनापरिश्रमके) ही श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे महाबली भ्राता कुम्भकर्णका मरण सुन मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरपड़ा, और फिर उठकर विलाप करनेलगा, इतनेहीमें पितृव्य (चचा) का मरण और पिताको अत्यन्त शोकाकुल सुनकर मेघनाद आया, और शोकसे घबड़ाएहुए पितासे कहने लगा, कि– हे पितः! आप तौ परम बुद्धिमान् हो, शोक किसकारण करतेहो! अब शोकको त्यागो, और हे राजेन्द्र! मुझ महाबली मेघनादको विना जीतेहुए हे देवान्तक! हेमहामते! आपको दुःख करनेका क्या अवसर है? हे राजन्! अब आप सब दुःखको त्यागकर स्वस्थ हूजिये ॥५३॥ ॥५४॥ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे पितः! मैं आपके सम्पूर्ण दुःखको दूर कर दूँगा, क्योंकि–अभी जाकर शत्रुओंका संहार करताहूँ, मैं शीघ्रही निकुम्भि-ला नामक गुफामें जाकर अग्निको विधिपूर्वक तृप्त करके और तिस अग्निसे-ही रथादि युद्धकी सामग्री लेकर शत्रुका अजेय (न जीतनेयोग्य) होजा-ऊँगा, इसप्रकार कह मेघनाद शीघ्रही निकुम्भिला गुफामें पहुँचा, और ला-लवर्णकी माला तथा लाल वस्त्र और लालही चन्दन धारण करके तिस नि-कुम्भिलागुफामें मौन होकर हवन करना प्रारम्भ करदिया ॥ ५७॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ विभीषण मेघनादके इस चरित्रको सुनकर श्रीरामचंद्रजीके पास आया, और उस दुष्टात्मा मेघनादका हवन करना आदि सब चरित्र कह सुनाया ॥ ६० ॥ और कहने लगा कि-- हे भगवन्! दुष्टात्मा मेघना-दका यह हवन यदि सम्पूर्ण सिद्ध होजायगा, तब हे श्रीरामचन्द्रजी! तिस मेघनादको देवता दैत्य आदि कोईभी नहीं जीत सकैगा ॥ ६१ ॥ इसका-रण मैं शीघ्रही जाकर लक्ष्मणजीके हाथसे उस मेघनादको मरवादूँगा, सो आप लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेके निमित्त आज्ञा दिजिये, यह बलवानोंमें

अग्रगण्य आपके भ्राता लक्ष्मणजी निःसन्देह तिस मेघनादका संहार करैंगे ॥ ६२ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले, कि--हे विभीषण ! सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार करनेवाले ऐन्द्र महाअस्त्रसे तिस शत्रु मेघनादका वध करनेके निमित्त मैंही जाऊँगा ॥ ६३ ॥ तब तौ विभीषण श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा, कि--हे भगवन् ! यह सिवाय लक्ष्मणके और किसीसे नहीं मारा जायगा, क्योंकि पहिले ब्रह्माने कह दिया है, कि--इस दुष्टात्माका वध वही करसकैगा, जो बारह वर्षपर्य्यन्त निद्रा और भोजनका त्याग करके रहैगा, सो हे भगवन् ! लक्ष्मणजी जबसे आपके साथ अयोध्यापुरीसे निकल कर आए हैं, हे रघुनाथजी ! उस दिनसे आपकी सेवा करनेमें तत्पर होकर निद्राभोजन आदिको जानतेभी नहीं, यह सब मैं जानताहूँ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सो हे भगवन् ! शीघ्रतासे लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये, यह साक्षात् पृथ्वीके भारको धारण करनेवाले शेषजी (लक्ष्मण) निःसन्देह उसका वध करैंगे ॥ ६७ ॥ हे भगवन् ! आप साक्षात् जगत्पति नारायण हैं, और लक्ष्मणजी साक्षात् शेष हैं, आप दोनो पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त संसाररूपी नाटकके सूत्रधार (मुख्य कारण) हैं ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी कहतेहैं, कि--हे पार्वति ! श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार विभीषणके वचन सुनकर कहने लगे, कि--हे विभीषण ! मैं उस तामसी मेघनादकी संपूर्ण मायाको जानता हूँ, वह शूर महाबली मेघनाद ब्रह्मास्त्रका जाननेवाला और बड़ा मायावी है, और जिसप्रकार मेरी सेवा करनेके निमित्त लक्ष्मणने निद्रा भोजन आदिको त्याग रक्खा है, सोभी मैं जानता हूँ ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ और यह वार्ता जानकरही होनहार कार्यकी कठिनाईके कारण मैं मौन होकर बैठा हूँ, इसप्रकार विभीषणसे कहकर परम ज्ञानी श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे कहने लगे, कि--हे साधो लक्ष्मण ! बहुतसी वानरोंकी

सेनाको लेकर, और हनुमान् आदि संपूर्ण सेनापतियोंको साथमें लेकर जाओ, और रावणके पुत्र मेघनादका संहार करो ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह रीछोंका राजा जाम्बवान् अपनी सेनाकरके सहित, और विभीषण अपने मंत्रियोंकरके सहित तुम्हारे साथ जायँगे ॥ ५ ॥ क्योंकि--विभीषण उस स्थानकी गुफा मार्गको भलीप्रकारसे जानतेहैं; इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके वचनको सुनकर भीमपराक्रम लक्ष्मणजी विभीषणको साथ लेकर और अपने दूसरे श्रेष्ठ धनुषको धारण करके फिर श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंको स्पर्श करके परमप्रसन्न लक्ष्मणजी कहने लगे, कि--हे भगवन् ! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण मेघनादके शरीरको विदीर्ण करते हुए दूसरीओरको निकलकर भोगवती नामक पातालगंगामें स्नान करनेके निमित्त पाताललोकको जायँगे, इसप्रकार कहकर तिन सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीने श्रीरामचंद्रजीकी परिक्रमा करके प्रणाम करा, और मेघनादका संहार करनेके निमित्त शीघ्रतासे चरण बढ़ातेहुए चलदिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ बहुत सहस्र वानरोंको साथमें लेकर हनुमान्जी और अपने मंत्रियोंकरके सहित विभीषणभी लक्ष्मणजीके पीछे पीछे गये ॥ १० ॥ जाम्बवान् आदि रीछभी अति शीघ्रतासे लक्ष्मणजीके पीछे चलदिये, इसप्रकार लक्ष्मणजीके वानरोंकी सेनाके साथ निकुम्भिला गुफाके समीपमें जाकर मेघनादकी रक्षा करनेके निमित्त स्थित राक्षसोंकी सेनाको देखकर दूरसेही धनुषको बढ़ाकर परमपराक्रमी लक्ष्मणजी तयार होगये, और वीर अंगदकरके सहित जाम्बवान् भी तयार होगया, तब राक्षसपति विभीषण लक्ष्मणजीसे कहने लगा, कि--हे वीर ! मेघनादके रक्षक राक्षसोंको देखिये, यह जो मेघकी समान श्यामवर्ण राक्षसोंकी सेना दीख रही है, इस बड़ी भारी सेनाको नष्ट करनेका प्रयत्न करिये ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ इस राक्षसोंकी सेनाको नष्ट करनेपर वह रावणका पुत्र मेघनादभी देखनेमें आवैगा, जबतक मेघनादका यज्ञ समाप्त नहीं होताहै तिससे प्रथमही उसके सन्मुख जाकर युद्ध करनेका प्रारंभ करदीजिये ॥ १५ ॥ हे वीर ! हिंसाकोही धर्म माननेवाले इस दुष्टात्माका संहार

कारिये, शुभलक्षण लक्ष्मणजी इसप्रकार विभीषणके कथनको सुनकर मेघनादकी सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे, और वानर तथा सेनापतिभी पत्थर पर्वतोंके शिखर तथा वृक्ष चारोंओरसे फेंककर राक्षसोंको कुचलने लगे, तबतौ राक्षसभी वानरोंको फरसोंकी धारोंसे, तीक्ष्ण बाणोंसे, तलवारोंसे, भालोंसे और तोमरोंसे मारनेलगे, उससमय बड़ा घोर शब्द हुआ, और वह वानर और राक्षसोंका संग्रामभी बड़ा भयंकर हुआ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ उस समय मेघनाद अपनी सम्पूर्ण सेनाको नष्ट होताहुआ देखकर हवनको त्यागके शीघ्रही निकुम्भिलागुफाके बाहर निकल आया ॥ २० ॥ और रथपै चढ़ हाथमें धनुष लेकर बडे क्रोधको प्राप्त हुआ, और रणभूमिमें युद्ध करनेके निमित्त लक्ष्मणजीको बुलाकर कहने लगा ॥ २१ ॥ कि—हे लक्ष्मण ! मैं मेघनाद हूँ अब मुझसे तुम जीतेहुए छूटकर न जाओगे, इतनेहीमें तहाँ विभीषणको देखकर बड़े कठोर वचनोंसे कहनेलगा, कि—हे विभीषण ! तू राक्षसकुलमें पैदाहुआ, और तहाँहीं वृद्धिको प्राप्तहुआ, तिसपरभी मेरे पिताका साक्षात् भ्राता होकर तू अपने सम्पूर्ण परिवारको छोड़कर शत्रुओंका सेवक बन गयाहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! पापी ! तू मुझे पुत्र जानकरके भी क्यों द्रोह करताहै ? इस प्रकार कहकर मेघनाद लक्ष्मणजीके पीछे खड़ेहुए पवनकुमार हनुमानजीको देखकर प्रकाशमान हैं अनेक शस्त्र और खड्ग जिसमें ऐसे बड़ेभारी रथपर बैठाहुआ अपने बड़े भारी धनुष्यको उठाकर उसकी प्रत्यंचाको खैंचकर बड़ा घोर शब्द करने लगा, ॥ २४ ॥ २५ ॥ और इसप्रकार बोला, कि हे वानरो ! आज मेरे बाण तुम्हारे प्राणोंको पियेगें तबतौ दुष्टोंको नष्ट करनेवाले दशरथकुमार लक्ष्मणजीने धनुषके ऊपर बाण चढ़ाकर क्रोधी सर्पकी समान स्वास लेकर मेघनादके ऊपर बाण छोड़ा, तबतौ मेघनादने लक्ष्मणजीकी ओरको देखा ॥ २६ ॥ २७ ॥ और इंद्रके वज्रकी समान चोट करनेवाले लक्ष्मणजीके बाणोंसे घायल होकर क्षणमात्र मूर्च्छित होगया, और फिर सावधान होकर क्रोधसे लाल लाल नेत्र करके मेघनाद लक्ष्मण-

जीके सन्मुख आया, और धनुषमें बाणोंको चढ़ाकर लक्ष्मणजीसे इसप्रकार बोला, कि—अरे लक्ष्मण ! यदि तैंने पहिले युद्धमें मेरा पराक्रम नहीं देखा है, तौ ले आज तुझको दिखाताहूँ, अब मेरे सामने युद्धमें खड़ा रह, इसप्रकार कहकर मेघनादने लक्ष्मणजीके ऊपर सात बाण छोड़े ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और तीखी धारवाले दशबाणोंसे हनुमान्‌जीको ताड़न करा, फिर तिस महाबलीने दुगुने क्रोधमें होकर विभीषणके ऊपर सौ बाण छोड़े, और लक्ष्मणजीने भी शत्रु मेघनादको बाणोंकी वर्षासे ढकदि-या ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणजीके बाणोंसे विधाहुआ उस मेघनादका कांचनकी समान कान्तिमान् कवच (बखतर) कटगया और तिल तिल होकर रथके ऊपर तथा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३४ ॥ तब तौ मेघनादने क्रोधमें होकर संग्राममें भीम पराक्रम वीर लक्ष्मणको हजार बाणोंसे वेध दिया ॥ ३५ ॥ तब तौ लक्ष्मणजीकाभी दिव्य कवच टुकड़ेटुकडे होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, इसप्रकार वह दोनों परस्पर बदला लेनेलगे ॥ ३६ ॥ दोनों क्रोधके मारे वारंवार स्वासें लेतेहुए भयंकर युद्ध करनेलगे, दोनोंके शरीर बाणोंसे भरगये और रुधिरसे भीग गये ॥ ३७ ॥ वह दोनों वीर ब-हुत समयतक तीक्ष्ण बाणोंसे परस्पर युद्ध करतेरहे, परन्तु उन दोनों महाब-लवानोंमेंसे किसीकीभी जय पराजय (जीत हार) नहीं हुई ॥ ३८ ॥ इस अवसरमेंही वीर लक्ष्मणजीने पांच बाण छोड़कर मेघनादके सारथी, घोड़े और रथका चूर्ण करदिया ॥ ३९ ॥ और अपने हाथका लाघव (शीघ्र-ताकी सफाई) दिखलाकर मेघनादका धनुष काट दिया, तब तौ मेघनादने तत्कालही दूसरा मजबूत धनुष लेकर प्रत्यंचा चढ़ाई, लक्ष्मणजीने तीन बा-णोंसे उसको भी काट दिया; और धनुष कटनेके अनंतर उस मेघनादको भी अनेक बाणोंसे घायल करदिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तबतौ परमपराक्रमी मेघनादने फिर दूसरा धनुष लेकर सूर्यकी तुल्य प्रकाशमान् सौ बाणोंसे लक्ष्मणजीको वेध दिया ॥ ४२ ॥ फिर बहुतसे बाणोंको लेकर मेघनादने सम्पूर्ण वानरोंको घायल करके दिशाओंको भी बाणोंसे तर दिया, तब तौ

लक्ष्मणजीने मेघनादका संहार करनेके निमित्त ऐन्द्र बाण लिया और उस बाणको चढ़ाकर अपने दृढ़ और कठोर धनुषको कान पर्यन्त खैंच लिया, और उससमय वीर लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करतेहुए कहने लगे; कि—यदि धर्मात्मा दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ, और त्रिलोकीमें अद्वितीय हैं, तौ हे बाण! तू इस रावणके पुत्र मेघनादका संहार कर ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इसप्रकार कहकर वीर लक्ष्मणजीने कानपर्यन्त खेंचेहुए उस कुटिल बाणको संग्राममें मेघनादके ऊपर छोड़ा ॥ ४६ ॥ उस बाणने प्रकाशवान् कुंडलोंकरके युक्त और मुकुटकरके सहित मेघनादके शिरको काटकर शरीरपरसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४७ ॥ तब तौ देवता प्रसन्न होकर श्रीरामचंद्रजीके गुणोंका कीर्तन करनेलगे और वारंवार लक्ष्मणजीकी प्रशंसा करके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४८ ॥ देवता और महर्षियोंकरके सहित भगवान् इन्द्र उस-समय बड़े हर्षको प्राप्त हुए, आकाशमें देवताओंके नगाड़ेका शब्द सुनाई देनेलगा ॥ ४९ ॥ आकाश निर्म्मल होगया, विश्वको धारण करनेवाली पृथ्वी स्थिरताको प्राप्त हुई, चारों ओर जिनके जय जय शब्द होरहा है ऐसे लक्ष्मणजीने मेघनादका मरण हुआ देखकर संग्राममें श्रमरहित होकर शंखकी ध्वनि करी, फिर प्रभुलक्ष्मणजीने सिंहकी समान गर्जकर धनुषकी प्रत्यंचामें टंकोर देकर बडाभारी शब्द करा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तिस शब्दको सुनकर वानर परम प्रसन्न और श्रमरहित होगये, फिर प्रसन्न है मन जिनका ऐसे स्तुति करतेहुए वानरोंकरके सहित, और सेनापतियोंकरके सहित लक्ष्मणजी चित्तमें प्रसन्न होतेहुए श्रीराचंद्रजीके समीप आये, और हनुमान् विभीषण करके सहित लक्ष्मणजीने ज्येष्ठ भ्राता रघुवंशशिरोमणि साक्षात् सर्वव्यापी नारायणरूप श्रीरामचंद्रजीको नम्रतापूर्वक प्रणाम करा, और कहनेलगे कि-हे रघुकुलशिरोमणि आपके अनुग्रहसे आज संग्राममें रावणका पुत्र मेघनाद मारा-गया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ऐसा लक्ष्मणजीसे सुनकर रघुनाथजीने उनको प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगाया, और मस्तकमें चुम्बन कर प्रसन्न होके

स्नेहपूर्वक इसप्रकार कहने लगे ॥ ५५ ॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम्हे धन्यवाद है, यह आपने बड़ा दुष्कर कर्म्म सिद्ध किया, मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हूँ हे शत्रुनाशक ! तुमने मेघनादको क्या जीता, सम्पूर्ण संग्रामही जीतलिया॥ ५६॥ जो तीन दिन तीन रात्रि युद्ध करके तुमने उस वीर मेघनादका अतिकठिनसें संहार करा, आज मैं शत्रुहीन होगया, अब केवल शत्रु रावण पुत्रका शोक होनेके कारण लंकामेंसे निकलकर मुझसे युद्ध करनेको आवैगा, तव मैं उस दुष्ट रावणका संहार करूँगा, इधर अब रावण लक्ष्मणजीके हाथसे महाबली मेघनादका मरण सुनकर मूच्छित होकर पृथ्वीपै गिरपड़ा और फिर उठकर पुत्रके शोकसे अतिदीनताको प्राप्त हुआ रावण विलाप करनेलगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ पुत्रके गुणकर्म्मोंको स्मरण करके वारंवार विलाप करताहुआ कहने लगा, कि—आज सम्पूर्ण देवगण, लोकपाल और महर्षि मेघनादका मरण सुनकर सुखपूर्वक निर्भय शयन करैंगे, इत्यादि अनेकप्रकारसे पुत्रका स्मरण कर करके विलाप करनेलगा, ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ फिर कुछ देरके अनन्तर राक्षसपति रावण वडा क्रोधित होकर संग्राममें शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छाकरके सम्पूर्ण राक्षसोंसे युद्धके निमित्त कहने लगा ॥ ६२ ॥ फिर वह पुत्रके मरणसे अतिदुःखित हुआ शूर रावण क्रोधवशीभूत हो कुछ बुद्धिमें विचार कर सीताको मारनेके निमित्त दौडा ॥ ६३ ॥ तवतौ हाथमें तलवार लेकर क्रोधित रावणको आताहुआ देखकर राक्षसियोंके मध्यमें बैठीहुई सीता भय और शोकसे व्याकुल होगई ॥ ६४ ॥ इसी अवसरमें परमबुद्धिमान् शुद्धान्तःकरण रावणका सुपार्श्वनाम धारण कर्ता बुद्धिवाला मंत्री रावणसे इसप्रकार कहने लगा ॥ ६५ ॥ कि—हे राजन् ! तुम साक्षात् कुवेरके भ्राता वेदविद्याके पारङ्गम, यज्ञान्त स्नानकरनेवाले, अपने कर्म्म करनेमें तत्पर, अनेक गुणसम्पन्न, तिसपरभी रावणनामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होकर यह क्या अनुचित निन्दनीय कर्म्म करतेहो ? जो स्त्रीका वध करनेको तयार होगये, आप तौ हमलोगोंके साथ युद्धमें राम और लक्ष्मणको मारकर शीघ्रही सीताको

पाओगे, इसप्रकार सुपार्श्व मंत्रीके कहनेसे रावण लौटआया ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ फिर वह दुष्टात्मा मित्र मंत्रीके धर्मानुकूल वचनको सुनकर शीघ्रही शोक-करताहुआ अपने स्थानको चलागया, और फिर वह मूढबुद्धि रावण मंत्रि-गणोंकरके सहित सभास्थानमें आया ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितराम-स्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

महादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति ! यह रावण सभामें राक्षसमंत्रियों-के साथ विचार करके, जो कुछ राक्षस बचे थे तिनको साथ लेकर श्रीरामच-न्द्रजीसे इसप्रकार युद्ध करनेको चल दिया, जैसे पतङ्ग बहुतसे पतङ्गोंको साथ लेकर दीपककी ज्वालाके ऊपरको जाता है. सो श्रीरामचन्द्रजीने राक्ष-सोंकरके सहित रावणको आताहुआ देखकर वह जो कुछ राक्षस थे सबको संग्राममें मारडाला ॥ १ ॥ २ ॥ और अपने आप रावणभी हृद-यमें श्रीरामचन्द्रजीका बाण लगनेसे घायल होकर शीघ्रही अपने दशोंमुख नीचेको करेहुए लंकामें चलागया ॥ ३ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीका और हनुमानका बडाभारी अमानुष पुरुषार्थ देखकर रावण शीघ्रही शुक्राचार्य्यके समीप गया ॥ ४ ॥ और नमस्कार करके हाथ जोड़कर रावण शुक्राचा-र्य्यसे कहने लगा, कि—हे भगवन् ! रामचन्द्रने इस इसप्रकार राक्षसोंके समूहोंकरके सहित लंका नष्ट करदी, बड़ेबड़े बली राक्षस और मेरे पुत्र बान्धव सब मारडाले, हे भगवन् ! आपसे दयालु सत् गुरु होनेपरभी यह दुःखका समूह मुझे किसकारणसे प्राप्त होता है? इसप्रकार निवेदन करनेपर दैत्य गुरु शुक्राचार्यजी रावणसे बोले, कि—हे रावण ! तू एकान्तमे जाकर यत्नपूर्वक हवन कर ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदि तेरे हवन करनेमें विघ्न नहीं होयगा तौ अग्निमेंसे बडाभारी रथ—घोडे—धनुष—तरकस—और बाण उत्पन्न होंगे, इनको प्राप्त होकर तू अजेय [किसीके भी जीतनेमें न आनेवाले] होजाओगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ और मेरे उपदेश करेहुए मंत्रोंको ले ग्रहण कर और

शीघ्रही जाकर हवन कर. इसप्रकार शुक्राचार्य्यके कहनेपर राक्षसपति रावणने शीघ्रही जाकर अपने स्थानमेंही एकपातालकी समान गुफा बनवाई, और लङ्काके चारोंओरके दरवाजोंके यत्नपूर्वक किवाड बन्द करवादिये, ॥ १० ॥ ११ ॥ और अभिचारकर्म्म (मारणउच्चाटनादि) में जो कुछ सामग्री कही हैं, उन सबको होम करनेके निमित्त इकट्ठा करके, गुफामें चलागया, और एकान्तमें चूपचाप बैठकर हवन करनेलगा ॥ १२॥ रावणका भ्राता विभीषण बडाभारी धूम उठताहुआ देखकर भयसे व्याकुल होगया, और वह धूम श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया ॥ १३ ॥ और कहने लगा कि—हे श्रीरामचन्द्रजी! देखो रावणने होम करनेका प्रारम्भ करदिया, सो यदि हवनको समाप्त कर लेगा तौ उसको कोईभी नहीं जीत सकैगा, ॥ १४ ॥ इसकारण शीघ्रही हवनमें विघ्न करनेके निमित्त वानरोंको भेजिये, सो श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार विभीषणके कहनेको अंगीकार करके सुग्रीवकी संमतिसे अंगद और हनुमान् आदि महाबली वानरोंको आज्ञा दी, सो वह दश करोंड़ वानर चल दिये, और उन्होंने लंकाके परकोटेको उलांघकर रावणके मन्दिरमें जाकर पहिले तौ क्षणमात्रमे रावणके मंदिरको रक्षा करनेवाले राक्षसोंका चूराकर दिया फिर हाथी और घोडोंका प्राणान्त करडाल यह सब कौतुक तौ रात्रि २ मेंही होचुका ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ इतनेहीमें प्रातःकालके समय सरमानामक विभीषणकी स्त्री ने हाथके संकेत (इशारे) से हवनका स्थान बतादिया ॥ १८ ॥ सो अंगदने गुफाके ऊपर ढकेहुए पत्थरको पैरोंसे कुचलकर चूरा कर दिया, और वह महाबली अंगद गुहाके भीतर चलागया ॥ १९ ॥ और भी सब वानर अंगदकी आज्ञाके अनुसार शीघ्रतासे घुसगए, और तहाँ नेत्रोंको मींचें हुए दृढ़ आसन मारकर बैठेहुए रावणको देखकर, तहाँ वानर बडा कोलाहल करने लगे, रावणके सेवकोंको मारने लगे; और हवनकुण्डके चारोंओर धरीहुई सामग्रीको इधर उधर फेंकने लगे ॥ २० ॥ २१ ॥ वानरोंमें अग्रगण्य महाबली हनुमान्जीने क्रोध पूर्वक रावणके हाथमेंसें बलपूर्वक (जबरदस्ती) सुवा छीन

लिया, और उस स्रुवेसे जल्दी जल्दी रावणके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ २२ ॥ सम्पूर्ण वानर दाँतोंसे काटने लगे, हवनकी लकडियें उठाउठाकर रावणके चारोंओरसे मारने लगे, परन्तु रावणने जयकी इच्छासे अपने ध्यानको नहीं छोड़ा ॥ २३ ॥ इतनेहीमें अंगद रणवासके महलमें जाकर अत्यन्तही शीघ्र रावणकी स्त्री मंदोदरीकी चोटी पकड़कर खैंचलाया ॥ २४ ॥ और रावणके सामनेही अनाथकी समान विलाप करतीहुई तिस मन्दोदरीकी रत्नजटित (जरीके कामकी) चोली अंगदने फाड डाली ॥ २५ ॥ उस चोलीमें रत्नोंके समूह और मोती छूटकर गिरपडे, तथा नानाप्रकारके रत्नोंसे जडीहुई मन्दोदरीकी कमरकी जंजीर टूटकर गिरगई ॥ २६ ॥ और रावणके सामनेही मन्दोदरीकी कमरके लहँगे कानाडा (खैंचा सैंचीमें) खुलगया, सम्पूर्ण आभूषण चारोंओर टूटटूटकर गिरपडे ॥ २७ ॥ और रावणके यहाँ जो देवकन्या और गन्धर्वकन्या थीं, उनकीभी रावणके सामने लाकर प्रसन्नमुख अंगदने वही दशा करी जो मन्दोदरीकी करी थी, उससमय मन्दोदरी रावणके सन्मुख बडा रुदन करनेलगी ॥ २८ ॥ और दीन हो करुणस्वरसे विलाप करतीहुई रावणसे कहने लगी, कि—अरे ! तू बडा निर्लज्ज है, जो तेरे सामनेही तेरे शत्रु तेरी स्त्रीके चोटेको पकडकर खैंच रहे हैं, तथापि तुझे लज्जा नहीं आती और अपना हवन करनेमेंही लगरहा है, अरे ! जिसके देखतेहुए दुष्ट शत्रु जिसकी स्त्रीको ताडन करैं, उसका तौ वहाँही मरण है, क्योंकि—ऐसे जीवित रहनेसे तौ मरण होजानाही श्रेष्ट है, हा ! मेघनाद ! कष्ट है ! जो तेरी माताको वानर क्लेश दे रहे हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यदि तू जीवित रहता तौ यह दुःख मुझे काहेको उठानापडता ? और मेरे पतिने तौ केवल एक अपने जीवनकी आशा करके स्त्री और लज्जा दोनोंको त्याग दिया ॥ ३२ ॥ राजा रावण इसप्रकार मंदोदरीका विलाप सुनकर खडा होगया, और खड्ग लेकर "मंदोदरीको छोड दे" इसप्रकार कहा और फिर रावणने सावधान होकर अंगदकी कमरमें खड्गका प्रहार करा, तबतौ सब वानर छोड छोड कर भाग

गए, और उस बडे भारी हवनको विध्वंस करगए ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर सब वानर प्रसन्न होकर बैठगए, इधर जब वानर चलेगए तब रावण अपनी स्त्रीको समझताहुआ कहनेलगा॥ ३५॥ हे भद्रे! यह जगत् दैवाधीन है, इस कारण जीवताहुआ पुरुष क्या नहीं देखताहै ? अर्थात् जबतक प्राणी जीवित रहताहै, तबतक प्रारब्धानुकूल दुःख सुख सबही देखनेमें आतेहैं, हे विशालनेत्रे ! जो कुछ भवितव्य है उसको कोई नहीं दूर करसक्ता, ऐसा विचार कर शोकको त्याग दो ॥ ३६॥ हे प्रिये ! यह शोक अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला और ज्ञानको नष्ट करनेवाला है, और इन शरीरआदि अनात्म (असत्) पदार्थोंके विषे अहंबुद्धि (मैं शरीर हूँ, इत्यादिरूप अहंकार) भी अज्ञानसे ही होतीहै ॥ ३७ ॥ और उस अहंबुद्धिसेंही पुत्र-स्त्री-आदि संबन्ध होताहै, फिर संसारबन्धनके हेतुभूत कर्म्मोंकी उत्पत्ति होतीहै, हर्ष-शोक-भय-क्रोध-लोभ-मोह-इच्छा-जन्म-मरण-और वृद्धा आदि अवस्था यह सब अज्ञानसेही होतेहैं, और आत्मा तो केवल-शुद्ध-मुक्त-निर्लेप-आनन्दरूप-ज्ञानस्वरूप और सम्पूर्ण सुखदुःखादि भावोंकरके रहित-तथा सर्वव्यापी है ? तिस सत्स्वरूप आत्माका न किसीसे संयोग होताहै, और न किसीसे वियोग होताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसकारण हे सुन्दरि ! अपने आत्माका इसप्रकार वास्तविक रूप जानकर शोकको त्याग दे, मैं अभी जाता हूँ, सो यातो मैंही रामलक्ष्मणको मारकर आऊंगा, नहीं तो वहही अपने वज्रकी समान बाणोंसे मुझे विदीर्ण करेंगे तौभी मैं उनके परमपदको ही प्राप्त होऊंगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ और हे प्रिये ! जब मेरा श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे प्राणान्त होजायगा, तब तू मेरी पारलौकिकक्रिया (प्रेतक्रिया) करना, और फिर सीताको मारकर मेरे मृतकशरीरके साथ चितामें प्रवेश करके अपने भी प्राणोंको त्याग देना ॥ ४३ ॥ इसप्रकार तिस रावणके वचनको सुनकर मंदोदरी अत्यन्त दुःखित हुई, और कहने लगी, कि—हे नाथ ! मेरा सत्य वाक्य सुनो, और उसके ही साथ वर्त्ताव करो ॥ ४४ ॥ हे नाथ ! रघुनाथजी तुमसे और

अन्य राक्षसोंसेभी कभी नहीं जीतनेमें आवेंगे, श्रीरामचंद्रजी साक्षात् देववर्य और प्रकृति तथा जीवोंके प्रेरक हैं ॥ ४५ ॥ और यही श्रीरामचंद्रजी पहिले कल्पमें मत्स्यरूप धारण करके वैवस्वतमनुकी संपूर्ण अपत्तियोंसे रक्षा करनेवाले हुए थे, क्योंकि रघुनाथजी सदाहीं भक्तोंकी रक्षा करतेहैं॥ ४६ ॥ और इनही श्रीरामचंद्रजीने पहिले समुद्र मथनके समयमें सौयोजन चौड़ा कच्छपका रूप धारण करके मन्दराचल पर्वतको पीठपर धारण कराथा, ॥ ४७ ॥ इनही महात्मा श्रीरामचंद्रजीने किसी समयमें पृथ्वीका उद्धार करने के निमित्त वराहावतार धारण करके अतिदुराचारी हिरण्याक्षका वध करा था ॥ ४८ ॥ इनही रघुनाथजीने पूर्वकालमें नृसिंहावतार धारण करके त्रिलोकीके कण्टक (शत्रु) हिरण्यकशिपु दैत्यका संहार करा था॥ ४९॥ इनही श्रीरामचंद्रजीने वामनावतार धारण करके तीन चरणोंसे त्रिलोकीको नापकर, और राजाबलिको बांधकर वह त्रिलोकी अपने सेवक इंद्रको समर्पण करदी थी, जब क्षत्रियरूपधारी, राक्षसोंका बहुतसा पृथ्वीपर भार होगयाथा तब इनही श्रीरामचंद्रजीने परशुरामावतार धारण करके अनेक वार पृथ्वीको जीतके कश्यप मुनिको देदीथी॥ ५०॥ ५१ ॥ उनही प्रकृतिसे पर परमात्माने इस समय तुम्हारा संहार करनेके निमित्त रघुकुलमें जन्म लेकर मनुष्यभाव स्वीकार करा है ॥ ५२ ॥ सो तुमने उनही श्रीरामचंद्रजीकी स्त्री सीता वनमेंसे बलपूर्वक (जबरदस्ती) क्यों हरण करी थी? प्रतीत होता है, कि– तुमने पुत्र मेघनादका और अपना नाश करनेके निमित्तही सीताका हरण करा था ॥ ५३ ॥ अब तुम सीताको तो श्रीरामचंद्रजीके पास भेज दो, और लंकाका राज्य विभीषणको देकर दोनोजन वनको चलें ॥ ५४ ॥ इसप्रकार मंदोदरीका वचन सुनकर रावण कहने लगा, कि–हे सुन्दरी! संग्राममें रामचंद्रके हाथसे पुत्र, भ्राता और राक्षसोंके समूहको मरवाकर वनमें रहता हुआ किसप्रकार जीवनको धारण करूंगा? इस कारण अब तो मैं श्रीरामचंद्रके साथ युद्धही करूँगा; क्योंकि यदि रामचंद्रके अत्यंत शीघ्र चलनेवाले बाणोंसे विदीर्ण होकर, मरणको प्राप्त होऊँगा, तबभी

विष्णुके परमपद (वैकुंठ) को ही जाऊँगा, मैं जानता हूँ, कि-रघुनाथजी साक्षात् विष्णुरूप हैं, और यहभी जानता हूँ, कि- जानकी साक्षात् लक्ष्मीरूप है, और जानकर ही जनककुमारी सीताको मैं बलपूर्वक हरण करके लाया हूँ ॥ ५७ ॥ और हे प्रिये ! श्रीरामचंद्रजीके हाथसे मरणको प्राप्त होकर तुमको और संपूर्ण संसारको त्यागकर अपने मृतकबांधवोंके साथ परमपदको प्राप्त होऊँगा ॥ ५८ ॥ जिस परमानंदरूप शुद्धगतिको मुमुक्षु पुरुष सेवन करते हैं उसही गतिको मैं श्रीरामचंद्रजीके हाथसे संग्राममें मरण होनेके अनंतर प्राप्त होऊँगा ॥ ५९ ॥ हे प्रिये! इस संसारमें राक्षस-देहसे करे हुए पापोंको अंतकालमें श्रीरामचंद्रजीका स्मरण और उनकी मूर्तिका दर्शन करनेसे दूर करके परम दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त होऊँगा ॥ ६० ॥ हे प्रिये! अविद्या (अपने वास्तविक स्वरूपका विस्मरण) १ अस्मिता (असत्शरीरआदिकोही आत्मा जानना) २, राग ३, द्वेष ४, और अभिनिवेश (मरणका त्रास) ५, यह पांच क्लेशही हैं तरंगें जिसमें, और सुखदुःखरूप हैं भवँर जिसमें और स्त्री, पुत्र, बान्धव, धन, तथा कुटुंबी ही हैं मत्स्यआदि जिसमें, और क्रोधही है वड़वानल अग्नि जिसमें, और कामदेवही है जल जिसमें, ऐसे इस असार समुद्रको तरकर मैं श्रीरामचंद्रजीकोही प्राप्त होऊँगा ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूप कृतभाषाटीकायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि-हे पार्वति ! इसप्रकार प्रेमयुक्त वचनोंसे उस समय रानीमंदोदरीको समझाकर रावण संग्राममें श्रीरामचंद्रजीसे युद्ध करने के निमित्त चल दिया, दृढ़ रथमें बैठकर रावणने अनेक राक्षस साथमें ले-लिये, उस रथमें सोले पहिये थे, और वह रथ रक्षा करनेके निमित्त चर्म्मसे मढाहुआ और कूबरसहित था, पिशाचोंकी समान मुखवाले भयंकर गर्दभ उसमें जुतेहुए थे, अतएव उसको देखकर सबको भय लगता था, वह

रथ सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंकरके सहित और सबप्रकारकी युद्धकी सामग्री करके युक्त था ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ उस रथपर बैठकर महाभयानक है आकार जिसका ऐसा वह रावण रणभूमिमेंको चलदिया, सो उस अतिनिर्दयी भयंकर रावणको आताहुआ देखकर श्रीरामचंद्रजीकी वानरोंकी सेना उससमय भयभीत होगई ॥ ४ ॥ ५ ॥ इतनेहीमें हनुमान्‌जी कूदकर रावणसे युद्ध करनेके निमित्त आगये, और आतेही परमपराक्रमी हनुमान्‌जीने रावणके हृदयमें बड़ी जोरसे एक दृढ़ घूंसा मारा, उस घूंसके लगनेसे रावण घुटुओंके बल रथमें गिरगया, और मूर्च्छित होगया, फिर दो घडीके अनंतर उठकर हनुमान्‌जीसे कहने लगा, कि—मैं जानता हूँ तुम बड़े शूर हो ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ तब तो हनुमान्‌जी कहने लगे, कि—अरे रावण! मेरी शूरताको धिकार है जो तू अबभी जीता रहगया; अच्छा रावण! अब पहिले तू मेरे हृदयमें एक घूंसा मार, फिर पीछेसे मैं तेरे एक घूंसा मारूंगा, तिस घूंसेके प्रहारसे निःसन्देह तू अपने प्राणोंको यहाँही छोड़देगा, रावणने इस बातको स्वीकार करा, और पहिले हनुमान्‌जीके हृदयमें एक घूंसा मारा, ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ तिस घूंसेके लगनेसे हनुमान्‌जीके नेत्र घूमने लगे और किंचिन्मात्रमूर्च्छा आगई, फिर चेतन होकर, हनुमान्‌जी रावणके मारनेके निमित्त उद्यत हुए ॥ ११ ॥ तब तो राक्षसपति रावण भयभीत होकर हनुमान्‌जीके आगेसे दूसरे स्थानपर युद्ध करनेको चलागया, फिर हनुमान्, अंगद, नल, और नील, ये चारों इकट्ठे हुए और अपने सन्मुख अग्निवर्ण, सर्परोमक, खड्गरोमक, तथा वृश्चिकरोमक, इन चार वीर राक्षसोंको देखकर मारने लगे, और एक एकने क्रमसे एक एकको मारा, इस प्रकार उन चारों वानरोंने परम पराक्रमी उन चारों राक्षसोंको मारकर अलग २ सिंहकी समान गर्जना करी, फिर श्रीरामचंद्रजीके समीप आगये, तबतो अत्यंत क्रोधको प्राप्त हुआ अपने ओठोंको काटता हुआ, और नेत्रोंको फैलाताहुआ दुष्ट रावण श्रीरामचंद्रजीके ही ऊपरको दौड़ा-

और रथपर स्थित तिस रावणने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर महाभयंकर, वज्रकी समान सौबाणोंकी इसप्रकार वर्षा करी, जैसे मेघ धाराओंकरके जलको वर्षाता है, और श्रीरामचंद्रजीके आगे खडेहुए संपूर्ण वानरोंकोंभी पीडित करने लगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब तौ श्रीरामचंद्रजीके सावधान होकर रावणके ऊपर रणमें सुवर्ण करके भूषित अग्निकी समान प्रकाशवान् बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥ उस समय रावणको रथपै स्थित और श्रीरामचन्द्रजीको पृथ्वीपर स्थित देख-कर इन्द्रजी, मातलिनामक अपने सारथीको बुलाकर यह वचन बोला ॥ १९ ॥ कि–हे मातले ! शीघ्रही हमारा रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाओ, और पृथ्वीपर यह (रथपर श्रीरामचन्द्रजीको बैठानारूप) मेरा बडाभारी कार्य्य करो ॥ २० ॥ जब इसप्रकार इन्द्रजीने कहा तब तौ उस मातलि-नामक इन्द्रजीके सारथीने उनको नमस्कार करके शीघ्रही श्रेष्ठ रथमें हरे घोडोंको जोत लिया ॥ २१ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीकी जयके निमित्त मातलि रथको लेकर स्वर्गलोकसे चलदिया, और पृथ्वीतलपै आनकर उस अचानक आएहुए रथपर बैठाहुआ हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा, कि–हे रघुकुलशिरोमणे ! मुझे इन्द्रने भेजा है ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! महाराज इन्द्रने आपकी जयके निमित्त यह अपना रथ भेजा है, और हे महाराज ! शोभायमान ऐन्द्र धनुष– अभेद्य (जिसको कोई न तोड़ सकै) कवच-दिव्य खड्ग-और दोनो तरकस यह सब युद्धकी सामग्री आपके लिये भेजी है, सो हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप इस रथके ऊपर बैठकर राक्षस रावणका संहार करिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे देव ! जिसप्रकार मुझ सारथीके साथ महाराज इन्द्रजीने वृत्रासुरका संहार कराथा, इसीप्रकार आप इस रावणका संहार करिये, इसप्रकार मातलिके कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस सर्वोत्तम रथको परिक्रमा करके नमस्कार किया, ॥ २५ ॥ और फिर उस रथपर श्रीरामचन्द्रजी चढ़े, उससमय सम्पूर्ण लोकोंके प्राणी रावणका मरणकाल निकटही जानकर अति आनन्दित

हुए, फिर महात्मा श्रीरामचन्द्रजी और परम प्रवीण रावणका रोमाञ्चोंको खडा करनेवाला बडा भयंकर युद्ध हुआ, अस्त्रविद्यामें परम प्रवीण जो श्रीरामचन्द्रजी तिन्होने रावणके आग्नेय अस्त्रको आग्नेय अस्त्रसे काट दिया, और रावणने जिस देवताके मंत्रसे अभिमंत्रित करके बाणको छोडा, श्रीरामचन्द्रजीने उस बाणको उसी देवताके मंत्रसे अभिमंत्रित करे हुए अपने बाणसे काट दिया, तब तौ अस्त्रविद्यामें परम प्रवीण क्रोधमें भरे-हुए रावण राक्षस मंत्रसे अभिमंत्रित कराहुआ महाघोर अस्त्र श्रीराम-चन्द्रजीके ऊपर छोड़ने लगा, वह रावणके छोडे हुए सुवर्णके पंखोंसे शोभायमान बाण महाविषधारी सर्प होकर श्रीरामचन्द्रजीके चारोंओर गिरनेलगे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ उससमय तिस रणभूमिके विषेसर्पके मुखकी समान अग्रभागवाले और अग्निको उगलतेहुए तिन रावणके बाणोंसे सम्पूर्ण दिशा और विदिशा व्याप्त होगई ॥ ३० ॥ तब तौ श्रीरामचन्द्रजी सर्पकी समान तिन बाणोंको संग्राममें चारो ओर व्याप्त देखकर रावणके सन्मुख महाघोर सौपर्ण (जिसके देवता गरुड हैं ऐसा) अस्त्र छोड़ना प्रारम्भ करा ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोड़ेहुए वह सौपर्णबाण गरुड़रूप होकर चारोंओर फैलेहुए उन सर्परूप रावणके बाणों-को शत्रुरूप होकर नष्ट करनेलगे ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी जब संग्राममें सौपर्ण अस्त्र छोडने लगे, तब तौ रावणने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी धारारूपसे घोर वर्षा करी, इसप्रकार बाणोंके समूहसे सहजमेंही अपना का-र्य्य सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको पीडित करके फिर एक घोर बाण छोडकर सारथी मातलिको भी वेध दिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सुवर्णकी बनी हुई रथकी ध्वजाको काटकर रावणने रथके भीतर गिराके, क्रोध-से भरकर इन्द्रके उन घोडोंको भी बाणोंसे वेध दिया ॥ ३५ ॥ उससमय श्रीरामचन्द्रजीको घबडाया हुआसा देखकर देवता-गंधर्व-चारण-पितर और महर्षि अतिविषादको प्राप्त हुए ॥ ३६ ॥ और विभीषणकरके सहित सम्पूर्ण वानरभी अत्यन्त दुःखित हुए, और दशमुख बीस भुजधारी, और

धनुष धारण करेहुए रावण उस समय मैनाकपर्वतकी समान प्रतीत होता था, तबतौ क्रोधकरके लाल २ हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीरामचन्द्रजी भृकुटिको चढ़ाकर अपने योग्य क्रोधको धारण करके राक्षसको जलानेसे लगे, और वर्षाकालमें दीखनेवाले इन्द्रधनुषकी समान आकारवाले धनुषको लेकर, और दूसरे हाथमें प्रलयकालकी अग्निकी समान प्रकाशवान् बाणको लेकर नेत्रोंसे जलातेहुएसे रावणके समीप दीखनेलगे ॥ ३७ ॥ ३८॥ ॥३९॥४०॥और फिर अपना पराक्रम दिखानेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजीने अपने तेजकरके अग्निकी समान प्रकाश करा, सब लोकोंके देखते हुए ही कालकी समान स्वरूप धारण कर लिया ॥४१॥ और धनुषको खैंचकर श्रीरामचन्द्रजी बाणोंसे रावणको वेधकर वानरोंकी सेनाको हर्षित करते हुए, उस समय काल और मृत्युकी समान शोभायमान हुए ॥४२॥ शत्रुके ऊपरको दौडतेहुए श्रीरामचन्द्रजीका क्रोधयुक्त मुख देखकर सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगए, और पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ ४३ ॥ महाभयंकर रूप श्रीरामचन्द्रजीको और दारुण उत्पातोंको देखकर सम्पूर्ण प्राणि त्रासको प्राप्त हुए और रावणभी भयभीत हो गया ॥ ४४ ॥ जगत्के प्रलयकी समान महाभयंकर उस युद्धको देवता, सिद्ध गन्धर्व, और किन्नर विमानोंमें बैठ कर देखने लगे, इतनेहीमें श्रीरामचन्द्रजीने ऐन्द्र अस्त्र लेकर रावणको शिरोंको काट दिया ॥ ४५ ॥ तबतौ रुधिरसे भीगे हुए वह बहुतसे रावणके शिर आकाशमेंसे इसप्रकार गिरे, जैसे तालके वृक्षमेंसे फल गिरैं ॥ ४६ ॥ फिर तौ युद्धमें न दिनकी ओर ध्यान होता था, न रात्रिकी ओर ध्यान होता था, न संध्याकी ओर ध्यान होता था, अर्थात् की दिनतक निरन्तर युद्ध हुआ और कटे हुए रावणके शिरोंसे रणभूमि ऐसी भरगई कि न दिशा प्रतीत होती थीं, न विदिशा प्रतीत होतीथीं, तथाहि रावणका शिरहीन शरीर देखनेमें नहीं आया, ॥ ४७ ॥ तब तौ श्रीरामचन्द्रजी चित्तमें बडेही चकित हुए कि—मैंने इसके एकसमान तेजस्वी शिरोंको एकसौ एकवार काटा ॥ ४८ ॥ परंतु अभीतक यह

आयुके नष्ट न होनेसे शान्त नहीं हुआ, अर्थात् यह अभीतक नहीं मरा फिर सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें प्रवीण, अनेक प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाले, परम धैर्य्यशाली, कौसल्या (अपनी माता) के आनन्दको बढ़ानेवाले,श्रीरामचन्द्रजीने विचारा, कि—हमने जिन जिन बाणोंके महाबलि परम पराक्रमी अनेक दैत्योंका संहार करा, वह सब बाण रावणके गिरानेमें निष्फल जाते हैं, जब श्रीरामचन्द्रजी ऐसे चिन्तासे आकुल हुए, तब तौ पास खडाहुआ विभीषण कहने लगा, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी! इसको अजन्मा भगवान् ब्रह्माजीने यह वरदान दिया था, कि—हे रावण ! तेरे कटेहुए भुजा और कटेहुए मस्तकभी फिर तत्कालही उत्पन्न होजायँगे, इसकी नाभिके स्थानमें एक कुण्डलाकार अमृतका स्थान है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ आप उस अमृतकुण्डको आग्नेय अस्त्र (जिस अस्त्रका अग्नि देवता है) से उसको सुखा दीजिये, तब इसका मरण होजायगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, शीघ्रही अपना पराक्रम दिखानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार विभीषणका वचन सुनकर धनुषपर आग्नेय अस्त्र (अग्निदेवताके मंत्रसे अभिमंत्रित कराहुआ बाण) चढ़ाया, और राक्षस रावणके ऊपरको छोडा, और उसकी नाभिको वेध दिया, फिर महाबली श्रीरामचन्द्रजीने शिरभी काटदिये, तदनन्तर अतिक्रोधमें होकर श्रीरामचन्द्रजीने उसकी भुजाभी काट डालीं, तब तौ रावणने क्रोधमें भरकर एक महाघोर शक्ति लीं, और उसको विभीषणके मारनेके निमित्त फेका, उस शक्तिको श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णभूपित तीक्ष्णबाणोंसे काट दिया॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तबतो शिरोंके कटजानेसे रावणका तेज निकल गया, रूप मलीन होगया, और सम्पूर्ण भयंकर शिर तौ कट गए, केवल एक मुख्य शिर और दो भुजाओंकी ही शोभा रहगई, फिर भी रावण क्रुद्ध होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करने लगा, और तैसेही श्रीरामचंद्रजीने भी अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करी, तब उन दोनोंका रोमांचोंका खड़ा करनेवाला भयंकर घोर युद्ध हुआ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ फिर

उस समयमें मातलिनामक सारथिने रघुनाथजीको स्मरण दिलाया, कि-हे रघुनाथजी ! अब शीघ्रही इस रावणका वध करनेके निमित्त ब्राह्म अस्त्र छोंड़िये, ॥ ६१ ॥ क्योंकि रावणका वध होनेका समय जो देवताओंने नियत करा है, वह इससमय आ पहुँचा है, हे श्रीरामचन्द्रजी ! अब आप इसका उत्तमाङ्ग (शिर) न काटिये क्यों कि-यह शिर काटनेसे नहीं मरैगा, इसकारण इसके हृदयरूप मर्मस्थानको बाणसे वेधिये इसप्रकार मातलिके कहनेसे श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण आगया, तब तो रघुनाथजीने जिसप्रकार सर्प फुनकार मारता होय इसप्रकारके प्रज्वलित बाणको हाथमें लिया जिस बाणके दोनो ओर पवन देवता और भाले (फल) के ऊपर सूर्य्य तथा अग्निदेवता निवास करतेथे, जिसका शरीर (आकार) आकाशमय (आकाशकी समान व्यापक), और भारीपन मेरु तथा मन्दराचल पर्वतकी समान था, जिसकी ग्रन्थियोंमें महातेजस्वी लोकपाल निवास करतेथे, जो अपनी देहसे सूर्य्यकी समान प्रकाश करताथा, जो जाज्वल्यमान, सम्पूर्ण लोकोंके भय (दुःखदायक राक्षसदैत्यादि) को नष्ट करनेवाला, महाकठोर, और आश्चर्यरूप था ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ महाबाहु परम बलवान् श्रीरामचन्द्रजीने उस बाणको वेदमें कही हुई रीतिके अनुसार मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके धनुषपर चढाया ॥ ६७ ॥ जब रघुनाथजीने उस बाणको चढ़ाया तब तो सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगए, और पृथिवी डगमगाने लगी ॥ ६८ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने अति क्रोधमें होकर रावणका संहार करनेके निमित्त धनुषकी प्रत्यंचाको खैंचकर वह बाण रावणके हृदयमें बडी सावधानीके साथ मारा ॥ ६९ ॥ इन्द्रके हाथसे छूटे हुए दुर्धर्ष वज्रकी समान और यमराजकी समान भयंकर है मुख जिसका ऐसा वह श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे छूटा हुआ बाण रावणके हृदयमें जाकर लगा, ॥ ७० ॥ और भीतर घुसगया, फिर वह महाघोर शरीरका अन्त करनेवाला बाण तत्कालही महात्मा रावणके हृदयको विदीर्ण करके पार निकलगया, और रावणके प्राणोंको हरकर पृथ्वीतलमें

प्रवेश करगया, इसप्रकार रावणका संहार करके वह बाण फिर श्रीरामचन्द्रजीके तरकसमें आगया, ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उस बाणके लगतेही रावणके हाथमेंसे बाणसहित धनुष छूटकर गिरगया और चक्कर खाके प्राणहीन होकर राक्षसपति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७३ ॥ उसको पृथ्वीपै पड़ा हुआ देखकर मरते मरते बाकी बचे हुए राक्षस भयभीत होकर चारों ओरको भागने लगे, स्वामीका मरण होनेपर आश्रितोंकी ऐसी दशा होही जाती है ॥ ७४ ॥ इसप्रकार रावणका मरण और श्रीरामचंद्रजीकी विजय हुई, तब तौ संग्रामको जीतनेवाले वानर प्रसन्न होकर गरजने लगे ॥ ७५ ॥ उनमेंसे कोई कहते फिरतेथे कि श्रीरामचन्द्रजीकी विजय होगई, और कोई कहते फिरतेथे कि रावणका मरण होगया, इतनेहीमें आकाशके विषें देवताभी मंगलसूचक नगाड़े बजाने लगे ॥ ७६ ॥ और आकाशमेंसे चारोंओरसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी, मुनि, सिद्ध, चारण, और सम्पूर्ण देवता श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करनेलगे ॥ ७७ ॥ और अप्सरा प्रसन्नतापूर्वक आकाशमें नृत्य करनेलगीं, और रावणके शरीरमेंसे सूर्य्यकी समान प्रकाशवान् ज्योति उठकर देवताओंके देखतेहुए श्रीरामचन्द्रजीके शरीरमें प्रवेश करगई, तबतौ देवता कहने लगे कि—महात्मा रावणका अहोभाग्य है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ देखो-हम सब देवता सत्त्वगुणसे उत्पन्न और विष्णु भगवान्‌के कृपापात्र हैं, तथापि-भयदुःखादियुक्त संसारकेही विषें भ्रमण करतेरहतेहैं ॥ ८० ॥ और यह रावण जातिका राक्षस, क्रूर, ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवाला; अतितामस (बड़ा अभिमानी,) पराई स्त्रियोंको दुष्ट दृष्टिसे देखनेवाला, विष्णु भगवान्‌से द्वेष करनेवाला; और तपस्वियोंका प्राणान्त करनेवाला था, ॥ ८१ ॥ तथापि सब प्राणियोंके देखतेहुएही श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपमें लीन होगया, इसप्रकार देवताओंके कहनेपर नारदजी मुसुकुराकर कहने लगे ॥ ८२ ॥ कि—हे देवताओ ! तुम सबतौ धर्म्मके तत्त्वको जाननेवाले हो, इस विषयमें मैं कुछ कहताहूं उसको श्रवण करो,

रघुनाथजीके साथ वैरभाव होनेके कारण वह रावण द्वेष करके अपने सेव-कोंसहित श्रीरामचंद्रजीके चरित्रको सुनकर नित्य शोकयुक्त हो विचार करता रहताथा, और श्रीरामचंद्रजीके हाथसे अपना मरण सुनकर भयके कारण जहां तहाँ उसको श्रीरामचंद्रजीही दीखते थे, और क्या कहा जाय, वह प्रतिदिन स्वप्नमेंभी श्रीरामचंद्रजीकोही देखता था, इस कारण उसको यह फल प्राप्त हुआ, इसकारण रावणका क्रोधभी गुरुके उपदेशसे प्राप्त होने-वाले ज्ञानसे अधिक हो गया ॥८३॥८४॥८५॥ अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मृत्यु होनेके कारण संपूर्ण पापोंसे छूटकर और संसारबंधनसे मुक्त होकर रावण श्रीरामचन्द्रजीके सायुज्यकोही प्राप्त हुआ ॥ ८६ ॥ पापी हो, दुष्टात्मा हो, पराए धनको चुरानेवाला हो, और चाहे परस्त्रीके विषे आसक्त हो यदि भक्तिसे अथवा भयसे नित्य रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करताहुआ मरणको प्राप्त होय तौ वह शुद्धान्तःकरण होकर और सैंकडों जन्मोंमें करेहुए पापोंसे छूटकर शीघ्रही साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजीके उस आदिवैकुण्ठलोकको प्राप्त होता है कि जिस लोकको बडे बडे देवता प्रणाम करते हैं ॥८७॥ त्रिलोकीको दुःख देनेवाले रावणका संहार करके वामहस्तसे भूमिमें धनुषको टेंककर खडेहुए, और दूसरे हाथमें धारण करेहुए एक बाणको घुमातेहुए, कुछ २ लाल हैं नेत्रोंके कोए जिनके, रावणके बाणोंसे विदीर्ण होरहा है शरीर जिनका, करोड़ों सूर्य्योंकी समान है प्रकाश जिनका, अपनी योग्यताके अनुसार ठीक ठीक नीचाई ऊँचाई वाला है शरीर जिनका, इन्द्रजी कररहेहैं स्तुति जिनकी ऐसे वीरलक्ष्मीको धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करैं ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदध्या-त्मरामायणे उमामहेश्वरसँव्वादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त-व्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि—हे पार्वति ! तदनंतर श्रीरामचंद्रजी, हनुमान्, विभीषण, अंगद, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान्, तथा औरभी संपूर्ण

वानरोंकी ओरको प्रसन्न चित्तसे देखकर इसप्रकार कहनेलगे, कि—तुम्हारीही भुजाओंके बलसे मैंने रावणका वध करा है ॥ १ ॥ २ ॥ जबतक चंद्रमा और सूर्य रहेंगे तबतक यह तुम्हारी कीर्त्ति संसारमें स्थित रहेगी, और प्राणी त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली तुम्हारी कथाका कीर्त्तन करेंगे ॥ ३ ॥ जिस कलयुगके पापोंको दूर करनेवाली तुम्हारी कीर्त्तिका वर्णन करतेहुए पुरुष परम गतिको प्राप्त होयँगे, श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार कहरहेथे, कि—इसही अवसरमें रावणको भूमिपर गिराहुआ देखकर मंदोदरी-आदि सम्पूर्ण रावणके रणवासकी स्त्रियें आकरके शरीरके आगे गिर पडीं, और अत्यन्त शोक करतीं हुईं बिलाप करने लगीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ विभीषणभी बहुत घबडा गये महाशोकयुक्त होकर रावणके मृतक शरीरके सामने गिरपडे, और अनेक प्रकारके विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ तब तौ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले, कि—हे भ्रातः! विभीषणको समझाओ, यह अपने भ्राताका संस्कार (प्रेतकर्म) करै, अब विलंब करनेसे क्या प्रयोजन है? ॥ ७ ॥ और मंदोदरी आदि रावणकी स्त्रियें, तथा औरभी रावणकी प्रेमपात्र राक्षसियें पडी हुईं विलाप कररहीं हैं, सो विभीषणसे कहो कि—इन सबको समझावे ॥ ८ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर लक्ष्मणजी रावणके मृतक शरीरके समीप प्राणहीनकी समान पडे हुए, और अत्यंत शोकसे व्याकुल जो विभीषण तिनके समीप जाकर कहने लगे कि—हे विभीषण! जिसका तुम दुःखपूर्वक शोक कररहे हो, यह तुह्मारा कौन है? और तुम इसके कौन हो; अर्थात् आत्मा तौ शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है उसका किसीसे सम्बन्ध नहीं होता है, देखो जन्म धारण करनेसे पहिले तुम्हारा इसका कुछ संबंध नहीं था, और न आगे तुम्हारा इसका कुछ सम्बन्ध होयगा, इसकारण इस समयभी जो सम्बन्ध है सो मिथ्याही है वास्तवमें तौ आत्मा नित्यशुद्धबुद्ध मुक्तस्वभाव है, जिसप्रकार जलके प्रवाहमें पड़ाहुआ रेतेका समूह उस प्रवाहके वशीभूत होकर बहताहुआ चलाजाता है, तिसीप्रकार संपूर्ण प्राणी कालके वशीभूत होकर उसके वेगसे संयोग और

वियोगको प्राप्त होते हैं, वास्तवमें उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, और जिस-प्रकार भाडमें जब भूननेके निमित्त जौ डाले जाते हैं तब अग्निके लगनेसे उन-मेंसे कुछ दाने एक स्थानपर रहते हैं, और फिर वही उडकर ऊपर नीचे गिर जातेहैं इसीप्रकर प्राणी कालरूप ईश्वरकी जो माया तिसकी प्रेरणासे कभी एक स्थानपर संयोगको प्राप्त होतेहैं, और कभी वियोगको प्राप्त होजातेहैं , और ये संयोग तथा वियोग केवल तुमकोही नहीं हुआ है, किन्तु तुम हम, तथा और जो कुछ प्राणी हैं, सो सबही कालके वशीभूत होकर संयोग और वियोगको प्राप्त होतेहैं, क्योंकि—कालको सबही समान हैं, जिससमय जिसके प्रकाशसे ईश्वरने प्राणीका जन्म और मृत्यु रचा है, उस प्राणीको उसही समयमें उसकेही प्रकाशसे होतेहै, और जिसप्रकार बालक अपनेको सुखादिकी इच्छा न करके स्वभावसेही मृत्तिकाआदिकी मूर्ति बनाकर उनका विवाहा-दिक तथा पुत्रादिककी कल्पना करके क्रीड़ा करता है, और फिर उनकी परस्पर टक्करैं लगाकर तोड़ डालता है, और किसी प्रकारका हर्ष शोक नहीं करता है, तिसही प्रकार ईश्वर जगत्‌की सृष्टि करनेसे किसी प्रकारके फलकी अपेक्षा न करकेभी अपनी रचे माया करके रचेहुए स्त्रीपुरुषरूप प्राणियोंकेद्वारा पुत्रादिकोंको रचताहै, और उनहींसे पालन कराताहै, और उनहींमेंसे एकके-द्वारा एकका मरण करादेताहै, तहाँ कहतेहैं कि—मातापिताकोही जगत्‌का कर्त्ता मानलेना चाहिये ईश्वरकी कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता है ? तहाँ कहते हैं कि—जीव तौ तृणमात्रके चलानेमेंभी स्वतंत्र नहीं है, और माता-पिताके देहसे तौ देहमात्रको उत्पत्ति होतीहै, और उस देहके सम्बन्धसेही आत्मा देहधारी कहलाता है, वास्तवमें आत्मा देहधारी नहीं है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे विभीषण ! जिस-प्रकार बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होतीहै,और फिर उस वृक्षसे बीजोंकी उत्पत्ति होतीहै, और उन बीजोंसे फिर वृक्ष उत्पन्न होतेहैं, इसीप्रकार प्राणियोंकी उत्पत्तिभी संसारमें अनादिकालसे चली आती है, अर्थात् अविद्या कर्म्म-आदि रूप बीजसे देहकी उत्पत्ति होतीहै, और उस देहमें आकर आत्मा

अविद्याके वशीभूत होकर फिर अहंबुद्धि (मैं हूँ, मेरा है, इत्यादिरूप बुद्धि) कर्ता है, तिससे कर्मादिकके द्वारा फिर देहकी उत्पत्ति होतीहै, इसप्रकार जबतक अविद्या दूर नहीं होती तबतक संसार (जन्ममरण) प्रवाह चलाही जाताहै, और जीव तौ देहसे भिन्न और नित्य है, देहके संबंधसे जीवात्मा देही कहलाता है, देहका संबंध अविद्याकल्पित होनेके कारण मिथ्या है, अज्ञानके कारण आत्मा पुत्रकलत्रादिके विषे ममत्वबुद्धि करताहै, इसप्रकार विचारनेसे जब देहकी ममत्व बुद्धिही मिथ्या है, फिर भ्रातादिकके विषे जो ममत्वबुद्धि है उसके मिथ्या होनेमें तौ संदेहही क्या है ? ॥ १६ ॥ और वास्तवमें तौ भ्रातादिकको अपनेसे भिन्न मानता, अथवा उनका नाशादि मानना सीपीमें रजतकी प्रतीतिकी समान मिथ्याही है, क्योंकि भेद, जन्म, नाश, क्षय, वृद्धि और सुखदुःखादि शरीर आदिकही धर्म देखनेमें आते हैं, तहाँ दृष्टान्त देते हैं, कि—जिसप्रकार अग्निमें जलतेहुए काष्ठआदिमें जो टेढ़ापनआदि होताहै, वह काष्ठआदिकाही होताहै, अग्निका नहीं ॥ १७ ॥ हे विभीषण ! वह भेद जन्ममरणआदिधर्म्म अन्तःकरणके संयोगसे अहंममताआदि बुद्धि होनेके कारण आत्माके विषे भी इसप्रकार प्रतीत होने लगतेहैं, कि—जिसप्रकार कीड़ा भृंगी नामक दूसरे कीडेका ध्यान करताहुआ वैसाही कहाताहै, वास्तवमें वह भृंगी नहीं होजाताहै ॥ १८ ॥ और जिसप्रकार सुषुप्तिअवस्थामें जब अहं ममत्व बुद्धि नहीं होतीहै, तब संसारकी प्रतीतिभी नहीं होतीहै, तिसीप्रकार तत्त्वज्ञान होनेसे जीवन्मुक्त दशाके प्राप्त हुए पुरुषको जीवित रहनेपरभी अहंकारके न होनेके कारण संसारकी प्रतीति न होनेसे दुःखशोकादिभी नहीं होतेहैं ॥ १९ ॥ इसकारण हे विभीषण ! मायाके विकाररूप मनके धर्म्म अहंममतारूप भ्रमको त्यागो, और अंतःकरणको कल्याणरूप सर्वशक्तिमान् परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके विषे लगाओ ॥ २० ॥ हे विभीषण ! कर्णआदि बाह्यइन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें दोषदृष्टि करके धीरे २ मनको उन शब्दादि विषयोंके संबन्धसे हटाओ, और मायाकरके मनुष्य-

रूप धारण करनेवाले संपूर्ण प्राणियोंके आत्मा आनंदस्वरूप परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके विषें लगाओ, देहबुद्धिसे भ्राता, माता, पिता, मित्र और प्रिय इन संबन्धोंकी प्रतीति होती है, और जब परमेश्वरके विषें चित्तकी वृत्ति लगानेके कारण अंतःकरण शुद्ध होनेसे देहसे अन्य आत्माका ज्ञान हो जाताहै, तब कौन किसका बन्धु, भ्राता, माता, पिता और मित्र होताहै? ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ मिथ्या ज्ञान होनेसेही स्त्री, स्थान आदि संबन्ध; और शब्दआदि विषय तथा अनेक प्रकारकी संपत्तिमें सेना, खजाना, सेवकोंका समूह, पृथ्वी और पुत्रआदिके विषें ममता होतीहै, परन्तु हे विभीषण! यह सब अज्ञानसे उत्पन्न होनेके कारण क्षणमात्रमें प्राप्त होतेहैं, और क्षणमात्रमेंही नष्ट होजाते हैं, इसकारण यह अनित्य है और आत्मा नित्य है॥ २४ ॥ २५॥ इसकारण हे विभीषण! उठो और भक्तिपूर्वक अपने हृदयमें स्मरण करेहुए श्रीरामचन्द्रजीका सदा ध्यान करते रहो, और हे विभीषण! विना भोगे प्रारब्धकर्म्म सैंकडों करोड जन्मोंको धारण करनेसेभी क्षीण नहीं होता है, इसकारण प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार इस लंकापुरीके राज्यको भोगो, और नीतिपूर्वक पालन करो ॥ २६ ॥ हे विभीषण! यह क्या होगया? और आगे क्या होगा? इसविचारको छोड दो, और वर्त्तमान दशामें जो सुखदुःखादि प्राप्त हों उनको शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार भोगते हुए, अर्थात् अहंबुद्धिको त्यागकर संसारयात्राका निर्वाह करो तब तुम संसारके दोषोंसे लिप्त नहीं होओगे ॥ २७ ॥ हे विभीषण! श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें आज्ञा देते हैं, कि—अब तुम भ्राताका जो कुछ परलोक कर्म्म (प्रेतकर्म्म) है उसको शास्त्रोक्तरीतिसे करो, और हे परमप्रवीण विभीषण! यह जो मन्दोदरी आदि स्त्रियें विलाप कररही हैं उनको समझाकर चुपाओ, और यह सब शीघ्रही लङ्कापुरीको चली जायँ, इसप्रकार लक्ष्मणजीने जो वचन कहे तिनको सुनकर शोक और मोहको त्यागके श्रीरामचन्द्रजीके समीप आया, फिर धर्म्मात्मा विभीषण लक्ष्मणजीके कहे हुए उन सम्पूर्ण वचनोंको बुद्धिसे मनहीमनमें विचारकर श्रीरामचंद्रजीकी सेवा कर-

नेके निमित्त इसप्रकार कहने लगे कि—हे प्रियबन्धो! आपने मुझे ऐसी आज्ञा न दीजिये, हे प्रभो! देखिये यह रावण निर्दयी, मिथ्याभाषी, अतिक्रूर, अपने धर्म्मको त्यागनेवाला, और सदा परस्त्रियोंमें आसक्त रहताथा इसकी अन्त्येष्टिक्रिया, (प्रेतक्रिया) रूप संस्कार करनेको मैं किसी प्रकार भी योग्य नहीं हूँ, इसप्रकार विभीषणके कथनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कि—हे मित्र! देखो मनुष्यसे वैरभाव उसके मरण पर्य्यन्तही होता है, जब उसका मरण होगया, फिर शत्रुता करनेका फलही क्या? सो इसका मरण होनेसे हमारा कार्य्य सिद्ध होगया. अर्थात् यह जब जीवित था, तब हमारा तुम्हारा दोनोंका शत्रु था, अब तो जैसा तुम्हारा भ्राता वैसाही मेरा भी है, सो मेरी सम्मति है कि—तुम शीघ्रही इसका प्रेतसंस्कार करो, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेका यह अभिप्राय है कि—रावणसे मेरा विरोध नहीं था; किन्तु उसके उस दुष्ट स्वभावसे मेरा विरोध था कि—जिस स्वभावसे वह देवता, ब्राह्मण और धर्म्मसे विरोध करताथा, अब रावणकी यह राक्षसी प्रकृति (स्वभाव) संग्राममें मेरे बाणोंके लगनेसे, तथा मरण कालमें मेरा दर्शन होनेसे नष्ट होगई, और रावण दैवप्रकृति (साधुस्वभाव) को प्राप्त होगया, फिर उससे वैरभाव रखनेका अवसरही कहाँ रहा?॥ ३३॥ इसके अनन्तर धर्म्मात्मा विभीषण श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करके तत्कालही जाकर परम बुद्धिमती रानी मन्दोदरीको शोकको दूर करनेवाले शान्तिवाक्योंको कहकर समझाया; फिर वह धर्म्मात्मा विभीषण रावणकी क्रिया करनेके निमित्त अपने बान्धवोंको बुलाकर शीघ्रता करने लगा ॥ ३४ ॥ ३५॥ फिर परम धर्म्मात्मा विभीषणने शास्त्रोक्त पितृमेधकी रीतिसे रावणके मृतकशरीरको चितामें स्थापन करा, और जिसप्रकार अग्निहोत्रियोंकी अन्तक्रिया करना उचित होती है, तिसीरीतिके अनुसार रावणका सम्पूर्ण प्रेतकर्म्म करा, और बांधव तथा मन्त्रियोंकरके सहित मंत्रोच्चारणपूर्वक विभीषणने रावणकी चितामें अग्नि लगाई ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

फिर स्नान कर, गीले वस्त्रोंको धारण करेहुएही विभीषणने मंत्रोंको पढ़कर रावणके अर्थ कुशतिलयुक्त जलांजलि दी, इसप्रकार जलांजलि देकर और मस्तक नमाके उसको प्रणाम करके विभीषणने वारंवार शोकको दूर करनेवाले वचनोंको कहकर तिन मंदोदरीआदि रावणकी सम्पूर्ण रानियोंको समझाकर शान्त करा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और फिर विभीषणने उन सब स्त्रियोंको आज्ञा दी, कि—अब जाओ, तब वह सब नगरमें गईं, जब वह सब राक्षसी नगरके भीतर चलीगईं तब विभीषण श्रीरामचंद्रजीके समीप आकर नम्रतापूर्वक बैठगया, उससमय शत्रुओंका संहार करके वानरोंकी सेनाकरके सहित, और सुग्रीव तथा लक्ष्मणकरके सहित, श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार प्रसन्न हुए, जिसप्रकार वृत्रासुरका वध करके इंद्र आनंदको प्राप्त हुआथा, उससमय मातलि श्रीरामचंद्रजीकी परिक्रमा और प्रणाम करके उनकी आज्ञाके अनुसार आकाशमार्गसे स्वर्गलोकको चलागया, फिर प्रसन्नमन श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे इसप्रकार कहने लगे॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ ४२॥ ४३ ॥ कि—हे लक्ष्मण ! यद्यपि मैंने लंकाका राज्य विभीषणको पहिलेही देदिया है, तथापि इससमयभी जाकर तुम ब्राह्मणोंकरके सहित मंत्रोच्चारण करके विधिपूर्वक लंकापुरीमें विभीषणका अभिषेक करो; इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर लक्ष्मणजी तत्कालही वानरों करके सहित लंकापुरीको गये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ और स्वर्णके कलशोंमें भरे हुए समुद्रके जलसे परम बुद्धिमान् राक्षसपति विभीषणका लंकापुरीमें शुभ अभिषेक करा ॥ ४६ ॥ फिर हाथमें भेंट लियेहुए जो पुरवासी तिनकरके सहित विभीषण अपने आपभी भेंट लेकर लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजीके समीप आये ॥ ४७ ॥ और अनायासमेंही कार्य सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको दंडवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनके सन्मुख खड़े होगये, तब श्रीरामचंद्रजीने भी विभीषणको राज्य पानेके अनंतर अपने पास आया हुआ देखकर अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुए, और लक्ष्मणजीकरके सहित श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर अपनेको कृतकृत्य

जाना, फिर सुग्रीवसे कहने लगे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कि—हे सुग्रीव ! हे वीर! मैंने तुम्हारी सहायतासेही इस बड़े भारी रावणको जीता, और लंकामें विभीषणका अभिषेक करा॥ ५० ॥ फिर नम्रतापूर्वक समीपमें बैठेहुए हनुमान्‌जीसे श्रीरामचंद्रजी कहने लगे कि—हे पवनकुमार ! विभीषणकी आज्ञा लेकर रावणके मंदिरमें जाओ. ॥ ५१ ॥ और जानकीजीसे रावणका मरण आदि संपूर्ण वृत्तान्त कहो, तब जानकीजी जो उत्तर दें वह शीघ्रही मुझसे आनकर कहो ॥ ५२ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पाकर परम बुद्धिमान् पवनकुमार लंकापुरीमें गये, उससमय राक्षसोंने उनका बड़ा सत्कार करा, ॥ ५३ ॥ फिर रावणके मंदिरमें जाकर तहाँ शिंशपा वृक्षके नीचे बैठी हुई पतिव्रता जानकीजीको देखा, उससमय जानकीजीका देह अत्यंत दुर्बल और दीनतायुक्त था, राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई श्रीरामचंद्रजीकाही ध्यान कर रहीं थीं, इतनेहीमें पवनकुमार नम्रतापूर्वक प्रणामकरके भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ेहुए सन्मुख खडेहोगये, उनको देखकर जानकीजी कुछ काल मौन होकर चिंता करनेलगीं, फिर पहिला वृत्तान्त स्मरण आया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तब इन पवनकुमारको श्रीरामचंद्रजीका दूत जानकर हर्षके कारण जानकीजीका मुख प्रसन्न होगया, सो हनुमान्‌जीने उनका सुन्दर और प्रसन्नमुख देखकर श्रीरामचंद्रजीने जो कुछ संदेसा कहाथा सो तिनजानकीजीसे कहना प्रारम्भ करा ॥ ५७ ॥ कि—हे देवि ! श्रीरामचंद्रजी, सुग्रीव, विभीषण और लक्ष्मणजी तथा संपूर्ण वानरोंकी सेनाकरके सहित कुशल हैं ॥ ५८ ॥ सेना और मंत्रियोंकरके सहित सपुत्र रावणका वध करके, और लंकाके राज्यमें विभीषणको नियत करके श्रीरामचंद्रजीने तुमसे कुशल कहनेको भेजा है ॥ ५९ ॥ इसप्रकार हनुमान्‌जीके द्वारा भर्त्ता (अपने पति श्रीरामचन्द्रजी) के प्रिय वृत्तान्तको सुनकर श्रीजानकीजी परम प्रसन्न हुईं, और गदगद वाणीसे कहने लगीं, कि—हे पवनकुमार ! अब मैं तुमको क्या प्रिय वस्तु दूँ, तुमने जो इस समय प्रियसमाचार सुनायो है, इसके बदलेमें देनेयोग्य वस्तु मुझे त्रिलोकीमें कोईभी

नहीं दीखती ॥ ६० ॥ रत्न और आभूषण तुम्हारे प्रियवाक्यकी समान नहीं हैं, जिनके देकर मैं तुमसे उद्धार होऊं, अर्थात् मैं इस प्रिय वचन सुनानेके ऋणसे कदापि उद्धार नहीं होऊंगी, इसप्रकार जानकीजीने जब कहा तबतौ पवनकुमार कहने लगे ॥ ६१ ॥ कि—हे मातः! रावणादि शत्रुओंका वध करनेवाले विजयशाली और सदा एकरस श्रीरामचंद्रजीका जो मैं दर्शन करताहूँ, यह मुझे अनेक प्रकारके रत्नोंके समूह और इन्द्रके राज्यसे भी विशेष है, अर्थात् हे मातः! सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके आनंद ब्रह्मानंदके अंतर्गत हैं, सो जब आनन्दघन परब्रह्मरूप श्रीरामचंद्रजीको भक्तिपूर्वक देखताहूँ, फिर मुझे यह रत्न राज्य आदिकसम्पत्तियें क्या सुख देसक्ती हैं? ॥ ६२ ॥ इसप्रकार पवनकुमारके कथनको सुनकर जानकीजी कहने लगीं, कि—हे सौम्य पवनकुमार! यह चंद्रमाकी समान आनंद देनेवाले गुण तुम्हारेही विषे स्थित हैं ॥ ६३ ॥ अब तुम श्रीरामचंद्रजीसे जाके कहो, कि—यदि आप आज्ञा दे तौ मैं तुम्हारा शीघ्रही दर्शन करना चाहतीहूँ, तव इसप्रकार जानकीजीके कहनेपर उनको प्रणाम करके हनुमानजी रघुनाथजीके दर्शन करनेको गये ॥ ६४ ॥ और जो कुछ जानकीजीने कहा था वह सब श्रीरामचंद्रजीके आगे निवेदन करदिया, कि—हे देव! जिसके निमित्त आपने इन युद्ध आदि कार्योंका प्रारम्भ कराथा, उन कार्योंको फलकी प्राप्ति जो शोकसे व्याकुल जानकीजी तिन देवीको अब आप देखैं, इसप्रकार हनुमान्‌जीके कहनेपर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी मायाकी सीताका परित्याग करनेके निमित्त और अग्निके विषे स्थित जानकीको ग्रहण करनेके निमित्त विभीषणसे कहनेलगे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ कि—हे राजन्! तुम जाओ और शीघ्रही जानकीको स्नान कराकर स्वच्छ वस्त्र पहिनाकर और संपूर्ण आभूषणोंको धारण कराकर मेरे समीप लेआओ ॥ ६८ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके वचनको सुनकर विभीषण पवनकुमारको साथ लेकर गये, और वृद्ध राक्षसियोंसे जानकीजीको स्नान कराय संपूर्ण वस्त्र और आभूषण पहिनाये, और सुन्दर पालकीमें बैठालकर रक्षाके निमित्त जामे और पगडियोंको

धारण करेहुए आसेवल्लमवाले सेवकोंको चारोंओर करके चलदिये, उस-समय कल्याणी जानकीजीका दर्शन करनेके निमित्त संपूर्ण वानर दौड़ आये, उनको आसेवल्लम धारण करनेवाले विभीषणके बहुतसे सेवकोंने रोक दिया ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ और हटो बचो करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके समीपको आये सो श्रीरामचंद्रजी दूरसेही पालकीमें बैठींहुई जानकीजीको देखकर कहनेलगे कि—हे विभीषण! वह तुम्हारे चोबदार वानरोंको क्यों हटातेहैं? वह सब वानर सीताका माताकी समान दर्शन करैं, रोंकनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ और जानकी पालकीमेंसे उतरकर मेरे समीप पैदल आवै, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके वचनको सुनके जानकीजी पालकीमेंसे उतरकर पैदलही धीरे २ श्रीरामचंद्रजीके समीप आईं, रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजीने कार्य सिद्ध करनेके निमित्त मायासे रचीहुई तिस जानकीको बहुतसे अवाच्य वचन कहे, तिन रामचंद्रके क-हेहुए उन वचनोंको सीता न सहसकी ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ और लक्ष्मणजीसे कहनेलगी, कि—हे लक्ष्मण! श्रीरामचंद्रजीको तथा और सब-लोगोंको विश्वास होनेके निमित्त तुम शीघ्रही अग्नि प्रज्वलित करो, तिस अग्निमें स्नान करके मैं सबको अपना सच्चा पतिव्रतापन दिखलाऊंगी॥७७॥ श्रीरामचंद्रकीभी इसकार्यमें सम्मति जानकर लक्ष्मणजीने तत्कालही काष्ठका बडा भारी ढेर लगाया, और उसको अग्निसे प्रज्वलित करके श्रीराम-चंद्रजीके समीप आके मौन बैठगये, तब सीताने भक्तिपूर्वक श्रीरामचंद्रजीकी परिक्रमा करी, और देवता, राक्षस राक्षसी, तथा वानरोंके देखतेहुए देवता और ब्राह्मणोंके अर्थ प्रणाम करके जानकीजीने हाथ जोड़कर अग्निके समीपमें स्थित हो इसप्रकार कहा, कि यदि मेरा मन श्रीराम-चंद्रजीसे अन्यत्र कभी नहीं जाताहै तौ सब लोकोंका साक्षी जो अग्नि वह मेरी सर्वप्रकारसे रक्षा करै, अर्थात् मेरे प्रवेश करनेपर शीतल होजाय, इसप्रकार कहकर सीता अग्निकी परिक्रमा करके निर्भयचित्त होतीहुई जलतीहुई अग्निमें प्रवेश करगई, ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ उससमय सिद्धगणों करके सहित देवता वानर राक्षस सम्पूर्ण प्राणी सीताजीको अत्यन्त प्रज्वलित होतीहुई अग्निमें प्रवेश करतेहुए देखकर अत्यंत दुःखित हुए, और परस्पर कहने लगे, कि—बड़े आश्चर्य्यकी बात है सर्वज्ञ होकरभी श्रीरामचन्द्रजीने साक्षात् लक्ष्मीरूप सीताको अग्निमें प्रवेश करनेके निमित्त आज्ञा देदी ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वर संवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—पार्वति! उससमय तहाँ सहस्र हैं नेत्र जिनके ऐसे इंद्र, यम, वरुण, महातेजस्वी कुबेर, पिनाकधारी शिव, ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, नारद आदि मुनि, सिद्ध, चारण, पितर, ऋषि, साध्य, गंधर्व, अप्सरा और नाग यह सब औरभी सुन्दर सुन्दर विमानोंमें बैठकर रघुनाथजीके समीप आये, और हाथ जोड़कर परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे, कि—हे भगवन्! आप संपूर्ण लोकोंके कर्त्ता, सबके साक्षी, विज्ञानरूप हो वसुओंमें अष्टम और रुद्रोंमें तुम साक्षात् शिव हो ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे भगवन्! लोकोंके कर्त्ता विराट्स्वरूप, चतुर्मुख ब्रह्मा आपही हो; अश्विनीकुमार आपके विराट्स्वरूपकी घ्राण (नासिका) इन्द्रिय हैं, चंद्रमा और सूर्य नेत्र हैं, ॥ ५ ॥ हे भगवन्! संसारकी आदि (उत्पत्ति करनेवाले) और अन्त (नाश करनेवाले) आपही हो अतएव आप नित्यस्वरूप हो, सदा उदयको प्राप्त रहतेहो, अर्थात् आपके विषे रात्रिदिनका व्यवहार नहीं हैं, सदा मायाके गुणोंसे भिन्न रहते हो, तिसकारणही सदा ज्ञानस्वरूप मुक्त, गुणोंकरके रहित और अद्वितीय हो ॥६॥ जो पुरुष आपकी मायासे मोहित होरहे हैं उनको आप मनुष्यशरीरधारी प्रतीत होते हो, और हे श्रीरामचन्द्रजी! जो आपके नामका स्मरण करते हैं उनको चैतन्यस्वरूप प्रतीत होतेहो, ॥ ७ ॥ हे भगवन्! रावणने तेजकरके सहित हमारा स्थान हरण कर लियाथा, आज आपने उस दुष्टका

संहार किया, तब फिर हमने अपना स्थान पाया है ॥ ८ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण देवताओंके स्तुति करनेपर साक्षात् पितामह ब्रह्माजी नम्र होकर सत्यमार्गमें स्थित जो श्रीरामचन्द्रजी तिनको प्रणाम करके कहनेलगे ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले, कि—सम्पूर्ण संसारकी स्थितिके हेतु, आत्मज्ञानियोंकरके हृदयके विषें ध्यान करेहुए, हेय कहिये त्याग करनेयोग्य, अहेय कहिये ग्रहण करने योग्य, जो दुःखसुख पापपुण्यादिरूप द्वन्द्व तिनकरके रहित, प्रकृतिसे पर, अद्वितीय, सत्तामात्र और सबके हृदयके विषे स्थित ज्ञान-स्वरूप, साक्षात् विष्णुदेवका अवतार जो श्रीरामचन्द्रजी मैं तिनके अर्थ प्रणाम करताहूँ, ॥ १० ॥ प्राण (नासिकासे निकलनेवाला पवन) और अपान (गुदाके द्वारा निकलनेवाला पवन) को निश्चय बुद्धि (हठयोग) के द्वारा हृदयके विषे रोककर और संपूर्ण संशयरूप बंधनको तथा विषयोंके समूहोंको श्रवण मनन और वैराग्य आदिके द्वारा नष्ट करके मोहरहित यतिपुरुष जिन सर्वशक्तिमान्‌का दर्शन करते हैं, तिनही रत्नजटित मुकुटको धारण करनेवाले सूर्यकी समान प्रकाशवान् श्रीरामचंद्रजीको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ११ ॥ मायाके गुणोंसे भिन्न, आदि, जगत्‌के कारण, इयत्तारहित, भक्तोंके मोहको नष्ट करनेवाले, मुनियोंके वन्दन करनेयोग्य, योगियोंकरके ध्यान करनेयोग्य, योगमार्गके प्रवर्त्तक, सर्वव्यापी, अपने गुणोंकरके संसार-को प्रसन्न करनेवाले, और अतिरमणीय जो लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजी तिनको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ १२ ॥ भाव जो दृश्य पदार्थ और अभाव जो अदृश्य पदार्थ तिनका जो ज्ञान तिसके अविषय अर्थात् अनिर्वचनीयता ज्ञानके विषय, भोगोंमें आसक्ति न करनेवाले शिवआदिकरके पूजन करेगए हैं चरणकमल जिनके ऐसे, नित्य (त्रिकालमें अबाध्य अर्थात् एकरस) मायादोषोंका नहीं है स्पर्श जिनको ऐसे ज्ञानस्वरूप, अनन्त, ओंकारनामा, सम्पूर्ण दैत्योंके नाशक, और रागद्वेषशून्य श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ मैं प्रणाम करताहूँ ॥ १३ ॥ हे भगवन्! आप मेरे नाथ हो, क्योंकि—स-म्पूर्ण प्रार्थित कार्य्योंके करनेवाले, देश-काल-रूप-तीन प्रकारके परि-

च्छेदकरके शून्य, लक्ष्मीके पति, सम्पूर्ण जगत्के धारण करनेवाले, अनन्यभक्तिकरकेही प्राप्त होनेयोग्य, ध्यान करनेपर संसारदुःखको हरनेवाले, और योगाभ्यासकरके शुद्धहुआ जो अन्तःकरण तिसके विषे दर्शन देनेवाले हो ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! लोकपरम्पराकी उत्पत्ति और प्रलयके हेतु, लोकोंके परमपालना करनेवाले, लौकिक प्रमाणोंकरके जाननेमें न आनेवाले अर्थात् केवल शास्त्रकरकेही जानने योग्य, भक्ति और श्रद्धायुक्त हैं चित्त जिनके ऐसे पुरुषोंकरके सेवन करनेयोग्य, नीलकमलकी समान श्यामवर्ण, और अतिरमणीय जो आप तिनको प्रणाम करताहूँ ॥ १५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! हे लक्ष्मीपते! अतिमान कहिये सर्वव्यापी और गतमान कहिये परिच्छेद (इयत्ता) करके रहित जो आप तिनको इन्द्रियोंके द्वारा कौन जाननेको समर्थ होसक्ता है? मुनियोंके माननीय और कृष्णावतारमें वृन्दावनके विषे स्थित होकर मायाकरके देवसमूहके अर्थ प्रणाम करनेवाले, शिव आदिके प्रणाम करनेयोग्य, और परमसुखदायक आपको प्रणाम करताहूँ ॥ १६ ॥ अनेक शास्त्र और चारोंवेदों करके प्रतिपादन करनेयोग्य, नित्य, आनन्दस्वरूप, निर्विकल्पक, ज्ञानके विषय, अर्थात् बाह्यविषयोंका अविषय जो ज्ञान तिसकरके जाननेयोग्य आदिरहित, मेरी सेवाके अर्थ अर्थात् रावणआदिका वधरूप मेरा कार्य सिद्ध करनेके निमित्त मनुष्य अवतार धारण करनेवाले, और मथुरापति मरकत मणिकी समान श्याममूर्ति श्रीरामचंद्रजीके अर्थ मेरा प्रणाम है, ॥ १७ ॥ ब्रह्मज्ञानके देनेवाले, ब्रह्माजीके कहे हुए इस सर्वोपरि स्तोत्रको पृथ्वीतलमें जो मनुष्य अभिलाषाको पूर्णकरनेवाले सर्वशक्तिमान् श्यामवर्ण श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके पाठ करैगा वह ध्यान करनेवाला पुरुष पातकोंके समूहोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १८ ॥ इसप्रकार ब्रह्माकी करीहुई श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिको सुनकर अरुणकी तुल्य निर्म्मल कान्तिमती रक्त वस्त्र धारण करेहुए और दिव्य आभूषणोंको धारण करेहुए जो विदेहकुमारी जानकी तिनको अपनी गोदमें लेकर त्रिलोकीका साक्षी अग्नि शरणागतके दुःखोंको दूर करनेवाले

रघुनाथजीसे कहनेलगा, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! जो आपने पहिले वनमें मुझे सौंप दी थी, उस जानकीको ग्रहण करिये ॥ १९ ॥ २० ॥ हे हरे ! रावणके प्राणोंको नष्ट करनेके निमित्त मायाकी जानकी रचकर आपने पुत्र और बान्धवोंसहित रावणका संहार करा, हे प्रभो ! इसप्रकार रावणका वध करनेसे आपने पृथ्वीका भार दूर करा ॥ २१ ॥ आपने जिस कार्य्यके निमित्त उस प्रतिबिम्बरूप सीताका निर्म्माण कराथा, वह उस कार्य्यको करके अब अन्तर्धान होगई, इसप्रकार अग्निके कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने अतिप्रसन्न होकर अग्निका पूजन करा, फिर लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीने सर्वकाल साथ रहनेवाली त्रिलोकीकी माता साक्षात् लक्ष्मीरूप अत्यन्त प्रसन्नमुखी जो जानकी तिनको स्वीकार करके अपनी गोदमें बैठाया, तब तो शोभाकरके प्रकाशवान् श्रीरामचन्द्रजीको जानकीजीकरके युक्त देखकर अतिप्रसन्न हुए जो इन्द्रदेव सो भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ेहुए समीपमें आकर गद्गदवाणीसे श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करनेलगे, इन्द्रदेव बोले, कि—नीलकमलकी समान कान्तिमान्, संसाररूपी वनको अग्निकी तुल्य भस्म करनेवाला है नाम जिनका, पार्वती करके हृदयके विषे ध्यान करेहुए आनन्दस्वरूप, संसारबन्धनको नष्ट करनेवाले, और शिव आदिकरके सेवन करनेयोग्य श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजताहूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ देवगणोंके दुःखसमूहको नाश करनेवाले मायाकरके मनुष्यशरीर धारण करनेवाले, वास्तवमे निराकाररूप, स्तुति करनेयोग्य ब्रह्मादिकेभी स्वामी मायासे पर, आनन्दस्वरूप, सर्वश्रेष्ठ, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले, और सर्वशक्तिमान् साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचंद्रजीको मैं भजताहूँ ॥ २५ ॥ शरणागतोंको सर्वप्रकारका आनन्द देनेवाले, भक्तोंकरके सेवित, शरणागतोंके दुःखोंको निर्मूल करनेवाला है नाम जिनका, शमदमादिरूप योगको धारण करनेवाले, योगीश्वरोंकरके सत्तारूपसे ध्यान करनेयोग्य ऐसे सुग्रीव विभीषण आदिके मित्र सूर्यकी समान प्रकाशवान् श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजताहूँ ॥ २६ ॥ संसारके विषयोंको भोगनेमें आसक्त, पुरुषोंसे सदा दूरही

रहनेवाले, प्रकाशवान्, सदा योगियोंके समीपमेंही प्रकाशित रहनेवाले, चैतन्यस्वरूप, और आनन्दस्वरूप, जानकीको आनन्दरूप, अर्थात् सबप्रकारको आनन्द देनेवाले, रघुवंशके स्वामी श्रीरामचंद्रजीकी मैं शरणागत हूँ ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! अपनी बड़ी भारी योगमायाके सत्वादिगुणोंके विषे आप इसप्रकार प्रतीयमान होतेहो, जिसप्रकार लालपुष्पके समीपमें रखीहुई स्वच्छ और श्वेतभी स्फटिकमणि लालसी प्रतीत होनेलगती है, और इसी योगमायाके गुणोंको अंगीकार करके आप मनुष्यकी आकृति धारण करते हैं; तिस मनुष्यरूपकरके करीहुई आपकी आनन्ददायक लीलाओंकी कथाओंको श्रवण करनेसे पवित्र हैं कर्ण जिनके ऐसे पुरुष इसलोकमें आनन्द रूप होकर रहते हैं ॥ २८ ॥ हे ईश ! अहंकाररूपी मद्यपानकरके मदोन्मत्त हुआ मैं आपको भूलरहाथा, और इसप्रकार अभिमानयुक्त होरहाथा, कि–जिसप्रकार चक्रवर्त्ती राजाओंको अपने ऐश्वर्य्यका अभिमान होता है, परंतु हे भगवन् ! इससमय आपके चरणकमलोंके अनुग्रहसे वह त्रिलोकीके स्वामीपनेका अभिमान दूर होगया ॥ २९ ॥ प्रकाशवान् रत्नोंकरके जड़ेहुए बाजूबन्द और हारोंकरके अति रमणीय, पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका समूहरूप जो वन तिसको अग्निकी समान नष्ट करनेवाले, शरत्कालके चंद्रमाकी समान है मुख जिनका, नीलकमलकी समान हैं नेत्र जिनके, और अति कठिनसे प्राप्त होने योग्य है पारावार जिनका, ऐसे रघुनाथजीकी मैं शरणागत हूँ; ॥ ३० ॥ इन्द्रनीलमणि और मेघमण्डलकी समान श्यामवर्ण है अंगकी कान्ति जिनकी ऐसे, विराध आदि राक्षसोंका वध करके लोकोंको शान्तिरूप सुख देनेवाले, मुकुट आदिकरके शोभायमान, शिवजीकोभी यत्नसे प्राप्त होनेयोग्य, ऐसे रघुवंशके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरणागत हूँ ॥ ३१ ॥ करोडों चंद्रमाओंकी समान प्रकाशवान् सिंहासनके ऊपर देदीप्यमान सुवर्णकी तुल्य है शरीरका वर्ण जिनका, और बिजलियोंके समूहकी तुल्य है कान्ति जिनकी, ऐसी सीताजीको गोदमें लेकर बैठेहुए दुःख और आलस्यकरके रहित श्रीरामचन्द्रजी तिनको मैं भजताहूँ॥ ३२॥

इसप्रकार इंद्रके स्तुति करनेके अनंतर पार्वतीकरके सहित आकाशके विषें विमानपर बैठेहुए महादेवजी कमलदलनयन श्रीरामचंद्रजीसे कहनेलगे॥ ३३॥ कि—हे रघुनाथजी! मैं अयोध्याके विषें राज्याभिषेक होनेपर आपका दर्शन करनेको आऊंगा, इससमय आप अपने इस देहके पिता-राजादशरथका दर्शन करिये ॥ ३४ ॥ इसप्रकार महादेवजीके कहनेपर श्रीरामचंद्रजीने अपने आगे विमानपर स्थित महाराज दशरथको देखा, तब प्रसन्न होकर भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजीकरके सहित शिर नवाकर पिताके चरणोंमें प्रणाम करा ॥ ३५ ॥ तब महाराजा दशरथने श्रीरामचंद्रजीको हृदयसे लगाकर मस्तकमें सूंघ लिया, और कहनेलगे, कि—हे पुत्र! तुमने मुझे संसाररूपी दुःखके समुद्रसे तारदिया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार कहकर और फिर हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीसे सत्कारको प्राप्त होकर चलेगये, तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़े आगे खड़ेहुए इन्द्रको देखकर कहा ॥ ३७ ॥ कि—हे इन्द्रदेव! तुम मेरी आज्ञासे मेरे निमित्त संग्राममें मरणको प्राप्त होकर रणभूमिमें पड़ेहुए वानरोंको अमृतकी वर्षा करके शीघ्रही जीवित करो ॥ ३८ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको स्वीकार कर इंद्रदेवने अमृतकी वर्षा करके सम्पूर्ण वानरोंको जीवित करदिया, तब वह सब वानर जिसप्रकार शयन करके उठते हैं, इसप्रकार उठकर पहिलेकी समान प्रसन्न और बलवान् होकर श्रीरामचंद्रजीके समीप आगये ॥ ३९ ॥ परंतु रणभूमिमें पड़े हुए राक्षस अमृतकी वर्षा होनेपरभी नहीं उठे, क्यों कि—सत्यसंकल्प भगवान्‌के बाणोंसे मरणको प्राप्त होनेवालोंको जीवित करनेके लिये अमृतकी क्या सामर्थ्य है? तदनंतर विभीषण साष्टांग प्रणाम करके रघुनाथजीसे यह वचन बोले ॥ ४० ॥ कि—हे देव! मेरे ऊपर कृपा करिये, यदि मेरे विषें आपकी प्रीति है तौ अब सीताकरके सहित मंगलस्नान करिये ॥ ४१ ॥ फिर भ्राता लक्ष्मणजी करके सहित वस्त्र आभूषणादि धारण करके मेरे ऊपर अनुग्रह करिये, और कलको हम सब अयोध्यापुरीको चलेंगे, इसप्रकार विभीषणके वचनको

सुनकर श्रीरघुनाथजीने उत्तर दिया, कि–हे विभीषण! अतिकोमल मेरा अत्यंत भक्त और मेरी समानही जटा और वल्कलको धारण करे ॐकारका ध्यान करनेमें तत्पर भरत मेरे आनेकी वाट देखता होगा, अर्थात् यदि अवधिका समय वीत जायगा तौ वह प्राणत्याग करदेगा ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ सो तिस भरतके विना मैं मंगलस्नान आदि किसप्रकार कर सक्ताहूँ, ? इसकारण तुम सुग्रीवआदि वानरोंका विशेपतासे पूजन करो, देरी करनेका समय नहीं है ॥ ४४ ॥ हे विभीपण! इन सब वानरोंका पूजन करनेपर मैं निःसंदेह पूजित हो जाऊंगा, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर विभीषणने तत्कालही वानरोंको यथारुचिके अनुसार रत्न और वस्त्र दिये, तब तिन वानरोंके समूहोंको और सेनापतियोंको रत्नोंसे पूजित देखकर श्रीरामचंद्रजीने सब वानरोंको यथायोग्य प्रशंसा करके विदा किया फिर विभीषणकरके लायेहुए सूर्यकी समान प्रकाशवान् अत्युत्तम पुष्पकनामक विमानपर लज्जायुक्त यशस्विनी जानकीको गोदमें बैठाकर श्रीरामचंद्रजी चढ़े, और परमपराक्रमी धनुषधारी भ्राता लक्ष्मणको अपने धौरै बैठाया, और विमानमें बैठेहुए ही श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण वानरोंसे और वानरराज सुग्रीवसे तथा अंगदसे और विभीपणसे कहने लगे, कि–आप सबने वानरोंकरके सहित जो कुछ मित्रके करनेका कार्य था सो सब किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अब मेरी आज्ञासे तुम सब इच्छाके अनुसार अपने २ स्थानोंको जाओ, और हे सुग्रीव! तुम अपनी सेनाकरके सहित किष्किन्धाको जाओ॥ ५१ ॥ हे विभीषण! तुम मेरी भक्ति करतेहुए अपने लंकाके राज्यमें निवास करो तुम्हारा इंद्रकरके सहितभी देवता तिरस्कार नहीं करसकेंगे॥ ५२॥ अब मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्यापुरीको जानाचाहताहूँ, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर वह संपूर्ण महाबली वानर और संपूर्ण राक्षस तथा विभीषण आदि सब हाथ जोड़कर कहने लगे, कि–हे रघुनाथजी! हमारीभी यही इच्छा है, कि–आपके साथ अयोध्यापुरीको चलैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ आपके राज्याभिषेकको

देखकर और कौसल्या माताके चरणोंमें प्रणाम करके फिर इस राज्यको स्वीकार करैंगे, सो हे प्रभो ! हमें साथ चलनेकी आज्ञा देनी चाहिये॥५५॥ इसप्रकार सबके कहनेको स्वीकार करके श्रीरामचन्द्रजीने कहा, कि—हे सुग्रीव ! तुम वानरोंकरके सहित, और विभीषण तथा हनुमान्करके सहित अब शीघ्रही विमानपर चढ़ो ॥ ५६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके इतना कहतेही वानरोंकी सेनासहित सुग्रीव और मंत्रियोकरके सहित विभीषण तथा और भी सब शीघ्रही तिस दिव्य पुष्पकविमानपर चढ़गए ॥ ५७ ॥ जब वह सब चढ़गए तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह कुबेरका पुष्पकविमान आकाशमार्गको उड़कर चलदिया ॥ ५८ ॥ हंसोंकरके युक्त प्रकाशवान् तिस विमानके ऊपर चढ़कर प्रसन्नचित्त श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार शोभाको प्राप्तहुए, मानो हँसके ऊपर चढ़ेहुए दूसरे ब्रह्माही हैं ॥ ५९ ॥ बड़े तप करके प्राप्त हुआ वह सूर्य्यमण्डलकीसमान कुबेरका विमान स्वयंही शोभायमान था, और लक्ष्मणजी तथा सीता करके सहित श्रीरामचन्द्रजीके बैठनेसे तौ अत्यन्तही शोभाको प्राप्त हुआ ॥६०॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति ! तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी चारों-ओर दृष्टि डालकर चन्द्रमुखी जनककुमारी सीताजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ कि—हे प्रिये ! त्रिकूटाचलके शिखरके अग्रभागपर वसीहुई अत्यन्त कान्तियुक्त लंकापुरीको देखो, और इस रणभूमिको देखो, अभीतक यहाँ मांस रुधिरकी कींच होरही है ॥ २ ॥ राक्षसोंका और वानरोंका बड़ा-भारी युद्ध यहाँही हुआ था, और यहाँही मेरे हाथसे मरकर राक्षसपति रावणने शयन करा था, ॥ ३ ॥ कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि सब राक्षस इसीस्थानपर मारेगए, और यह देखो जलके स्थान समुद्रमें मैंने पुल बँधवाया है ॥ ४ ॥ और यह देखो, समुद्रके तीरपर परम पवित्र तीर्थ है, यह

त्रिलोकीके पूजने योग्य और सेतुबन्धनामसे प्रसिद्ध है, ॥ ५ ॥ अधिक क्या कहूँ, हे प्रिये ! यह परमपवित्र और दर्शन करनेसे सम्पूर्ण पातकोंको दूर करनेवाला है, क्यों कि मैंने स्वयं यहाँ रामेश्वर नामक महादेवकी प्रतिष्ठा करी है ॥ ६ ॥ और देखो इस स्थानपर मंत्रियोंकरके सहित सुग्रीव मेरी शरणांगत आया था, और वह देखो विचित्र वनकरके शोभायमान सुग्रीवकी किष्किंधा नगरी है ॥ ७॥ महादेवजी कहतेहैं, कि—हे पार्वति ! इसप्रकार श्रीरामचंद्रजी सीताको मार्गके सब स्थान बतारहे थे, सो ज्योंही किष्किन्धानगरीके समीप आया, त्यौंही तत्काल श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे सुग्रीवने सीताजीको प्रसन्न करनेकी इच्छाकरके ताराआदि, अपनी सम्पूर्ण स्त्रियोंको तहाँ बुलालिया ॥ ८ ॥ तब उन स्त्रियोंकोभी लेकर शीघ्रही पुष्पक विमान आकाशमार्गसे चलने लगा, तब श्रीरामचन्द्रजी सीताजीसे कहने लगे, कि—हे प्रिये ! इस ऋष्यमूक पर्वतको देखो, यहाँ मैंने वालिका वध करा था ॥ ९ ॥ और यह पंचवटी दीखरही है, जहाँ मैंने राक्षसोंको नष्ट करा था, और वह देखो, अगस्त्य और सुतीक्ष्णमुनिके दोनों सुन्दर आश्रम दीखरहे हैं ॥ १० ॥ हे प्रिये ! यह सब तपस्वी दीखरहेहैं, और हे देवी ! वह देखो अति उत्तम चित्रकूट प्रकाशित होरहा है ॥ ११ ॥ यहाँ मुझे केकेयीका पुत्र भरत प्रसन्न करनेको आया था, और वह देख यमुनाके तटपर भरद्वाजऋषिका आश्रम दीख रहा है ॥ १२ ॥ यह लोकोंको पवित्र करनेवाली भागीरथी गङ्गा दीख रही है, और वह देखो, सीते ! सरयू दीख रही है, जिसके तटपर रघुवंशियोंके यज्ञ करनेके खंभोंकी पंक्ति शोभित हो रही है ॥ १३ ॥ और हे भामिनी ! यह वह अयोध्यानगरी दीखती है, इसको प्रणाम करो, इसप्रकार जानकीजीसे वार्ता करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाजऋषिके आश्रमपै आ गए ॥ १४ ॥ चौदहवर्ष पूर्ण होनेपर पंचमीको दिन प्रभु रघुनाथजीने लक्ष्मणजीसहित आकर भरद्वाजमुनिका दर्शन करके प्रणाम करा ॥ १५ ॥ फिर आश्रममें बैठेहुए भरद्वाजमुनिसे श्रीरामचन्द्रजीने नम्रतापूर्वक बूझा, कि—हे भगवन् ! शत्रुघ्नकरके सहित भरत

तौ कुशल है ? यह आपने सुना है?॥ १६ ॥ अयोध्यामें सुभिक्ष है ? और मेरी माता जीवित है ? इसप्रकार रघुनाथजीके बूझनेपर भरद्वाजमुनि प्रसन्न चित्त होकर बोले, कि-हे रामचंद्र ! सब कुशलपूर्वक हैं, और पवित्रान्तःकरण भरत तौ फलमूल आहारकरके जटा वल्कल धारण करेहुए रहता है॥ १७॥ १८॥ और अयोध्यापुरीका सम्पूर्ण राज्य आपकी पादुका (खड़ाऊँ)ओंको समर्पण करके तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा करता रहता है, हे रघुनंदन ! तुमने दण्डकारण्यके विषें राक्षसोंका नाश और सीताहरण आदि जो जो लीला करीं वह सब तुम्हारे अनुग्रहसे तपके बलकरके मैंने जानलिया ॥ १९ ॥ २०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम आदि, मध्य और अन्तकरके रहित साक्षात् परब्रह्म हो, हे सम्पूर्ण प्राणियोंको रचनेवाले ! आपने प्रथमही जलको रचकर उसके विषें शयन करा ॥ २१ ॥ इसकारण तुम नारायण हो, क्यों कि—नर जो पुरुष (आप) तिनसे उत्पन्न होयँ सो हुए नार वह नार हैं अयन स्थान जिनका, अथवा सब नरोंके कहिये जीवोंके अन्तर्यामी होनेके कारण आप नारायण हो, अर्थात् नार जो जीवसमूह तिसकी अयन कहिये प्रवृत्ति होय जिससे वह नारायण कहाता है इसप्रकार नारायण शब्द व्याकरणसे सिद्ध होता है। विश्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी जो जलशायी मूर्त्ति है, तिस मूर्त्तिकी नाभिके कमलसे त्रिलोकीके पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं॥ २२॥ इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम जगत्के स्वामी और सम्पूर्ण लोकोंकरके नमस्कार कियेगए हो, हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम विष्णु हो, जानकी लक्ष्मी है, और लक्ष्मण साक्षात् शेषजीका अवतार हैं, ॥ २३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम अधिष्ठानरूप अपने आत्माके विषें इस जगत्को मायाकरके रचते हो, परन्तु अपनी चित्शक्ति करके आकाशकी समान कहीं लिप्त नहीं होते हो, किन्तु सबके साक्षीरूप होकर रहते हो ॥ २४ ॥ हे रघुवंशको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ! सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर भीतर तुमही व्याप्त हो, परन्तु अज्ञानदृष्टि पुरुषोंको विच्छिन्न कहिये परिच्छिन्न (मनुष्यादि रूपधारी) से प्रतीत होतेहो ॥ २५ ॥ हे जगत्पते ! तुमही जगत्के आधार

हो, तुमही जगत्के पालक हो, तुमही सम्पूर्ण प्राणियोंके विषें भोजन करने-वाले रूप तुमही हो, और भोज्य कहिये अन्नादिरूपभी तुमही हो ॥ २६ ॥ जो कुछ श्रवण करनेमें आता है, और जो कुछ स्मरण होता है, हे रघूत्तम। वह सब आपकाही रूप है, आपसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ २७ ॥ हे श्रीरा-मचन्द्रजी ! आपकी प्रेरणा करीहुई माया अपने अहंकार आदि गुणोंकरके लोकोंको रचती है, इसकारणही आपके विषें वह जगत्का कर्त्तापनाआदि इसप्रकार प्रतीत होता है, जिसप्रकार सेवकके करेहुए कार्य्यका कर्त्तापना आदि राजाके विषें ॥ २८ ॥ जिसप्रकार चुम्बक पत्थरकी समीपतासे लो-हाआदि चलने लगते हैं, तिसीप्रकार जड़माया आपकी दृष्टिमात्रसेही जग-त्की रचना करने लगती है आपका मायाकी ओरको देखनाही प्रेरणा है॥ २९॥ जगत्के रक्षक जो आप तिन आपके अदेह होकरभी तुम्हारे स्थूल और सूक्ष्म दो शरीर हैं, आपका विराट्स्वरूपही स्थूल शरीर है, और सूक्ष्म कहिये हिरण्यगर्भ आपका सूक्ष्म शरीर है॥ ३० ॥ उस आपके विराट् शरीरसेही यह हजारों अवतार होते हैं, और हे रघुनाथजी ! कार्य सिद्ध होनेके अनं-तर वह संपूर्ण अवतार उस विराट्स्वरूपमेंही प्रवेश करजाते हैं ॥ ३१ ॥ हे रघुनाथजी ! जो चित्त लगाकर इस संसारमें आपके अवतारोंकी कथा-को श्रवण करते हैं और गान करते हैं तथा कहते हैं उनको निःसंदेह मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥ ३२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! तुमने पहिले ब्रह्माजीके तपसे प्रसन्न होकर इनकी प्रार्थनासे रघुकुलमें अवतार धारण करा है॥ ३३॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आपने देवताओंको अतिकठिन कार्य पूर्णरीतिसे करा, और आगेको तुम अनेक सहस्र वर्षपर्यन्त मनुष्यशरीरको धारण करेहुए दुष्कर कर्म्मोंको करके दोनों लोकोंके हितके अर्थ पापको दूर करनेवाले अपने चरित्ररूपी यशसे त्रिलोकीको परिपूर्ण करोगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! मेरी इतनी प्रार्थना है, कि— आज निवासकरके मेरे घरको पवित्र करिये, कल भोजन करके सेनासहित अयोध्यापुरीको जाइये॥ ३६॥ इस कथनको स्वीकार करके रघुनाथजी तिस उत्तम आश्रमके विषें ठहर

गये, और भरद्वाजऋषिने सीता, लक्ष्मण तथा सेनाकरके सहित श्रीरामचंद्रजीका सत्कार करा ॥ ३७ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने दो घड़ी पर्यन्त कुछ विचार करके हनुमान्‌जीसे कहा, कि—हे पवनकुमार ! तुम यहाँसे शीघ्रही अयोध्यापुरीको जाओ ॥ ३८ ॥ तहाँ राजमंदिरमें जाकर प्रथम सबकी कुशल देखकर आओ, और लौटते समय शृंगवेरपुरमें जाकर मेरे मित्र गुहसे कहो ॥ ३९ ॥ कि—जानकी और लक्ष्मणकरके सहित रामचन्द्र आगये, फिर नंदिग्राममें जाकर मेरे भ्राता भरतका दर्शन करके कहो, कि जानकी और भ्राता लक्ष्मण करके सहित रामचंद्र कुशल हैं, और क्रमसे सीताहरण रावणका वध आदि सब तहाँका चरित्र भ्रातासे कहो, और कहो कि—सम्पूर्ण शत्रु समूहोंको नष्ट करके सीता और लक्ष्मणकरके सहित और रीछ तथा वानरोंको साथमें लिये हुए परिपूर्ण मनोरथ रामचंद्र आ रहे हैं, इसप्रकार कहकर और तहाँ भरतका सम्पूर्ण चरित्र देखकर शीघ्रही लौटकर मेरे पास आओ, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको शिरोधारणपूर्वक अंगीकार करके हनुमान्‌जीने तहाँही मनुष्यका शरीर धारण करलिया ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ और शीघ्रही नंदिग्रामको हनुमान् इसप्रकार वेगसे गये, कि—जिसप्रकार उत्तम सर्पको ग्रहण करनेकी इच्छासे गरुडजी अतिवेगसे जाते हैं ॥ ४५ ॥ पवनकुमारने शृंगवेरपुरमें गुहके पास जाकर प्रसन्न चित्तसे मधुर वाक्य कहा ॥ ॥ ४६ ॥ कि—तुम्हारे मित्र श्रीमान् दशरथकुमार धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण और सीताकरके सहित कुशलपूर्वक आयेहैं, और तुम्हारे अर्थ कुशल कहा है ॥ ४७ ॥ आज भरद्वाजमुनिकी आज्ञासे रघुनाथजी उनके आश्रममें ठहर गये हैं, कल आवेंगे अब तिन रघुवंशशिरोमणि राजा रामचंद्रजीको देखोगे ॥ ४८ ॥ प्रसन्नतासे शरीरमें खड़े होगये हैं रोमांच जिसके ऐसे गुहसे इसप्रकार कहकर पवनकुमार वायुसमान अत्यंत वेगसे चलदिये ॥ ४९ ॥ और आगे जाकर रामतीर्थ महानदी शरयूको देखा, उसको लांघके हनुमान्‌जी अयोध्यासे कोशभर जो नन्दिग्राम तहाँ प्रसन्न होतेहुए

गये, तहाँ चीर और मृगचर्म्मको ओढे हुए, दीन अवस्थाको प्राप्त, दुर्बल शरीर, धूलि और कींचसे सजेहुए शरीरवाले, मस्तकपर जटाजूट धारण करे-हुए, वनके फलमूलका आहार करनेवाले श्रीरामचंद्रजीकी चिन्तासे व्याकुल, और तिन श्रीरामचंद्रजीकीही पादुकाओंको आगे स्थापन करके गेरुवा वस्त्र धारण करनेवाले, मंत्रि और मुख्य २ पुरवासियोंकरके सहित पृथ्वीका पालन करतेहुए साक्षात् शरीरधारी धर्म्मरूप भरतजीका दर्शन करके पवनकुमार हनुमान्जी हाथ जोड़कर यह वाक्य बोले, कि–हे रघुकुलशिरो-मणे! आप जिन श्रीरामचंद्रजीके निमित्त चिंता कररहे हैं, जो श्रीरामचंद्रजी तपस्वियोंको वेश धारण करके दण्डकारण्यमें रहे थे, और जिनके निमित्त प्रतिक्षण शोक करतेहुए तुम दुःखित होते हो उनही इक्ष्वाकुवंशमें जन्म धारण करनेवाले श्रीरामचंद्रजीने आपको कुशल कहा है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे देव! मैं आपको प्रिय वृत्तान्त सु-नाताहूँ अब आप इस दारुण शोकको त्याग दीजिये, इस मुहुर्त्तमेंही भ्राता श्रीरामचंद्रजीके साथ आपका मेलन होगया ॥ ५६ ॥ श्रीरामचंद्रजी रण-भूमिमें लंकापति रावणका संहार करके और सीताको प्राप्त होकर मनोरथ पूर्ण होनेपर भ्राता लक्ष्मण और जनकनंदिनी सीताकरके सहित आ रहे हैं ॥ ५७ ॥ जब हनुमान्जीने यह शुभसंवाद कहा तब कैकईके प्रियपुत्र महाबली भरतजी आनन्दके कारण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ५८ ॥ और फिर उठकर शुभसंवाद देनेवाले पवनकुमार हनुमान्जीको शीघ्रही हृदयसे लगाकर नेत्रोंमेंसे निकलेहुए आनंदके आंसुओंसे पवनकुमारको सींचकर भरतजी कहने लगे ॥ ५९ ॥ कि–तुम देवता हो या मनुष्य हो जो मेरे ऊपर अनुग्रह करके तुम यहाँ आये हो? हे चंद्रमाकी समान प्रियदर्शन तुमने मुझे प्रिय संवाद सुनाया है सो मैं तुमको क्या वस्तु समर्पण करूँ? ॥ ६० ॥ सौ हजार गौ, एकसौ बड़े बड़े गाँव, और संपूर्ण आभूषणोंक-रके भूषित सर्वांग सुन्दरी सोलह कन्या देता हूँ ॥ ६१ ॥ इसप्रकार कह-कर भरतजी पवनकुमारसे फिर कहने लगे कि–हमारे नाथ रामचंद्रको महा

वनमें गयेहुए बहुत वर्ष व्यतीत हो गये॥ ६२॥ आज मैंने आनन्ददायक अपने स्वामीका वृत्तान्त सुनाहै आज यह शुभदायक लौकिक गाथा मुझे सत्य प्रतीत होती है ॥ ६३ ॥ कि—जीतेहुए मनुष्यको सौ वर्षके अनंतरभी आनंदकी प्राप्ति होतीहै, हे पवनकुमार ! अब मुझे यह सुनाओ, कि—रघुनाथजीका और वानरोंका समागम किसप्रकार हुआ ॥ ६४ ॥ यह सब ठीक ठीक कहो, क्यों कि हे भद्र ! मुझे तुम्हारे कथनका विश्वास है, परमसमर्थ महात्मा भरतजीके इसप्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने क्रमसे श्रीरामचंद्रजीका सम्पूर्ण चरित्र वर्णन करा, हनुमान्‌जीसे श्रीरामचंद्रजीके सम्पूर्ण वृत्तांतको सुनकर भरतजी परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ और अपने हृदयमें आनन्दयुक्त हो प्रसन्न चित्त शत्रुघ्नको आज्ञा दी, कि—हे रघुनंदन ! इस नगरमें जितनी देवताओंकी प्रतिमा हैं उनका परमबुद्धिवान् ब्राह्मण अनेक प्रकारकी पूजनकी सामग्रीके द्वारा पूजन करें, सुत, मागध, बन्दीजन, तथा औरभी स्तुति पढ़नेवाले पुरुष और सैंकड़ों वेश्या, यह सब इकट्ठे होकर अबही नगरके बाहर आवें, और महाराज दशरथकी सब रानियें, सम्पूर्ण मंत्री, हाथी घोड़े आदि सम्पूर्ण सेना, ब्राह्मण, सम्पूर्ण पुरवासी, और इधर उधरसे आये हुए संपूर्ण राजा, आज चन्द्रमाकी समान मुखवाले श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करनेके निमित्त नगरसे बाहर आवैं ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ इसप्रकार भरतजीके वचनको सुनकर शत्रुघ्नके आज्ञा देनेपर पुरवासियोंने मोती और रत्नोंकी बनाई हुई चमकती हुई बंदनवारोंसे और अनेकप्रकारकी चित्र विचित्र पताकाओंसे अयोध्यापुरीको शोभित करदिया, और नानाप्रकारकी रचना करनेमें चतुर पुरुषोंने अपने स्थानोंको शोभायमान करा ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ और संपूर्ण पुरवासी श्रीरामचंद्रजीके दर्शनकी लालसासे इकट्ठे हो होकर नगरसे बाहर जानेलगे, एक लक्ष घोड़ोंके सवार, दशहजार हाथी, और दशहजार सुवर्णके तारके कामसे शोभायमान रथ, तथा और सब पुरुष श्रीरामचंद्रजीके योग्य कमती बढ़ती मोलकी वस्तुऐं भेटके निमित्त लेकर चलदिये॥ ७३॥

॥ ७४ ॥ फिर पालकियोंमें चढ़ीहुई महाराज दशरथकी रानियें चलीं, तिन सबके पीछे भरतजी श्रीरामचंद्रजीकी पादुकाओंको शिरपर रखकर हाथ जोड़ेहुए, शत्रुघ्नकरके सहित पैदलही श्रीरामचंद्रजीके मिलनेको चलदिये; इतनेहीमें दूरसे चंद्रमाकी, समान कांतिमान् सूर्यकी समान प्रकाशवान् ब्रह्माजीने मनसे बनाया हुआ पुष्पक विमान दीखा, सो पवनकुमार हनुमान्जी कहनेलगे, कि—अरे पुरुषो ! देखो इस विमानमें जानकीकरके सहित परमपराक्रमी रामलक्ष्मण दोनों भ्राता, वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव, और मंत्रियोंकरके सहित विभीषण दीखरहे हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ इतना हनुमान्जीके कहतेही स्त्री, बालक, युवा, और वृद्धोंने कहा कि—वह श्रीरामचंद्रजी है वह श्रीरामचंद्रजी हैं, इसप्रकार हर्षसे उत्पन्नहुआ बड़ा भारी शब्द आकाशमें गुंजारने लगा ॥ ७९ ॥ रथ, हाथी, और घोड़ेंपरसे उतरकर मनुष्य पृथ्वीपर खड़े होगये, और आकाशके विषे विमानपर स्थित श्रीरामचंद्रजीको चंद्रमाकी समान देखनेलगे ॥ ८० ॥ तदनंतर श्रीरामचंद्रजीको सन्मुख पृथ्वीपर स्थित परमानंदयुक्त भरतजीने हाथ जोड़कर विमानपर बैठेहुए श्रीरामचंद्रजीको परम हर्षकरके सहित प्रणाम करा, तब मानो सुमेरुपर स्थित सूर्य नारायणको कोई प्रणाम कररहा है, ऐसी शोभा हुई, फिर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे विमान पृथ्वीपर उतरा ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तब शत्रुघ्नसहित भरतजीको श्रीरामचंद्रजीने उस विमानपरही चढ़ालिया, तबतौ श्रीरामचंद्रजीको प्राप्त होकर भरतजी परमप्रसन्न हुए, और फिर प्रणाम करा ॥ ८३ ॥ तबतौ रघुनाथजीने चरणोंमें गिरेहुए, और बहुतकालके अनंतर देखेहुए भ्राता भरतको उठाकर अपनी गोदमें बैठाया, और परमआनन्दके साथ हृदयसे लगाया ॥ ८४ ॥ फिर भरतजीने लक्ष्मणजी और जानकीके पास जाय प्रेमसे विह्वल हो इसप्रकार कहा, कि—मैं भरत प्रणाम करताहूँ ॥ ८५ ॥ फिर भरतजीने सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज, अंगद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ, तथा पनस आदि सबको हृदयसे

लगाया ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ तदनंतर उन संपूर्ण वानरोंने प्रसन्न होकर अतिरमणीय मनुष्यका रूप धारण करके भरतजीका सत्कार करा, और कुशल पूँछी ॥ ८८ ॥ तदनंतर भरतजी प्रीतिपूर्वक सुग्रीवको हृदयसे लगाकर कहने लगे, कि—हे वानरराज ! तुम्हारी ही सहायतासे श्रीरामचंद्रजीकी जय और रावणका मरण हुआ ॥ ८९ ॥ हे सुग्रीव ! तुम हम चारों भ्राताओंमें पांचवें भ्राता हो, फिर शत्रुघ्नने लक्ष्मणसहित श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके पीछेसे नम्रतापूर्वक सीताजीके चरणोंमें प्रणाम करा, इसके अनंतर श्रीरामचंद्रजी शोककरके विह्वल और दुर्बल शरीर कौशल्या आदि अपनी माताओंके पास गये, और प्रणामपूर्वक चरणोंमें गिरकर अपनी माता कौशल्याके मनको प्रसन्न करा, फिर कैकेई और सुमित्रा आदि सब रणवासकी रानियोंको प्रणाम करा ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ फिर भरतजीने सुन्दर रीतिसे पूजन करी हुई उन पादुकाओंको भक्तिपूर्वक श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें पहिनाया ॥ ९३ ॥ और कहनेलगे, कि—हे प्रभो ! यह आपका धरोहड़रूप राज्य मैंनें आपको लौटादिया, आज मेरा जन्म सफल हुआ, और मनोरथ सफल हुआ, जो आपको अयोध्यापुरीमें आया हुआ देखरहा हूँ, हे प्रभो ! मैंने आपके प्रतापसे अन्नका भंडार, सेना और खजाना, दशगुणा करदिया; हे त्रिलोकीनाथ ! अब आप अपने नगरका पालन करिये, भरतजीको इसप्रकार कहतेहुए देखकर सम्पूर्ण वानरोंके नेत्रोंमेसे आंसू टपकने लगे, और सब प्रसन्न होकर भरतजीकी प्रशंसा करनेलगे, इसके अनंतर प्रसन्नचित्त श्रीरामचंद्रजी भरतजीको अपनी गोदमें बैठाएहुए आनंदपूर्वक तिस विमानपर चढ़ेहुएही भरतजीके आश्रमको गये, और तहाँ उस पुष्पक विमानसे पृथ्वीपर उतरकर महाराज पुष्पकसे कहने लगे, कि—हे पुष्पक ! जाओ, और कुबेरको अपने ऊपर धारण करो, मैं तुम्हें आज्ञा देताहूँ, कि—तुम धनपालक कुबेरकी आज्ञामें रहा करो ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ तदनंतर जिस प्रकार इन्द्रदेव गुरु बृहस्पतिजीको प्रणाम करतेहैं तिसही प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने

कुलगुरु वसिष्ठजीके चरणकमलोंको प्रणाम करा, और गुरुको बैठनेके निमित्त एक बहुमूल्य अतिउत्तम आसन दिया, और आपने आपभी उनके समीपमेंही बैठगये ॥ १०० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, हे पार्वति! तदनन्तर कैकेईके पुत्र भरतजी भक्तिपूर्वक बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके हाथ जोडकर कहने लगे, ॥ १ ॥ कि—हे श्रीरामचंद्रजी!आपने मुझे राज्य सौंपकर चौदहवर्षपर्यंत वनमें निवास करके मेरी माताका सत्कार करा, सो अब मैं यह राज्य जैसा आपने पहिले मुझे सौंपाथा, वैसाही मैं समर्पण करताहूँ ॥ २ ॥ इस प्रकार कहकर और चरणोंमें भक्तिपूर्वक साष्टांग प्रणाम करके भरतजीने कैकेई और गुरुवसिष्ठजीके साथ श्रीरामचंद्रजीकी अनेकप्रकारसे प्रार्थना करी ॥ ३ ॥ मायाको स्वीकार करके संपूर्ण मनुष्यकी चेष्टा करनेवाले परमात्मा श्रीरामचंद्रजीने भरतसे उस संपूर्ण राज्यको ग्रहण करा ॥ ४ ॥ श्रीरामचंद्रजी अपने स्वाराज्य (आत्मानंदका सुख) का अनुभव करते हैं जो सुखरूप और ज्ञानरूप और अद्वितीय हैं, और जिनके आनंदरूपकी समान दूसरा आनन्द नहीं है, तिन जगत्के स्वामी परमात्माको मनुष्योंके तुच्छ राज्यसे क्या प्रयोजन हैं ? जिसके भौंके चलाने मात्रसे क्षणमात्रमें त्रिलोकी नष्ट होजाती है,जिनके कृपाकटाक्षसे इन्द्रको सम्पत्तियें प्राप्त होती है, ऐसी लीलाकरकेही, अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचना करनेवाले लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजीको यह अयोध्याका राज्य कितना है? ॥५॥६॥७॥ तथापि भक्तोंकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेकी इच्छासे परमात्मा नित्य लीलाकरके मनुष्यशरीरको धारण कर सबप्रकारका मनुष्योंका सा व्यवहार करते हैं ॥ ॥ ८ ॥ तदनंतर शत्रुघ्नकी आज्ञासे अतिप्रवीण नाई और समुद्रजलआदि अभिषेककी सामग्रियें आई पहिले भरतजीने स्नान किया, फिर महात्मा

लक्ष्मणजीने तदनंतर वानरराज सुग्रीवने फिर राक्षसपति विभीषणने स्नान करा, फिर जटाओंका संस्कार स्नान अनेकप्रकारकी मालाओंका धारण गंधलेपन, और बहुमूल्य वस्त्रोंको धारणकरके स्थित लक्ष्मीकरके प्रकाशवान् परमप्रवीण लक्ष्मणजी और भरतजीने श्रीरामचंद्रजीका संपूर्ण उबटनादि संस्कार कराया, और सीताका उबटनादि संपूर्ण संस्कार कौशल्या आदि रानियोंने कराया, और तिन जानकीको बहुमूल्य वस्त्र आभूषणादिसे शोभित करा, तदनंतर पुत्रवत्सला प्रसन्नचित्त शुभलक्षणा कौशल्याने सुग्रीव आदि संपूर्ण वानरोंकी स्त्रियोंका उबटना आदि करवाया, तदनंतर शत्रुघ्नकी आज्ञासे परम प्रवीण सुमंत्र सूर्यकी समान प्रकाशवान् रथको जोडकर लाया, और श्रीरामचंद्रजीके आगे खडा करदिया, तब सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचंद्रजी रथपर चढ़े ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ सुग्रीव अंगद हनूमान् और विभीषण यह सब स्नान करके दिव्य वस्त्र और आभूषणोंको धारण करेहुए रथ घोडे और हाथियोंपर चढ़कर श्रीरामचंद्रजीके पीछे और आगे चलदिये, सुग्रीवस्त्रियें और सीताजी यह सब पालकीआदिपर सवार होकर अयोध्यापुरीको चली ॥ १६ ॥ १७॥ जिसप्रकार देवताओंकरके सहित हरित घोड़ोंके रथपर चढ़ाहुआ, इन्द्र जाता है, तिसी प्रकार रथपर बैठकर श्रीरामचंद्रजी अयोध्यापुरीको गये ॥ १८ ॥ उससमय भरतजीने सारथी बनकर रथ हाँका, परमप्रकाशवान् शत्रुघ्नने रत्नजटित दण्डेका श्वेत छत्र लिया, लक्ष्मणजीने व्यजन (पंखा) धारण करा ॥ १९ ॥ चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् एक चमरको सुग्रीव और दूसरे चमरको विभीषणने धारण करा ॥ २० ॥ दिव्य है दर्शन जिनका ऐसे देवता, सिद्धसमूह, और ऋषियोंके श्रीरामचन्द्रजीके स्तुतिकारक वाक्योंकी मधुर ध्वनि सुनाई देनी लगी ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण वानर मनुष्यका रूप धारण करके हाथियोंपर चढ़ेहुए भेरी, शंख, मृदङ्ग, पणव, और नगाड़े आदि अनेक प्रकारके बाजे बजानेलगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार श्रीरघुनाथजी तिस सजाईहुई अयोध्यानगरीको गए. और तिन पुरवासियोंने दूबकी समान श्याम-

वर्ण बहुमूल्य रत्नोंके जडेहुए आभूषणोंसे भराहुआ है शरीर जिनका, और कुछ लाल कमलकी समान चौडे हैं नेत्र जिनके ऐसे रघुनाथजीको आतेहुए देखा, और देखकर वह पुण्यवान् पुरवासी अतिआनन्दको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ चित्रविचित्र वर्णके रत्न और सुवर्णके तार आदि युक्त पीताम्बर धारणवाले, और पुष्ट हैं भुजाओंका अन्तराल (वक्षःस्थल) जिनका, और अमूल्य मुक्ताओंके दिव्य हारोंकरके शोभायामान जो रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको देखकर प्रजाके लोग परम आनन्दको प्राप्तहुए ॥ २५ ॥ शान्तस्वरूप सुग्रीव आदि मुख्य २ वानरोंकरके सेवा करेहुए, सूर्य्यकी तुल्य कान्तिमान्, कस्तूरी और चन्दनसे लिप्त है शरीर जिनका और कण्ठसे बगलमेंको कल्पद्रुमके पुष्पोंकी मालाओंको धारण करेहुए जो श्रीरामचन्द्रजी तिनको आयाहुआ सुनकर अत्यन्त हर्षके वेगसे अत्यन्त बढ़गई है मुखकी कान्ति जिनकी ऐसी सम्पूर्ण अयोध्यापुरीकी स्त्रियें अत्यन्त आवश्यकभी गृहके सम्पूर्ण कार्य्योंको छोड़कर शृङ्गारकरके महलोंके ऊपर चढ़गई ॥ २६ ॥ २७ ॥ सबके नेत्रोंको उत्सवरूप है आकृति जिनकी ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मुसकुरानेसे शोभायमान हैं मुख जिनके ऐसी स्त्रियोंने पुष्पोंकी वर्षा करी, और नेत्र तथा मनको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको स्त्रियोंने नेत्रोंसे और मनसे आलिङ्गन करा ॥ २८ ॥ साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजी मुसकुरानयुक्त स्नेहकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्रजाको देखतेहुए दूसरे प्रजानाथ (ब्रह्मा) की समान शोभायमान हुए, इसप्रकार धीरे धीरे इन्द्रके स्थानकी समान रमणीय पिताके स्थानको गए ॥ २९ ॥ स्थानके भीतर जाकर खड़े हुए, और परमप्रसन्नताके साथ श्रीरामचन्द्रजीने अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम करा, फिर रघुवंशकी पताकारूप श्रीरामचंद्रजीने भक्तिपूर्वक संपूर्णमाताओंके चरणोंमें क्रमसे प्रणाम करा ॥ ३० ॥ फिर सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीसे इसप्रकार कहा, कि—हे भ्रातः ! सबप्रकारकी संपत्तियोंकरके युक्त जो मेरा उत्तम स्थान है, वह मेरे मित्र वानरराज सुग्रीवको ठहरनेके

निमित्त दो, और वानर विभीषण आदिको भी सुखपूर्वक ठहरनेके निमित्त स्थान बतादो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे भरतजीने सबको ठहरनेको लिये यथोचित स्थान दिये, और परमतेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीको छोटे भ्राता भरतजीने सुग्रीवसे इसप्रकार कहा कि—हे सुग्रीव! श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके निमित्त चारों समुद्रोंका शुभकारक जल लानेके निमित्त शीघ्रही शीघ्रगामी दूतोंको भेजो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसप्रकार भरतजीके कहनेसे सुग्रीवने जाम्बवान्, पवनकुमार, अङ्गद और सुषेणको भेजा, यह चारों वायुकी समान वेगसे जाकर, जलसे भरेहुए सुवर्णके कलशोंको ले आए, फिर मंत्रियोंकरके सहित शत्रुघ्नने वसिष्ठजीको निवेदन करा कि— महाराज! तीर्थोंका जल आगया तब वृद्ध जितेन्द्रिय वसिष्ठजीने ब्राह्मणोंको साथ लेकर रत्नजटित सिंहासनपर सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको बैठाया, तदनन्तर वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, वाल्मीकि, आदि सब ऋषियोंने परमआनन्दपूर्वक कुश और तुलसीके मिलेहुए पवित्र तथा सुगंधित जलसे रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक करा, जिसप्रकार वसुनामक देवता इन्द्रका अभिषेक करते हैं, तिसीप्रकार उन ऋषियोंने ऋत्विज, उत्तम ब्राह्मण, कन्या, मंत्रिसमूह, आकाशके विषे स्थित देवता और पार्षदोंकरके सहित स्तुति करतेहुए चार लोकपालोंके साथ सम्पूर्ण औषधियोंके रससे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक करा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उससमय श्रीरामचन्द्रजीके शुभ श्वेत छत्रको शत्रुघ्नने धारण करा, सुग्रीव और राक्षसेन्द्र विभीषण इन दोनोंने चमर धारण करे ॥ ४२ ॥ इन्द्रकी प्रेरणासे वायुने उससमय श्रीरामचन्द्रजीको सुवर्णकी माला दी, और सबप्रकारके रत्नोकरके युक्त मणि सुवर्ण करके शोभायमान हार इन्द्रने स्वयं भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण करा, देवता और गन्धर्व गान करनेलगे, अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ देवता दुन्दुभी बजाने लगें, आकाशसें पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी, नवीन दूबकी समान श्यामवर्ण, कमलके पत्रकी समान चौडे नेत्रवाले, करोड सूर्य्यकी समान

कान्तियुक्त मुकुटसे विराजमान, करोड़ कामदेवकी समान रमणीय, पीताम्बरधारी, दिव्य आभूषण धारण करेहुए, दिव्य चन्दनकरके लिप्त, दशहजार सूर्य्यकी समान प्रकाशवान्, द्विभुज, रघुनाथजीको और वामभागमें बैठी हुई, सुवर्णकी समान कान्तिमती,सम्पूर्ण आभूषणोंको धारण करेहुए श्रीरामचन्द्रजीकी वामजंघापर बैठनेवाली, लालकमल हाथमें लियेहुए जो जनकनन्दिनी सीताको वामहाथसे आलिङ्गन करके स्थित सर्वोपरि शोभायुक्त देखकर पार्वती करके सहित और संपूर्ण देवताओंको साथ लियेहुए महादेवजी भक्तिपूर्वक रघुनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ श्रीशीवजी बोले, कि—शक्ति (सीता) करके सहित, नीलकमलकी तुल्य कोमल श्याममूर्ति. मुकुट—हार—और बाजूबन्द करके शोभित, सिंहासनपर स्थित परमकान्तिमान् श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आपको आदि-मध्य-और अन्त नहीं है, आप अद्वितीय है, सम्पूर्ण जगत्को आपही अपनी मायासे रचते हो पालन करते हो, और नष्ट करते हो, परन्तु यह सब कार्य्य मायाके द्वारा करते हो इसकारण तिसकरके लिप्त नहीं होते हो, (जिसप्रकार बाजीगर अपनी मायासे रचेंहुए जीवआदिको नष्ट करकेभी उसके दोषका भागी नहीं होता है) हे भगवन् ! आप निरन्तर आत्मसुखका अनुभव करतेरहते हो, आपको किसीप्रकार दोष नहीं लगसक्ता है ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! शरणागतभक्तोंको संसारबन्धनसे छुटानेके निमित्त आप मायाके गुणोंको धारण करतेहुए देवमनुष्यआदि नानाप्रकारके अवतारोंको धारण करके लीला करते हो, अवतार धारण करनेपरभी आप ज्ञानी पुरुषोंको परमेश्वररूपही प्रतीत होतेहो, और अज्ञानी पुरुष यह समझते हैं कि—रामकृष्णादि कोई श्रेष्ठ पुरुष हैं, ईश्वर नहीं हैं ॥ ॥ ५३ ॥ हे भगवन् ! तुम सम्पूर्ण लोकको अपने अंशसे रचकर उसको पातालमें शेषरूप होकर धारण करते हो, और ऊपर सूर्य्य, वायु, चंद्रमा, औषधि, और मेघआदि अनेकप्रकारके रूपोंको धारण करके तिस जग-

त्का पालन करतेहो, ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! तुम इस लोकमें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इन पांचप्रकारके पवनोंका सहायरूप जाठराग्निस्वरूप होकर प्राणियोंके भोजन करे हुए सम्पूर्ण अन्नको पचातेहो, इसप्रकारभी सदा सम्पूर्ण जगत्का पालन करतेहो ॥ ५५ ॥ हे ईश ! चंद्रमा सूर्य और अग्निके विषे जो तेज है सम्पूर्ण प्राणियोंमें जो चेतनता है, तथा इस लोकमें प्राणियोंका जो धैर्य्य, शूरता और आयु आदि है, सो सब आपकीही सत्तासे प्रकट हुआ है ॥ ५६ ॥ हे ईश ! ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि भेदकरके और काल कर्म्म सूर्य्य, चंद्रमा, आदि विभागकरके तुमही ब्रह्माआदिके विषे ईश्वरपनका अभिमान करनेवाले मनुष्योंको ब्रह्माआदिरूपकरके प्रतीत होते हो, वास्तवमें निःसन्देह अद्वितीय ब्रह्म हो, ॥ ५७ ॥ हे भगवन् ! जिसप्रकार आप एकही पुराणोंके विषे मत्स्य आदि रूपकरके अनेक प्रकारके कहे गये हो, परलोकमें प्रसिद्ध हो, तिसीप्रकार जो कुछ सत् और असत् प्रतीत होताहै सो सब आपही हो, आपसे भिन्न कुछ नहीं हैं ॥ ५८ ॥ हे भगवन् ! इस अनंत सृष्टिके विषे जो जो पदार्थ उत्पन्न होगये और जे जे उत्पन्न होयँगे तथा जो जो उत्पन्न हो रहे हैं तिन स्थावर जंगम आदिके विषे कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो आपकी सत्ताके विना हो इस कारण हे भगवन् ! आप हिरण्यगर्भसे भी पर हो, ॥ ५९ ॥ हे भगवन् ! आपकी मायाकरके मोहित संपूर्ण प्राणी आपके वास्तविक इस परमात्मरूपको नहीं जानते हैं, और आपके भक्तोंकी सेवा करनेसे निर्मल अन्तःकरण मनुष्योंको आपका सर्वोपरि अद्वितीय ईश्वररूप प्रतीत होता है, बाह्यपदार्थोंमें है चित्त जिनका ऐसे ब्रह्मादिकभी आपके वास्तविक चैतन्य स्वरूपको नहीं जानसके हैं, फिर अन्य पुरुषोंका तो कहनाही क्या ! इसकारण आपके निर्गुणरूपको जाननेमें असमर्थ अज्ञानी जीव ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त अन्य उपाय न करके आपके इस श्यामरूपको भक्तिपूर्वक ध्यान करताहुआ संपूर्ण दुःखोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे भगवन् !

मैं सदा आपके नामको उच्चारण करताहुआ कृतार्थ होकर पार्वती करके सहित काशीपुरीमें निवास करताहूं, और मरणको प्राप्त होतेहुए प्राणीकी मुक्तिके निमित्त आपके रामनाम मंत्रका उपदेश करताहूँ ॥ ६२ ॥ जो पुरुष अनन्यभक्तिसे नित्य इस स्तोत्रको श्रवण करें पढें और लिखें वह परमसुखको प्राप्त होकर आपके प्रसादसे आपकेही पदको प्राप्त होवें ? ६३ इन्द्र बोले कि—हे देव ! इसराक्षसपति रावणने ब्रह्माजीके वरदानसे संपूर्ण देवताओंका राज्यरूप मेरा सुख हरलियाथा सो अपने मेरे शत्रु इस दुष्ट राक्षसका वध करा, इसकारण आपके प्रसादसे वह संपूर्ण राज्य मैंने फिर पाया ॥ ६४ ॥ देवता बोले, कि-हे विष्णो ! हे मुरदैत्यको नष्ट करनेवाले इस दुष्ट दैत्य रावणने हमारे अर्थ ब्राह्मणोंके दिये हुए संपूर्ण यज्ञभाग हर-लिये थे, सो अब आपने इस दुष्ट रावणका नाश करा, अब आपके प्रसा-दसे यज्ञोंमें फिर पहलेकी समान हमें भाग मिलेंगे ॥ ६५ ॥ पितर बोले, कि—हे भगवन् ? अब आपने इस दुष्ट दैत्यका संहार करा, यह बहुत श्रेष्ठ हुआ, क्योंकि—यह दुष्ट गया आदिके विषं मनुष्योंकरके दियेहुए हमारे सम्पूर्ण पिंड आदिको बलात्कारसे छीनकर और हमको पीड़ा देकर अपने आप खालेताथा सो अब हम आपके अनुग्रहसे फिर पिंडोंको प्राप्त होकर हृष्ट पुष्ट होजायँगे ॥ ६६ ॥ यक्ष बोले, कि—हे ईश हे रघुना-थजी ! हम विना वेतन (तनख्वाह) के ही सदा विष्टिकर्म्म (बेगार) में इस रावणकी आज्ञासे लगे रहतेथे, और उसको बलात्कार (जबरदस्ती) से दुःखयुक्त होकर पालकी आदिमें सवार हुए तिस रावणको उठातेथे, उस दुष्टात्मा रावणका संहार करके आपने हमैं दुःखोंके समूहसे छुटादिया ॥ ६७ ॥ गंधर्व बोले, कि-हे-भगवन् ! संगीत विद्यामें प्रवीण हम पहिले अमृतकी समान आपकी कथाका गान करतेहुए आनंदके समूहसे परिपूर्ण रहतेथे ॥६८॥ सो पीछे इस दुष्टात्मा रावणने हमैं बलात्कारसे अपने वशमें करलिया, तब हम उस रावणकाही गान करतेहुए उसकीही सेवा करनेमें तत्पर रहे, उस दुष्ट राक्षसका वध करके हमारी रक्षा करी है; इसही प्रकार

नाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत्, वसु, मुनि, गौ, गुह्यक, पक्षी, दक्ष आदि प्रजापति और अप्सराओंके समूह यह सब श्रीरामचन्द्रजीके समीप आके और नेत्रोंको आनन्ददायक श्रीरामचंद्रजीकी श्याममूर्त्तिका दर्शन करके, तथा अलग अलग स्तुति करके रघुनाथजीसे प्रशंसाको प्राप्त होकर अपने अपने स्थानको चलेगये, तिसीप्रकार ब्रह्मा और रुद्र आदि सम्पूर्ण देवता आनंद-पूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करतेहुए और उनके चरित्रका गान करते-हुए, तथा अभिषेकसे गीला है शरीर जिनका ऐसे सीता और लक्ष्मणकरके सहित सिंहासनपर विराजमान राजा रामचंद्रजीका हृदयके विषें अंतर्यामी रूपसे ध्यान करतेहुए चलेगये ॥ ६९॥ ७० ॥७१ ॥७२॥७३ ॥७४॥ आकाशके विषें अनेक प्रकारके बाजे बजानेपर प्रसन्न चित्त देवताओंके समूहोंके स्तुति करनेपर तथा आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा करनेपर मुनियोंके समूहों करके चारों ओरसे स्तुति करेहुए करोड़ों सूर्योंकी समान प्रकाशवान् प्रसन्नमुख मंद मंद मुस्कुरातेहुए सीता लक्ष्मण और पवनकुमार आदिकरके सेवित परमानंददायक श्यामवर्ण श्रीरामचंद्रजी परमशोभाको प्राप्त हुए॥ ७५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति ! सर्वलोगोंको सुख देनेवाले श्रीरामचंद्रजीके राज्याभिषेक होकर राज्यपालन करनेपर संपूर्ण पृथ्वी धान्य-संपत्तियुक्त हुई और संपूर्ण वृक्ष फलोंकरके युक्त हुए ॥ १ ॥ गंधहीन पुष्पभी गंधयुक्त होकर खिलने लगे, पहिले रघुनाथजीने ब्राह्मणोंको एकलक्ष घोड़े, एकहजार गौ और एकसौ वृष (बैल) दिये, फिर तीस करोड़ सुवर्णकी मोहरें ब्राह्मणोंको दान करके दीं; ॥ २ ॥ ३ ॥ फिर वस्त्र, आभूषण, और रत्न, प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको दिये, फिर भक्तवत्सल रघुनाथजीने सूर्य्यकी समान कान्तियुक्त अनेक प्रकारके रत्नोंसे जड़ीहुई माला प्रसन्न होकर सुग्रीवको दी, और रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने दिव्य बाजूबंदोंकी

जोड़ी अंगदको दी ॥ ४ ॥ ५ ॥ और रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीने प्रसन्न होकर करोड़ों चंद्रमाकी समान प्रकाशवान् मणि और रत्नोंकरके शोभित हार सीताजीको दिया ॥ ६ ॥ जनकनन्दिनी उस हारको अपने कंठमेंसे निकालकर संपूर्ण वानरोंको, और श्रीरामचन्द्रजीकी ओरको वारंवार देखने लगीं ॥ ७ ॥ सो इंगित (इशारा) को जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी जानकीजीकी ओर को देखकर बोले, कि—हे वैदेहि! हे वरानने! जिसके उपर तू प्रसन्न हो उसको यह हार देदो, ॥ ८ ॥ सो श्रीरामचंद्रजीके देखतेहुए जानकीजीने वह हार हनुमान्‌जीको देदिया, तिस हारकरके और जानकीके करेहुए आदरकरके पवनकुमार शोभाको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीभी हाथ जोडेहुए समीपमें स्थित पवनकुमारको देखकर और अत्यंत भक्तिसे प्रसन्न होकर यह वचन बोले ॥ १० ॥ हे पवनकुमार! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ जो तुम्हारी इच्छा होय सो तुम वर माँगो, जो पदार्थ देवताओंकोभी त्रिलोकीमें दुर्लभ हो वहभी मैं तुम्हें दूँगा, ॥ ११ ॥ हनुमान्‌जीभी तिन श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके मनमें प्रसन्न हो इसप्रकार बोले कि—हे श्रीरामचन्द्रजी! आपके नामका स्मरण करते करते मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ १२ ॥ इसकारण सदा आपके नामका स्मरण करताहुआ पृथ्वीतलपर रहूँगा, हे राजेन्द्र! जबतक लोकमें आपका नाम स्थित रहै तबतकही यह मेरा शरीर स्थित रहे यही वरदान मुझे अभीष्ट है, इसप्रकार हनुमान्‌जीके कहनेपर श्रीरामचंद्रजीने तथास्तु कहकर कहा कि—हे पवनकुमार! तुम जीवन्मुक्त होकर सुखपूर्वक भूतलपरही स्थित रहो ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ कल्पके अन्तमें निःसन्देह मेरे सायुज्य (मोक्ष) को प्राप्त होओगे इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके अनन्तर पवनकुमार हनुमान्‌जीके उपर प्रसन्न होकर सीताजी बोलीं, कि—हे मारुते! तुम जहाँ स्थित होओगे तहाँही मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण भोग तुम्हारे पास आकर प्राप्त होजायँगे, इसप्रकार सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके कहनेपर पवनकुमार चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ और आनन्दके कारण नेत्रोंमेंसे आँसुओंका

प्रवाह वहनेलगा, फिर सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीको वारंवार प्रणाम करके परमबुद्धिमान् हनुमान्जी अतिकठिनतासे तप करनेके निमित्त हिमालय पर्वतको चलेगए ॥ १७ ॥ फिर हाथ जोड़े आगे खडेहुए गुहकी ओरको देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले कि–हे मित्र! रमणीय सबसे उत्तम शृङ्गबेर-पुरको जाओ ॥ १८ ॥ मेराही नित्य ध्यान करतेहुए अपने पुण्योंकरके इकट्ठे करेहुए भोगोंको भोगो, अन्तमें तुम निःसन्देह मेरेही सारूप्य (मोक्ष) को प्राप्त होओगे ॥ १९ ॥ इसप्रकार कहकर सर्वान्तर्यामी श्रीरामचन्द्र-जीने तिस गुहको दिव्य आभूषण दिये और बहुतसा राज्य देकर ज्ञानका उपदेश दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने आलिङ्गन करा तब गुह प्रसन्न होकर अपने स्थानको चलागया, और जो श्रेष्ठ वानर अयोध्या-पुरीको आए थे, उन सबका रघुनाथजीने अमूल्य वस्त्र और आभूषणोंसे सत्कार करा इसप्रकार तिन परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी करके यथायोग्य सत्कार करेहुए विभीपणकरके सहित सुग्रीव आदि सम्पूर्ण वानर प्रसन्न-चित्त होकर अपने अपने स्थानको चलेगए ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ सुग्रीव आदि सम्पूर्ण वानर तो आनन्दपूर्वक किष्किन्धामें पहुँचगए, और विभी-पण निष्कंटक लङ्कापुरीके राज्यको प्राप्त होकर श्रीरामचन्द्रजीके अनुग्रहसे विभीपणकी कहींभी निन्दा नहीं होतीथी, और सबके उपर प्रेम करनेवाले रघुनाथजीभी अपने संपूर्ण राज्यको पालन करने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने इच्छा न करतेहुए भी लक्ष्मणजीका युवराजपदमें अभि-पेक करदिया, सो लक्ष्मणजी परमभक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा कर-नेमेंही तत्पर रहे ॥ २६ ॥ परमात्मा, सम्पूर्ण कर्म्मोंके साक्षी, अर्थात् कर्मोंका फल देनेवाले, निर्म्मल, कर्तृत्व (मैं करताहूँ) आदि अभिमान करके रहित, सर्वदा निर्विकार, अपनेही आनन्दकरके प्रसन्न रहनेवाले, और लोकोंको उपदेश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने परमआनन्दस्वरूप होकरभी मनुष्यशरीरको धारण करके लोकोंको शिक्षा देनेके निमित्त बहुतसी दक्षिणा करके युक्त अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ करे, श्रीरामचन्द्र-

जीके राज्य करतेसमय विधवा स्त्रियें विलाप नहीं करतीथीं, किसीको सर्प आदिका भय नहीं होताथा ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करते समय किसीको व्याधीका भयभी नहीं होताथा लुटेरोंका भय नहीं था, और कोई अनर्थभी नहीं होताथा ॥ ३० ॥ वृद्धोंके जीवित रहनेपर उनके बालकोंको मृत्युका भय नहीं होताथा, उससमय सबही रामचन्द्रजीका पूजन करतेथे, और सबही श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेमें तत्पर रहतेथे ॥ ३१ ॥ मेघ समयके अनुसार यथेष्ट वर्षा करतेथे, सम्पूर्ण प्रजा अपने २ धर्म्ममें तत्पर थी, सब ब्राह्मण आदि वर्ण और ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमोंके गुणोंको धारण करेहुए थे ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीभी प्रजाको औरस (सगे) पुत्रोंकी समान समझकर पालन करतेथे; सर्वलक्षणयुक्त, सबप्रकारसे धर्म्मको करनेमें तत्पर उन श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार दशहजार वर्षपर्य्यन्त राज्यको पालन करा ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह गुप्त रखने योग्य, धनधान्यरूप सम्मतिको बढानेवाला, दीर्घ आयु और आरोग्य करनेवाला, पुण्यदायक, पवित्र, आध्यात्मिक नामक रामायण अर्थात् अध्यात्मरामायण पूर्वकालमें महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा है ॥ ३५ ॥ जो प्रसन्नचित्त मनुष्य सावधान होकर भक्तिपूर्वक इस अध्यात्मरामायणको श्रवण करता है, अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण मनके अभिलषित पदार्थोंको प्राप्त होता है, और करोडों पातकोंसे क्षणमात्रमें छूट जाता है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस रामाभिषेकको श्रवण करता है, वह धनकी इच्छा करै तौ बहुतसे धनको प्राप्त होता है, और पुत्रकी इच्छा करनेवाला आदिसे इस अध्यात्मरामायणका पाठ करके शिष्ट पुरुषोंके माननीय पुत्रको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ यदि राजा अध्यात्मरामायणको श्रवण करता है तौ वह बहुतसी सम्पत्तियोंको प्राप्त होता है, और शत्रुओंको जीतकर शत्रुओंसे तिरस्कारको नहीं प्राप्त होता है; सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर विजयको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ और जो स्त्रियें अध्यात्मरामायणको श्रवण करती हैं, उनके पुत्र जीवित रहते हैं

और संसारमें सत्कारको प्राप्त होती है, यदि वन्ध्याभी भक्तिपूर्वक अध्यात्मरामायणको श्रवण करै तौ वह सुन्दर रूपवान् पुत्रको प्राप्त होती है ॥ ॥ ३९ ॥ जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर और कोपको जीतकर तथा मत्सरता (हिरस) को त्यागकर इस अध्यात्मरामायणको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर निर्भय-सुखी-और श्रीरामचंद्रजीकी भक्तिकरके युक्त होता है ॥ ४० ॥ अध्यात्मरामायणको आदिसे श्रवण करनेवाले मनुष्योंके ऊपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होजाते हैं, सम्पूर्ण विघ्न नष्ट होजाते हैं, और सम्पूर्ण सम्पत्तियें प्राप्त होती हैं ॥ ४१ ॥ जो रजस्वला स्त्री चतुर्थदिनसे बारहवेदिनपर्य्यंत श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करती हुई इस अध्यात्मरामायणको आदिसे श्रवण करती है, वह बलवान् और चिरंजीव पुत्रको उत्पन्न करती है, पतिव्रता होती है, और संसारमें सत्कारको प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य नित्य अध्यात्मरामायणकी पुस्तकका पूजन करके नमस्कार करते हैं, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परमपद (वैकुण्ठलोक) को प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ जो पुरुष अध्यात्मरामायणके विषे लिखे श्रीरामचन्द्रजीके चारित्रोंको भक्तिपूर्वक पूर्णरीतिसे श्रवण करते हैं, अथवा अपने मुखसे पाठ करते हैं, उनके ऊपर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीही परब्रह्म हैं, उन सर्वात्माके प्रसन्न होनेपर धर्म्म-अर्थ-काम-मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थोंमेंसे पुरुष जिस जिसकी इच्छा करता है उस उसकी ही प्राप्ति होजाती है ॥ ४५ ॥ आयु और आरोग्यके करनेवाले, तथा कराड़ों कल्पोंके पापोंको नष्ट करनेवाले इस अध्यात्मरामायणको पूर्णरीतिसे नियमकरके श्रवण करना चाहिये ॥ ४६ ॥ अध्यात्मरामायणका श्रवण करनेपर सम्पूर्ण देवता, सम्पूर्ण ग्रह, सम्पूर्ण महर्षि, तथा सम्पूर्ण पितर प्रसन्न होजाते हैं ॥ ४७ ॥ वैराग्य और ज्ञानकरकेयुक्त, प्राचीन, इस अद्भुत अध्यात्मरामायणको जो मनुष्य पढ़ते हैं, श्रवण करते हैं, और लिखते हैं, उनका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता है, अर्थात् मुक्तिको प्राप्त होजाते हैं, ॥ ४८ ॥ भूतेश्वर महादेवजीने बारं-

चार वेदोंके समूहको मथकर यही निश्चय करा है कि—जो तारकब्रह्म है वह विष्णुभगवान्की गुप्तमूर्ति श्रीरामचन्द्रजीही हैं, ऐसा जानकर सम्पूर्ण वेदोंके सारभूत जो उपनिषद् तिनका गूढ़तत्त्व निकालकर संक्षेप और स्पष्टरीतिसे यह श्रीरामचन्द्रजीका चरित्ररूप अध्यात्मरामायण अपनी परमप्रिया पार्वतीके अर्थ श्रीमहादेवजीने वर्णन करी है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसँवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजभारद्वाजपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इतियुद्धकाण्ड समाप्त.

श्रीः ।

अध्यात्मरामायणभाषा ।

उत्तरकाण्ड ।

श्रीयुत पण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मणाविरचित

जिसमें

ब्रह्मनिरूपण, अध्यात्मरामायण पठन
श्रवणफल कथन, रामनिर्वाण
पदप्रापणादिकथा
सविस्तर लिखी है.

वही

रामकथाभिलाषियोंके हितार्थ

हरिप्रसाद भगीरथजीने

'गूजरातीप्रिंटिंग' प्रेसमें छपवायके
प्रसिद्ध किया.

आषाढ सं० १९५२ शके १८१८

॥ उत्तरकाण्ड ॥ ७ ॥

दोहा–सुन्दर उत्तरकाण्ड है, ज्ञानकाण्डको रूप ॥
जामें कथा अनूप है, सुनि नर तर भवकूप ॥ १ ॥

दोहा–रामायण अध्यात्म है, रामायणशिरमौर ॥
ब्रह्मनिरूपण वेदमत, जामें है सबठौर ॥ २ ॥

दोहा–पढत सुनत पावत मनुज, अध्यातमको ज्ञान ॥
जासे पावै मोक्षसुख, अरु न पदनिर्वान ॥ ३ ॥

दोहा रामायणको करहि जो, पारायण चितलाय ॥
नारायणपरसादते, तारायण ह्वै जाय ॥ ४ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ उत्तरकाण्ड प्रारम्भः ।

जयति रामरघुकुलतिलक कौशल्याहिय नन्द ।
दशमुखनाशन कमलदग दाशरथी सुरवन्द ॥

दशाननिधनकारी पुंडरीकाक्ष रघुवंशतिलक कौशल्याहृदयनंदन दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीकी जय हो ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजीसे पार्वतीजी प्रश्न करतीहैं, कि—हे देव ! कौशल्याके आनंदको बढ़ानेवाले भीमपराक्रमी श्रीरामचंद्रजीने संग्राममें रावणादि राक्षसोंका संहार करनेके अनंतर क्या क्या चरित्र करा ? ॥ १ ॥ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजी अयोध्यापुरीके विषे सीताकरके सहित राज्याभिषेक होनेके अनंतर मायासे मनुष्यरूपको धारण करेहुए कितनेसमयपर्यन्त इस पृथ्वीतलपर स्थित रहे ? परब्रह्म सनातन श्रीरामचंद्रजीने लीलाकरके इस मनुष्य लोकको किसकारणसे त्यागदिया ? ॥ २ ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! मुझ श्रद्धायुक्तसे यह सब वृत्तान्त कहिये, हे प्रभो ! श्रीरामचंद्रजीकी कथारूप अमृतका पान करके मेरी तृप्ति नहीं होतीहै किन्तु तृष्णा अत्यंत वृद्धिको प्राप्त होती चलीजातीहै; इसकारण हे भगवन् ! श्रीरामचंद्रजीकी कथा विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ ४ ॥ इसप्रकार पार्वतीजीके कथनको सुनकर महादेवजी कहतेहैं, कि—हे पार्वति ! जब राक्षसोंका वध करके श्रीरामचंद्रजी राज्यको प्राप्त हुए तब श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करनेके निमित्त सम्पूर्ण मुनि आये ॥ ५ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, आंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, तथा सप्तर्षि और अपने शिष्य मुनियोंकरके सहित अगस्त्य ऋषि आये, श्रीरामचंद्रजीके द्वारपर आकर द्वारपालसे कहनेलगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ कि—हे द्वारपाल ! श्रीरामचंद्रजीसे जाकर कहो, कि—अगस्त्य आदि संपूर्ण

मुनि आपको आशीर्वाद देनेके निमित्त आकर बाहर खडे हैं ॥ ८ ॥ इस-प्रकार अगस्त्यजीके कहनेसे द्वारपाल शीघ्रही गया, और प्रभु श्रीरामचन्द्र-जीको नमस्कार करके विनयसे नम्र होकर हाथ जोड़े हुए इसप्रकार कहने लगा, कि—हे देव! मुनियोंकरके सहित अगस्त्यऋषि आपका दर्शन करनेके निमित्त आये हैं और बाहर खड़े हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने द्वारपालसे कहा, कि—उन मुनियोंको सुखपूर्वक (विना रोक टोक) यहाँ लेआओ, वह द्वारपाल सत्कारपूर्वक मार्ग बतलाताहुआ उन मुनियोंको लिवाकर लेगया तब वह मुनि नानाप्रकारके रत्नोंसे भूषित श्रीरामचंद्रजीके राजमंदिरमें पहुँचे ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी मुनियोंको आताहुआ देखकर शीघ्रही खड़े होगये, और हाथ जोड़कर पाद्य अर्घ्य आदि सामग्रियोंसे उनका पूजन करा, और शास्त्रोक्त विधिसे मधुपर्कके निमित्त गौ दी ॥ १२ ॥ और नम-स्कार करके तिन सब मुनियोंको यथायोग्य दिव्य आसन दिये, तब श्रीरामचंद्र-जीसे पूजित होकर वह सब ऋषि प्रसन्न होतेहुए आसनोंपर बैठे ॥ १३ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने उन सबसे कुशल पूँछा, तब उन सबोंनेभी श्रीरामचंद्रजीसे कुशल प्रश्न करा, कि—हे महाबाहो रघुनंदन! आपके संपूर्ण राज्यमें कुशल है? ॥ १४ ॥ हे शत्रुसूदन श्रीरामचंद्रजी! आज शत्रुका संहार करनेके अनंतर हम आपका दर्शन कररहे हैं, यह बड़ाही आनंद है; राक्षसपति राव-णका संहार करना आपको कुछ भारी नहीं था ॥ १५ ॥ क्योंकि धनुषको धारण करके आप इकलेही तीनों लोकोंके जीतनेको समर्थ हो, सो रावण-आदि राक्षसोंका आपने संहार करा, यह बड़ेही आनंदकी वार्ता है ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! रावणका संहार करना तौ सहज था परंतु इस मेघनादका वध करना अतिकठिन था ॥ १७ ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ! आपने संग्रामके विषे कालके समान कुंभकर्ण आदि संपूर्ण राक्षसोंका कालमूर्त्ति अपने बाणोंसे संहार करा ॥ १८ ॥ पहिले आपने हम सब ऋषियोंको अभय दक्षिणा दी थी, सो संग्राममें संपूर्ण राक्षसोंका वध करके आज कृतकृत्य होकर विराजमान होरहे हो ॥ १९ ॥ शुद्ध अंतःकरणवाले उन मुनियोंका

इसप्रकार कथन सुनकर श्रीरामचंद्रजी अत्यंत आश्चर्य्यमें होगये और कहने लगे, ॥ २० ॥ कि—हे ऋषियो ! त्रिलोकीको जीतनेवाले रावण कुंभकर्ण आदि राक्षसोंको छोड़कर रावणके पुत्र मेघनादकी ही प्रशंसा किसकारण करते हो, ? ॥ २१ ॥ तब तौ रघुकुलशिरोमणि परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके इस वचनको सुनकर परमतेजस्वी अगस्त्यमुनि प्रीतिपूर्वक इसप्रकार कहने लगे ॥ २२ ॥ कि—हे श्रीरामचंद्रजी ! जिसप्रकार मेघनाद और रावणका जन्मकर्म्म और वरदानकी प्राप्ति आदि वृत्तान्त है सो मैं संक्षेपसे कहताहूँ तुम श्रवण करो ॥ २३ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! पहिले सतयुगके विषें ब्रह्माके पुत्र परमबुद्धिमान् विद्वान् पुलस्त्यऋषि मेरु पर्वतके समीप तप करनेको गये ॥ २४ ॥ तहाँ तृणबिन्दु ऋषिके आश्रममें यह महातेजस्वी पुलस्त्य ऋषि रहनेलगे, और सदा स्वाध्यायमें तत्पर होकर तप करतेरहे ॥ २५ ॥ उसे परमसुंदर आश्रमके विषें देवता और गंधर्वोंकी कन्या गान करके नृत्य करके बाजा बजाकर और मुसकुराकर पुलस्त्य ऋषिके तपमें विघ्न करनेलगीं, वह सब अत्यंतरूपवती थीं, जब उन्होंने गान नृत्य आदि करके ऋषिके तपमें विघ्न करना प्रारंभ करा, तबतौ महातेजस्वी पुलस्त्यऋषिने क्रुद्ध होकर महाउग्र यह शाप दिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कि—जो मेरी दृष्टिके सामने आजायगी वह तत्कालही गर्भवती होजायगी, इसप्रकारके शापसे भयभीत होकर वह सब तिस आश्रममें नहीं गई ॥ २८ ॥ परन्तु जिस तृणबिन्दु राजर्षिका वह आश्रम था उसकी कन्याने यह पुलस्त्य ऋषिका शाप नहीं सुनाथा इस कारण वह निर्भय होकर पुलस्त्यऋषिकी दृष्टिके सामने उनकी ओरको देखती हुई फिरनेलगी ॥ २९ ॥ सो उसका शरीर उसही समय पीला पड़ गया और सम्पूर्ण गर्भवतीके चिन्ह उसके शरीरपर मालूम पड़नेलगे, सो वह तृणबिन्दुकी कन्या अपने शरीरका वर्ण बदलाहुआ देखकर भयभीत होगई और पिताके पास गई ॥ ३० ॥ तब परमतेजस्वी तृणबिन्दु राजर्षिने अपनी कन्याकी ऐसी दशा देखकर ध्यान करके ज्ञानदृष्टिके प्रभावसे

यह सब चरित्र पुलस्त्यमुनिका करा जाना ॥ ३१ ॥ सो तृणविन्दुने वह कन्या मुनिवर पुलस्त्यजीकोही देदी, उन पुलस्त्यमुनिने भी उस कन्याको स्त्रीरूपसे अंगीकार कर लिया ॥ ३२ ॥ उस कन्याको शुश्रूषा करनेमें तत्पर पुलस्त्यमुनि प्रसन्न हुए, और इसप्रकार बोले, कि—हे प्रिये ! मैं तुझे दोनों कुलोंकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र दूँगा ॥ ३३ ॥ तदनंतर उस स्त्रीने पुलस्त्यमुनिसे एक लोकप्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न करा, वह पुत्र सम्पूर्ण वेदोंका जाननेवाला विश्रवा और पौलस्त्य नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥ उस विश्रवाका सुन्दर शीलगुणादि देखकर महामुनि भरद्वाजने प्रसन्न होकर उसकेसाथ अपनी कन्याका विवाह करदिया॥ ३५॥ उस स्त्रीके विषे विश्रवा ऋषिसे एक वैश्रवण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह लोकका माननीय और पिताकी समान गुणवान् तथा ब्रह्माजीसे वरको प्राप्त होनेवाला हुआ ॥ ॥ ३६ ॥ उसके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसके मनकी अभिलाषाकी समान वरदान दिया, जिससे उसको देवताओंके धनका पूर्ण स्वामीपना प्राप्त हुआ ॥ ३७॥ इसप्रकारका प्राप्त हुआ है वरदान जिसको ऐसा वैश्रवण (कुवेर) एकसमय ब्रह्माजीके दियेहुये प्रकाशवान् पुष्पकविमानमें बैठकर पिताके दर्शन करनेको आया ॥ ३८ ॥ और पिताको नमस्कर करके तथा तपका फल निवेदन करके कहनेलगा, कि मुझे भगवान् ब्रह्माजीने सर्वोपरि वरदान देकर देवताओंके धनका स्वामी तौ बनादिया, परंतु निवास करनेके निमित्त स्थान नहीं दिया सो हे पिताजी ! अब आप कृपाकरके मुझे ऐसा स्थान बताइये जहाँ किसी दूसरेका स्वत्व (स्वामीपना) नहीं होय, और मेरे रहनेसे किसीको क्लेशभी नहीं होय ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तब विश्रवानाम ऋषि कुबेरसे कहनेलगे, कि—विश्वकर्म्माने राक्षसोंके निवास करनेके निमित्त एक लंकानामक अति रमणीय पुरी रचीथी ॥ ४१ ॥ परन्तु विष्णुभगवान्के भयसे सम्पूर्ण दैत्य राक्षस उस लंकापुरीको त्यागकर पातालको चलेगये, उस लंकापुरीको कोई शत्रु नहीं दबासक्ता है क्योंकि वह समुद्रके बीचमें स्थित है, ॥ ४२ ॥ जबसे दैत्य राक्षस उसको छोडकर

चलेगये तबसे उस पुरीमें कोईभी नहीं बसा है, जाकर तुम निवास करो, इसप्रकार पिताकी आज्ञासे यह कुबेर तिस लंकापुरीमें चलेगये ॥ ४३ ॥ पिताकी सम्मतिसे वह कुबेर उस लंकापुरीमें बहुतकालपर्यन्त निवास करते रहे, अब किसी समयमें मांसभक्षी सुमालीनाम राक्षस पाताललोकसे मनुष्य लोकमें आकर साक्षात् लक्ष्मीदेवीकी समान अपनी कन्याको लियेहुए विचरता फिरताथा ॥ ४४ ॥४५॥ उसने पुष्पक विमानपर बैठकर विचरतेहुए दिव्यरूप कुबेरको देखा, फिर सम्पूर्ण राक्षसोंके हितके निमित्त इस परम बुद्धिमान् सुमाली राक्षसने विचार किया ॥ ४६ ॥ और कैकसी नामक अपनी कन्यासे कहनेलगा, कि हे पुत्रि! तेरे विवाहका समय प्राप्त होगया अब यौवनावस्था वृथा बीती जातीहै ॥ ४७ ॥ और तेरे निषेध (मने) करनेके भयसे, हे शुभे! तुझसे कोई प्रार्थना नहीं करताहै, सो तू अपने आपही जाकर ब्रह्माके कुलमें उत्पन्न होनेवाले विश्रवा मुनिको वरले इससे तेरा कल्याण होयगा ॥ ४८ ॥ हे शुभे! ऐसा करनेपर तेरे स्वयंसिद्ध बलवान् इस कुबेरकी समान सर्वशोभायुक्त पुत्र उत्पन्न होयगा ॥ ४९ ॥ कैकसीने इसप्रकार पिताके वचनको स्वीकार किया, और आश्रममें जाकर मुनिके सन्मुख खडी होगई और चरनके अँगुठेसे पृथ्वीको खोदतीहुई नीचेको मुख करेहुए खड़ी रही ॥ ५० ॥ तब मुनिने उस कैकसीसे पूँछा, कि हे सुन्दरि! तू कौन है? और किसकी कन्या है? तब कैकसी हाथ जोडकर बोली कि—हे ब्रह्मन्! आप ध्यान करके सब वृत्तान्त जानसक्ते हैं, ॥ ५१ ॥ तब विश्रवा मुनिने ध्यान करके उसका संपूर्ण अभिप्राय जानलिया, और कहनेलगे, कि—हे सुंदरि! मैंने तेरे मनोरथको जान लिया कि—तू मुझसे पुत्रोंकी इच्छा करती है ॥५२॥ हे सुन्दरि! तू घोर संध्यासमयमें आई है इसकारण तेरे, महाघोर दो राक्षस पुत्र होयँगे ॥ ५३ ॥ तब वह कैकसी बोली, कि—हे मुनिश्रेष्ठ! बडे आश्चर्यकी बात है जो आपसे ऐसे पुत्र उत्पन्न हों, तब मुनि बोले कि—हे सुन्दरि! जो तेरा छोटा पुत्र होगा वह परम बुद्धिवान् महाभागवत श्रीरामचंद्रजीकीही भक्ति करनेमें

तत्पर और लक्ष्मीवान् होयगा, इसप्रकार मुनिके कहनेसे कुछ कालके अनंतर घोर सायंकालके समयमें तिस कैकसीने एक रावणनामक पुत्र उत्पन्न करा, उसको दश शिर थे, वीस भुजा थीं, उस महाभयंकर राक्षसके उत्पन्न होतेही पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उससमय संपूर्ण शकुन वंशको और लोकोंके नाशको सूचित करनेवाले हुए, तदनंतर बडेभारि पर्वतके समान शरीरधारी कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ ॥ ५७ ॥ तद-नंतर शूर्पणखानाम कन्या उत्पन्न हुई जो संसारमें रावणकी बहिन प्रसिद्ध है, तदनंतर शान्तरूप चंद्रमाकी समान प्रियदर्शन विभीषण उत्पन्न हुआ ॥ ॥ ५८ ॥ यह विभीषण सदा वेदपाठ करनेवाला, नियमित भोजन करने-वाला, नित्य कर्म्म करनेमें तत्पर था, और दुष्टात्मा कुम्भकर्ण संतोषी ब्राह्म-णोंको और ऋषियोंके समूहोंके भक्षण करताहुआ विचरने लगा; महाबली त्रिलोकीको भय देनेवाला रावणभी त्रिलोकीका नाश करनेके निमित्त प्राणि योंके देहके रोगकी समान बढ़नेलगा ॥ ५९ ॥ ६० ॥ अब अगस्त्यजी कहते है, कि हे श्रीरामचंद्रजी ! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयोंमें अंतर्यामी रूपसे स्थित रहतेहो, और ज्ञानदृष्टिसे संसारके सम्पूर्ण चरित्रोंको जानते हो, परमात्मा हो, नित्य हो, सर्वदा प्रकाशवान् हो, अपनी असाधारण महि-मासे मायाके गुणोंकरके लिप्त नहीं होतेहो, सो रावणादि राक्षसोंकी उत्प-त्तिका चरित्र आपसे वर्णन करताहूँ ॥ ६१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मूढभी मैं आपके अनुग्रहसे अद्वितीय, अविनाशी, अचिन्त्य शक्तियुक्त चैतन्यस्व-रूप, त्रिकालमें एकरूप, अजन्मा, आत्मतत्वको जाननेवाले, गुप्तरूप, आपके स्वरूपको जानताहूँ, तथापि द्विभुजधनुर्धर आपके श्यामसुंदररूपको ध्यान करताहुआ प्रवृत्तिमार्गमें विचरताहूँ ॥ ६२ ॥ इसप्रकार कहतेहुए अगस्त्यमुनिसे रघुवंशमें पवित्र है कीर्ति जिनकी, ऐसे रघुनाथजी हँसतेहुए कहनेलगे कि—हे मुने ! जो कुछ तुमने मेरा स्वरूप वर्णन करा वह सब और यह जगत्भी मायाकरके कल्पित है, क्योंकि मैं तौ सब धर्म्मोंसे रहित हूँ, और तुम मेरे कीर्तनको सम्पूर्ण पातकोंका दूर करनेवाला जानो ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीय मुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति ! अगस्त्यमुनि श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर परमआनंदमें भरेहुए, तिस श्रीरामचंद्रजीकी सभामें सबके सुनतेहुए इसप्रकार कहनेलगे, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! इसके अनंतर कुछ समय व्यतीत होनेपर कुबेर पुष्पकविमानपर चढकर पिताका दर्शन करनेके निमित्त आश्रममें आये ॥ १ ॥ २ ॥ जिस आश्रममें महाबली शोभायमान तिस कुबेरको देखकर कैकसीनाम राक्षसी अपने पुत्र रावणके समीप जाकर कहनेलगी ॥ ३ ॥ कि—हे पुत्र ! देखो यह धनपति कुबेर अपने तेजसे कैसा प्रकाशवान् होरहा है, तूभी ऐसा यत्न कर जो इस कुबेरकी समान होजाय ॥ ४ ॥ इसप्रकार माताके कथनको रावण सुनकर क्रोधमें भरगया और तत्कालही यह प्रतिज्ञा करी कि—हे मातः ! तू संतापको त्याग दे, और मुझे देख मैं थोडेही कालमें कुबेरकी समान अथवा कुबेरसेभी अधिक होजाऊंगा, इसप्रकार मातासे कहकर वह रावण घोर तप करनेके निमित्त और फलकी सिद्धिके अर्थ अपने भाइयोंकरके सहित गोकर्णक्षेत्रमें आया, तहाँ यह तीनों भ्राता अपनी अपनी वासनाके अनुसार नियम करके बडाभारी तप करनेलगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ सब लोकोंको अत्यन्त सन्ताप देनेवाला घोर तप करते करते दशहजार वर्ष तौ कुम्भकर्णको बीत गए ॥ ८ ॥ और सत्यधर्म्ममें प्रीति करनेवाला धर्मात्मा विभीषणभी पाँचहजार वर्षपर्य्यन्त एकचरणसे खड़ा होकर तप करतारहा ॥ ९ ॥ और देवताओंके हजार वर्षपर्य्यन्त निराहार रहकर तप करतारहा, जब हजारवर्ष पूरेहुए तब उस रावणने अपने शिरको काटकर अग्निमें हवन करदिया, इसप्रकार क्रमसे प्रत्येक हजारवर्ष पूर्ण होनेपर एक एक शिर कटाकर चढ़ातेहुए रावणको नौहजार वर्ष बीतगए ॥ १० ॥ जब दशहजार वर्ष व्यतीत होनेपर रावणने दशवाँ शिर काटनेकी इच्छा करी, सो उसीसमय धर्म्मात्मा ब्रह्माजी आकर प्राप्त होगए, और कहनेलगे, कि—हे पुत्र ! रावण ! मैं तेरे तपसे प्रसन्न होगया ॥ ११ ॥ अब तू वर माँग मैं तेरी इच्छाके

अनुसार वर दूँगा, इसप्रकार ब्रह्माजीके वचनको सुनकर रावण चित्तमें प्रसन्न होता हुआ कहने लगा ॥ १२ ॥ कि—हे ईश ! यदि आप मुझे वर देते हैं तौ अमर कर दीजिये, जिससे गरुड़, नाग, यक्ष, देवता और दैत्यराक्षसोंके हाथसे मेरा मरण नहीं होय, और मनुष्य तौ तृणकी समान हैं, उनसे मुझे किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ १३ ॥ इस प्रकार रावणके प्रार्थना करनेपर तथास्तु (ऐसाही होय) कहकर फिर रावणसे बोले, कि—हे राक्षसश्रेष्ठ! तैंने अग्निमें जितने शिरोंका हवन करा है, वह फिर जैसे थे वैसेही होकर अक्षय (कटनेपरभी नष्ट न होनेवाले किन्तु फिर उत्पन्न होनेवाले) होजायँगे ॥ १४ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी! इसप्रकार रावणसे कहकर भक्तवत्सल ब्रह्माजी सन्मुख हाथ जोड़े खड़े हुए विनीत विभीषणसे इसप्रकार बोले ॥ १५ ॥ कि—हे पुत्र ! विभीषण! तैंने धर्मके निमित्त उत्तम तप करा है, इसकारण हे पुत्र ! तूभी हितकारक अपना मनोवांछित वर माँग ॥ १६ ॥ १७ ॥ विभीषणभी ब्रह्माजीको प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए इसप्रकार बोला, कि—हे देव ! मेरी बुद्धि सदा धर्म्मके विषें स्थित रहैं, और मेरी बुद्धि अधर्म्ममें कदापि नहीं जाय, यह वरदान मुझे दीजिये ॥ १८ ॥ इस कथनको सुनकर प्रसन्न हुए ब्रह्माजी विभीषणसे बोले, कि—हे पुत्र ! तू धर्म्मशील है, इसकारण तेरी बुद्धि सदा धर्म्ममेंही रहैगी ॥ १९ ॥ हे विभीषण! विना माँगे भी मैं तुझे अमरपना देताहूँ; इसके अनन्तर ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे बोले, कि—हे शोभन ! वर माँगो ॥ २० ॥ उससमय देवताओंकी प्रार्थनासे सरस्वती कुम्भकर्णके कण्ठपर बैठ गई, और कुम्भकर्णको मोहमें डालदिया, सो कुम्भकर्ण तिन ब्रह्माजीसे बोले, कि—हे देव ! मुझे यह वरदान दो कि—मैं छः महीने पर्य्यन्त शयन करा करूँ, और एक दिन भोजन किया करूँ ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने देवताओंकी ओर देखकर कुम्भकर्णसे तथास्तु (ऐसाही होय) कह दिया, इतनेहीमें कुम्भकर्णके मुखसे निकलकर सरस्वती स्वर्गको चली गई ॥ २२ ॥ तबतौ दुष्टात्मा कुम्भकर्ण मनमें दुःखित होकर चिन्ता करने

लगा, कि—मेरे मुखसे यह कैसी अनिष्ट वार्त्ता निकल गई; ठीक है प्रारब्धके लिखेको कोई नहीं मेटसक्ता हैं ॥ २३ ॥ इतनेहीमें सुमालीराक्षस अपनी कन्याके पुत्रोंको ब्रह्माजीसे वरदान मिला है, ऐसा सुनकर निर्भय हो प्रहस्तआदिको साथमें ले पातालसे निकलकर आगया ॥ २४ ॥ और रावणको हृदयसे लगाकर यह वचन बोला, किं—हे पुत्र ! बड़े आनन्दकी वार्ता है जो मेरे मनोरथके अनुसार तुम्है वरदान मिलगया ॥ २५ ॥ जिसको भयसे हम लङ्कापुरीको त्यागकर पातालको चलेगए थे, हे महाबाहो ! वह विष्णुका बड़ा भय अब दूर होगया ॥ २६ ॥ इस लंकापुरीमें पहिले हम सब राक्षसही वसतेथे, अब तुम्हारे भ्राता कुबेरने अपने वशमें करली है, अब यह फिर लेलैनी चाहिये ॥ २७ ॥ चाहे शान्तिसे लेलो, चाहे बलात्कार (जबरदस्ती) से लेलो; क्योंकि राजाओंका कौन मित्र है ? इसप्रकार सुमालीके कहनेपर रावण बोला, कि—तुमको ऐसा कहना उचित नहीं है ॥ २८ ॥ क्योंकि—मेरा बड़ा भ्राता कुबेर पिताके समान है, ऐसा सुनकर प्रहस्त राक्षस नम्रतापूर्वक दशकन्धर रावणसे कहने लगा ॥ २९ ॥ कि हे रावण ! सावधान होकर सुनो तुम्हारा इसप्रकार कहना उचित नहीं है, क्योंकि—तुमने राजधर्म्म नहीं पढे हैं, और न नीतिशास्त्रको जानते हो ॥ ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! शूरपुरुष कदापि भ्रातापनकी प्रीति नहीं करते हैं, मैं जो वृतान्त कहताहूँ सो सुनो, देखो कश्यपजीके पुत्र देवता और राक्षस दोनोही महाबली हुए ॥ ३१ ॥ और उन्होंने प्रीतिका त्याग करके परस्पर शस्त्रोंसे युद्ध करा, सो देवता और राक्षसोंका वैर आजका नहीं है, किन्तु पहिलेसेही चला आता है ॥ ३२ ॥ दुष्टात्मा प्रहस्तका वचन सुनकर रावण क्रोधसे लाल लाल नेत्र करेहुए तैसेंही त्रिकूटाचलको चलागया ॥ ३३ ॥ और प्रहस्तको दूत बनाकर कुबेरके पास भेजा, और कुबेरको लङ्कापुरीसे निकालकर और लंकापुरीको अपने वशमें करके रावण अपने मंत्री राक्षसोंकरके सहित सुखपूर्वक निवास करने लगा ॥ ३४ ॥ परम यशस्वी कुबेरभी पिताकी

आज्ञासे लंकापुरीको छोड़कर कैलास पर्वतके शिखरपर चलागया, और तप करके महादेवजीको प्रसन्न करा ॥ ३५ ॥ तब कुबेरकी महादेवजीसे मित्रता होगई, और महादेवजी सब प्रकारसे रक्षा करने लगे, और कुबेरके निवास करनेके निमित्त विश्वकर्म्मासे तिस कैलास पर्वतपरही एक अलका नाम पुरी बनवादी ॥ ३६ ॥ और महादेवजीके आश्रयसे कुबेर अपनी दिशाकी रक्षाभी करता रहा; इधर भ्राताओंकरके सहित सम्पूर्ण राक्षसोंने रावणका अभिषेक करदिया ॥ ३७ ॥ तब वह दुष्ट रावण त्रिलोकीको पीड़ा देताहुआ राक्षसोंका राज्य करने लगा. और इस मायावी रावण राक्षसने भयंकर रूपवाली अपनी शूर्पणखा नामक भगिनी कालखञ्जके वंशमें उत्पन्न हुए विद्युज्जिव्ह नाम राक्षसको देदी, तदनन्तर राक्षसोंके विश्वकर्म्मा दितिपुत्र मयनामक राक्षसने त्रिलोकीमें अद्वितीय सुन्दरी मन्दोदरी नामक अपनी कन्या रावणको देदी, फिर प्रसन्न मनसे एक अमोघ शक्ति (साँग) दी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तदनन्तर वैरोचन बलिकी दौहित्री (धेवती-नातिन) वृत्रज्वालानामक कन्याको उसके पिताने अपने आपे देदिया, उसके साथ रावणने कुम्भकर्णका विवाह करा ॥ ४१ ॥ धर्म्मको जाननेवाली महात्मा गन्धर्वराज शैलूषकी पुत्रीके साथ रावणने विभीषणका विवाह करा ॥ ४२ ॥ वह गन्धर्वराज शैलूषकी पुत्री सम्पूर्ण सौभाग्यके चिन्होंकरके युक्त और सरमानामसे प्रसिद्ध थी, तदनन्तर मन्दोदरीने मेघनादनामक पुत्र उत्पन्न करा ॥ ४३ ॥ जो उत्पन्न होतेही मेघकी समान गरजने लगा, इसकारणही सब राक्षस उसको मेघनादनामसेही पुकारने लगे ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कुम्भकर्ण रावणसे बोला, कि—हे प्रभो ! मुझे निद्रा पीडित करती है, तब रावणने बड़ी लम्बी चौड़ी एक गुहा बनवाई, ॥ ४५ ॥ तहाँ जाकर मूढ़बुद्धि कुम्भकर्ण घुर्राटे लेताहुआ सो रहा और

१पुराणमें ऐसी कथा है कि दूतके जानेके अनन्तर कुबेरजी अपने पिताके पास जाके बोले कि रावणने ऐसा कहला भेजा है सो क्या करना चाहिये? उन्होंने कहा लङ्का त्यागनाही उचित है तब कुबेरने लंकाको त्याग दिया.

कुम्भकर्णके शयन करनेके अनन्तर लोकोंको रोदन करानेवाला रावण ब्राह्मणोंको, मुख्य मुख्य ऋषियोंको, देवताओंको, दानवोंको, किन्नरोंको, मनुष्योंको, और बडे २ नागोंको मारनेलगा, और देवताओंकी सम्पत्तियें छीन लीं ॥ ४६ ॥ ४७॥ कुवेरने रावणके ऐसे अन्यायको सुनकर दूतोंके द्वारा रावणके पास कहलाकर भेजा, कि—हे भ्रातः! ऐसा अधर्म्म मत करो ॥ ४८ ॥ दूतोंके इसप्रकार कहतेही रावण क्रोधमें होकर कुवेरके स्थानपर गया,और कुवेरको जीतकर उसका पुष्पकविमान ले आया॥ ४९॥ फिर रावण यम और वरुणकोभी जीतकर शीघ्रही इन्द्रको जीतनेकी इच्छासे स्वर्गलोकको गया ॥ ५० ॥ तहाँ इन्द्र और देवताओंके साथ रावणका बड़ाभारी युद्ध हुआ, और इन्द्रने रावणको बाँधलिया ॥५१॥ इस वार्त्ताको सुनकर परमप्रतापी मेघनाद तत्काल स्वर्गमें गया, और महा घोर युद्धकर बडे बडे देवताओंको जीतकर इस महावली मेघनादने इन्द्रको पकडकर बाँध लिया, और पिताको छुटाकर इन्द्रको लिये हुए अपनी लंकापुरीको चलाआया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ तव ब्रह्माजीने मेघनादसे इन्द्रको छुटाया और बदलेमें मेघनादको बहुतसे वरदान देकर ब्रह्माजी अपने स्थानको गए ॥ ५४ ॥ विजयी रावणने सम्पूर्ण लोकोंको क्रमसे जीतकर परिघशस्त्रकी समान अपनी भुजाओंसे कैलास पर्वतको उठाकर अजमाया ॥ ५५ ॥ तव तौ नन्दीश्वर नामक महादेवजीके पार्षदने यह कोपमें होकर रावणको यह शाप दिया, कि—तू वानरोंसे अथवा मनुष्योंके हाथसे नाशको प्राप्त होयगा ॥ ५६ ॥ इसप्रकार नन्दीश्वरके शाप देनेपरभी रावणने शापको कुछ नहीं गिना, (क्योंकि यह तौ मनुष्य और वानरोंको तृणकी समान समझता था) और हैहय (कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन) के नगरको गया, तहाँ रावणको सहस्रार्जुनने इस रावणको बाँधकर डाल-

---

१ यहाँ शाप देनेका कारण कैलासको उठानाही प्रतीत होता है, और वाल्मिकिआदि रामायणोंके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि—नन्दीश्वरका वानरके सरिखा मुख देखकर रावण हँसाथा इसकारण नन्दीश्वरने ऐसा शाप दिया.

दिया, तब पुलस्त्यऋषिने छुटाया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर फिर भी रावण अपने बलके गर्वसे बालीके जीतनेकी इच्छासे किष्किन्धाको गया, तहाँ भी उलटाही फल हुआ, कि—बालीने रावणको बगलमें दबालिया, और फिर घुमाकर बालीने चार समुद्रोंके पार फेकदिया, तब रावणने बालीके साथ मित्रता करली ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! परम प्रसन्न महाबली रावणने इसप्रकार सम्पूर्ण लोकोंको अपने वशमें करलिया, और लोकोंके सम्पूर्ण भोग अपने आपही भोगे ॥ ६० ॥ हे राजेन्द्र! ऐसे प्रतापी मेघनादकी सहायताको प्राप्त होनेवाले, लोकोंको पीडा देनेवाले दशमुख रावणका आपने संग्रामके विषे वध करा ॥ ६१ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीने मेघनादका संहार करा, आपने पर्वतकी समान शरीरधारी कुम्भकर्णका वध करा ॥ ६२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप त्रिलोकीको रचनेवाले, साक्षात् सर्वव्यापी नारायण हो, यह सम्पूर्ण स्थावरजङ्गमरूप संसार आपकाही स्वरूप है ॥ ६३ ॥ लोकके पितामह ब्रह्माजी आपकेही नाभिकमलसे उत्पन्न हुए है, हे रघुकुलश्रेष्ठ वाणीसहित आपके मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ इन्द्रआदि सम्पूर्ण लोकपाल आपकी भुजाओंसे उत्पन्न हुए हैं, चंद्रमा और सूर्य आपके दोनों नेत्रोंसे उत्पन्न हुए हैं, दिशा और विदिशा (आग्नेयआदिकोण) आपके दोनों कर्णोंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६५ ॥ आपके घ्राण इंद्रियसे प्राणवायु और देवताओंमें श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए हैं, और आपकी जंघा, जानु, तथा ऊरुस्थानसे भुवरलोक आदि उत्पन्न हुए हैं ॥ ६६ ॥ आपकी कोखसे चारों समुद्र उत्पन्न हुए हैं, स्तनोंसे इन्द्र और वरुण उत्पन्न हुए हैं, और आपके वीर्यसे बालखिल्यऋषि उत्पन्न हुए हैं ॥ ६७ ॥ आपके लिंगेंद्रियसे यमराज उत्पन्न हुए हैं, गुदासे मृत्यु उत्पन्न हुआ है, और आपके क्रोधसे त्रिनेत्र शिव उत्पन्न हुए हैं, आपकी अस्थियोंसे पर्वत उत्पन्न हुए हैं, आपके केशोंसे मेघोंकी घटा उत्पन्न हुई हैं ॥ ६८ ॥ आपके रोमोंसे औषधियें उत्पन्न हुई हैं और आपके नखोंसे लोहा आदिक कठोर पदार्थ

उत्पन्न हुए हैं, हे भगवन्! पुराणपुरुषभी आप आपनी मायाशक्तिसे युक्त होकर विश्वरूपसे प्रतीत होते हो ॥ ६९ ॥ तिस मायाके सत्वादिक गुणोंके न्यूनाधिकभावसे मिलनेपर आप ब्रह्मा विष्णु और रुद्ररूपसे प्रतीत होते हो, अग्निरूपसे तुम्हाराही आश्रय करके देवता यज्ञमें अमृतपान करते हैं ॥ ७० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! यह स्थावर जंगमरूप संपूर्ण विश्व आपनेही रचा है, और आपहीके आश्रयसे स्थावर जंगमरूप संपूर्ण प्राणी जीवन धारण करते हैं, हे रघुनाथजी! व्यवहारमें जो कुछ वस्तु देखनेमें आवे है वह सब आपकी सत्तासे युक्त है, जिसप्रकार दुग्धके मध्यमें स्थित घृत संपूर्ण दुग्धमें व्याप्त होकर स्थित रहता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे भगवन्! सूर्यादि आपके प्रकाशसे प्रकाश करते हैं, परंतु उनसे आप प्रकाशित नहीं होते हो, सर्वव्यापी, नित्य और अद्वितीय रूप आपको ज्ञानदृष्टि पुरुषही देखसक्ता है, जिसप्रकार अंधा पुरुष सूर्यको नहीं देख सक्ता, इसीप्रकार अज्ञानदृष्टि पुरुष आपको नहीं देख सकता, योगी पुरुष अपने शरीरमेंही परमेश्वर रूप आपका दर्शन करते हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ और योगीपुरुष यदि आपके चरण कमलोंकी भक्तिके लेश करके युक्त होते हैं, तबहीं जड़ पदार्थोंका त्याग करते हुए उपनिषदोंके विषे कहेहुए नेतिनेति आदि वाक्यों करके रात्रिदिन आपके चैतन्य स्वरूपका दर्शन करते हैं, दूसरे प्रकारसे नहीं, हे भगवन्! सर्वज्ञ जो आप तिनके सामने मैंने अपनी मतिके अनुसार जो कुछ कहा है उसको क्षमा करिये क्योंकि हे देवदेव! आपके अनुग्रहसेही मेरी बुद्धि इस विषयमें प्रवृत्त हुई है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ दिशा देश और कालके परिच्छेद करके रहित स्वजातीय विजातीय स्वगतभेद शून्य, अद्वितीय, चैतन्य स्वरूप, अविनाशी, अजन्मा, चलना आदि क्रिया करके रहित, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान्, अनंत गुण, अपनी चिद्शक्तिके द्वारा मायाके दोषोंको दूर करनेवाले, और जो भक्तजनोंको अपनेसे अभिन्न प्रतीत होते हैं, तिन रघुनाथजीको मैं भजताहूँ ॥ ७७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीय मुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

महादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति! तदनंतर श्रीरामचंद्रजी बोले कि—हे अगस्त्यमुने! अब मैं वालि और सुग्रीवके जन्मकी कथाको पूर्ण रीतिसे सुनना चाहताहूँ; मैंने सुना है कि—सूर्य और इन्द्र, वालि और सुग्रीव रूपसे उत्पन्न हुए हैं॥ १ ॥ अगस्त्य मुनि बोले कि—सुवर्णरूप मेरु पर्वतके मणियोंकी कांतिकरके युक्त शिखरपर सौ योजन चौड़ा ब्रह्माजीकी सभाका स्थान है ॥ २ ॥ तिस सभास्थानके विषे एक समय साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्माजी योगसमाधि लगाये हुए बैठे थे, उनके नेत्रोंमेंसे बहुतसा आनंदका जल टपकने लगा ॥ ३ ॥ उसको हाथमें लेकर ब्रह्माजीने कुछ समय पर्यन्त ध्यान किया, और उस जलको पृथ्वीपर डालदिया उस जलके पृथ्वीपर गिरतेही एक बडाभारी वानर उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ उस वानरसे ब्रह्माजी बोले कि—हे पुत्र! सब प्रकारकी शोभाकरके युक्त इस सुमेरुके शिखरपर कुछ कालपर्यन्त मेरे समीप निवास करो, तब तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ५ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीके कहनेपर वह श्रेष्ठ वानर तहाँही निवास करने लगा, इसप्रकार बहुतसा काल व्यतीत होनेपर एक समय फल मूल आदिके निमित्त उद्योग करता हुआ वह परम बुद्धिमान् ऋक्षपति वानर तिस सुमेरु पर्वतपै फिर रहाथा, सो निर्मल दिव्य जल करके युक्त और मणियों करके जटित शिलाओंकी बनी हुई एक बावड़ी उस वानरने देखी ॥ ६ ॥ ७ ॥ और उस बावड़ीमें पानी पीनेको आया तहाँ जलमें अपनी छायाके प्रतिबिंबको दूसरा वानर जानके जलमें कूदपड़ा ॥ ८ ॥ तहाँ किसी दूसरे वानरको न देखकर शीघ्रही कूदकर वह वानर बाहर आगया, और अपनेको सुंदर स्त्रीरूप देखकर बडे आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ तदनंतर उसीसमयमें ब्रह्माजीका पूजन करके इन्द्र आ रहे थे, सो मार्गमें मध्याह्नके समय उस परम सुन्दरी स्त्रीको देखकर कामदेवके वशीभूत होगये, और इनका उत्तम वीर्य स्खलित होगया, वह इंद्रका वीर्य उस स्त्रीको विना प्राप्त हुएही उसके बालोंको स्पर्श कर

पृथ्वीपर गिरा ॥ १० ॥ ११ ॥ उस वीर्यसे तहाँही इन्द्रके समान पराक्रमी वाली उत्पन्न हुआ, तिस वालीको सुवर्णकी माला देकर इन्द्रदेव स्वर्गको चलेगये ॥ १२ ॥ उसी समयमें सूर्यभी अकस्मात् तहाँ आगये और उस स्त्रीको देखकर कामदेवके वशीभूत होगये, और अपना उग्र वीर्य उसकी ग्रीवापर छोड़ा, तिस वीर्यसे तत्कालही बड़ाभारी है शरीर जिसका ऐसा सुग्रीव वानर उत्पन्न हुआ, उस सुग्रीवकी सहायताके निमित्त हनुमान्‌जीको देकर अर्थात् हनुमान्‌जीको सुग्रीवके समीप छोड़कर सूर्यदेव चलेगये ॥ १३ ॥ १४ ॥ उन दोनों पुत्रोंको लेकर वह स्त्री किसी स्थानमें जाकर निद्राको प्राप्त होगई, और प्रातःकालके समय उठकर फिर अपनेको पहिलेकी समान वानररूप देखा ॥ १५ ॥ तदनंतर वह परमबुद्धिवान् ऋक्षपति वानर फल मूल और दोनों पुत्रोंकरके सहित प्रणाम करके ब्रह्माजीके सन्मुख स्थित हुआ, ॥ १६ ॥ तब ब्रह्माजीने उस वानरको अनेक प्रकारसे समझाया, अर्थात् स्त्रीरूप होनेकी ग्लानिको दूर करा, और तहाँ एक देवताओंके दूतको बुलाकर इसप्रकार कहा ॥ १७ ॥ कि—हे दूत ! मेरी आज्ञासे तू इन वानरोंको लेकर विश्वकर्म्माकी बनाई हुई किष्किन्धानामक दिव्य नगरीमें जा, ॥ १८ ॥ जो सबप्रकारकी भोगकी वस्तुओंकरके युक्त किष्किन्धा नगरी देवताओंको भी मिलना कठिन है, तहाँ सिंहासनके ऊपर इस वीर वानरका अभिषेक करो ॥ १९ ॥ साती द्वीपोंमें जो कठिनसे जीतनेयोग्य जितने वानर हैं, वह सब इस ऋक्षराजके वशीभूत होकर रहेंगे ॥ २० ॥ जिस समय साक्षात् सनातन नारायण पृथ्वीके भाररूप राक्षसोंका नाश करनेके निमित्त भूतलपर श्रीरामचंद्रावतार धारण करेंगे ॥ २१ ॥ तब संपूर्ण वानर उनकी सहायता करनेके निमित्त जायँगे, इसप्रकार ब्रह्माजीके कहनेपर वह देवताओंका परम बुद्धिमान् दूत उन वानरोंको लेकर किष्किंधाको चलागया, और जिसप्रकार ब्रह्माजीने आज्ञा दी थी तिसीप्रकार संपूर्ण कार्य करा, और उस वानरको संपूर्ण वानरोंका राजा बनादिया, फिर उस देवताओंके दूतने ब्रह्माजीको जाकर वह संपूर्ण वृत्तान्त [illegible]दिय

॥ २२ ॥ २३ ॥ उस दिनसे वह किष्किन्धा नगरी वानरोंकी राजधानी हुई, हे श्रीरामचंद्रजी ! सर्वेश्वर तुमहीं हो, ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेसे इस-समय लीलासे मनुष्यका रूप धारण करके पृथ्वीका संपूर्ण भार दूरकर दिया सर्वांतर्यामी, नित्यमुक्त, चेतन्यस्वरूप, और परिपूर्ण आनंदस्वरूप जो आप जिनका यह रावणादि राक्षसोंका वध करनारूप पराक्रम कितनासा है ? अर्थात् कुछभी नहीं है, तथापि लीलाकरके मनुष्यरूप धारण करनेवाले जो आप तिनका यश सम्पूर्ण प्राणियोंके पापोंको नष्ट करनेके अर्थ और परम आनंदकी प्राप्तिके अर्थ सत्पुरुष वर्णन करते हैं, जो पुरुष आपके उप-कारके निमित्त होनेवाले वालि और सुग्रीवके जन्मको परमकथाका कीर्त्तन करताहै वह सम्पूर्ण पातकोंसे छूट जाताहै, हे श्रीरामचंद्रजी ! अब मैं आपके विषयकी एक और कथा कहताहूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिस प्रयोजनसे दुष्टात्मा रावणने सीताका हरण करा, हे श्रीरामचन्द्रजी! पहिले सत्ययुगमें एक समय ब्रह्माजीके मानसपुत्र परम तेजस्वी सनत्कुमार एकान्तमें बैठे हुए थे, तिनके पास जाकर रावणने नम्र-तापूर्वक प्रणाम करके इस प्रकार बूझने लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे भग-वन् ! आप प्रश्नका उत्तर देनेको समर्थ हैं, इस कारण अनुग्रह करके इस मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये, कि—इस लोकमें सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ और बलवान् कौन हैं ? जिसका आशय लेकर देवता युद्धमें शत्रुको जीतते हैं, और नित्य ब्राह्मण किसका पूजन करते हैं ? तथा योगी पुरुष नित्य किसका ध्यान करते हैं ? ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उस रावणको हृद-यका सम्पूर्ण अभिप्राय योगदृष्टिसे जानकर सनत्कुमार तिस रावणसे कहने लगे, कि—हे पुत्र ! सुन इन सब प्रश्नोका उत्तर मैं तुझसे कहता हूँ ॥ ३३ ॥ जो सदा त्रिलोकीका पालन करता है. जिसका जन्म मरण आदि नहीं होता है, जिसकी देवता और दैत्य सदा स्तुति करते हैं, वह अविनाशी नारायण विष्णुभगवान् हैं, ॥ ३४ ॥ जिनकी नाभिके कमलसे दक्षआदि प्रजापतियोंके भी स्वामी ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने स्थावरजंगमरूप

सम्पूर्ण संसारको रचा है ॥ ३५ ॥ उनकाही आश्रय लेकर देवता संग्राममें शत्रुओंको जीतते हैं, योगी पुरुषभी ध्यानयोगके द्वारा उनहीं परमात्माका ध्यान करते हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार सनत्कुमारऋषीके वचनको सुनकर रावण फिर कहने लगा, कि– हे मुनिश्रेष्ठ ! विष्णुभगवान्के हाथसे मरणको प्राप्त हुए दैत्य दानव और राक्षस किस गतिको प्राप्त होते हैं ? इसप्रकार कहनेपर तिस राक्षसपति रावणको सनत्कुमारमुनिने यह उत्तर दिया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कि–हे पुत्र ! देवताओंके हाथसे मरणको प्राप्तहुए दैत्य दानव उत्तम स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, और जब पुण्योंका भोग क्षीण होजाताहै तब स्वर्गलोकसे गिरकर भूमि लोकपर जन्म लेते हैं ॥ ३९ ॥ फिर पूर्वजन्मोंमें करेहुए पुण्यपापोंके अनुसार मरणको प्राप्त होते हैं, और जन्म धारण करतेहैं, और जो विष्णु भगवान्के हस्ततीर्थमें मरण प्राप्त होते हैं, वह नारायणकी गतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् विष्णुलोकको प्राप्त होकर मुक्त होजाते हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार सनत्कुमार मुनिके मुखसे अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनकर रावण अपने चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और वह विचार करने लगा, कि–मैं विष्णुभगवान्के साथ युद्ध करूँगा ॥ ॥ ४१ ॥ रावणके मनकी इस वार्त्ताको योगबलसे जानकर सनत्कुमार मुनि बोले, कि–हे पुत्र ! निःसन्देह तेरा मनोरथ पूर्ण होजायगा ॥ ४२ ॥ परंतु हे रावण ! कुछकालपर्यन्त प्रतीक्षा करतेहुए सुखपूर्वक अपने नगरमें निवास करो, अगस्त्यमुनि कहते हैं, कि–हे श्रीरामचन्द्रजी ! इसप्रकार कहकर सनत्कुमार मुनि तिस रावणसे फिर कहने लगे ॥ ४३ ॥ कि हे रावण! अरूप होकर भी मायाके आश्रयसे अनेक रूपोंको धारण करनेवाले तिन विष्णुभगवान्के अनेक रूपोंका तुम्हारे अर्थ वर्णन करताहूँ, सम्पूर्ण स्थावर, नद और नदीयोंके विष्णु उनहीकी सत्ता व्याप्त होरही है ॥ ४४ ॥ ॐकार, सत्य, सावित्री, और पृथ्वीरूपकरके उनही नारायणकी प्रतीति होती हैं, सम्पूर्ण जगत्के आधार शेषरूप होकर भी वही परमात्मा प्रतीत होते हैं ॥ ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण देवता, चारों समुद्र, काल, सूर्य्य, चन्द्रमा, सूर्य्योदय,

दिन, रात्रि, यम, वायु, अग्नि, इन्द्र, मृत्यु, मेघ, वसु, ब्रह्मा और रुद्र आदि जो कुछ देवता और दानव हैं सो सब परमात्माकाही विराट्रूप है ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वही सूर्य्यादिके विषें प्रकाश करता है, वही अग्निके विषे जाज्वल्यमान होता है, वही जगत्की रक्षा करता है, वही प्रलय करता है, और वही विश्वकी रचना करनेवाला है, वही अविनाशी सनातन विष्णु भगवान् अनेक प्रकारसे क्रीड़ा करते हैं ॥ ४८ ॥ तिनहीकरके यह सम्पूर्ण चराचर त्रिलोकी व्याप्त होरही है, वही नीलकमलके दलकी समान श्यामवर्ण विष्णुभगवान् पिताम्बर धारण करेहुए, तपेहुए निर्दोष सुवर्णकी तुल्य कान्तिमती बांई ओर स्थित, सदा साथ रहनेवाली, लक्ष्मीदेवीको देखते- रत्नजटित सिंहासनपर स्थित होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जिनकी ओरको देखनेको देव, दानव, नाग आदि समर्थ नहीं होते हैं; जिसके ऊपर उनकी प्रसन्नता होतीहै केवल वहही उनको देखसक्ता है ॥ ५१ ॥ यज्ञ, तप, दान, अध्ययन आदि उपायोंकरके, तथा अन्य उपायोंकरकेभी भगवा- न्का दर्शन नहीं होता है ॥ ५२ ॥ और तिन विष्णुभगवान्के विषेही चित्त और प्राण लगानेवाले, पापरहित और वेदान्तशास्त्रके ज्ञानकरके निर्म्मल होगई हैं दृष्टि जिनकी ऐसे उनके भक्तही तिन विष्णुभगवान्का दर्शन करनेको समर्थ होते हैं ॥ ५३ ॥ अथवा हे रावण ! परमेश्वरका दर्शन करनेकी तेरी इच्छा है तो सुन, वही देवाधिदेव त्रेतायुगमें राजाका शरीर धारण करेंगे ॥ ५४ ॥ देवता और मनुष्योंके हितके अर्थ विष्णु भगवान् इक्ष्वाकुवंशमें श्रीरामचन्द्रनामक दशरथके पुत्र होकर महाबली और परमपराक्रमी होयँगे ॥ ५५ ॥ वह परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे भ्राता लक्ष्मण और जगत्की माता माया- रूप अपनी स्त्री सीताकरके सहित दण्डकारण्यमें विचरैंगे ॥ ५६ ॥ हे रावण ! इसप्रकार सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने विस्तारपूर्वक तेरे अर्थ वर्णन करा, सो अब तुम भक्तिभावसे लक्ष्मीरूप जानकीकरके युक्त श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥ ५७ ॥ अगस्त्यमुनि कहते हैं, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! राव-

णने इसप्रकार सनकुमारमुनिके वचनको सुनकर कुछकालपर्य्यन्त विचार और ध्यानकरके आपके साथ विरोध करनेकी इच्छा करताहुआ परमआनन्दको प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ और युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ सब लोकोंमें विचरता रहा, सो हे महाराज ! इस प्रयोजनके लियेही अर्थात् केवल आपके हाथसे अपने वधकी इच्छा करके परमबुद्धिमान् रावण जानकीको हरकर लेगया ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य इस कथाको सदा सुनैगा, पढ़ैगा, अथवा जो सुननेकी इच्छा करनेवालोंको सुनावैगा वह आयु, आरोग्य, अनन्तसुख और अक्षयधनको प्राप्त होयगा ॥ ६० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति ! एकसमय लोकोंमें फिरताहुआ रावण ब्रह्मलोकसे आतेहुए नारदमुनिको देखकर प्रणाम करके यह वचन बोला ॥ १ ॥ कि—हे भगवन् ! युद्ध करनेको समर्थ महाबली कहाँ है ? मुझे बलवानोंसे युद्ध करनेकी इच्छा है, और आप त्रिलोकीके सम्पूर्ण प्राणियोंको जानते हो ॥ २ ॥ इसप्रकार रावणके कहनेपर नारदमुनि बहुतकालपर्य्यन्त ध्यान करके कहनेलगे कि—हे महामति रावण ! श्वेतद्वीपके निवास करनेवाले महाबली और बड़े २ शरीरधारी हैं सो तुम तिस श्वेतद्वीपमें जाओ ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्का पूजन करते थे, और जो विष्णु भगवान्के हाथसे मरणको प्राप्त हुए, वही तिस श्वेतद्वीपके विषे उत्पन्न हुए हैं, और उनको देव दानव कोई नहीं जीत सक्ता है ॥ ४ ॥ इसप्रकार नारदजीके वचनको सुनकर रावण मन्त्रियोंकरके सहित पुष्पकविमानपै बैठकर शीघ्रही युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपके समीप आया ॥ ५ ॥ तहाँ आतेही तिसपुष्पक विमानकी कान्ति नष्ट होगई, और तहाँसे आगे को नहीं चलसका, सो रावण विमानको और मन्त्रियोंको तहाँही छोडकर इकला चलदिया ॥ ६ ॥ और ज्योंही, श्वेत-

द्वीपमें घुसा सो एक स्त्रीने पकड लिया, और बूझने लगी, कि—तू कहाँसे आया है ? कौन जाति है,? और तुझे किसने भेजा है ? सो बता ॥ ७॥ इसप्रकार वारंवार लीलाकरके हँसतीहुई स्त्रियोंने इससे बूझा, परन्तु कुछ उत्तर नहीं दिया, और रावण बडी कठिनसे उन स्त्रियोंसे छूटा ॥ ८॥ और अत्यन्त आश्चर्य्यको प्राप्त होकर यह दुष्टात्मा रावण विचार करने लगा, और विचार करते करते अन्तमें यह निश्चय करलिया कि—मैं विष्णुभगवान्के हाथसे मरणको प्राप्त होकर वैकुण्ठलोकको प्राप्त होऊँगा ॥ ९ ॥ सो जिसप्रकार विष्णुभगवान् मेरे ऊपर कोप करैं, सो यत्न करूँ, ऐसा निश्चयकरके उस राक्षसने वनमें जानकीको हर लिया ॥ १०॥ उसने आपके परमात्मस्वरूपको जानकर भी सीताको हरा, और आपके हाथसे अपने वधकी इच्छाकरके जानकीजीको माताकी समान पालन करतारहा॥ ११ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप परमेश्वर हैं, और ज्ञानदृष्टिसे भूत-भविष्यत्-वर्तमानरूप तीनों कालके पदार्थोंको जानते हो, और भेदरहित सबके साक्षीरूप हो, हे ईश ! अपने चरित्रोंका कीर्तन आदि करनेसे भक्तोंके पापोंको दूर करनेके निमित्त मुनियोंके वचनोंको सुनतेहुए यज्ञ-आदि क्रिया करते हो, सब लोकोंकरके पूजित होतेहो, और तुमही सबके अन्तर्यामीरूप होकर प्रकाशित होते हो ॥ १२ ॥ इसप्रकार रघुनाथजीकी स्तुति करके तिनसे सत्कारको प्राप्त हुए अगस्त्यमुनि प्रसन्न चित्त होकर मुनियोंकरके सहित अपने आश्रमको चले गए ॥ १३ ॥ और लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीभी सीता और चारों भ्राता तथा मंत्रियों करके सहित संसारी पुरुषकी समान रमण करते हुए अपने स्थानगृहमें निवास करते रहे ॥ १४ ॥ हनुमान्आदि श्रेष्ठ वानरोंकरके युक्त और प्रिया (सीता) करके सहित श्रीरामचन्द्रजी आसक्तिरहित होकर विषयोंको भोगने लगे ॥ १५ ॥ एकसमय प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पास पहिलेकी समान पुष्पक विमान आया, और कहने लगा, कि—हे देव ! मुझे कुबेरने भेजा है, और यह कह दिया है ॥ १६ ॥ कि तुझे पहिले

रावणने जीतलिया था, फिर उससे श्रीरामचन्द्रजीने जीत लिया, सो जब-तक श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वीपर निवास करैं तबतक उनकोही सवारी दे ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजी वैकुण्ठको चलेजायँ तब मेरे पास आना, इसप्रकार कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सूर्य्यकी समान प्रकाशवान् तिस विमानसे बोले ॥ १८ ॥ कि—हे पुष्पक ! तुम्हारा कल्याण होय, जिस समय मैं स्मरण कराकरूँ तब मेरे पास आजाया करो, और अब मेरी आ-ज्ञासे जाओ, तथा सर्वत्र अन्तर्धान होकर रहाकरो ॥ १९ ॥ इसप्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी भ्राता और मंत्रियोंकरके सहित नीति और शास्त्रके अनुसार पुरवासियोंके सम्पूर्ण कार्य्य करने लगे ॥ २० ॥ त्रिलोकीनाथ लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीके पृथ्वीको रक्षा करते समय पृथ्वी धान्यसम्पत्ति करके युक्त हुई, और वृक्षफलोंकरके युक्त हुए ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण पुरुष धर्म्म-तत्पर थे, स्त्रियें पतिकी सेवा करनेमें तत्पर थीं, श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करनेके समय कोई पुत्रका मरण नहीं देखता था ॥ २२ ॥ सीता और हनुमान्‌आदि वानर तथा भ्राताओंकरके सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अत्यु-त्तम पुष्पक विमानपर चढ़के पृथ्वीपर विचरते रहे॥ २३ ॥ और पृथ्वीपर बहुतसे अमानुप (जो मनुष्योंसे न होसकैं ऐसे) चरित्र करे, एकसमय किसी ब्राह्मणके पुत्रकी अकालमृत्यु देखकर, और उस ब्राह्मणको शोक करताहुआ जानकर परमबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने वनमें तप करतेहुए शूद्रका वध करके ब्राह्मणके बालकको जीवित करा, और उस शूद्रको उत्तम स्वर्गलोक दिया; तदनन्तर परमात्मा श्रीरामचंद्रजीने लोकोंको उपदेश देनेके निमित्त सर्वत्र करोड़ों शिवलिङ्गोंकी स्थापना करी, और सबप्रकारके दिव्य भोगोंकरके श्रीरामचन्द्रजी सीताजीका मन प्रसन्न करते रहे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ परम धर्म्मको जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी धर्म्मपूर्वक राज्यकी रक्षा करतेहुए लोकोंके पापोंको नष्ट करनेवाली अपनी कथाको स्थित करतेहुए ॥ २८ ॥ लोकोंके प्रणाम करनेयोग्य हैं चरण-कमल जिनके ऐसे मायाकरके मनुष्यशरीर धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी

दशहजारपर्य्यन्त विधिपूर्वक राज्य करतेरहे ॥ २९ ॥ एकपत्नीव्रतको धारण करेहुए अर्थात् अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीके विषे जिनका स्वप्नमेंभी मन नहीं गया है ऐसे सदा पवित्र राजर्षि श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण प्राणियोंको शिक्षा देतेहुए गृहस्थोंके धर्म्मका आचरण करतेरहे ॥ ३० ॥ और सीताजीभी प्रेम तथा अनुकूल आचरणकरके इन्द्रियोंके दमनपूर्वक नम्रतासे और लज्जासे तथा भयसे सदा प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानतीहुई पातिव्रत्यमें तत्पर होकर श्रीरामचन्द्रजीके मनको हरण करती रहीं ॥ ३१ ॥ एकसमय क्रीड़ा करनेकी वाटिकाके विषे एकान्तमें बनेहुए भोगोंकरके युक्त दिव्य मन्दिरमें बैठेहुए, नीलमणिकी समान श्यामवर्ण, दिव्य आभूषणोंको धारण करेहुए, प्रसन्नमुख, शान्तस्वरूप, बिजलीके समूहकी समान पीतांबर धारण करेहुए, रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी चरणकमलोंको अपने हाथोंसे दाबतीहुई कमलपत्रकी समान नेत्रवाली और सम्पूर्ण आभूषणोंकरके भूषित सीताजी इसप्रकार कहने लगीं ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कि—हे देव ! जगन्नाथ ! परमात्मन् ! सनातन ! चैतन्य और आनन्दस्वरूप ! आदिमध्यअन्तरहित ! सर्वकारण ! श्रीरामचन्द्रजी ! ॥ ३५ ॥ हे देव ! सम्पूर्ण देवताओंने एकान्तमें मेरे पास आकर आपके वैकुण्ठलोकको आनेके निमित्त अनेक प्रकारसे बहुतही प्रार्थना करी है, और मुझसे यह वचन कहा ॥ ३६ ॥ कि—हे सीते ! तुझ चित् शक्तिकरके सहित श्रीरामचन्द्रजी हमको और अपने सनातन वैकुण्ठधामको त्यागकर पृथ्वीपर स्थित हैं ॥ ३७ ॥ हे जगन्मातः ! तुम्हारे कारणसेही कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वीपर हैं, सो तुम पहिलेही वैकुण्ठलोकको चलीजाओ, तब रघुनाथजीभी वैकुण्ठलोकको आजायँगे, और हम सबोंको सनाथ करेंगे, इसप्रकार देवताओंने मुझसे प्रार्थना करी है सोई मैंने आपको निवेदन करादिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ अब आप जैसा उचित हो वैसा करें; मैं आपको आज्ञा नहीं करतीहूँ, इसप्रकार सीताजीके वचनको सुनकर श्रीरामचंद्रजी क्षणमात्र ध्यान करके कहनेलगे ॥ ४० ॥

हे देवि ! मैं सब जानताहूँ, सो इस विषयमें मैं तुम्हें एक उपाय बताताहूँ, हे देवि ! तेरे विषयके लोकापवादका बहाना रचकर, जिसप्रकार कोई संसारी पुरुष लोकापवादसे भयभीत होकर अपनी स्त्रीको त्याग देय, तिसीप्रकार मैं तुझे वनमें त्यान दूँगा, और वाल्मीकिके आश्रममें तेरे दो पुत्र उत्पन्न होयँगे ॥ ४१ ॥४२॥ क्योंकि—अब तुम्हारे शरीरमें गर्भके चिन्ह प्रतीत होही रहे हैं, पुत्र उत्पन्न होनेके अनन्तर तुम मेरे पास फिर आकर लोकोंको विश्वास दिलानेके निमित्त आदरपूर्वक शपथ करके पृथ्वीके छिद्रके द्वारा तुम वैकुण्ठलोकको जाओगी, तदनन्तर मैं भी शीघ्रही वैकुण्ठलोकको आऊँगा, बस अब यहही मेरा निश्चय है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसप्रकार कहकर और तिन सीताजीको तिस स्थानपरही छोड़कर ज्ञानैक स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी संमतिके तत्त्वको जाननेवाले मंत्रियोंकरके और मुख्य सेनापतियोंकरके सहित सभामें आकर बैठे ॥ ४५ ॥ तहां राज्यसिंहासनपर बैठेहुए श्रीरामचन्द्रजीको हास्यविषयमें अति प्रवीण और अनेक प्रकारकी कथाओंको जाननेवाले मित्रगण हास्यके द्वारा प्रसन्न करतेहुए समीपमें बैठगए ॥ ४६ ॥ वार्त्ता करते करते प्रसङ्गसे श्रीरामचन्द्रजीने विजयनामक अपने दूतसे बूझा, कि—नगरके पुरुष और देश (इलाके) के पुरुष मेरी किसप्रकारसे भलाई बुराई करते हैं ? ॥४७॥ सीताके विषयमें, मेरी माताके विषयमें, भ्राताओंके विषयमें, अथवा कैकेयीके विषयमें लोक क्या क्या ? कहतेहैं ? सो निर्भय होकर ठीक ठीक कहदो, तुम्हें मेरी शपथ है ॥ ४८ ॥ इसप्रकार कहनेपर विजय बोला, कि हे देव ! आपके विषयमें तो सबलोग यह कहतेहैं, कि—आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजीने जो कुछभी कार्य्य करा, वह अन्यसे कदापि नहीं होसक्ता, ॥ ४९ ॥ परन्तु एक कार्य्य अच्छा नहीं करा, कि—रावणका वध करके सीताको घरमें लेआए, और सीताके ऊपर बिलकुल क्रोध नहीं करा ॥ ५० ॥ उन श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें सीताके सम्भोगका सुख कैसा होताहोगा ? यह हम नहीं कहसक्ते, जो दुष्टात्मा रावण वनमें सीताको हरकर लेगया, तिसपर भी श्रीरामचन्द्रजीने

सीताजीको घरमें रखलिया और किसीप्रकारका संदेह नहीं करा ॥ ५१ ॥ तौ अब यदि हमारी स्त्रियें भी किसीप्रकारका कुकर्म्म कर आवैंगी तौ हम सबोंको सहना पड़ैगा, क्योंकि—लोककी कहावत है कि—यथा राजा तथा प्रजा , अर्थात् जैसा राजा होता, है, वैसीही प्रजाभी होतीहै ॥ ५२ ॥ उस विजयदूतके इस कथनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने मंत्रिआदिसे बूझा, वहभी प्रणाम करके कहनेलगे, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! यह जो कुछ विजयने कहा है; सो निःसन्देह ठीक है ॥ ५३ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने मंत्रियोंको और विजयदूतको तथा मित्रगणोंको तौ विदा करदिया, और लक्ष्मणजीको बुलाकर श्रीरामचन्द्रजी यह वचन बोले ॥ ॥ ५४ ॥ कि—हे भ्रातः ! सीताके कारणसे मेरा बड़ाभारी लोकापवाद हो रहा है; सो तुम कल प्रातःकाल सीताको रणवासमेंसे निकालकर रथमें बैठाय शीघ्रही वाल्मीकि ऋषिके आश्रमके समीप छोड़कर लौटआओ, यदि अब तुम इसविषयमें कुछ कहोगे तौ तुमको प्राणान्त करनेकी हत्या लगैगी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेसे भयभीत हो लक्ष्मणजी प्रातःकालही उठे और सुमन्त्रके द्वारा रथको मँगवाकर और जानकीजीको उस रथपै बैठाकर शीघ्रही वनको चलेगए ॥ ५७ ॥ और वाल्मीकिऋषिके आश्रमके समीप सीताजीको छोड़कर, कहनेलगे, कि—हे मातः ! लोकापवादके भयसे रघुनाथजीने तुम्है वनमें त्याग दिया है ॥ ॥ ५८ ॥ हे मातः ! इसमें मेरा किसीप्रकारका दोष नहीं है, अब तुम वाल्मीकिऋषिके आश्रममें चलीजाओ, इसप्रकार कह कर लक्ष्मणजी शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजीके वासको चलेगए ॥ ५९ ॥ सीताजीभी अतिअज्ञानीपुरुषकी समान दुःखित होकर विलाप करनेलगीं, सो वाल्मीकि मुनिने शिष्योंसे सुना कि— कोई स्त्री विलाप कर रही है, सो उन्ह मुनिसे ज्ञानदृष्टिसे जाना कि जानकी है ॥ ६० ॥ सो मुनिने आनकर अर्घ्यपाद्यादिसे पूजन करा और जानकीजीको समझाया, और ज्ञानदृष्टिसे सम्पूर्ण भविष्यको जानकर सीताजीको मुनियोंकी स्त्रियोंके अर्थ सौंपदिया ॥ ६१ ॥ वह मुनियोंकी स्त्रियें प्रति-

दिन भक्तिपूर्वक तिन सीताजीका सत्कार करती रहीं; उन स्त्रियोंने, वाल्मीकि मुनिसे सुनलिया था कि-यह जानकीजी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी लक्ष्मी हैं, सो वह स्त्रिये सदा नम्रतापूर्वक परम आदरसे तिनजानकीजीकी सेवा करनेलगीं ॥ ६२ ॥ इधर सीताकरके रहित, आदिदेव, ज्ञानदृष्टि, परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी भी सम्पूर्ण भोगोंको त्यागकर विरक्त होकर मुनियोंके व्रतको धारण करतेहुए. यद्यपि वह परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी मुनियोंकरके सेवन कियेगए हैं चरणकमल जिनके ऐसे थे, तथापि उन्होंने लोकोंको शिक्षा देनेके निमित्त मुनियोंका व्रत धारण करलिया ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

॥ अथ रामगीताप्रारम्भः ॥

श्रीमहादेजी कहते हैं कि-हे पार्वती ! तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी जगत्के मंगलोंकाभी मंगल करनेवाली अर्थात् जगत्‌मंगल जो विषयोंके आनन्द तिनको सत्ता देनेवाली अपनी मूर्तिकरके उत्तम कहिये श्रवण करनेवालोंको मोक्षफल देनेवाली, और वाल्मीकि आदिके रचेहुए अनेक रामायणग्रंथोंको पवित्र करनेवाली, रावणवध आदिसे उत्पन्न हुई अपनी कीर्त्तिको त्रिलोकीमें फैलाकर रघुकुलशिरोमणी श्रीरामचन्द्रजी सीताका परित्याग करनेके अनंतर अपने वंशके इक्ष्वाकुआदि श्रेष्ठ राजर्षियोंके अनुसार प्रजापालन, धर्म्मानुष्ठान और सत्कथाओंका श्रवण आदि जो सदाचार तिसका सेवन करनेलगे ॥ १ ॥ एकसमय गुरु और देवताओंके विषें विश्वास करनेवाली है बुद्धि जिनकी ऐसे लक्ष्मणजीने प्रश्न करा तब श्रीरामचंद्रजी धर्म्मका निर्णय करनेवाली प्राचीन राजाओंकी शुभ कथा कहनेलगे; फिर विना

जाने एक गौको दो ब्राह्मणोंके अर्थ दान करनेके अनंतर उन दोनों ब्राह्मणोंकी प्रार्थनाकोभी न सुनकर ब्राह्मणके शापसे गिरगिटकी योनिको प्राप्त होनेवाले राजा नृगकी कथा लक्ष्मणजीको सुनाकर श्रीरामचन्द्रजीने यह सूचित करा कि—विना जानेभी ब्राह्मणका धन लेनेसे परम धर्मात्मा पुरुषकी भी राजा नृगकी समान अत्यन्त दुर्दशा होती है ॥ २ ॥ एकसमय शुद्धअन्तःकरणवाले लक्ष्मणजीने लक्ष्मीकरके सेवित हैं चरणकमल जिनके ऐसे एकान्तमें बैठेहुए श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर तिनको गुरुबुद्धिसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करके नम्रतापूर्वक यह वचन कहा ॥ ३ ॥ कि—हे श्रीरामचंद्रजी ! हे महामते ! आप शुद्ध बोध कहिये निर्म्मल ज्ञानस्वरूप हो सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हो, और अंतर्यामीरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रेरक हो, और जीवोंकी समान कर्म्माधीन जो देह तिसकरके रहित हो, अर्थात् मायाके वशीभूत न होकर अपनी इच्छासे ही मनुष्यशरीर धारण करते हो, ऐसे आपके ज्ञानस्वरूपको सर्वसाधारण पुरुष नहीं जानसक्ते हैं, किन्तु आपके चरणोंमें भ्रमरके समान अपने अंतःकरणको समर्पण करनेवाले आपके भक्तोंके सत्संगको करनेवाले ज्ञानदृष्टि पुरुषही आपके वास्तविक ज्ञानस्वरूपके जाननेको समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥ और हे भगवन् ! योगियोंकरके संसारबंधनसे छूटनेके निमित्त ध्यान करेहुए संसारबन्धसे छुटानेवाले आपके चरणकमलकी मैं शरणागत हूँ, हे भगवन् ! संसारके मूल कारण अपार समुद्ररूप अज्ञानसे जिसप्रकार मैं सुखपूर्वक पार होजाऊं, तिसप्रकार मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति! लक्ष्मणजीका वचन सुननेके अनंतर राजाओंके आभूषणरूप और शरणागत भक्तोंके दुःखोंको दूर करनेवाले श्रीरामचंद्रजी चित्तमें प्रसन्न होकर अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करनेके निमित्त (तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति । नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय)—उस परमात्माको ही जान कर पुरुष संसाररूपी मृत्युके पार होता है, आत्मज्ञानके सिवाय और कोई मार्ग मुक्तिको प्राप्त होनेके निमित्त नहीं है, इत्यादि श्रुतियोंकरके

वर्णन कराहुआ आत्मतत्वज्ञान लक्ष्मणजीके अर्थ वर्णन करनेलगे ॥ ६ ॥ तहाँ प्रथम तिस आत्मज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ क्रमसे बहिरंग और अंतरंग साधनोंको कहते हैं कि—मुमुक्षु पुरुष प्रथम अपने वर्ण और आश्रमके विषें शास्त्रकरके वर्णन करीहुई नित्य नैमित्तिक यज्ञदानआदिरूप क्रियाओंको करके अंतःकरणको शुद्ध करै, तदनंतर तिन क्रियाओंको करताहुआही शमदमादि साधनोंकी प्राप्ति करै, तदनंतर कर्म्मानुष्ठानको त्यागकर अर्थात् संन्यास लेकर आत्मज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंके अर्थका विचार करनेके लिये वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी गुरुके समीप जाय ॥ ७॥ अब इस विषयका निरूपण करते हैं कि—संसार घूमतेहुए चक्रकी समान है और अपने कारणरूप अज्ञानके दूर होनेसे दूर होताहै, और अज्ञानकी निवृत्ति केवल तत्त्वज्ञानसेही होसक्ती है और तत्वज्ञान 'तत्त्वमसि' आदि वेदान्तवाक्योंके विचार करनेसे प्राप्त होताहै, और वह विचार गुरुकी कृपासे ही होताहै, श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण! यह संसारचक्रकी समान कहाता है, प्रीतिपूर्वक पूर्वजन्ममें कियेहुए कर्म्मही इस शरीरके जन्मका कारण हैं, सो पूर्वजन्मोंके कर्म्मोंके अनुसार प्राप्त हुए जन्ममें विषयोंकी अभिलाष करनेवाले पुरुषको शास्त्रमें कहेहुए धर्म्म अधर्म्म सुख और दुःख देते हैं, तब किसीकी अधर्म्ममें और किसीकी धर्म्ममें प्रवृत्ति होती है, इसप्रकार तिस जन्ममेंभी उत्पन्न हुए कर्म्मोंसे फिर शरीर होता है, और उस शरीरको धारण करके जीव फिर कर्म्म करता है, इसप्रकार प्राणी संसारचक्रमें घूमता रहता है, जिसप्रकार गाड़ीके पहियेका कभी ऊपरका भाग नीचे आजाता है और कभी नीचेका भाग ऊपर चला-जाता है इसीप्रकार इस संसारचक्रमें घूमताहुआ जीव कभी पुण्यके प्रतापसे ऊपरके लोकोंमें जाता है और कभी पापकर्म्मोंके प्रभा-वसे नीचेके लोकोंमें जाता है ॥ ८ ॥ और हे लक्ष्मण! अज्ञानही इस संसारका मूलकारण है, इसकारण संसारकी निवृत्ति करनेके निमित्त अज्ञानका नाशही साधनरूप होता है, तिस अज्ञानके दूर करनेको ज्ञानही

समर्थ होता है कर्म्म नहीं, क्योंकि कर्म्म अज्ञानसेही उत्पन्न होते हैं, इसकारण कर्म्मका और अज्ञानका विरोध अर्थात् परस्पर प्रतिबंधकताभाव नहीं है, और जिससे जिसका विरोध होता है वही उसका नाश करसक्ता है इसप्रकार शास्त्रोंमें कहा है, इसकारण ज्ञान और अज्ञान इन दोनोंका विरोध होनेसे ज्ञानही अज्ञानको नष्ट करसक्ता है ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण कर्म्म और और अज्ञानका परस्पर विरोध न होनेके कारणही तिस कर्म्मानुष्ठानसे न अज्ञानका नाश होता है, और न राग कहिये विषयोंकी आसक्ति दूर होती है, किन्तु कर्म्म करनेसे और उलटा क्षणभंगुर फलका देनेवाला दोषयुक्त कर्म्मही उत्पन्न होता है, और उस कर्म्मसे फिर जन्ममरणरूप संसारकी प्राप्ति होती है अर्थात् कर्म करनेसे कदापि संसारबन्धन निवृत्त नहीं होता है, फिर मोक्षकी तौ आशाही क्या करना ? इसकारण विचारवान् पुरुष सदा वेदान्तवाक्योंका विचार करनेमें तत्पर रहै ॥ १० ॥ किन्ही समुचयवादी आचार्य्योंका ऐसा मत है, कि—ज्ञान और कर्म्म दोनों मिलकर मुक्तिदायक होते हैं, केवल ज्ञानसेही मुक्ति नहीं होती है, इस मतका खण्डन करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजी प्रथम तीनश्लोकोंकरके तिन समुच्चयवादियोंके मतका वर्णन करते हैं, समुच्चयवादी इसप्रकार शंका करते हैं, कि—जिसप्रकार विद्या कहिये ज्ञानको (ब्रह्मविदाप्नोति परम्—ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मकोही प्राप्त होता है) इत्यादि श्रुतियोंके विषें मोक्षरूप परमपुरुषार्थका साधन कहा है, तिसीप्रकार कर्म्मकोभी (यावज्जीवमग्निहोत्रम् जुहोति—जबतक जीवित रहै तबतक अग्निहोत्र करै) इत्याति श्रुतियोंकरके अवश्य कर्त्तव्य कहा है, इसकारण कर्म्मज्ञानका सहायक होताहै क्योंकि— जब वेदमें कर्म्मको अवश्य कर्त्तव्य कहा है, तबतो कर्म्मके न करनेसे विघ्न उत्पन्न होकर ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होयगी, इसकारण कर्म्मसहितही ज्ञान मुक्ति देनेमें समर्थ होता है, इस विषयमें समुच्चयवादी यह युक्ति देते हैं—कि "उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः । तथैव ज्ञानकर्माभ्यां प्राप्यते ब्रह्मशाश्वतम्— अर्थात्

जिसप्रकार पक्षी दोनोंही पक्षोंसे आकाशमें गमन करसक्तेहैं तिसीप्रकार ज्ञान और कर्म्म दोनोंहीसे शाश्वत ब्रह्मकी प्राप्ति (मुक्ति) होतीहै ॥ ११ ॥ और कर्म्मके नहीं करनेपर वेदमें (वीरहा वा एष देवानां योग्निमुद्वासयते— जो पुरुषअग्निहोत्रके कुण्डकी अग्निको बुझादेताहै वह देवताओंके वीरको नाश करनेवाला होताहै) इत्यादि श्रुतियोंके विषे दोष कहा है इसकारण मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदा कर्म्मानुष्ठानपूर्वक ज्ञानकी प्राप्ति करना चाहिये, तहाँ सिद्धान्ती शंका करताहै कि—निश्चल मोक्षरूप परमपुरुषार्थको उत्पन्न करनेवाली विद्या (ज्ञान) स्वतंत्र है अर्थात् मोक्षरूप फल देनेमें किसीकी सहायकी मनसेभी अपेक्षा नहीं करतीहै जिसप्रकार सूर्य्य किसी दूसरेकी सहायता न लेकरही अंधकारको नष्ट करदेताहै तिसीप्रकार अविद्या (अज्ञान)रूपी अंधकारको नष्टकरनेमें किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करतीहै ॥ १२ ॥ इस शंकाका समुच्चयवादी उत्तर देताहै, कि—तुम्हारा इसप्रकार कहना ठीक नहीं है, क्योंकि (अक्षय्यं हि चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति—चातुर्मास्य यज्ञ करनेवालेको अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होतीहै) इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे यद्यपि यज्ञकर्म्म स्थिर है तथापि जिसप्रकार अन्यकारकोंकी अर्थात् प्रयाज अनुयाज आदि अंगोंकी और देशकाल आदिकी अपेक्षा करताहै तिसीप्रकार (अधीतवेदो जपकृत् पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनःकुर्यात्तु नान्यथा—अर्थात् वेद पढ़कर गायत्रीआदि जपका करनेवाला पुत्रवान् अन्नदाता अग्निहोत्री और यथाशक्ति यज्ञ करनेवालाही मोक्षमें मन लगावे, अन्य पुरुष नहीं) इत्यादि वाक्योंके द्वारा अग्निहोत्रादि कर्म्मोंकी सहायतासे ही ज्ञान मोक्ष देसक्ता है स्वतंत्र होकर नहीं ॥ १३ ॥ इसप्रकार समुच्चयवादीका मत दिखाकर सिद्धान्ती उसका खण्डन करता है कि—इसप्रकार जो वितर्कवादियों (समुच्चयवादियों) का कथन है सो असत् (मिथ्या) है, जिसप्रकार केवल कर्म्म मोक्षका साधन नहीं होसक्ता, इसीप्रकार ज्ञानसहित कर्म्मभी मोक्षका साधन नहीं होताहै, क्योंकि सर्वत्र विरोध देखनेमें आताहै,

सोही दिखाते हैं कि—अनात्मरूप देहादिके विषे आत्मत्व (मैं हूँ, मेरा है इत्यादि) का अभिमान होनेसे क्रिया वृद्धिको प्राप्त होतीहै, अर्थात् कर्म्मसिद्धि होतीहै, और ज्ञानकी प्राप्ति तौ देहाभिमान नष्ट होनेसे होतीहै इसकारण जब कर्म्मसिद्धिका कारण तौ अहंकार हुआ, और ज्ञानका कारण अहंकारका नाश हुआ फिर दिन और रात्रिकी समान परस्पर विरुद्ध दोनों ज्ञान और कर्म एकसाथ पुरुषके विषे किसप्रकार रहसक्तेहैं ? अर्थात् दोनों इकट्ठे कदापि नहीं रहसक्ते, और जब इकट्ठे एकस्थानमें नहीं रहैंगे तौ दोनोंका समुच्चयभी किसप्रकार होसक्ता है ? अर्थात् कदापि नहीं होसक्ता, इसकारण समुच्चयवादियोंका मत असत् है ॥ १४ ॥ समुच्चयवादिने जो बारहवें श्लोकमें अनुमान कियाथा, कि—जिसप्रकार प्रयाज अनुयाज आदि अंगोंकरके सहित ही चातुर्मास्य आदि मुख्य यज्ञ फलदायक होताहै, तिसी प्रकार ज्ञानभी कर्मके साथही मोक्षरूप फलदायक होगा, इसका सिद्धान्ती खण्डन करताहुआ कहता है, कि—विशुद्ध निर्म्मल ज्ञानके देनेवाले वेदान्तवाक्योंके विचार करनेसे प्राप्ति होनेवाली अंतःकरणकी अंतिम ब्रह्माकारवृत्ति विद्या कहाती है, और यज्ञादि कर्म्म तौ कर्त्तृकर्म्मादि अंगोंकरके सहित उत्पन्न होताहै, और विद्या सम्पूर्ण कर्त्तृकर्मादि कारकों (मैं करता हूँ इत्यादि बुद्धियों) को नष्ट करती है, क्योंकि—सम्पूर्ण वृत्तियोंको त्यागकर ब्रह्मके विषे तदाकाररूप होनेको विद्या कहतेहैं, इसप्रकार कहनेका अभिप्राय यह है, कि—विद्याकी प्राप्तिके निमित्त साधनरूप जो अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये तौ कर्म्मकी अपेक्षा होतीहै, क्योंकि-अंतःकरण विना शुद्ध हुए विद्याकी प्राप्ति नहीं होसक्ती, और कर्म्मानुष्ठानके विना अंतःकरणकी शुद्धि नहीं होसक्ती, परंतु जब कर्म्मानुष्ठानसे अंतःकरण शुद्ध होकर विद्याकी प्राप्ति होजाती है फिर वह विद्या (ज्ञान) मोक्षरूप फलको उत्पन्न करनेके लिये कर्म्मकी सहायताको अपेक्षा नहीं करती है, यदि किसीकी सहायताकी अपेक्षा करै तौ विद्याका वास्तविक स्वरूप नष्ट होजाय, क्योंकि—अंतिम वृत्तिका नाम विद्या है, यदि वह विद्या किसीकी सहायताकी अपेक्षा करै

तो फिर वह अंतिम (चरम) वृत्ति किसप्रकार होसकी है? इसकारण अंतःकरणकी चरम ब्रह्माकारवृत्तिरूप विद्या मोक्ष देनेमें कर्म्मकी अपेक्षा नहीं रखती है और दूसरे कर्मका कारण जो अहंकार वह तो विद्या (ज्ञान) के समय होताही नहीं, फिर उस अवस्थामें कर्म्मका रहना किसप्रकार संभव होसक्ता है? कि—जिसकी ज्ञान अपेक्षा करै, इसकारण विद्या स्वतंत्र होकरही मोक्षरूप फल देती है, और जिसप्रकार सूर्य और अंधकार एक स्थानमें नहीं रहसक्ते, इसीप्रकार ज्ञान और कर्म्मका भी एक स्थानमें रहना (समुच्चय होना) असम्भव है ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण! विद्या और कर्म्मका विरोध होनेसे समुच्चय नहीं होसक्ता, इसकारण मुमुक्षु पुरुषको योग्य है, कि—कर्म्मको त्याग दे, अर्थात् काम्यकर्म्मका तो सर्वथाही त्याग करदें, परन्तु जबतक चित्तकी शुद्धि न होय तबतक नित्य नैमित्तिक कर्म्म करतारहै और जब अंतःकरणकी वृत्ति शुद्ध होजाय अर्थात् ब्रह्मके विषें चित्त स्थिर होजाय तब नित्य नैमित्तिक कर्म्मको त्याग दे फिर संपूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्त होकर अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्तिको त्यागकर सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माका ध्यान करनेमें तत्पर रहै ॥ १६ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण! पुरुष जिससमय पर्यन्त अविद्या (अज्ञान) के वशीभूत होकर शरीर इन्द्रिय आदि अनात्म कहिये जड़ पदार्थोंमें आत्मत्वबुद्धि (मैं हूँ मेरा है इत्यादि बुद्धि) करताहै तबतक ही वेदविहित (स्वर्गकामोयजेत—स्वर्गकी कामना करनेवाला यज्ञ करैं) इत्यादि कर्म्मोंका दास बनारहता है, अर्थात् जबतक अहंकार रहता है तबतकही पुरुषकी कर्म्ममार्गमें प्रवृत्ति होतीहै, और जब अहंकार नष्ट होजाताहै तब ज्ञान होनेसे सब मिथ्या प्रतीत होनेलगताहै, इसकारण विचारवान् मुमुक्षु पुरुष वेदविहित सत्कर्म्मोंको अंतःकरणकी शुद्धि होनेपर्यन्त करै और अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर प्रकृतिसे पर आत्मस्वरूपको जानकर "नेति नेति" इत्यादि वाक्योंकरके सम्पूर्ण जगत्का निषेध करताहुआ अर्थात् संपूर्ण जगतको स्वप्नकी समान मिथ्या जानताहुआ संपूर्ण कर्म्मोंका

त्याग करदेय ॥ १७ ॥ अब आत्मज्ञान होनेके अनंतर अविद्या अवश्य दूर होजातीहै, इस वार्ताका प्रतिपादन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि—हे लक्ष्मण! जिससमय शुद्ध अंतःकरणके विषे परमात्माका और जीवात्माका भेद करानेवाली जो माया और अंतःकरणरूप दो उपाधि तिनको नष्ट करनेवाला प्रकाशस्वरूप विज्ञान अर्थात् अन्य वृत्तियोंको नष्ट करनेवाली अखण्ड ब्रह्माकारवृत्ति उदयको प्राप्त होतीहै उसीसमय अनेक जन्मोंको देनेवाले कर्म्मोंकरके सहित संसारका कारणरूप माया अर्थात् जीवोपाधिभूत अविद्या तत्काल नष्ट होजाती है ॥ १८ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण! "तत्त्वमसि" आदि महावाक्योंके द्वारा उत्पन्न हुए ज्ञानसे नाशको प्राप्त हुई अविद्या क्या फिर किसी प्रकारभी संसारबन्धनरूप कार्यकी करनेवाली होसक्ती है? अर्थात् कदापि नहीं, क्योंकि वह तौ शुद्ध अद्वितीय ज्ञानसे नष्टही होजाती है, और फिर उदयको भी नहीं प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ और हे लक्ष्मण! यदि तत्त्वज्ञानसे नाशको प्राप्त हुई अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होती है, तौ फिर अपने कारणरूप अविद्याके नष्ट होनेसे अहंकार भी किसप्रकार होसक्ता है? अर्थात् कदापि नहीं होसक्ता है और जब अहंकारही उत्पन्न नहीं होता तौ फिर उससमय कर्म्मका होना भी संभव नहीं होसक्ता, इसकारण विद्या स्वतंत्रही मोक्षरूप फल देती है, और किसीकी अपेक्षा नहीं करती ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण! (न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति। तै० आ० प्र० १० अ० १० अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म्म करनेसे, संतानको उत्पन्न करनेसे, अथवा धनसे, मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है; किन्तु संपूर्ण लौकिक वैदिक कर्म्मोंको त्याग करही। कोई अंतर्मुख पुरुष अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त होता है, जिस अमृतत्त्वके विषें जितेन्द्रिय यति प्रवेश करतेहैं, वह अमृतत्व स्वर्गसेभी श्रेष्ठ और अपनी एकाग्र बुद्धिरूप गुहामें स्थित है) यह तैत्तिरीय शाखाकी प्रसिद्ध श्रुति आदरपूर्वक स्पष्ट

रीतिसे सम्पूर्ण कर्म्मोंको त्याग करनेका उपदेश करतीहै और (एतावदरे खल्वमृतत्वम्) इत्यादि वाजसनेयिशाखावालोंकी श्रुति ऐसा उपदेश करती है कि—केवल ज्ञानमात्रही मोक्षका साधन है कर्म्म नहीं ॥ २१ ॥ इसप्रकार कर्म्म और ज्ञानका वैषम्य दिखाया अब कर्म्म और ज्ञानके फलमेंभी विषमता दिखाताहुआ सिद्धान्ती कहता है, कि—हे समुच्चयवादिन् ! तुमने अग्निष्टोमादि यज्ञ और विद्या (ज्ञान) की समता वर्णन करी परंतु कोई ऐसा दृष्टान्त नहीं दिया कि—जिससे अग्निष्टोमादि यज्ञ और विद्याकी समता सिद्ध होती इसकारण तुम्हारा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि—यज्ञ तौ फलोंके भेदकरके और नाना प्रकारके कर्तृ कर्म्मादि कारकोंकरके तथा बाह्य देश काल आदि नियमोंकरके सिद्ध होताहै, और ज्ञानकी सिद्धि (विद्या) में तौ कर्तृत्वादि बुद्धिका त्याग होताहै, इसकारण ज्ञान और कर्मका परस्पर विपरीत भाव है, फिर समता किसप्रकार होसक्ती है ? और समताके विना समुच्चय कहाँ ? ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि—हे लक्ष्मण ! अमुक कर्म्मका त्याग करनेसे निःसंदेह मैं प्रायश्चित्तका भागी होऊँगा, यह जो अनात्म (जड़) धर्मसंबधी बुद्धि है सो तत्वज्ञानहीन मूढ़ पुरुषकोही होती है, तत्वज्ञानीको नहीं, क्योंकि—अहंकार नहीं होता है, वह तत्वज्ञानी पापादिको देहादि अनात्म पदार्थोंका धर्म्म जानता है आत्माका नहीं, इसकारण शास्त्रके विषें अवश्य कर्तव्य कहाहुआभी कर्म्म तत्वज्ञानी पुरुषोंको त्याग देना चाहिये, क्योंकि—शास्त्रोंके विषें वह कर्म्म उनहीं पुरुषोंको अवश्य कर्तव्य कहे हैं, जिनके अंतःकरणोंमें कर्म्मोंसे स्वर्गादि फलको प्राप्त होनेकी इच्छा होती है, और जो पुरुष मोक्षकी इच्छा करनेवाले हैं उनके अर्थ शास्त्रोंमें कर्म्मोंकी अवश्य कर्त्तव्य विधि नहीं है ॥ २३ ॥ अब विरक्त पुरुषको जो कार्य करना चाहिये तिसका उपदेश करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण ! निष्काम कर्म करनेसे शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिसका ऐसा गुरुवाक्य और वेदान्त शास्त्रोंमें विश्वासयुक्त मुमुक्षु पुरुष गुरुके प्रसादसे प्राप्तहुए

" तत्त्वमसि " आदि वाक्योंकरके श्रवण करीहुई परमात्मा और जीवकी एकताको जानकर सुमेरु पर्वतकी समान निष्कंप अर्थात् विषयाभिलाषसे चलायमान नहीं हुआ है चित्त जिसका ऐसा होकर सुखको प्राप्त होय ॥ २४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण ! भ्रमप्रसादरहित महावाक्यके अर्थका ज्ञान उत्पन्न होनेमें प्रथम वाक्यके प्रत्येक पदके अर्थका ज्ञान होना कारण है इसकारण महावाक्यके अर्थका वर्णन करनेके निमित्त प्रथम प्रत्येक पदका भिन्न भिन्न अर्थ वर्णन करते हैं कि— "तत्त्वमसि" इस वाक्यके तीन पद हैं, तत् १ त्वम् २ और असि ३ तहाँ प्रथम तत् पदका अर्थ सर्वज्ञत्व आदि गुण विशिष्ट परमात्मा है, और दूसरे त्वम् पदका अर्थ अल्पज्ञत्व आदि विशिष्ट जीवात्मा है, और तीसरा असि पद तत् तथा त्वम् इन दोनों पदोंका अभेद बोधक है ॥ २५ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण ! ऐसा कहनेपर यदि तुम शंका करो कि—जब ईश्वर सर्वज्ञ (पूर्ण ज्ञानवान्) है और जीव अल्पज्ञ (थोड़े ज्ञानवाला) है तौ फिर इन दोनोंकी एकता किसप्रकार होती है ! इसका उत्तर इसप्रकार है कि—अहंबुद्धिकरके जांनने योग्य जो प्रत्यक्त्व (अनेक पदार्थोंको अपना मानना) जीवका धर्म है, और परोक्षत्व (इन्द्रियोंके गोचर न होना)ईश्वरका धर्म्म है,इत्यादि औरभी धर्मोंसे प्रतीत होनेवाले जीवात्मा और परमात्माके विरोधको त्यागकर तत् और त्वम् इन दोनों पदोंकी भलीप्रकारसे संशोधन करीहुई अर्थात् अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे भलीप्रकार विचार करीहुई और भागत्यागलक्षणाकरके लक्षितचिद्रूपताको जानकर द्वैतभावसे रहित अर्थात् चैतन्यरूपताको प्राप्त हुआसा होजाय, इसप्रकार कहनेका अभिप्राय यह है कि—तत् और त्वम् इन दोनों पदोंके दो अर्थ हैं एक वाच्य और दूसरा लक्ष्य, तहाँ तत्पदका वाच्य अर्थ तौ मायोपाधिक सर्वज्ञत्व आदि विशिष्ट चैतन्य है, और लक्ष्य अर्थ उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य है, इसीप्रकार त्वम् पदका वाच्य अर्थ तौ मायाकार्य अविद्योपाधिक अल्पज्ञत्व आदि विशिष्ट चैतन्य है, और लक्ष्य अर्थ वही

उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य है, इसप्रकार दोनोंके वाच्य अर्थ विरुद्ध होनेसे तौ सामानाधिकरण्य नहीं होसक्ता क्योंकि—सर्वज्ञ अल्पज्ञ नहीं होसक्ता, और अल्पज्ञ सर्वज्ञ नहीं होसक्ता, परन्तु तत् और त्वम् दोनों पदोंका उपाधिरहित शुद्ध चैतन्यरूप लक्ष्य अर्थ एक होनेसे जीवात्मा और परमात्माकी एकता होनेमें कोई बाधा नहीं है, इसकारण "तत्त्वमसि" वाक्यके द्वारा जीवात्मा और परमात्माका एकत्व ज्ञान होनेके अनंतर द्वेषभावरहित होकर चैतन्यरूपताको प्राप्तहुआसा होजाय, अर्थात् है तौ पहिलेभी चैतन्यरूप ही, परन्तु जिसप्रकार कोई पुरुष अपने कंठमें धारण करी हुई मणिको भूलकर कहने लगे कि—मेरी कंठमणि खोगई, परन्तु फिर कोई दूसरा पुरुष उसको बता देय कि—तेरी कंठमणि तौ तेरे कंठमेंही है, तब वह पुरुष कहने लगता है कि—मेरी कंठमणि मिलगई, इसीप्रकार यद्यपि जीवात्मा सदा चैतन्यरूप और परमात्मासे अभिन्न है, तथापि अज्ञानके कारण वह जीवात्मा अपनेको परमात्मासे अलग मानने लगता है, परन्तु जब ज्ञान होजाता है तब वह अपनेको परमात्मरूपमें मिला हुआ जानने लगता है ॥ २६ ॥ अब लक्षणाओंका स्वरूप वर्णन करते हुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण! लक्षणा तीन प्रकारकी होती हैं, एक जहती अर्थात् जहत्स्वार्थलक्षणा, और दूसरी अजहती अर्थात् अजहत्स्वार्थलक्षणा, और तीसरी भागलक्षणा अर्थात् जहदजहल्लक्षणा, जहाँ संपूर्ण वाच्य अर्थका त्याग किया जाय अर्थात् शब्दके मूल अर्थका सम्भव न होनेसे उसको त्यागकर उसके स्थानमें जहाँ दूसरा सम्भव अर्थ स्वीकार किया जाय तहाँ जहत्स्वार्थ लक्षणा होती है, जैसे "गंगायां घोषः—गंगामें घोसियोंका स्थान है" यहाँ वास्तवमें गंगापदका अर्थ भगीरथखातावच्छिन्न जलप्रवाहरूप है परन्तु तिस जलके प्रवाहमें घोसियोंके स्थानका होना सम्भव नहीं हो सक्ता, इस कारण गंगा शब्दकी तीर अर्थमें लक्षणा करी जाती है, अर्थात् गंगापदका जलप्रवाहरूप वाच्य अर्थको त्यागकर तट-

रूप लक्ष्य अर्थ स्वीकार कियाजाताहै "तब गंगायां घोषः" इस वाक्यका गंगाके तटपर घोसियोंका स्थान है ऐसा अर्थ होनेपर किसीप्रकारका दोष नहीं आता, परन्तु ऐसा अर्थ करनेपर गंगाशब्दका जलप्रवाहरूप वाच्य (वास्तविक मूलका) अर्थ कुछभी प्रतीत नहीं होताहै, सम्पूर्णका त्याग होकर तटरूप लक्ष्य अर्थकाही ग्रहण होताहै, इसकारण यहाँ जहत्स्वार्थ-लक्षणा मानी जातीहै, परन्तु यह जहत्स्वार्थलक्षणा "तत्त्वमसि" इस महावाक्यमें नहीं होसक्ती, क्योंकि यहाँ तत् और त्वम् इन दोनों पदोंके अर्थोंकी एकता होनी चाहिये, सो जहत्स्वार्थलक्षणा माननेमें चैतन्य रूप विशेष्य अंशकाभी त्याग होनेसे नहीं होसकैगी, अर्थात् जब जहत्स्वार्थ लक्षणामें संपूर्ण वाच्य अर्थका त्याग होनेसे चैतन्य अर्थकाभी त्याग होजायगा, फिर एकता किसके साथ होयगी, और जहाँ वाच्य अर्थका त्याग न होकर और अधिक अर्थका ग्रहण होय तहाँ अजहत्स्वार्थ लक्षणा होती है, जैसे "काकेभ्यो दधिरक्षिताम्—काकोंसे दधिकी रक्षा करो यहाँ 'काकेभ्यः' इस पदका वाच्य अर्थ "काकोंसे" है परन्तु कहने-वालेका अभिप्राय यह है कि दधिको नष्ट करनेवाले जो काक विड़ाल आदि हैं तिनसे रक्षा करो, इसकारण यहाँ काकपदके वाच्य अर्थका त्याग न होकर उस दधिके नाश करनेवाले और बिडाल आदिकाभी ग्रहण होता है अतएव यहाँ अजहत्स्वार्थलक्षणा मानी गई है, परन्तु "तत्त्व-मसि" इस महावाक्यमें यह अजहत्स्वार्थलक्षणाभी नहीं होसक्ती, क्यों-कि जब तत् और त्वम् इन दोनों पदोंके सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्वरूप वाच्य अर्थका त्याग नहीं होयगा, तब तौ विरोध ज्योंका त्योंही रहैगा और एकता नहीं होयगी, और जहाँ वाच्य अर्थका किंचिन्मात्रभी त्याग होता है तहाँ अजहत्स्वार्थलक्षणा नहीं होसक्ती, इसकारण निर्दोष होनेसे "त्वतमसि" इसमहावाक्यमें भागत्याग लक्षणाही करनी चाहिये, अर्थात् जहाँ कुछ वाच्य अर्थ त्यागा जाय और कुछ नहीं त्यागा-जाय, तहाँ भागत्यागलक्षणा अथात् जहदजहल्लक्षणा होतीहै जैसे

"सोयं देवदत्तः– जिसको दशवर्ष पहिले काशीपुरीमें कवचकुंडलादि धारणकर पुष्टशरीर देखा था, वही यह देवदत्त इससमय कवचकुण्डलरहित और कृश है" यहाँ 'सः' का वाच्यार्थ तौ कवचकुण्डलधारी पुष्टशरीरवान् काशीपुरीस्थ देवदत्त है; और 'अयम्' का वाच्यार्थ इस देशमें स्थित कवचकुण्डलहीन कृश देवदत्त है. सो जैसा काशीपुरीमें पहिले देखाथा वैसा अब नहीं है, इसप्रकार पूर्वकाल और वर्त्तमानकालके विशेषणमें परस्पर विरोधकी प्रतीति होतीहै,इस विरोधको दूर करनेके निमित्त यहाँ पूर्वकालका विरुद्ध अंश जो कवचकुण्डलविशिष्टत्व और शरीरपुष्टत्व आदि धर्म्म और वर्त्तमानकालका विरुद्ध अंश जो कवचकुण्डलरहितत्व और कृशत्वादि धर्म्म तिसका त्याग करके देवदत्तके मांसपिण्डमात्र विशेष्यका ग्रहण होताहै, अर्थात् पूर्वकालके और वर्त्तमानकालके विशेषणरहित देवदत्तमात्र विशेष्य अंशही लक्ष्यार्थ होताहै, इसप्रकार जहदजहत्स्वार्थलक्षणाके द्वारा "सोऽयं-देवदत्तः" इसका वाक्यार्थ होताहै, इसीप्रकार "तत्त्वमसि" यहाँ 'तत्' पदके वाच्य अर्थ (मायोपाधिक सर्वज्ञत्व आदि विशिष्ट चैतन्य) में तौ मायोपाधिक सर्वज्ञत्व आदि विरुद्धधर्म्मका त्याग करके; और 'त्वम्' पदके वाच्य अर्थ (अविद्योपाधिक अल्पज्ञत्व आदि विशिष्ट चैतन्य) में अविद्योपाधिक अल्पज्ञत्व आदि विरुद्ध धर्म्मका त्याग करके दोनोका अविरुद्ध अखण्ड चैतन्य अंशमात्र लक्ष्यार्थ होताहै, इसप्रकार जहदजहत्स्वार्थलक्षणा अर्थात् भागत्यागलक्षणाके द्वारा "तत्त्वमसि" इस महावाक्यकी निर्दोष अर्थसंगति होती है ॥ २७ ॥ अब त्याग करनेयोग्य जीवकी उपाधिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं, कि–हे लक्ष्मण ! पञ्चीकृत पृथ्वीआदि महाभूतोंसे उत्पन्न होनेवाला, पापपुण्यरूप कर्म्मोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखदुःखादिके अनुभवस्थान, जन्ममरणको प्राप्त होनेवाला, पूर्वजन्मके कर्म्मोंसे उत्पन्न होनेवाला, और परम्परासे मायाका विकाररूप यह शरीर आत्माका स्थूल उपाधि है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं; उपरोक्त पञ्चीकरणका यह प्रकार है, कि–प्रत्येक पृथिवी आदि महा-

भूतके दो भाग करै, और दोदोभागोंमेंसे एक एक भागके चार चार भाग करै, फिर पाँचों महाभूतोंका यह आठवाँ आठवाँ भाग प्रत्येक महाभूतके अर्द्धभागमें युक्त करै, इसप्रकार आधा आधा भाग तो प्रत्येक महाभूतका अपना और आठवाँ आठवाँ भाग अन्य चारों महाभूतोंका मिलै तब एक एकमें पाचों महाभूतोंका इकट्ठा होना है सो पंचीकरण कहाता है, और अपना अपना भाग अधिक होनेसे "यह पार्थिवशरीर है, यह तैजस शरीर है" इत्यादि व्यवहार होता है ॥ २८॥ अब सूक्ष्मशरीररूप उपाधिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण ! सूक्ष्म कहिये चक्षु-आदि इन्द्रियोंका अविषय, संकल्पात्मक मन-निश्चयात्मिका बुद्धि और दशेन्द्रिय अर्थात् नासिका-जिव्हा-नेत्र-त्वचा-कर्ण यह पाँच ज्ञानेन्द्रिय और वाणी हस्त-चरण-गुदा-उपस्थ यह पाँच कर्म्मेन्द्रिय तथा प्राण-अपान-व्यान-उदान-समान इन पञ्च प्राणोंकरके युक्त, अपञ्चीकृत कहिये पंचीकरण न करेहुए पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न होनेवाला, इसकारणही अदृश्यरूप, और जीवको सुखदुःखादि अनुभव करनेका साधन, अर्थात् जिसके भीतर प्रवेश करनेपरही स्थूलशरीर भोगका साधन होताहै, और जिसके स्थूलशरीरसे वियोग होनेपर मरण होजाताहै, ऐसा स्थूल शरीरसे भिन्न जो सूक्ष्मशरीर है तिसको विद्वान्पुरुष लिङ्गोपाधि कहतेहैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार जीवकी दोनो उपाधियोंका वर्णन करके अब ईश्वरकी उपाधिका वर्णन करते हुए श्रीरामचन्द्रजी कहतेहैं, कि—हे लक्ष्मण ! अनादि कहिये उत्पत्तिरहित, और नाना-प्रकारके परिणामको प्राप्त होनेवाली होनेके कारण नाशवान्, सत् असत् रूपसे वर्णन करनेको अशक्य, तथापि इस सम्पूर्ण प्रपञ्च कहिये जगत्को उत्पन्न करनेवाली माया ब्रह्मका उत्कृष्ट प्रधान शरीर है, इस प्रकार एकही चैतन्य उपाधिके भेदसे भिन्न भिन्न स्थित हो रहा है, अर्थात् स्थूलसूक्ष्मोपाधि जीव है, और कारणोपाधि (मायोपाधि) ईश्वर है, इस भेदबुद्धिका विषय होरहा है; इसकारण भागत्यागलक्षणाके द्वारा उपाधिका त्याग-करके श्रवण-मनन-निदिध्यासन आदिके क्रमसे अपने आत्माके

विषैही आत्माका निश्चय करै अर्थात् जीवात्मा और परमात्माको अभिन्न जानै ॥ ३० ॥ अब महावाक्यके अर्थके विचार करनेके फलका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं. कि—हे लक्ष्मण ! निर्लेपभी आत्मा अन्न-मय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय-आनन्दमय, इन पञ्च कोशोंके सङ्गसे तिस तिस आकृतिका प्रतीत होने लगता है, जिसप्रकार कि—स्वच्छ भी स्फटिक मणि जपापुष्प (दुपहरियाके पुष्प) आदिके सङ्गसे अनेक प्रकारका प्रतीत होनेलगता है, परन्तु इस महावाक्यका भलीप्रकार विचार करनेपर यह आत्मा असङ्ग कहिये अन्नमयादि कोशोंके सङ्गकरके रहित, अजन्मा और अद्वितीय प्रतीत होनेलगता है, अर्थात् अज्ञानी पुरुषकोही अन्नमयादि कोशोंके सङ्गसे मैं स्थूल हूँ मैं कृश हूँ, इत्यादि प्रतीति होती है, और महावाक्यके अर्थका विचार करनेसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनेपर मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ, इत्यादि प्रतीति नहीं होती है, इसप्रकार यह दिखाया, कि-उपाधि-योंके कारण तिस तिस रूपकी प्रतीति नाश होकर एकरूपसे आत्माकी प्रतीति होनाही महावाक्यके अर्थके विचार करनेका फल है ॥ ३१ ॥ जाग्रत्आदि तीनों अवस्था बुद्धिका धर्म हैं, आत्माका नहीं इसप्रकार वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण ! इस आत्माके विषे जाग्रत्-स्वप्न-और सुषुप्ति यह जो तीनप्रकारकी वृत्ति देखनेमें आती है सोभी सत्व-रज-तमरूप गुणत्रयस्वरूप जो बुद्धि तिसका धर्म्म है, क्योंकि यह तीनो अवस्था गुणत्रयरूप बुद्धिमूल कही हैं; और इन जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंका आत्माके विषे जो भान होताहै, सो मिथ्याभूत जो बुद्धिका अध्यास कहिये आत्मा और बुद्धिकी एकताका भ्रम तिसके कारणसे होताहै, वास्तवमें नहीं है, क्योंकि—जाग्रत् अवस्थामें स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाका अभाव होताहै, और स्वप्न अवस्थामें जाग्रत् और सुषुप्ति अवस्थाका अभाव होताहै, तथा सुषुप्ति अवस्थामें जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाका अभाव होताहै, इसप्रकार परस्पर व्यभिचार होनेके कारण यह तीनों अवस्था अनित्य तथा मिथ्यारूप हैं, फिर नित्य कहिये उत्पत्ति-

विनाशरहित, त्रिगुणातीत (मायासे पर), व्यापक, असङ्ग और सदा एक-रस, चैतन्यस्वरूप आत्माका धर्म्म किसप्रकार होसक्ती है? ॥ ३२ ॥ अब त्याग करनेयोग्य संसारकी मूलभूत वृत्तिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण! देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और चैतन्यस्वरूप आत्मा इनके संघ कहिये परस्पराध्यास (एकपर एकका अध्यास) होनेसे अज्ञताकी उत्पन्न करनेवाली और रजोगुण तथा तमोगुण है प्रधान जिसमें ऐसी बुद्धिकी वृत्ति निरन्तर जबतक चलती रहैगी; तभीतक इस संसारकी उत्पत्ति होतीरहैगी, इसकारण संसारकी कारणरूप तिस बुद्धिकी वृत्तिका सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ ३३ ॥ अब जिसने महावाक्यका विचार करलिया हो उस ज्ञानी पुरुषको क्या कर्त्तव्य है सो वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण! मुमुक्षु पुरुष महा वाक्यका विचार करनेके अनन्तर "अथात आदेशो नेति नेति" इस वेदकी श्रुतिके प्रमाणसे संपूर्ण जगत्का खण्डन करै अर्थात् संपूर्ण जगत्को मिथ्या जानै, और तदनन्तर सतोगुणप्रधान मनके द्वारा चैतन्यघन अमृतरूप आत्माका अनुभव करताहुआ सम्पूर्ण जगत् (देह-इन्द्रियादि-रूप दृश्यमानसमूह) को त्याग देय; यदि ऐसा कहनेपर कोई शंका करे, कि-जिन देह इन्द्रियादिके द्वारा ज्ञानका लाभ हुआ है उनका त्यागना किस प्रकार उचित होसक्ता है? तहाँ समाधान करते हैं, कि-जिसप्रकार पिपासित पुरुष सुन्दर मधुर रसयुक्त नारियल, नारङ्गी आदिके भीतरके रसका पान करके उस रसके स्थानरूप फलको अर्थात् छक्कल आदिको त्याग देता है, तिसीप्रकार सम्पूर्ण दृश्यमान शरीर इन्द्रियआदि रूप जगत्के सार-भूत ब्रह्मसुखको प्राप्त होकर निःसार दृश्यमान शरीर इन्द्रियादिसमूहरूप जगत्को हेय (त्याग करनेयोग्य) उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) दृष्टिसे न देखै अर्थात् उदासीन रहै, क्योंकि (द्वितीयाद्धि भयं भवति—द्वितीय-सेही भय होता है) इस श्रुतिके अनुसार जहाँ द्वैतभाव होनेसे भयकी संभावना होती है तहाँही हेयत्वबुद्धि होती है, और जब द्वैतभाव

दूर होनेसे भयकी निवृत्ति होगई तौ फिर हेयत्व बुद्धिका भी होना किसप्रकार सम्भव होसक्ता है? इसकारण कहा कि—उदासीन होकर रहै ॥ ३४ ॥ वैराग्य होनेके निमित्त ब्रह्मभिन्न सम्पूर्ण पदार्थोंकी अनित्यता और केवल ब्रह्म (आत्मा) काही नित्यताका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि— हे लक्ष्मण! यह आत्मा कदापि मरणको नहीं प्राप्त होताहै, जन्म नहीं धारण करताहै, क्षीणताको नहीं प्राप्त होताहै, और वृत्तिको नहीं प्राप्त होताहै,तथा अनव है अर्थात् नवीन नहीं होताहै इसप्रकार अनव कहनेका अभिप्राय यह है कि उत्पत्तिके अनन्तर अस्तित्वरूप जो विकार है सो आत्माके विषे नहीं है, और यहभी सूचित होताहै, कि—यदि नवीन नहीं होताहै तौ वृद्धभी नहीं होताहै, क्योंकि जो नविन होयगा वही पुरुष वृद्धभी होयगा, सो अन्य अवस्थाको प्राप्त न होनेसे परिणाम रूप विकारभी आत्माके विषे नहीं है; यहां पर्य्यन्त कहनेका अभिप्राय यह है, कि— शास्त्रोंके विषे जो "जायते १ अस्ति २ विपरिणमते ३ वर्द्धते ४ अपक्षीयते ५ नश्यति ६," अर्थात्—उत्पन्न होना १ उत्पन्न होकर रहना २ रूपान्तरको प्राप्त होना ३ वृद्धिको प्राप्त होना ४ क्षीणताको प्राप्त होना ५ और नाशको प्राप्त होना ६ यह छः भावविकार कहे हैं सो आत्माके विषे नहीं होते हैं, इसकारण आत्मा तौ आत्मलाभसे देह इन्द्रियादिके महत्त्वको दूर करनेवाला, सुखात्मक कहिये आनन्दस्वरूप, स्वयंप्रकाश, तथा सर्वव्यापक, है, और (अयम्) कहिये अहंबुद्धिका विषय जो जीव सौभी अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपही है, तिससे भिन्न नहीं है, क्योंकि श्रुतिमें कहा है, कि "अयमात्मा ब्रह्म अहंबुद्धिका विषय जो जीवात्मा है सोभी ब्रह्मही है, इस सम्पूर्ण श्लोकके कहनेका अभिप्राय यह है, कि, ब्रह्मभिन्न जो कुछ है सो सब षड्भावविकारयुक्त होनेके कारण अनित्य है, और केवल आत्माही नित्य है इसकारण सम्पूर्ण अनित्य पदार्थोंसे विरक्त होकर निर्विकार नित्यस्वरूप आत्माके विषेही अन्तःकरणकी वृत्ति लगावे ॥ ॥ ३५ ॥ तहाँ शंका होती है, कि—जब आत्मा विकारशून्य है तो फिर

आत्माके विषे जन्ममरणप्रवाहरूप संसारकी प्रतीति किसप्रकार होती है ? इसका समाधान करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि-हे लक्ष्मण ! ज्ञानमय सुखरूप, आत्माके विषे जो अनेक दुःखयुक्त संसारकी प्रतीति होती हैं; सो अज्ञानके कारण होनेवाला जो अध्यास कहिये देह अंतःकरण आदिके विषे "मैं हूं" "मेरा है" इत्यादि भ्रमयुक्त बुद्धिके होनेसे होती है, परन्तु तत्वज्ञानका प्रकाश होते ही क्षणमात्रमें लीन होजाती है, क्योंकि ज्ञान और अज्ञानका विरोध है सो ज्ञानका उदय होते ही अज्ञानका नाश होता है, सो उस अज्ञानका कार्य जो देहादि अध्यास सो इसप्रकार नष्ट होजाता है जिसप्रकार प्रकाश होनेसे अंधकारमें पडीहुई रज्जुके विषे सर्पकी भ्रांति नष्ट होजाती है ॥ ३६ ॥ अब पूर्वोक्त अध्यासका लक्षण वर्णन करते हुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण भ्रमकरके अन्य वस्तुके विषे अन्य वस्तुकी जो प्रतीति है तिसको विद्वान्पुरुष अध्यास कहते हैं, जिसप्रकार सर्प न होनेपरभी अंधकारमें पडीहुई रज्जुके विषे सर्पकी प्रतीति होनेलगती है सो अध्यास है, इसीप्रकार आत्माके विषे भी अज्ञानके कारण जो देहादिरूप संसारकी प्रतीति होती है, सो अध्यास है, और अज्ञानजनित भ्रमसेंही है, वास्तवमें नहीं ॥ ३७ ॥ अब आत्माके विषे जो जगत्का अध्यास होता है तिसके स्वरूपका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण ! सम्पूर्ण विकल्पोंका कारणरूप जो माया तिसकरके रहित अर्थात् वास्तवमें मायाके संगकरके रहित, चैतन्यस्वरूप, सबके कारण, दुःखरहित, आनंदस्वरूप, सर्व विकारशून्य और प्रकृतिसे पर जो व्यापकरूप आत्माके विषे प्रथम अहंकार कल्पना कियागया है वही अध्यास है, अर्थात् अहंबुद्धिरूप अध्यासही जन्ममरणादिरूप संपूर्ण संसारका कारण है ॥ ३८ ॥ संसार बुद्धिनिष्ठ है, आत्मनिष्ठ नहीं है, यह वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि—हे लक्ष्मण ! सबका साक्षी जो आत्मा तिसके विषे संसारका कारण इच्छा, उपेक्षा, राग, द्वेष और सुख दुःखआदि धर्मयुक्त बुद्धिकी वृत्तियें ही हैं, अर्थात् इच्छा उपेक्षा-

आदि धर्मयुक्त बुद्धिकी वृत्तियोंके होनेपर ही संसार है, क्योंकि जब सुषुप्ति अवस्थामें बुद्धिकी वृत्तियें नहीं होतीहैं, तब संसारकी प्रतीति भी नहीं होतीहै, इसीकारण शयन करके उठाहुआ पुरुष कहाताहै, कि—"सुखमहमस्वाप्सम्—मैं सुखपूर्वक सोया" इससे निश्चय होता है कि—सुषुप्ति व्यवस्थामें केवल सुखस्वरूप आत्माहीका अनुभव होताहै, इसप्रकार जब जाग्रतअवस्थामें बुद्धिकी वृत्तियोंके होनेपर संसारकी प्रतीति होतीहै, और सुषुप्ति अवस्थामें बुद्धिकी वृत्तियोंके न होनेसे संसारकी प्रतीतिभी नहीं होतीहै, तबतो सिद्ध होगया, कि—संसार बुद्धिनिष्ठ है, आत्मामें नहीं है ॥ ३९ ॥ अब फिर तत् और त्वम् पदार्थके स्वरूपका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण! अनादि अविद्यासे है उत्पत्ति जिसकी ऐसी जो बुद्धि कहिये अंतःकरण तिसके विषे प्रतिबिंबित हुआ जो चैतन्यका प्रकाश सो जीव कहाता है, और जो बुद्धिका साक्षीरूप होकर पृथक् स्थित और बुद्धिके परिच्छेदसे रहित है, सो परमात्मा कहाताहै, और जब ज्ञानके द्वारा प्रतिबिंबका आधार बुद्धिरूप अंतःकरण लीन होजाताहै, तब प्रतिबिंबरूप उपाधिके न होनेसे वह जीव परमात्मरूपही होताहै॥ ४० ॥ अब फिर बुद्धि और आत्माका परस्पर अध्यास होनेसे एकमें दूसरेके धर्मकी परस्पर प्रतीति होनेलगती है, इस वार्ताका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण! चैतन्यरूप आत्मा और बुद्धिका परस्पर अध्यास अर्थात् तादात्म्यारोपसे ही बुद्धिकी चिद्रूप और आत्माकी बुद्धिइससे प्रतीति होतीहै, और इसकारणसेही वास्तवमें जड़रूप बुद्धिके विषे चिद्रूप ज्ञानकी प्रतीति होनेलगती है, और चिद्रूप आत्माके विषे जड़त्वकी प्रतीति होनेलगती है, इसकारणही तार्किकोंने चिद्रूप आत्माको ज्ञानाश्रय मानाहै और इसकारणही स्मार्त्त जीवात्माको जड़ कहते हैं, सो अध्यास चिदाभास और इन्द्रियोंकरके सहित मन तथा अंतःकरणके परस्पर सन्निकर्षसे अर्थात् समीपता होनेसे प्रतीति होती है, जिसप्रकार अग्निमें तपायाहुआ जो लोहेका गोला तिसके विषे अग्निका गुण (दाहकताआदि)

प्रतीत होताहै, और उस लोहेके गोलेके गुण (गोलाकार आदि) अग्निके विषे प्रतीत होने लगतेहैं, और अग्निका गोला ऐसा व्यवहार होनेलगताहै, इसप्रकार परस्पर अध्यास होनेसे आत्माका धर्म चेतनपना बुद्धिके विषे, और बुद्धिका धर्म जड़पना आत्माके विषे प्रतीत होने लगताहै ॥ ४१ ॥ अब दृढ़ होनेके निमित्त पूर्वोक्त विषयकाही फिर अन्य रीतिसे वर्णन करते-हुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि—हे लक्ष्मण! गुरुके सकाशसे और वेदांतवा-क्योंके श्रवणसे अर्थात् श्रवण और मनन करनेसे प्राप्त हुआ है ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव जिसको ऐसा पुरुष अपने आत्माके विषेही स्थित उपाधि-रहित चिदानंदस्वरूप आत्माका दर्शन कहिये साक्षात्कार करके आत्माके विषे भ्रान्तिकरके प्रतीत होनेवाला जो सम्पूर्ण दृश्यमान देह इन्द्रियादि जड़समूह तिसका त्याग करदेय, अर्थात् उदासीन वृत्तिका अवलंबन करै ॥ ४२ ॥ अब दोश्लोकोंकरके उपाधिरहित आत्मस्वरूपका वर्णन करते-हुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि—हे लक्ष्मण! ज्ञानीपुरुष इसप्रकार भावना करै, कि—मैं प्रकाशरूप हूँ, किसी अन्यसे प्रकाशित नहीं होताहूँ, जन्म-आदि षड्भावविकारशून्य हूँ, अद्वितीय कहिये सजातीय विजातीय और स्वगतभेदशून्य हूँ, असकृत् विभात हूँ, अर्थात् जो वस्तु किसीसमय सूर्या-दिसे प्रकाशित होय वह सकृत्विभात कहलाती है, और मैं तो (न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्— तिस परमात्माके विषे न सूर्य प्रकाश करसक्ता है, और न चन्द्रमा तारागण आदि प्रकाश करसक्तेहैं) इस श्रुतिके अनुसार सूर्यादिके प्रकाशकरके रहित हूँ, किन्तु सूर्यादिकोंका भी प्रकाश करनेवाला हूँ, अत्यन्त निर्म्मल कहिये मायाके करेहुए आवरण विक्षेप आदि मलोंकरके रहित हूँ, विशुद्ध विज्ञानघन अर्थात् चैतन्यरूप

---

१ अपनी जातिमें परस्परभेदको सजातीयभेद कहतेहैं; जैसे ब्राह्मणजातिमें द्विवेदी त्रिवेदी आदि भेद, और एकजातिसे दूसरी जातिके भेदको विजातीय भेद कहतेहैं, जैसे ब्राह्मणजातिका क्षत्रियजातिसे; और एकव्यक्तिमें अंगोंके परस्पर भेदको स्वगतभेद कहतेहैं, जैसे शरीरमें मुख हस्तादिका भेद, ॥

एकरस हूँ, निरामय कहिये कर्तृत्व आदि अभिमानकरके रहित हूँ, संपूर्ण कहिये देशकालके परिच्छेदरहित सर्वव्यापी हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ और (अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे- यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीरके नष्ट होनेपर इसका नाश नहीं होताहै) इस श्रुतिके अनुसार अक्रिय कहिये क्रियारहित होनेसे परिणामहीन हूँ ॥ ४३ ॥ मैं भूत, भविष्यत् और वर्तमानरूप तीनों कालोंमें मुक्त कहिये सर्व धर्म्मरहित हूँ, अचिन्त्यशक्तियुक्त हूँ, और (यतो वाचो निवर्त्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह-मन करके सहित वाणी न प्राप्त होकर जिस परमात्माके सकाशसे निवृत्त होजातीहै) इस श्रुतिके अनुसार अतीन्द्रियज्ञानस्वरूप हूँ, अविक्रियात्मक कहिये परिणामको नहीं प्राप्त होताहूँ, अनंतपार कहिये देशकालकृत् परिच्छेदरहित हूँ. रात्रि दिन वेदवेत्ता विद्वानोंकरके जो हृदयके विषे ध्यान कियाजाता है सो मैंही हूँ ॥ ४४ ॥ इसप्रकार भावना करनेके फलका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं, कि-हे लक्ष्मण ! इसप्रकार सदा अखण्डित कहिये विषयोंसे न खिँचेहुए चित्तकरके ध्यान करतेहुए पुरुषकी वह विशुद्ध भावना अर्थात् ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति उदय होतीहै. जो उदय होतेही जन्मान्तरोंको देनेवाले कर्मोंकरके सहित अविद्या (अज्ञान) को शीघ्रही इसप्रकार नष्ट करदेतीहै जिसप्रकार सेवन कियाहुआ औषध शीघ्रही सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट कर देताहै ॥ ४५ ॥ अब ध्यान करनेकी रीति का वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि-हे लक्ष्मण ! निर्जनस्थानमें यथा योग्य शास्त्रके विषे कहेहुए पद्मासनादिके द्वारा बैठाहुआ विषयोंसे निवृत्त हुई हैं इन्द्रिय जिसकी, शम दम आदि साधन सम्पन्न होकर प्राणायाम आदिके द्वारा अंतःकरण को जीतकर शुद्धचित्त होकर विज्ञानरूप है दृष्टि जिसकी अर्थात् मैं देखनेवाला हूँ, और ये देखनेयोग्य है, ऐसे भावकरके रहित निर्विकल्पक असंप्रज्ञातसमाधिके विषे स्थित असंग पुरुष एक तत्त्वज्ञानहीको साधन मानकर आत्मस्वरूपका ध्यान करै ॥ ४६ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि-

हे लक्ष्मण ! वह ध्यान करनेवाला पुरुष परमात्माही है प्रकाश करनेवाला जिसका ऐसे भूत, भविष्यत् और वर्तमान संपूर्ण इस चराचर जगत्को मायाके सन्निधानसे सम्पूर्ण जगत्के उपादान कारणरूप परमात्माके विषे लय करदेय, अर्थात् उपादानकारण सत्तासे भिन्न कार्यसत्ताको न देखै, ऐसा करनेपर ज्ञानीपुरुष पूर्ण हुए हैं सम्पूर्ण काम कहिये मनोरथ जिसके, अर्थात् जिसको किसीप्रकारकी कामना नहीं है ऐसा अवाप्तसमस्तकाम चिदानंदस्वरूप होकर स्थित होता है, और फिर उसको बाहर भीतरकी कुछ प्रतीति नहीं होतीहै, सर्वत्र ब्रह्मरूपही दीखताहै ॥ ४७ ॥ समाधिकी सिद्धिसे प्रथम जो कुछ करना चाहिये तिसका उपदेश करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण ! सम्पूर्ण विषयोंकी आसक्तिको त्यागकर जो ब्रह्माकारवृत्ति होतीहै उसको समाधि कहतेहैं. तिस समाधिसे प्रथम सम्पूर्ण चराचर जगत्को ओंकाररूप जानै, कि—जगत् वाच्य है, और प्रणव कहिये ओंकार वाचक है, यह भावना ज्ञानवशसे होतीहै, और जब निर्विशेष ब्रह्मका साक्षात्कार होजाताहै तब नहीं होतीहै, क्योंकि—उस समय सम्पूर्ण वृत्तियें लीन होजातीहैं ॥ ४८ ॥ तिस ओंकारके विषे अकार, उकार, मकार, यह तीन अक्षर हैं, अर्थात् अ—उ—म—इन तीन अक्षरोंको मिलकर ओम् बनताहै, तहाँ आदि अक्षर जो अकार तिसका वाच्य अर्थ जाग्रत् अवस्थाका साक्षी जिसको वेदान्तशास्त्रमें विश्वशब्दसे कहतेहैं सो है, और द्वितीय अक्षर जो उकार तिसका वाच्य अर्थ सूक्ष्मशरीरका अभिमानी हिरण्यगर्भ कहाताहै, और तीसरा अक्षर जो मकार सो तिसका वाच्य अर्थ संपूर्ण वेदोंके विषे सुषुप्ति अवस्थाका साक्षी प्राज्ञ मायोपाधिक ईश्वर है, ऐसी भावना करै, यह भावना ब्रह्मसाक्षात्कार होनेसे पहिलेही होतीहै, अनन्तर नहीं, क्योंकि—साक्षात्कार होनेके अनंतर सम्पूर्ण वृत्तियें लीन होजाती हैं॥ ४९॥ अब नित्यसमाधिका वर्णन करनेके निमित्त जगत्को आत्मस्वरूपके विषे लय करनेकी रीतिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि—हे लक्ष्मण!

---

१ तस्य वाचकः प्रणवः। पात०यो०प्र०स० २७ सू०

विराट्रूप अनेकप्रकारसे स्थित विश्व जो अकारका वाच्य तिसको उकारका वाच्य जो हिरण्यगर्भरूप तैजस तिसके विषे लीन करै, अर्थात् तिसकाही रूप जानै, और तिस उकारका वाच्य जो स्वप्नअवस्थाका अभिमानी हिरण्यगर्भरूप तैजस, तिसको मकारका वाच्य जो ईश्वररूप प्राज्ञ तिसके विषे लीन करै, अर्थात् तिसकाहीरूप जानै ॥ ५० ॥ तदनन्तर उस पूर्वोक्त मकारको तथा तिस मकारका वाच्य जो ईश्वररूप प्राज्ञ अर्थात् कारणत्वका अभिमानी पुरुष तिसको चैतन्य घन परमात्माके विषे लीन करै, अर्थात् उसको चैतन्यघन परमात्मरूप जानै, तदनंतर मैं उपाधिरहित, निर्म्मल, ज्ञानस्वरूप, संपूर्णके लीन होनेका स्थान, नित्यमुक्त हूँ, ऐसी भावना करै ॥ ५१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण ! इसप्रकार प्राप्त हुई है परमात्माके विषे पूर्ण भावना जिसको इसकारणही स्वरूपको आनन्दकरके सन्तुष्ट, और परिणाममें दुःखरूप होनेके कारण पुत्रकलत्रादि सबको विस्मरण करता-हुआ. पूर्ण प्रकाशस्वरूप, आत्मस्वरूप और जीवन्मुक्त होकर निश्चलजलयुक्त समुद्रकी समान विषयसम्बन्धरूप तरङ्गोंकरके रहित होकर स्थित होता है ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण ! इसप्रकार सदा समाधियोगका अभ्यास करने वाले, और निवृत्त हुए हैं सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय जिससे, तथा जीतलिये हैं सम्पूर्ण काम क्रोधादि शत्रु जिसने, इसकारणही " सर्वज्ञत्व-सर्वज्ञ होना १ नित्यतृप्तत्व-नित्य तृप्त रहना २ बोधरूपत्व ज्ञानस्वरूप होना ३ स्वतन्त्रत्व-स्वतन्त्र रहना ४ नित्यमलुप्तत्व त्रिकालमें विद्यमान रहना ५ और अनन्तरूपत्व-अनन्तरूप होना ६" यह छः गुण हैं वशमें जिसके ऐसे जितात्मा भक्तको मैं सदा दर्शन देताहूँ ॥ ५३ ॥ हे लक्ष्मण ! इस-प्रकार रात्रिदिन ध्यान करनेसे मुक्त होगए हैं सम्पूर्ण कर्म्मबन्धन जिसके ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष प्रारब्ध कर्म्मोंके अनुसार निरभिमान होकर भोगोंको भोगताहुआ स्थित रहता है, और प्रारब्धकर्म्मोंको भोगनेके अनन्तर मेरे विषेही लीन होजाता है ॥ ५४ ॥ अब सम्पूर्ण धर्म्मोंसे यही धर्म्म श्रेष्ठ है इस वार्त्ताका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण !

जिसप्रकार प्रथमही धनकी प्राप्ति करनेमें दुःख होता है, मध्यमें धनकी रक्षा करते समय राजा चौर आदिका दुःख होताहै, अन्तमें नाश होनेपर शोकरूप दुःख होताहै, इसीप्रकार संसारमात्रको आदि, मध्य और अन्तमें भय तथा शोकका कारण जानकर तिस संसारके कारणरूप "स्वर्गकामो यजेत-स्वर्गकी इच्छा करनेवाला यज्ञ करै" इत्यादि वेदमें कहेहुए विधिवादों करके प्रेरणा करेहुए सम्पूर्ण कर्म्मजालका त्याग करके सम्पूर्ण जीवोंके स्वरूपभूत परमेश्वरका भजन करै॥ ५५॥ मेरे विषेही अभेदभावना करके नामरूपको त्यागकर सम्पूर्ण जगत् मेराही रूप होता है, इस विषयको दृष्टान्तसहित वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण ! आत्मा कहिये सबका आश्रयरूप जो मैं तिस मेरे विषें इस अपने स्वरूप जीवको अभेदरूपसे ध्यान करताहुआ जिससमय प्राणी स्थित होता है, उससमय मुझपरमात्माकरके अभिन्न होजाता है, अर्थात् मेराही स्वरूप होजाता है, तहाँ दृष्टान्त देते हैं कि—जिसप्रकार समुद्रके विषे गयाहुआ नदीआदिका जल समुद्ररूप होजाता है, जैसे गो आदिके दुग्धमें डालाहुआ जलदुग्धरूपही होजाता है, जिसप्रकार महाकाशके विषे घटकाश घट फूटनेपर महाकाशरूपही होजाता है, और जिसप्रकार धौंकनी आदिका वायु महापवनमें मिलकर महापवनरूप होजाता है, इसीप्रकार मेरे स्वरूपमें मिलकर ज्ञानी मुझसाही होजाताहै, सोई मुण्डकउपनिषद्के विषे कहा है, कि—"यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्—जिसप्रकार वहती हुई नदिये नामरूपरहित होकर समुद्रके विषे लीन होजाती हैं, इसीप्रकार ज्ञानीपुरुष नामरूपका त्यागकरके प्रकृतिसे पर दिव्यरूप परमपुरुषके विषे लीन होजाता है" ॥ ५६ ॥ इसप्रकार आत्मतत्वका ज्ञान होनेपर जगत्के सत्यत्वका भ्रम स्वयंही दूर होजाता है, इस वार्त्ताका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि—हे लक्ष्मण ! लोकमें स्थितभी अर्थात् जीवन्मुक्तिदशाके विषे प्रारब्धकर्म्मके अनुसार लोकव्यवहारको करताहुआभी

ज्ञानी जगत्को मिथ्या निश्चय करताहुआ जब जीवात्मा और परमात्माकी एकताको जानता है, तब जगत्की सत्य प्रतीति होनेका भ्रम दूर होजाता है; क्योंकि—" अतोन्यदार्तम्—ब्रह्मसे अन्य सब मिथ्या है " इस श्रुतिके प्रमाणसे और "जगत् मिथ्या वाध्यमानत्वे सति प्रतीयमानत्वात् शुक्तिरजतादिवत्—जिसप्रकार सीपीमें भासमान रजत मिथ्या होताहै, तिसीप्रकार यह भासमान जगत् तत्वज्ञानसे बाधित होजानेके कारण मिथ्या है " इस अनुमानसे जगत् खण्डित होचुका है, तहाँ दृष्टान्तभी देते हैं, कि-जिसप्रकार एक चंद्रमामें दो चंद्रमाओंका भ्रम एकतत्वके ज्ञानसे निवृत्त होता है, और जिसप्रकार एक दिशामें अन्य दिशाका भ्रम, अथवा घूमतेहुए पुरुषको दिशाओंके घूमनेका भ्रम, और समीपके वृक्षोंमें घूमनेका भ्रम, उनकी स्थिरताके ज्ञानसे दूर होताहै तिसीप्रकार आत्मस्वरूपकी एकताका ज्ञान होनेसे अर्थात् तत्वज्ञान होनेसे जगत्की सत्यताका भ्रम दूर होताहै ॥ ५७ ॥ ऐसे ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय केवल भगवत्की आराधनाही है, इसप्रकार वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण! जबतक मैं ही हूँ आश्रय जिसका ऐसे सम्पूर्ण जगत्को मेरा विवर्त्तरूप नहीं देखै, अर्थात् जिस प्रकार सर्पकी प्रतीतिका आधार रज्जु है तिसीप्रकार इस सम्पूर्ण जगत्का आधार ईश्वर है, जबतक यह ज्ञानदृष्टि प्राप्त न होय तबतक मेरी आराधनामें तत्पर रहै; उस अपने श्रद्धालु अत्यन्त भक्तियुक्त भक्तके हृदयके विषे मैं रात्रिदिन दर्शन देता हूँ, और उसको ऐसी बुद्धि देताहूँ, जिससे वह तत्वज्ञानको प्राप्त होकर मेरे विषे लीन होजाताहै ॥ ५८ ॥ हे प्रिय भ्राता लक्ष्मण ! सम्पूर्ण वेदोंके सारके संग्रहरूप अत्यन्त गुप्तकरके रखनेयोग्य इस ज्ञानको निर्धारण करकै मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन करा है, जो बुद्धिमान् पुरुष संसारमें इसका उत्तम रीतिसे विचार करता है वह क्षणमात्रमें पातकोंसे छूट जाता है, अर्थात् जो पाप मेरी आराधनामें विघ्नरूप होतेहैं, उनको दूर करनेका उपाय विचारपूर्वक इस रामगीताका पाठ करनाही है ॥ ५९ ॥ हे भ्रातः ! यह जो कुछ जगत् दीखता है, सो

सब माया ही है, ऐसा जान चित्तसे सबका परित्याग करके मेरे ध्यान कर-नेसे शुद्धहुआ है अंतःकरण जिनका ऐसे होकर स्थित होओ; तब सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर परमानंदस्वरूप होते हुए सुखको प्राप्त होओगे ॥ ६० ॥ हे भ्रातः! जो पुरुष जिस किसीसमयभी निर्म्मल अंतःकरणसे प्रकृतिके सत्वादि गुणोंकरके रहित सच्चिदानंदस्वरूप मायासे पर निर्गुणरूपका अथवा सर्वज्ञत्वआदि और सर्वोत्तम सुन्दरताआदि गुणयुक्त मेरे श्यामसुन्दर द्विभुज धनुर्धर रूपका सेवन करताहै वह मेरा भक्त मेराही स्वरूप होताहै, और अपने चरणोंकी लगीहुई धूलियोंसे स्पर्श करताहुआ त्रिलोकीको इसप्रकार पवित्र करता है जिसप्रकार सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे त्रिलोकीको पवित्र करतेहैं ॥ ६१ ॥ अब इस ग्रंथके अर्थका विचार करनेमें समर्थ पुरुषको पाठमात्रसेभी अत्यन्त फल होताहै, यह वार्ता वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि–हे लक्ष्मण! विज्ञानको उत्पन्न करनेवाले उप-निषदवाक्योंकरके जाननेयोग्य है जगत्की रचनाआदि कर्म्म जिसका ऐसे मुझकरके वर्णन करेहुए संपूर्ण श्रुतियोंके सारभूत, अद्वितीय इस रामगीतास्तोत्रको जो पुरुष गुरुके वाक्योंमें भक्ति और श्रद्धायुक्त होकर पढ़ताहै वह पुरुष यदि मेरे वचनोंमें विश्वास करनेवाला होय तो मेरे रूपको प्राप्त होजाताहै, सोही कहाभी है, कि–"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः" जिस पुरुषको परमेश्वरमें परमभक्ति होतीहै, और जैसी परमेश्वरमें तैसीही गुरुके विषेभी होती है, उस पुरुषको ही वेदान्तशास्त्रमें कहेहुए अर्थोंका प्रकाश होता है" ॥६२॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृत मर्यादानामभाषा-टीकायां रामगीतानाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि–हे पार्वति! एकसमय यमुनाके तटपर निवास करनेवाले सम्पूर्ण मुनि लवणासुर राक्षसके भयसे श्रीरामचन्द्रजीका

दर्शन करनेके निमित्त आए ॥ १ ॥ वह असंख्य मुनि भृगुकुलशिरोमणि च्यवनऋषिको आगे करके श्रीरामचन्द्रजीसे अभयप्राप्ति (लवणासुरके भयसे छूटने) की इच्छा करके आए ॥ २ ॥ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी परमप्रीतिपूर्वक तिन मुनियोंका पूजन करके सम्पूर्ण मुनियोंको प्रसन्न करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी मधुर वाक्य बोले ॥ ३ ॥ कि—हे श्रेष्ठ मुनियों! आपके आगमनका क्या कारण है, अर्थात् किसकार्य्यकी इच्छाकरके आप यहाँ आए हैं? जिसको मैं करूँ, आज मैं धन्य हूँ, जो आप सब प्रसन्नतापूर्वक यहाँ मेरे देखनेको आए ॥ ४ ॥ जो आपका अतिकठिन कार्य्य होगा उसको भी मैं करूँगा, आप मुझ सेवकको आज्ञा करिये, क्योंकि ब्राह्मणोंको मैं सदा अपने आराधन करनेयोग्य देवता मानता हूँ ॥ ५ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर शीघ्रही च्यवन ऋषि प्रसन्न होकर कहनेलगे, हे प्रभो! पहिले सतयुगमें एक मधुनामक महादैत्य था ॥ ६ ॥ वह अत्यन्त धर्मात्मा और ब्राह्मण तथा देवताओंका पूजन करनेवाला था, उसको महादेवजीने प्रसन्न होकर एक अतिउत्तम त्रिशूल दिया ॥ ७ ॥ और कहदिया, कि—हे मधुदैत्य! इस त्रिशूलसे तू जिसके उपर प्रहार करैगा, वह भस्म होजायगा, कुंभीनसी नाम करके प्रसिद्ध रावणकी छोटी बहिन उसकी स्त्री थी ॥ ८ ॥ उस स्त्रीके विषें महाभयंकर पराक्रमी, देवता औ ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवाला, दुःसह दुष्टात्मा लवणासुर नामक राक्षस उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र! श्रीरामचन्द्रजी! उस लवणासुरने पीडाको प्राप्त होकर हम सब आपकी शरणागत आए हैं; इसप्रकार मुनियोंके वचनको सुनतेही श्रीरामचन्द्रजी बोले, कि—हे श्रेष्ठ मुनियों! अब तुमको उस राक्षसका भय नहीं होगा ॥ १० ॥ आप दुःखको छोडकर अपने आश्रमोंको जाओ, मैं उस लवणासुरका नाश करदूंगा; इस प्रकार मुनियोंसे कहकर श्रीरामचंद्रजीने अपने भ्राताओंसे कहा, कि—भैया इस लवणासुरको कौन मारैगा? जो ब्राह्मणोंको अभयदान देना चाँहै, वह कहै, इस वचनको सुनकर भरतजी

हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि—हे प्रभो ! हे देव ! मैंही इस राक्षसका संहार करूँगा आप मुझे आज्ञा दीजिये इस प्रकार भरतजीके कहतेही श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करके शत्रुघ्न यह वाक्य बोले ॥ १३ ॥ कि—हे रघुनाथजी संग्रामके विषे लक्ष्मणजीने बहुत कार्य्य करा, और नंदिग्राममें निवास करके परमप्रवीण भरतजीभी बहुत दुःखका अनुभव कर चुके हैं ॥ १४ ॥ इस कारण हे रघुनाथजी ! इस लवणासुरका वध करनेके निमित्त मैंही जाऊँगा; और आपके अनुग्रहसे युद्धमें उस राक्षसका वध करूंगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्नके कथनको सुनकर दुष्टदलन श्रीरामचंद्रजीने शत्रुघ्नको अपनी गोदमें बैठाया, और कहने लगे, कि—हे शत्रुघ्न ! अभी में तुम्हारा मथुराके राज्यके लिये अभिषेक करताहूँ ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न अभिषेककी इच्छा नहीं करतेथे, तथापि श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे अभिषेककी सामग्रियें मँगवाकर प्रेमपूर्वक शत्रुघ्नका अभिषेक करदिया ॥ १७ ॥ और शत्रुघ्नको एक दिव्य बाण देकर श्रीरामचंद्रजी बोले, कि—हे भ्रातः शत्रुघ्न ! इस बाणसे लोककंटक (त्रिलोकीको दुःखदेनेवाले) लवणासुरका संहार करो ॥ १८ ॥ परन्तु हे भ्रातः ! वह लवणासुर गृहमें अपने त्रिशूलको स्थापन करके जंतुओंके भक्षण करनेके निमित्त और अनेक प्राणियोंके मारनेके निमित्त वनको जाया करताहै ॥ १९ ॥ सो वह जबतक स्थानको लौटकर न आवै और वनमेंही रहै तबतक तुम उसके नगरके द्वारपर धनुष धारण करेहुए स्थित रहना ॥ २० ॥ वह आकर क्रुद्ध होताहुआ शूलविनाही तुम्हारेसाथ युद्ध करैगा, तब तुम उसको मारसकोगे, इसप्रकार उस क्रूर लवणासुरको मारकर वहाँ जो मधूनामक वन है ॥ २१ ॥ तहाँ नगर बसाकर तुम मेरी आज्ञासे स्थित रहो, और पांच हजार घोड़े और उसके आधे अर्थात् ढाई हजार रथ, छःसौ हाथी, और तीसहजार पैदल, पीछेसे आवेंगे पहिले तुम जाकर उस राक्षसका नाश करो ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार कहकर, और मस्तकमें सूंघ कर, तथा अनेक

आशीर्वाद देकर शत्रुघ्नको मुनियोंके साथ भेजदिया ॥ २४ ॥ शत्रुघ्न-नेंभी जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीने आज्ञा दीथी, तिसीप्रकार सम्पूर्ण कार्य्य करा, संग्राममें लवणासुरको मारकर मथुरापुरी वसाई, तहाँ देशके मनुष्योंको बहुत कुछ दान देके तथा सन्मान करके मथुरापुरीमें वसाया, और इधर वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें सीताजीकेभी दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ वाल्मीकि मुनिने उन दोनों पुत्रोंमेंसे बडेका नाम कुश, और छोटेका नाम लव रक्खा; वह सीताके दोनों पुत्र क्रमक्रमसे सम्पूर्ण विद्याओंको जाननेवाले होगये ॥ २७ ॥ फिर वाल्मीकि मुनिने उनका उपनयन संस्कार (यज्ञोपवीतजनेऊ) करदिया, तब तत्पर होकर वेदाध्य-यन करने लगे, तदनंतर उन दोनों बालकोंको वाल्मीकि मुनिने अपनी रचना करीहुई सम्पूर्ण रामायण पढ़ादी ॥ २८ ॥ जो रामायण पूर्वकालमें शिवजीने पार्वतीके अर्थ वर्णन कराथा, वही रामायण वेदोंके अर्थका तात्पर्य्य जाननेके निमित्त वाल्मीकि मुनिने उन दोनों कुमारोंको पढाई ॥ ॥ २९ ॥ सुन्दर स्वरवाले और अश्विनीकुमारकी समान सुंदर रूपवान्; वह दोनों कुमार वीणाकी तालयुक्त रामायणका गान करते हुए वनमें विचरने लगे, जहाँ तहाँ मुनियोंके समाजमें गान करते हुए इन दोनों सुन्दर रूपवान् कुमारोंको देखकर आश्चर्य्यको प्राप्त हुए चारों ओरसे कहते थे ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कि—हमारी बडी बडी अवस्था होगई, और बहुत काल पर्यन्त हमने भ्रमण करके सम्पूर्ण दिशा देखीं, परंतु न गन्धर्वोंमें, न किन्नरोंमें, न पृथिवीतलपर, न स्वर्गके विषे देवताओंमें, न पाताललोकके विषे, न ब्रह्म-लोकके विषे और क्या कहैं कि—सम्पूर्णलोकोंमें हमने ऐसी गानेबजानेकी उत्तमता न देखी. और न सुनी ॥ ३२ ॥ इसप्रकार प्रतिदिन सम्पूर्ण मुनि प्रशंसा करते थे, तिन तिन मुनियों करके चिरकालपर्यन्त वह दोनों कुमार वनमें वाल्मीकि मुनिके विषे निवास करते रहे ॥ ३३ ॥ इधर परमकांतिमान् श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णकी सीता बनाकर बहुतसी दक्षिणा-वाले अश्वमेधादि यज्ञ करे, तिस यज्ञके समाजमें सम्पूर्ण ऋषि, राजर्षि,

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य देखनेकी इच्छासे आये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ मुनिवर वाल्मीकिजीभी तिन रामायणका गान करनेवाले कुश और लवके साथमें लेकर यज्ञके विषे मुनियोंके समाजमें पहुँचे ॥ ३६ ॥ तहाँ समाधि लगानेके अनन्तर एकान्तस्थानमें बैठेहुए शांतस्वरूप वाल्मीकिमुनिसे शास्त्र विषयक वार्ता करते करते कुशने ज्ञानविषयक प्रश्न करा ॥ ॥ ३७ ॥ कि हे भगवन् ! मैं सम्पूर्ण ज्ञानशास्त्रको आपसे संक्षेपसे श्रवण करना चाहताहूँ, कि—प्राणीको संसाररूपी दृढ़ बंधन किसप्रकार प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ और प्राणी तिस संसाररूप दृढ़ बंधनसे किसप्रकार छूटताहै ? हे सर्वज्ञ मुने ! मुझ शिष्यके अर्थ वर्णन करिये ॥ ३९ ॥ ऋषि बोले कि-हे पुत्र ! मैं तेरे अर्थ बन्ध और मोक्षका सम्पूर्ण स्वरूप तथा साधन संक्षेपसे वर्णन करताहूँ, तिसको मुझसे श्रवण करो, और श्रवण करके जिसप्रकार मैं वर्णन करूँ उसीप्रकार आचरण करो, तब तुम्हारा कल्याण होयगा, और जीवन्मुक्त होजाओगे; हे पुत्र ! वास्तवमें आत्मा अदेह है अर्थात् देहके सम्बन्धकरके रहित है, तथापि जिसप्रकार प्राकृतपुरुषोंका निवास करनेके स्थानसे तादात्म्यसम्बन्ध नहीं होताहै, तथापि वह स्थानका स्वामी उस स्थानमें निवास करताहै, तिसी प्रकार यह देह चेतनस्वरूप आत्माके निवास करनेका बड़ा स्थानहै ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तिस चैतन्यस्वरूप आत्माका इस देहरूप स्थानके विषे तिसकाही रचाहुआ अहंकाररूप मंत्री है, वह अहंकार देहरूपी स्थानका "यह मेरा है" इसप्रकारका अभिमान तिस चैतन्यस्वरूप आत्माके विषे आरोपण करके उस आत्माके साथ तादात्म्य (एकरूपता) को प्राप्त होताहुआ अपनी सम्पूर्ण चेष्टा (व्यापार) को तिस चैतन्य स्वरूप आत्माके विषे दिखाता है, और वह अहंकार जडभी तिस चैतन्यस्वरूप आत्माके प्रकाशसे सामर्थ्यको प्राप्त होकर अनेक प्रकारके व्यापार करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तिस अहंकारकरके संकल्पको प्राप्त हुआ अर्थात् देहका अभिमान करनेवाला आत्मा संकल्परूपी बेड़ियोंसे बँधकर रात्रिदिन पुत्र, स्त्री और स्थानआदिकी इच्छा

करता रहताहै ॥ ४४ ॥ फिर वह देहाभिमानी आत्मा संकल्प करके यदि इच्छित पदार्थको नहीं प्राप्त होताहै अथवा इच्छित वस्तु प्राप्तहोकर नष्ट होजाती है तौ रात्रिं दिन अत्यन्त शोक करताहै, तिस अहंकारके तीन देह हैं, अधम १ उत्तम २ और मध्यम ३ ॥ ४५ ॥ तीनों शरीर क्रमसे तम१ सत्व २ और रजोगुण ३ नामवाले और जगत्की स्थितिके कारण हैं, तिनमें तमोगुणकी प्रधानताकरके कियेहुए संकल्पसे पुरुष नित्य तामसचेष्टा करके अर्थात् अज्ञानके कारण पशुओंकी समान आचरण करके अत्यन्त तामस होकर कृमिकीटआदि योनियोंके विषे जन्म लेताहै और जब सत्व-गुणप्रधान संकल्प करताहै तब पुरुष धर्म्म और ज्ञानमें तत्पर होताहै, और समीपही है मोक्षरूपी चक्रवर्त्ती राज्यका सुख जिसके ऐसा होकर स्थित होताहै और जब रजोगुणप्रधान संकल्प करताहै तब पुरुष लौकिक व्यव-हारकी चतुरताको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ और संसारके विषे पुत्रकलत्रादिके प्रेममें मग्न रहताहै, हे परमप्रवीण ! इस तीन प्रकारके अहंकारके शरीरको त्यागकर संकल्परूप अपने स्वरूपका नाश होनेपर पर-मपदको प्राप्त होताहै, हे पुत्र ! इसकारण सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको त्यागकर, और शुद्ध मनके द्वारा विषयासक्त मनको जीतकर बाह्य विषयों-करके सहित तथा आभ्यन्तर विषयोंकरके सहित संकल्पका नाश करो, हे कुश ! यदि तुम हजारवर्षपर्यन्त अति कठोर तप करोगे, पातालमें जाकर रहोगे, भूतलपर निवास करोगे, चाहै स्वर्गलोकमें जाकर निवास करोगे परन्तु संकल्पको नष्ट करनेके सिवाय कोई दूसरा उपाय मोक्षकी प्राप्तिका नहीं मिलैगा, इसकारण हे पुत्र ! दुःखरहित निर्विकार परम पवित्र आत्मसुखकी प्राप्तिके निमित्त संकल्पको दूर करनेके विषयमें अत्यन्त पुरुषार्थपूर्वक यत्न करो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे निष्पाप कुश ! ज्ञानी-पुरुष इस प्रकार कहतेहैं कि—संसारके सम्पूर्ण पदार्थ संकल्परूपी सूत्र (डोरे) में बँधे हुए हैं, तिस संकल्परूपी तन्तुके टूटतेही न जानै वह संपूर्ण पदार्थ कहाँ जातेहैं, अर्थात् लीन होजातेहैं ॥ ५४ ॥ इसकारण हे पुत्र !

तिस कारण संकल्परूपी बन्धन दूर करके प्रारब्धके अनुसार जो व्यवहार प्राप्त होय उसको करतेहुए स्थित रहो, क्योंकि—संकल्पजालके नष्ट होने-पर पुरुष ब्रह्मरूपको प्राप्त होजाताहै ॥ ५५ ॥ और हठ करके संकल्प-जालको त्यागकरके प्राप्त हुआ है परमार्थ कहिये ब्रह्मतत्व जिसको ऐसा होकर तिस अद्वितीय पदको प्राप्तहो, तब सुषुप्ति अवस्थाके तुल्य अर्थात् सम्पूर्ण विषयों करके रहित ब्रह्माकार चित्तकी वृत्ति होनेपर परम-सुखकी प्राप्ति होयगी ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वर-संवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृत-भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥७॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं. कि—हे पार्वति ! वाल्मीकि मुनिके उपदेश करनेसे शीघ्रही उसका भ्रम (संसारको सत्य माननारूप अज्ञान) नष्ट होगया, तदनंतर वह कुश अंतःकरणके विषे ज्ञानवान् होकरभी प्रारब्ध-कर्म्मोंके अनुसार बाह्यव्यवहारोंको करने लगा ॥ १ ॥ तदनंतर जहाँ तहाँ अयोध्यापुरीकी संपूर्ण गलियोंमें रामायणका गान करते हुए तिन परम बुद्धिमान् सीताकुमार कुश और लवसे वाल्मीकि मुनिने कहा ॥ २ ॥ कि—हे पुत्रो ! यदि रघुनाथजी श्रवण करना चाहैं तौ तुम उन रघुकुल-शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके सामने इस रामायणका अवश्य गान करो, और यदि वह तुम दोनोंको कुछ धन दे तौ ग्रहण न करना ॥ ३ ॥ इसप्रकार वाल्मीकिमुनिके प्रेरणा करेहुए वह दोनों कुमार तिस अयो-ध्यापुरीमें रामायणका गान करते हुए फिरने लगे, और जहाँ जहाँ पहिले ऋषिने बता दिया तहाँ तहाँ गान करा ॥४॥ सो पुरवासियोंसे श्रीरा-मचन्द्रजीने यह वार्त्ता सुनी थी कि—दो बालक आपके पूर्वचरित्रोंको मानकी रीतिसे ऐसा पाठ करते हैं जो कदापि पहिले नहीं सुनीथी ॥ ५ ॥ इस-प्रकार तिन बालकोंकी प्रशंसा सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बडे आश्चर्यको प्राप्त हुए और यज्ञ कर्म्मके विषे विश्राम करनेके समय बडे बडे मुनीश्वरोंको,

राजाओंको, वेदशास्त्रके जाननेवाले पण्डितोंको, पुराणके जानने-वालोंको तथा और जो कोई वृद्ध ब्राह्मण थे उन सबको बुलाकर श्रीराम-चंद्रजीने तिन दोनों गान करनेवाले बालकोंको बुलाया, उन दोनों बाल-कोंको तथा श्रीरामचंद्रजीको देखकर वह सब आये हुए राजा और ब्राह्मण आदि चित्तमें परमप्रसन्न हुए, और परम आश्चर्यको प्राप्त हो अनिमेष (जिसमें पलक न लगाये जायँ) दृष्टिसे परस्पर दृष्टिसे देखतेहुए इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ कि—यह दोनों बालक जैसे सूर्य मंडलसे दूसरा सूर्य्य मण्डल उदय होजाय, तिसी प्रकारँ साक्षात् श्रीरामचंद्रजीकी समान प्रतीत होते हैं, यदि यह दोनों बालक जटावल्कलधारी नहीं होते तबतौ इन दोनों बालकोंमें और श्रीरामचंद्रजीसे कोईभी विशेषता नहीं होती, इसप्रकार आश्चर्य्यमें होकर वह सब परस्पर वार्ता कररहे थे, इतने-हीमें उन दोनों मुनिकुमारोंने गानेका प्रारम्भ करदिया, तबतौ वह मधुर गान आदिसे अंतपर्यन्त ऐसाहुआ कि—जो कभी किसी मनुष्यने श्रवण नहीं करा था ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचंद्रजी तीसरे पहरके समय उस मधुरगानको श्रवण करके भरतजीसे बोले कि—हे भ्रातः! इन दोनों मुनिकुमारोंको दशहजार मुहरें देदो ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्र-जीकी आज्ञाके अनुसार भरतजी दशहजार मुहरें देनेलगे, परन्तु इन बालकोंने ग्रहण नहीं करीं; और बोले कि—हे राजन्! हम वनके फलमू-लोंका भोजन करनेवाले हैं, इस धनसे हमको क्या प्रयोजन है? ॥ १४ ॥ इसप्रकार उस दियेहुए धनको त्यागकर दोनों बालक वाल्मीकि मुनिके समीप चलेगये, उन दोनों बालकोंसे इसप्रकार अपना चरित्र सुनकर श्रीरा-मचंद्रजी परमआश्चर्य्यको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ और उन दोनोंको सीताके पुत्र जानकर शत्रुघ्न, हनुमान्, सुषेण, बिभीषण और अंगदसे कहने लगे ॥ १६ ॥ कि—भगवान् महात्मा मुनिश्रेष्ठ देवतुल्य वाल्मीकिऋषिको सीताकरके सहित बुलाकर लाओ ॥ १७ ॥ इस सभाके विषें जानकी यदि शपथ करके विश्वास दिलावेंगी तौ सब पुरुष सीताको निष्पाप जान-

लेंगे, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेको सुनकर सब आश्चर्य्यमें होगये, और शत्रुघ्न, हनुमान् आदि श्रीरामचंद्रजीके पार्षद वाल्मीकि ऋषिके पास आये, और जिसप्रकार श्रीरामचंद्रजीने कहा था सो सब निवेदन करा ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ वाल्मीकि मुनि शत्रुघ्न आदिके कथनसे श्रीरामचंद्रजीके हृदयकी सम्पूर्ण वार्ता जानकर कहने लगे कि—कलको सभामें आनकर शपथ करैगी ॥ २० ॥ निःसंदेह पतिही स्त्रियोंका परम देवता है, इसप्रकार वाल्मीकि-जीके कथनको सुनकर शत्रुघ्न आदि सब आये, और श्रीरामचंद्रजीको मुनिका वचन कह सुनाया ॥ २१ श्रीरामचंद्रजी शत्रुघ्नसे इसप्रकार मुनिके कथनको सुनकर कहने लगे, कि—हे राजाओ! हे मुनियो! हे सब लोगो सुनो ॥ २२ ॥ सीताकी शपथको देखकर आप सब पुरुष उसका धर्म अधर्म्म निर्णय करलें, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, महर्षि तथा वानर, आश्चर्य में होकर वह कुतूहल देखनेकी इच्छा करके आये ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनंतर शीघ्रही मुनिवर वाल्मीकिजी सीताकरके सहित आये, आगे वह वाल्मीकि ऋषि और पीछे कुछ नीचेको मुख करेहुए सीताजी हाथ जोड़े हुए और नेत्रोंमें जलभरे हुए यज्ञस्थानमें प्रविष्ट हुई, ब्रह्माके पीछे आतीहुई लक्ष्मीकी समान वाल्मीकि मुनिके पीछे आतीहुई तिन सीताजीको देखकर सम्पूर्ण सभाके पुरुष धन्य धन्य कहनेलगे, उस समय सीताकरके सहित वाल्मीकि मुनि तिस जनसमूहमें आकर श्रीरामचंद्रजीसे इसप्रकार बोले कि—हे दशरथकु-मार रामचंद्र! यह पतिव्रता धर्मचारिणी निष्पाप सीता तुमने पहिले लोका-पवादसे भयभीत होकर महावनमें मेरे आश्रमके समीप त्यागदी थी ॥२५॥ ॥२६॥२७॥२८॥२९॥ वह सीता इस सभामें विश्वासदायक शपथ करैगी, सो अब तुम आज्ञा दो, यह दोनों सीताके पुत्र एकसाथ उत्पन्न हुए हैं और बड़े दुर्द्धर्ष तुम्हारेही पुत्र हैं यह मैं तुमसे सत्य कहताहूँ, हे रघुकुलपालक रामचंद्र! मैं प्रचेताका दशवाँ पुत्र हूँ, कदापि मिथ्या भाषणका स्मरणभी नहीं करताहूँ, और मैंने तुमसे यह जो कहा कि—यह दोनों पुत्र तुम्हारेही हैं सो

सत्यही समझो; हे रामचंद्र! मैं शपथ करताहूँ कि—यदि यह जानकी निष्पाप न होय तो मैं बहुत वर्ष पर्यन्त पूर्ण रीतिसे करीहुई अपनी तपस्याके फलको नहीं प्राप्त होऊँ; इस प्रकार वाल्मीकिमुनिके कहनेपर श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे परमप्रवीण तपस्विन्! यह जो कुछ आप कहते हैं इन आपके निर्दोष वाक्योंसे मुझे विश्वास होगया ॥ ३४ ॥ और लंकापुरीमें भी मैंने देवताओंके सन्मुख अग्निमें प्रवेश करके सीताका पूर्ण विश्वास कर लियाथा, तबही मैं अपने स्थानको लायाथा ॥ ३५ ॥ परन्तु हे ब्रह्मन्! निष्पापभी इस पतिव्रता सीताको लोकनिन्दाके कारण मैंने त्याग दियाथा, सो अपराध आप क्षमा करदीजिये ॥ ३६ ॥ और कुश तथा लव यह दोनों पुत्र मेरेही उत्पन्न हुए हैं यह मैं जानता हूँ, परन्तु इस लोकमें शुद्धि होने पर सीताके विषे मेरी प्रीति होय इस अभिप्रायसे मैंने अब शपथ करनेको कहा है ॥ ३७॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर सम्पूर्ण देवता और श्रीरामचन्द्रजीका अभिप्राय जानकर उत्कंठासे ब्रह्माजीको आगे करके आगये ॥ ३८ ॥ और हजारों प्रजाके मनुष्य प्रसन्न होकर जहाँ तहाँसे उस कौतुकको देखनेके निमित्त आये, उस जनसमूहमें रेशमी वस्त्र धारण करेहुए सीताजी उत्तरकी ओरको मुख करके नीचेको दृष्टि कर हाथ जोड़ेहुए यह वाक्य बोली ॥ ३९ ॥ कि—जिसप्रकार मैं श्रीरामचंद्रजीसे अन्य पुरुषका मनसेभी चिन्तवन नहीं करतीहूँ, इसप्रकारके मेरे पातिव्रत्य धर्ममें यदि कुछ दोष नहीं है, तो पृथ्वी देवी मुझे विवर देनेयोग्य है अर्थात् यदि मैं रामचंद्रसे अन्य पुरुषका मनमेंभी चिन्तवन नहीं करतीहूँ तो पृथ्वी फट जाय और मैं इसमें समाजाऊँ ॥ ४० ॥ इसप्रकार सीताजीके शपथ करनेपर परम आश्चर्यदायक अतिउत्तम दिव्य सिंहासन पृथ्वीमेंसे प्रकट हुआ उस सूर्यकी समान कान्तिमान् सिंहासनको दिव्य देहधारी नाग अपने मस्तकपर धारण करेहुए थे उस सिंहासनपर बिराजमान पृथ्वी देवीने प्रेमपूर्वक अपनी भुजाओंसे सीताजीको ग्रहण करके अपने दिव्य

सिंहासनपर बैठाया, और कहा कि—बहुत अच्छा हुआ, उस सिंहासनपर बैठके रसातलमें प्रवेश करतीहुई जनककुमारीके ऊपर आकाशसे निरंतर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हुई, और देवता परम आश्चर्यमें होकर धन्य धन्य कहने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आकाशमें स्थित देवता, पृथ्वीतलपर स्थित सम्पूर्ण स्थावर जंगम, और बड़े बड़े शरीरधारी वानर, यह सब सीताजीके इसप्रकार शपथ करनेसे कोई परस्पर वार्ता करने लगे, कि-सीताजीसे ऐसा कराना उचित नहीं था, कोई कहनेलगे कि-लंकामें तो शपथ कराही लीथी, फिर अब शपथ लैना योग्य नहीं था, कोई इस-प्रकार चिंतामें होगये कि—अब सीता कहाँ जायँगी, कोई नीचेको मुख करके सीताजीका ध्यान करनेलगे, कोई श्रीरामचंद्रजीके मुखकी ओरको देखनेलगे, कोई सीताजीका शोक करने लगे और मूर्च्छित होगये, अधिक क्या कहाजाय उस समय किसीका भी चित्त सावधान नहीं था, वह संपूर्ण सभाका स्थान कुछ देरतक ऐसा होगया, कि—मानो यहाँ कोई चेतन हैही नहीं, अर्थात् कुछ देरपर्यन्त उस सभास्थानमें किसीप्रकारका शब्द सुननेमें नहीं आया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सीताके पृथ्वीमें समाजा-नेको देखकर सम्पूर्ण जगत् मोहको प्राप्त होगया और श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण होनेवाले कार्यको जानकर भी अज्ञपुरुषकी समान दुःखित होकर जानकीजीका शोक करनेलगे, तब श्रीरामचंद्रजीको ऋषियों-करके सहित ब्रह्माजीने समझाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार होगये कि—जैसे कोई पुरुष शयनकरके उठता है, तदनंतर यज्ञकी बाकी बची हुई क्रियाओंको समाप्त करा, फिर सम्पूर्ण ऋषियोंको विदा करा, तदनंतर जो यज्ञ करानेवाले ऋत्विज आये थे उन सबको बहुत सारे धन रत्न देकर प्रसन्न करा, और विदा करदिया, फिर उन दोनों कुमारोंको लेकर श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तबसे लेकर श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण राजभोगोंमें इस्पृहा (इच्छा) त्यागदी, नित्य एकान्तमें बैठकर आत्मस्वरूपका विचार करनेमें तत्पर रहे ॥ ५२ ॥

एकसमय एकान्तमें श्रीरामचंद्रजी ध्यानमें तत्पर स्थित थे उनको साक्षात् नारायण जानकर प्रियभाषिणी कौशल्या आई, और तिन प्रसन्नस्वरूप श्रीरामचंद्रजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रसन्नचित्त हो कहने लगी कि हे रामचंद्र! तुम सम्पूर्ण संसारके आदिकारण हो, और तुह्मारी आदि, मध्य तथा अन्त नहीं है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे रामचंद्र! परमात्मा परमानंद पूर्ण पुरुष ईश्वर होकरभी मेरे पुण्योकी अधिकतासे मेरे गर्भरूपी स्थानमें आकर प्रकट हुए हो ॥ ५५ ॥ हे रघुकुलशिरोमणे! तुम्हारे अवतारके समाप्तिकालमें अपनी वृद्धावस्था होनेपर मुझे प्रश्न करनेका समय मिला है, कि—हे रामचंद्र! तुम्हारे संगसे किंचिन्मात्र निवृत्त हुआ भी अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसारबंधन पूर्ण रीतिसे नहीं निवृत्त हुआ ॥ ॥ ५६ ॥ हे रामचंद्र! इसे अंतसमयभी जिसप्रकार मुझे संसारको निवृत्त करनेवाला ज्ञान प्राप्त होजाय तिसप्रकार संक्षेपसे उपदेश करो ॥ ५७ ॥ परमदयालु मातृभक्त धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार विषयोंसे विरक्त होकर कहतीहुई अपनी शुभलक्षणा वृद्ध मातासे बोले ॥ ५८ ॥ कि—हे मातः! मैंने पहिले कर्म्मयोग ज्ञानयोग, और निरंतर भक्तियोग यह तीन मार्ग मोक्षप्राप्तिके साधन कहे हैं ॥ ५९ ॥ हे मातः! भक्तिके भिन्न भिन्न तीन गुण होनेसे तीन प्रकारकी है, जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी भक्ति भी वैसीही भिन्न होती है ॥ ६० ॥ जो पुरुष हिंसा (शत्रुका मारणआदि) के उद्देशसे, दम्भ (पूजाकरनेसे धनादिफलप्राप्तिकी इच्छा) उद्देशसे, मात्सर्य्यके उद्देशसे, भेद दृष्टि करके तथा संरम्भ (तिन २ विषयोंका आग्रह) करके मेरी भक्ति करता है वह मेरा तामस भक्त कहाता है ॥ ६१ ॥ स्वर्गादि फलकी कामनाकरके इस लोकके भोगोंकी इच्छा करके, धनकी इच्छा करके तथा यशकी इच्छा करके जो पुरुष भेदबुद्धि (ईश्वर उपास्य है मैं उपासक हूँ इसप्रकारकी भेदबुद्धि) करके मेरा पूजन करता है वह मेरा राजस भक्त कहाता है ॥ ॥ ६२ ॥ और जो पुरुष जो कुछ कर्म्म करै वह परमात्माके अर्थ अर्पण

करके करे, अथवा संसाररूप बंधनकी निवृत्तिके अर्थ भगवद्भजन मुझे अवश्य करना चाहिये, इसप्रकार मनमें विचार कर दास स्वामीभावसे मेरा पूजन करै वह मेरा सात्विक भक्त कहाता है ॥ ६३ ॥ हे मातः ! मेरे गुणोंका श्रवण करनेहीसे जिस पुरुषके अन्तःकरणकी वृत्ति, अनन्त कल्याणगुणोंका आश्रय जो मैं तिस मेरे विषे समुद्रमें वेगसे जातेहुए गंगाके प्रवाहके समान विच्छेदरहित (निरन्तर) स्वाभाविक लगजाती है, सो निर्गुण भक्तियोगका लक्षण है ॥ ६४ ॥ किसीप्रकारके फलकी इच्छा न करके मेरे विषे जो निरन्तर भक्ति होती है, वह भक्ति सालोक्य १, सामीप्य २, सारूप्य ३, और सायुज्य ४, यह चार प्रकारकी मुक्ति देती है ॥ ६५ ॥ परन्तु मेरे भक्त उस मुक्तिको ग्रहण न करके परम आनन्दस्वरूप जो मैं तिस मेराही सेवन करते हैं, हे मातः ! भक्तिमार्गका यही पूर्णयोग है ॥ ॥ ६६ ॥ इस पूर्ण भक्तियोगके प्रभावसेही पुरुप तीनों गुणोंको अतिक्रमण करके मेरे भावको प्राप्त होता है, अब इस भक्तियोगके साधनोका वर्णन करते हैं, कि—बड़ा भारी काम कहिये फलप्राप्तिकी इच्छा तिसको त्यागना, और नित्यनैमित्तिकरूप अपने धर्म्मका आचरण (करना) सोई हुआ क्रियायोग, इस हिंसारहित और परमप्रशंसनीय कर्म्मयोग करके, मेरी सगुणमूर्तिका दर्शन करनेसे, स्तुति करनेसे, परमपूजा करनेसे, स्मरण (भजन) करनेसे, प्रणाम करनेसे संपूर्ण प्राणियोंमें मेरी भावना करनेसे, अर्थात् संपूर्ण प्राणियोंको मेराही रूप माननेसे, दुष्टोंके संगका परित्याग करके भक्तोंकी संगति करनेसे, मिथ्याभाषणका त्याग करनेसे, महात्मा पुरुषोंके बहुत सन्मान करनेसे, दुःखित प्राणियोंके ऊपर दया करनेसे, अपने समान अवस्थागुण आदियुक्त पुरुषोंके विषे मित्रता करनेसे, यम-नियम आदिका सेवन करनेसे, वेदान्तवाक्योंका श्रवण करनेसे, मेरे नामका कीर्त्तन करनेसे, सत्संगति करनेसे, कोमलतायुक्त स्वभाव रखनेसे, देह आदि अनात्म कहिये जड़पदार्थोंके विषे अहंबुद्धिका त्याग करनेसे. और शुद्धसात्विक भगवद्धर्म्मके विषे करनेसे शुद्ध हुआ है अन्तःकरण जिसका ऐसा पुरुप

मेरे गुणोंका श्रवण करनेसे शीघ्रही मेरे सारूप्यको इसप्रकार प्राप्त होजाता है. जिसप्रकार वायुके वशसे कमलआदिसे सुगन्धि उड़कर नासिकाको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसीप्रकार योगाभ्यासके विषे लगाहुआ चित्तभी आत्माके विषे प्रवेश करता है, हे मातः! सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे मैं आत्मरूप करके स्थित हूँ, तिस मुझ आत्मस्वरूपको विना जाने देहबुद्धिसे सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे द्वेषबुद्धि करताहुआ विमूढात्मा पुरुष केवल बाहरकी क्रियोंके द्वारा उत्पन्न हुए गन्ध पुष्प आदि अनेकप्रकारके द्रव्योंकरके बहिर्दृष्टिसे भक्तिरहित प्रतिमाके विषे मेरा पूजन करता है, उस प्राणियोंका अपमान करनेवाले देहदृष्टि पुरुषके ऊपर न मैं प्रसन्न होताहूँ, और न उस पूजाको स्वीकार करताहूँ ॥ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हे मातः! प्राणिको योग्य है कि-तबतक वर्णाश्रमधर्म्मके अनुसार प्रतिमा आदिके विषे मुझ दिव्यरूपका पूजन करै जबतक सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे तथा अपने अन्तःकरणके विषे स्थित मुझको यथावत् न जाने ॥ ७६ ॥ जो पुरुष अपना तथा परका भेद करता है, उस भेददृष्टि पुरुषको निःसन्देह मैं मृत्युरूप होकर भय देताहूँ ॥ ७७ ॥ हे मातः! इसकारण भिन्न भिन्न प्रतीत होनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे मुझ अद्वितीय परमात्माकोही स्थित जानकर अभेददृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे सत्कार और मित्रताकरके मेरा पूजन करै ॥ ७८ ॥ बुद्धिमान् पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे मुझ शुद्ध चैतन्यस्वरूपकोही जीवरूपसे स्थित जानकर रात्रि दिन सम्पूर्ण प्राणियोंको चित्तसेही प्रणाम करै ॥ ७९ ॥ तिसकारण जीव और ईश्वरके विषे कदापि भेददृष्टि न करै, हे मातः! इसप्रकार यह भक्तियोग और ज्ञानयोग तेरे अर्थ वर्णन करा ॥ ८० ॥ इन दोनोंसे एककाभी अवलम्बन करके पुरुष कल्याणको प्राप्त होताहै तिस कारण हे मातः! भक्तियोगके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयके विषे स्थित जो मैं तिस मुझको ईश्वररूप करके अथवा पुत्ररूपकरकेही स्मरण करके शान्तिसुखको प्राप्त

होजायगी, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर कौशल्या परम आनन्दकरके युक्त हुई ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ और सदा हृदयके विषे श्रीरामचद्रन्जीका ध्यान करनेसे संसाररूपी बन्धनको छेदन करके, तथा तीनगति कहिये सात्विकी–राजसी–और तामसी गतिको उल्लंघन करके परमगति (मोक्ष) को प्राप्त हुई॥८३॥कैकेयीभी पहिले चित्रकूटपर दियेहुए श्रीरामचन्द्रजीके उपदेशको प्राप्त होकर शान्तस्वरूप हो श्रद्धा और भक्ति पूर्वक रघुकुलतिलक श्रीरामचंद्रजीका हृदयके विषे ध्यान करतीहुई प्राणोंको त्याग कर स्वर्गलोकको प्राप्त हो दिव्यरूप धारण करके प्रकाशवान् महाराजा दशरथकरके सहित आनन्द करतीहुई स्थित हुई; तथा अतिनिर्मलबुद्धि, श्रीलक्ष्मणजीकी माता सुमित्राभी पतिके समीप प्राप्त हुई ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि–हे पार्वति ! तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर भीमपराक्रमी भरतजी युधाजित् नामक अपने मामाके बुलानेपर सेनाकरके सहित श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे उनके यहाँ गए ॥ १ ॥ तहाँ उस देशके समीप निवास करनेवाले तीन करोड़ गन्धर्वोंको मारकर भरतजीने दो नगर वसाय ॥ २ ॥ उनमेंसे एक नगरका नाम पुष्करावती रक्खा, उसमें पुष्कर नामक पुत्रको, और दूसरे नगरका नाम तक्षशिला रक्खा, उसमें तक्षनामक अपने पुत्रको अभिषेक करदिया, और उनको बहुत धन धान्य दिया, और अनेक मित्रवर्ग उनके समीप नियत करदिये ॥ ३ ॥ और तहाँसे अयोध्यापुरीमें आकर फिर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी आदर और प्रेमपूर्वक लक्ष्मणजीसे बोले, कि–हे लक्ष्मण ! तुम अपने दोनों पुत्रोंको लेकर पश्चिमदिशाको जाओ, तहाँ सबको दुःख देनेवाले दुष्ट भिल्लोंको जीतकर तहाँ परमपराक्रमी और महाबली अंगद तथा चित्रकेतु नामक अपने दोनों पुत्रोंके निमित्त दो

नगर वसाओ तहाँ गजाश्व और धनरत्नोंकरके सहित अभिषेककरके शीघ्र मेरेपास लौट आओ, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको स्वीकार कर हाथी घोड़े आदि सेनाकरके सहित लक्ष्मणजी गए, तहाँ सम्पूर्ण दुष्टोंका नाशकरके और अपने दोनों पुत्रोंको राज्य देकर अयोध्यापुरीको लौट आए, और श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ तदनन्तर बहुतसमयके अनन्तर सदा धर्म्म मार्गपर स्थित साक्षात् विष्णु भगवान्का अवतार जो श्रीरामचन्द्रजी तिनका दर्शन करनेके निमित्त साक्षात् काल ऋषिका रूप धारण करके आया. और लक्ष्मणजीसे इसप्रकार बोला ॥ ९ ॥ कि—हे परमप्रवीण लक्ष्मण! तुम श्रीरामचन्द्रजीसे जाकर निवेदन करो, कि—अतिबल महर्षिका दूत आपका दर्शन करनेकी इच्छा करता है, क्योंकि—तिन श्रीरामचन्द्र मुझे तिन अतिबलनामक महर्षिका संदेशा देरतक कहनाहै ॥ १० ॥ उस ऋषिवेषधारी कालका इसप्रकार वचन सुनकर लक्ष्मणजी शीघ्रही और श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ निवेदन करा, कि—महाराज! आपका दर्शन करनेके निमित्त एक तपस्वी आए है ॥ ११ ॥ इसप्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे यह वचन कहा, कि—हे भ्रातः! तिन ऋषिको शीघ्रही सत्कारपूर्वक यहाँ लिवालाओ ॥ १२ ॥ सो लक्ष्मणजी "बहुत अच्छा" कहकर अपने तेजसे घृतकी आहुतिसे जाज्वल्यमान अग्निकी समान प्रकाशवान् तिन ऋषिको लिवागए ॥ १३ ॥ अपने तेजसे प्रकाशवान् वह ऋषिवेषधारी काल श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाकर मधुरवाणीसे बोला कि—"ऐश्वर्य्यकी वृद्धि होय" ॥ १४ ॥ तिन मुनिकी श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक पूजा करके कुशल बूझी, तदनन्तर तिन मुनिने भी सावधान होकर श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल बूझी ॥ १५ ॥ तदनन्तर दिव्य आसनके ऊपर विराजमान श्रीरामचन्द्रजी तिस तपस्वीसे बोले, कि—हे मुने! जिस प्रयोजनसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है, सो मेरे अर्थ आज्ञा करिये ॥ १६ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके

कहनेपर मुनिवेषधारी काल बोला, कि—मैं और आप दोही जने होयँ तब आपके अर्थ निवेदन करूँ, क्योंकि—वह वार्त्ता किसी अन्यके जाननेकी नहीं है ॥ १७ ॥ जो मैं आपसे कहूँ उसको न दूसरा सुनै, और न तो आप किसीको कहैं, और हे प्रभो ! मेरे आपके उस गुप्त वार्त्तालापको जो कोई सुनै अथवा देखै, उसको आप प्राणान्त दण्ड दे, ॥ १८ ॥ इसप्रकार ऋषिवेषधारी कालके वचनको स्वीकार करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि—हे भ्रातः ! तुम द्वारपर स्थित रहो, जिससे मेरे पास एकान्तमें कोई पुरुष न आने पावै ॥ १९ ॥ और जो कोई मेरे पास आवैगा, मैं निःसन्देह उस पुरुषको प्राणदण्ड दूँगा, तदनन्तर एकान्तमें श्रीरामचन्द्रजी तिन ऋषिसे बोले, कि—तुम्हैं किसने भेजा है? और तुम्हारे मनमें क्या वार्त्ता कहनेकी इच्छा है सो मुझसे कहो? तब वह मुनिवेषधारी काल बोला, कि--हे श्रीरामचन्द्रजी जो कुछ कहना है सो यथावत् कहताहूँ, आप श्रवण करिये ॥ २० ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! मुझे ब्रह्माजीने, कुछ कार्य्यके निमित्त आपके पास भेजाहै, और हे परंतप ! मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ ॥ २२ ॥ हे वीर ! श्रीरामचन्द्रजी ! जिससमय आपका मायासे संयोग हुआ, उस समय प्रथमही सबका संहार करनेवाला मैं कालनामक उत्पन्न हुआ, हे भगवन् ! संपूर्ण देवर्षियोंकरके पूजित ब्रह्माजीने आपको यह कहा है ॥ २३ ॥ कि--हे महामते ! अब यह समय आपका स्वर्गलोकमें देवताओंकी रक्षा करनेका है, पहिले मायाके द्वारा संपूर्ण लोकोंका संहार करके आप एकही थे ॥ २४ ॥ फिर अपनी भार्य्या (स्त्री) जो माया तिस करके सहित हो आपने आदिमें मुझपुत्रको उत्पन्न करा, तथा अनेक हैं फण जिसके ऐसे जलके विषे शयन करनेवाले अनन्त (शेष) नागको उत्पन्न करा,॥ २५॥ इस प्रकार मायाके द्वारा महाबली परमपराक्रमी शेषनाग और मुझे उत्पन्न करके, और हे पुरुषश्रेष्ठ ! मधु तथा कैटभ इन दोनो दैत्योंका वध करके, इनकी मेदा (चरबी) और अस्थियोंके समूहसे पर्वतोंकरके सहित पृथ्वीको रचा, और सूर्य्यकी समान दिव्यरूप कमलको अपनी

नाभिके विषे उत्पन्न करके तिसके विषे मुझे उत्पन्न करा॥ २६ ॥ २७॥ और मुझे प्रजाका स्वामी बनाकर सम्पूर्ण प्रजाका भार मुझे सौंप दिया, सो प्रजापालनादिका भार अंगीकार करनेवाले मैंने आपसे कहा कि—हे जगत्पते! जो मेरे पराक्रमका नाश करनेवाले प्राणी हैं तिनसे मेरी रक्षा करिये, तब आप सर्व व्यापी होकर भी कश्यपऋषिसे अदितिके विषे वामनरूप धारण करके प्रकट हुए ॥ २८ ॥ २९ ॥ और राक्षसोंका वध करके पृथ्वीका भार दूर करा, हे धरणीधर! फिर जब सब प्रजा पीडित हुई तब रावणका संहार करनेकी इच्छा करके आप मृत्युलोकमें पहुँचे, सो आपने पहिले देवताओंसे यह प्रतिज्ञा करीथी, कि—मैं दशहजार और दशसौ वर्ष अर्थात् ग्यारहहजार वर्षपर्य्यन्त रामरूपसे मृत्युलोकमें निवास करूंगा, सो वह रावणका वध करनारूप आपका मनोरथ और ग्यारह हजार वर्षपर्य्यन्तकी आयु मनुष्यलोकमें निवास करतेहुए पूर्ण होचुकी ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ सो अब मैं काल तपस्वीका रूप धारण करके आपके पास आया हूँ, सो यदि आपकी इच्छा अभी पृथ्वीपर और अधिक राज्य करनेकी होय तौ तैसाही करिये आपका कल्याण होय, अब श्रीरामचन्द्रजीसे ऋषिवेषधारी काल कहता है, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी! इसप्रकार कहकर ब्रह्माजीने इतना और कहदिया था, कि—हे जितेन्द्रिय श्रीरामचन्द्रजी! यदि आपकी इच्छा स्वर्गलोकको जानेकी होय, तौ देवता आपके विष्णुरूपसे सनाथ होकर संतापरहित होजायँगे, इसप्रकार ऋषिवेषधारी कालके द्वारा चतुर्मुख ब्रह्माजीके संदेशेको सुनकर श्रीरामचंद्रजी मुसकुराते हुए, उस समय कालसे यह वचन बोले, कि--हे काल! मैंने तुम्हारा यह कथन सुना, और मेरीभी यही इच्छा थी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ा भारी संतोष हुआ; त्रिलोकीका कार्य्य करनेके निमित्त मेरा अवतार होताहै ॥ ३७॥ हे काल! तुम्हारा कल्याण होय, और मैं अपने जिस धामसे आयाथा तहाँही जाऊँगा, क्योंकि निःसन्देह मेरा मनोरथ पूर्ण होही गया ॥ ३८ ॥ हे पुत्र! जिसप्रकार

ब्रह्माजीने कहा है, तिसीप्रकार मैं मायाकरके सहित अपने सेवक देवताओंके संपूर्ण कार्य्योंमें स्थित रहूँगा ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वह दोनों ऋषिवेषधारी काल और श्रीरामचन्द्रजी वार्त्ता कररहे थे, कि–इतनेहीमें दुर्वासा ऋषि आए, और शीघ्रही श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करनेकी इच्छासे राजद्वारपर पहुँचे, तथा लक्ष्मणजीके पास जाकर दुर्वासा यह वचन बोले, कि–हे लक्ष्मण! मुझे शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कराओ, क्योंकि–मुझे उनसे कुछ आवश्यक कार्य्य है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ऐसा सुनकर अग्निकी समान तेजस्वी दुर्वासा ऋषिसे लक्ष्मणजी कहने लगे, कि–इस समय श्रीरामचन्द्रजीसे आपका क्या कार्य्य हैं? कहिये आपकी क्या अभिलाषा है, उसको मैंही पूर्ण करदूँ ॥ ४२ ॥ क्योंकि–महाराज किसी कार्य्यमें व्यग्र हैं, सो आप एक मुहूर्त्तपर्य्यन्त ठहर जाइये, यह सुनकर मुनि क्रोधमें भरगए और लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४३ ॥ कि–हे लक्ष्मण! यदि इसीक्षणमें मुझे विभु श्रीरामचंद्रजीका दर्शन नहीं कराओगे तौ मैं निःसन्देह श्रीरामचन्द्रको देश और कुटुम्बसहित भस्म करदूँगा ॥ ४४ ॥ इसप्रकार दुर्वासाऋषिका महाघोर वचन सुनकर और इसप्रकार वचनके स्वरूपका विचारकरके लक्ष्मणजीने निश्चय करा, कि–सबका नाश होनेसे तौ यदि इस समय मुझ इकलेका नाश होजायगा तौ श्रेष्ठ है. इसप्रकार निश्चय करके लक्ष्मणजीने जाकर श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ निवेदन करा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सो श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीका वचन सुनकर ऋषिवेष धारी कालको विदा किया, और शीघ्रही मन्दिरसे निकलकर श्रीरामचन्द्रजीने अत्रिपुत्र (दुर्वासा) मुनिको देखा ॥ ४७ ॥ और मुनिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके श्रीराचन्द्रजीने आदरपूर्वक बूझा कि–हे मुने! आपका क्या कार्य्य है, जिसको मैं करूं? इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर दुर्वासा मुनि बोले कि–आज हजार वर्षका निराहार व्रत समाप्त हुआ है, सो हे रघुत्तम! तुम्हारे यहाँ भोजन तयार होय उसकीही मुझको इच्छा है, श्रीरामचन्द्रजीभी इसप्रकार दुर्वासामुनिका वचन सुनकर संतोषको प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

और जो कुछ पक्वान्न तयार था सो विधिपूर्वक मुनिके निमित्त लाए, सो दुर्वासा मुनि उस अमृततुल्य अन्नको भोजन करके परम सन्तुष्ट हुए, तदनन्तर चले गए ॥ ५१ ॥ इसप्रकार जब दुर्वासा मुनि अपने आश्रमको चलेगए, तब जो कुछ कालने कहा था, वह श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण आया, सो शोक करके अत्यन्त दुःखित हुए, और चित्तमें खिन्न हो विन्हल होगए ॥ ५२ ॥ दुःखित है मन जिनका ऐसे श्रीरामचन्द्रजी नीचेको मुख करेहुए वैठगए, और लक्ष्मणजीसे कुछ कहनेको समर्थ नहीं हुए, और मनसे लक्ष्मणजीको हतप्राय (मृतकतुल्य) जानकर रघुकुल-शिरोमणि त्रिलोकीपति श्रीरामचंद्रजी नीचेको मुख करे हुए मौनही वैठे रहे, सो श्रीरामचन्द्रजीको दुःखित और चिन्ता करते हुए, और स्नेहवं-धनकी निंदा करते हुए देखकर लक्ष्मणजी बोले, हे—रघुकुलशिरोमणे ! आप मेरे कारण दुःख करनेको त्याग दीजिये, और मुझे प्राणदण्ड दीजिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! कालकी इस प्रकारकी गतिको मैंने पहिलेही विचार लियाथा, आपकी प्रतिज्ञा भङ्ग होनेपर अवश्यही मुझे नरक होगा ॥५६॥ हे महामते ! हे प्रभो ! यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं, और यदि आपका मेरे उपर प्रेम हैं, तौ निःस-न्देह मुझे प्राणदण्ड दीजिये, और धर्म्मका त्याग न करिये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार लक्ष्मणजीके कथनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने चित्तसे भ्रातापनका स्नेह त्याग दिया, और सम्पूर्ण मंत्रियोंको तथा वसिष्ठजीको बुलाकर यह वचन बोले ॥ ५८ ॥ जिस प्रकार दुर्वासामुनिका आगमन हुआ, और जिस प्रकार कालपुरुषका समागम हुआ; जो कुछ कालने प्रथमही कह दिया था, और अपने आप प्रतिज्ञा करीथी, सो सब वृत्तान्त प्रभुने वसिष्ठ-मुनिको निवेदन न करा ॥ ५९ ॥ वसिष्ठजीकरके सहित मंत्रीलोग श्रीरामचन्द्रजीका इसप्रकार कथन सुनकर सब हाथ जोडकर श्रीराम-चन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ६० ॥ हे प्रभो ! पृथ्वीका भार दूर करने वाले आपका लक्ष्मणजीके साथ होनेवाला वियोग ज्ञानदृष्टिसे हमने पहिले-

ही जानलिया था ! ॥ ६१ ॥ सो हे प्रभो श्रीरामचन्द्रजी, शीघ्रही लक्ष्मणजीका त्याग कर दीजिये. और अपनी प्रतिज्ञाका त्याग न करिये, आपके प्रतिज्ञाका त्याग करनेपर धर्म्म निष्फल हो जायगा ॥ ६२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! यदि धर्म्म नष्ट होगया तौ निःसन्देह सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्ट हो जायगी, क्योंकि—हे रघुकुलशिरोमणे ! तुमही सम्पूर्ण त्रिलोकीके रक्षक हो ॥ ६३ ॥ सो केवल इकले लक्ष्मणकाही त्याग करके त्रिलोकीकी रक्षा करना आपको उचित है, श्रीरामचन्द्रजीने धर्म्म और अर्थ सहित तिन मंत्रियोंका निर्दोष वचन सुनकर सभाके वीचमें लक्ष्मणजीको बुलाया, और कहदिया, कि—हे लक्ष्मण ! शीघ्रही जहाँ तुम्हारी इच्छा होय तहाँको चले जाओ ! जिससे धर्म्ममें किसी प्रकारका संदेह नहीं होय, अर्थात् धर्म्मका नाश नहीं होय ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इसकारणसे मैं तुमको त्यागताहूँ, कि सत्पुरुषोंको त्याग और वधसमानही है, इसप्रकार रघुकुल श्रीरामचन्द्रजीके कहनेपर दुःखसे व्याकुल होरहे हैं नेत्र जिनके ऐसे लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके अपने गृहको गए, फिर सरयूके तटपै जाकर आचमन करा. और हाथ जोडकर नवोपवनके द्वारोंको रोकके प्राणोंको मस्तक (ब्रह्माण्ड) में चढ़ा लिया, और अक्षर, अविनाशी, वासुदेवनामक, जो सबका आधाररूप परमपद है तिस तेजःस्वरूपका चित्तसे ध्यान करा; अर्थात् मैं परब्रह्मरूप हूँ इस भावनासे मनकी वृत्तिको ब्रह्माकार करा, इसप्रकार प्राणोंका निरोध करतेहुए लक्ष्मणजीको देखकर सम्पूर्ण देवताओंने अग्नि और महर्षियोंकरके सहित पुष्पोंकी वर्षा करी और लक्ष्मणजीकी स्तुति करने लगे, और किसी देवताके देखनेमें नहीं आवैं ऐसे लक्ष्मणजीको शरीर करके सहित इन्द्र देव विमानमें बैठाकर स्वर्गको लेगए तब विष्णुके चतुर्थ भागरूप तिन लक्ष्मणदेवको सम्पूर्ण देवता और देवर्षि देखकर पूजन करतेहुए ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ जब विष्णुरूप लक्ष्मणजी स्वर्गलोकको प्राप्त हुए, तब सिद्धलोकके विषे निवास करनेवाले योगीजन ब्रह्माजीकरकेसहित परम-

प्रसन्न होकर अपने पहिले बड़े भारी नागशरीर (शेषरूप) को धारण करनेवाले लक्ष्मणजीका दर्शन करनेके निमित्त आतेहुए ॥ ७२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति ! लक्ष्मणजीका परित्याग करके श्रीरामचंद्रजी अत्यन्त दुःखित हो मन्त्री, नगरके वैश्य, तथा, वसिष्ठजीसे यह वचन बोले ॥ १ ॥ कि—हे महाशयो ! अब मैं परमप्रवीण भरतजीका अभिषेक करूंगा,और मैं आजही जहाँ लक्ष्मण गए हैं, तहाँही जाऊँगा ॥ २ ॥ इसप्रकार रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर उस समय सम्पूर्ण पुरवासी तथा देशके मनुष्य दुःखसे व्याकुल होकर कटगई है जड़ जिनकी ऐसे वृक्षोंकी समान पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३ ॥ और भरतजीभी इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कथनको सुनकर मूर्छित होगए, और राज्यकी निन्दा करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके समीप इसप्रकार बोले ॥ ४ ॥ कि—हे रघुकुलशिरोमणे ! हे प्रभो ! मैं सत्यकी तथा आपके चरणोंकी शपथ करताहूँ, कि मैं आपके विना पृथ्वीके क्या स्वर्गके राज्यकी भी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥ हे राजन् ! हे श्रीरामचंद्रजी ! इन कुशलवको राज्याभिषेक करिये, अर्थात् कोशलदेशोंमें कुशका और उत्तरदेशोंमें लवका राज्याभिषेक करिये ॥ ६ ॥ और शीघ्रही दूत मथुरापुरीको शत्रुघ्नको लिवालानेके निमित्त जायँ, वह हमारा सबका स्वर्गलोकको जाना श्रवण करले ॥ ७ ॥ इसप्रकार भरतजीके कथनको सुनकर सब प्रजाके मनुष्य श्रीरामचंद्रजीके वियोगकी कातरतासे मनमें भयभीत हो व्याकुल होगए और पृथ्वीपर गिरपडे, यह दशा देखकर भगवान् वसिष्ठजी दयायुक्त यह वचन श्रीरामचंद्रजीसे आदर पूर्वक कहने लगे, कि—हे तात ! देखो सम्पूर्ण प्रजा पृथ्वीपर पडी है ॥ ८ ॥ ९ ॥ सो हे श्रीरामचंद्रजी ! इनकी भक्तिके अनुसार तुम्हे भी इनके उपर अनुग्रह करना चाहिये, वशि-

ष्ठजीके इस वचनको सुनकर श्रीरामचंद्रजीने तिन प्रजाके पुरुषोंको उठाया और सत्कार करा ॥ १० ॥ और रघुनाथजी प्रीतिपूर्वक तिन सबसे कहने लगे, कि—मैं तुम्हारे साथ क्या उपकार करूं, तब सम्पूर्ण प्रजाके लोग हाथ जोडकर भक्तिपूर्वक श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जहाँ आप जाना चाँहतेहैं, तहाँही हमसबभी आपके पीछे २ जाना चाहते हैं, इसहीमें हमारी प्रसन्नता होगी, और यही आपका अविनाशी धर्म्म है ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आपके साथ चलनेके निमित्त हमारे मनसे दृढ़ सम्मति है, आज हम अपने स्त्रीपुत्रादिकरके सहित जैसे होगा वैसे आपके संग चलैंगे ॥ १३ ॥ हे रघुनंदन ! चाहे आप तपोवनको जायँ, चाहे स्वर्गको जायँ, और चाहे किसी नगरको जायँ हम आपके साथ जायँगे, इसप्रकार तिनके कहनेसे चित्तकी दृढ़ता जानकर और कालके वचनको स्मरण करके ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीने परमभक्त नगर निवासियोंसे कह दिया, कि—अच्छा मेरे साथही चलो, इसप्रकार निश्चय करके प्रभु श्रीरामचंद्रजीने उसी दिन कुश और लवको जानेकी आज्ञा करी, और आठ हजार रथ, एक हजार हाथी, और साठ हजार घोड़े इतनी २ सेना उन दोनोंमेंसे हरएकको दी, और बहुतसे रत्न और धन दिया साथमें हृष्ट पुष्ट पुरुष करदिये, तब वह कुश और लव श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके अतिकठिनसे गए, तदनन्तर श्रीरामचंद्रजीने शत्रुघ्नको बुलानेके निमित्त दूत भेजे, उन दूतोंने शीघ्रही जाकर शत्रुघ्नके अर्थ निवेदन करा, ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ कालका ऋषिवेषधारण करके आना, पीछेसे अत्रिके पुत्र दुर्वासामुनिका चरित्र, लक्ष्मणजीका निर्याण (स्वर्गलोकको जाना), श्रीरामचन्द्रकी भी स्वर्गलोकको जानेकी प्रतिज्ञा, और पुत्रोंका अभिषेक, इसप्रकार दूतोंका द्वारा श्रीरामचंद्रजीका कुलनाशक चिकीर्षित (मनोरथ) सुनकर शत्रुघ्न अत्यन्त व्याकुल हुए, और तदनन्तर धैर्य्य धरके शीघ्रही पुत्रोंको बुलाया, और महाबली शत्रुघ्नने सुबाहुनामक अपने पुत्रका मथुरापुरीमें अभिषेक करदिया ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

और यूपकेतुनामक पुत्रको विदिशानगरीमें अभिषिक्त करदिया, और फिर अपने आप श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करनेकी इच्छासे शीघ्रही अयोध्यापुरीको गए॥ २२॥ और तहाँ अग्निकी समान तेजयुक्त, दुकूल वस्त्र धारण करे हुए महात्मा श्रीरामचंद्रजीको चिरजीवी वशिष्ठादि ऋषियों करके युक्त देखा, ॥ २३ ॥ सो परमप्रवीण शत्रुघ्नजी साक्षात् लक्ष्मीपति रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके हाथ जोडेहुए धर्म्म और अर्थयुक्त वचन कहने लगे ॥ २४ ॥ कि—हे राजन् ! हे कमलनयन श्रीरामचंद्रजी ! तिस अपने राज्यमें पुत्रोंका अभिषेक करके आपके साथ गमन करनेका निश्चय करके आया हूँ, सो आप जानलीजिये ॥ २५ ॥ सो हे भगवन् ! आपको मेरा त्यागना योग्य नहीं है, क्योंकि—मैं आपका अत्यन्त भक्त हूँ, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी शत्रुघ्नको बुद्धिके विषे दृढ़ निश्चय करे हुए जानकर कहनेलगे, कि—अच्छा तुमभी मध्याह्नके समय तयार होजाना, इतनेहीमें क्षणभरके अनन्तर इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले वानर अयोध्यापुरीमें आकर प्राप्त होगए ॥ २६ ॥ २७ ॥ और जो कोई रीछ— राक्षस, तथा गोपुच्छजातिके वानर थे, तथा हजारों देवताओंके और ऋषियोंके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीका निर्याण (स्वर्गलोकगमन) श्रवण करके तहाँ आगए, और सम्पूर्ण राक्षस तथा वानर रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगे, कि—हे प्रभो ! हम सब आपके साथ जानेका निश्चय करके आए हैं, सो आप जानलीजिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसी अन्तरमें महाबली सुग्रीवभी विधिपूर्वक भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके कहने लगा ॥ ३० ॥ कि—हे भगवन् ! किष्किन्धाके राज्यमें महाबली अङ्गदका अभिषेक करके आयाहूं, सो आप मुझे अपने साथ चलनेके निमित्त निश्चय करेहुए समझिये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार तिन रीछ, वानर, और राक्षसोंके दृढ़वाक्योंको सुनकर श्रीरामचंद्रजी बिभीषणसे आदर पूर्वक यह कोमल वचन बोले ॥ ३२ ॥ कि—हे विभीषण ! जबतक पृथ्वी प्रजाको धारण करै तबतक तुमभी मेरे कहनेसे राक्षसोंकी प्रजाका पालन करते-

रहो, इस विषयमें मैं तुमको अपनी शपथ दिलाताहूँ ॥ ३३ ॥ अब इसका कुछ उत्तर न देना, और यदि तुम्हारी इच्छा नहीं होय तौ मेरी प्रसन्नताके निमित्त ही तुम राज्य करो, इस प्रकार बिभीषणसे कहकर हनुमान्‌जीसे कहने लगे ॥ ३४ ॥ हे पवनकुमार ! तुम चिरकालपर्य्यन्त जीवित रहो, और मेरी आज्ञाको मिथ्या मत करो, इसके अनन्तर जाम्बवान्‌से कहनेलगे, कि—हे जाम्बवान् ! तुमभी अभी पृथ्वीपर स्थित रहो, द्वापरके अन्तमें (कृष्णावतारके विषे) किसीकारणसे मेरे साथ तुम्हारा युद्ध होयगा, तब तुम मेरे लोकको प्राप्त होओगे, तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी तिन सम्पूर्ण रीछ, राक्षस, और वानरोंसे दयायुक्त हो कहनेलगे, कि—तुम सब मेरे साथ चलो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तदनन्तर प्रातःकालके समय कमलनेत्र, विशालवक्षस्थल रघुवंशनाथ श्रीरामचन्द्रजीके महाराज परमपूजनीय पुरोहित वसिष्ठजीसे बोले, कि—हे गुरो ! मेरे आगे आगे अग्निहोत्रके अग्नि चलैं ॥ ३७ ॥ तब वसिष्ठजीने भी श्रीरामचंद्रजी कहनेके अनुसार वेदकी रीतिसे यात्रासमयका संपूर्ण कर्म्म विधिपूर्वक करा, महायात्राके विषे लगी है बुद्धि जिनकी, ऐसे रेशमी वस्त्र धारण करेहुए और कुशकी पवित्री हाथमें लियेहुए करोडों चंद्रमाकी समान है कांति जिनकी ऐसे श्रीरामचन्द्रजी जिसप्रकार श्वेतवर्ण मेघमण्डलमेंसे चंद्रमा निकलै इसप्रकार नगरके बाहर निकले श्रीरामचंद्रजीके वामभागमें कमलकी समान विशालनेत्रा लक्ष्मी हाथमें श्वेत कमल लेकर चली ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ और दाहीं ओर लाल कमल हाथमें लिएहुए देदीप्यमान श्यामवर्ण रूप धारण करेहुए पृथ्वी चली, और शास्त्र-शस्त्र-धनुष-तथा बाण शरीर धारण करके श्रीरामचंद्रजीके आगे आगे चले ॥ ४० ॥ शरीर धारण करेहुए चारों वेद, और सम्पूर्ण दिव्यरूप मुनि, तथा ओंकार और व्याहृतियोंकरके सहित वेदमाता गायत्री, यह सब श्रीरामचंद्रजीके साथमें चले ॥ ४१ ॥ जिससमय श्रीरामचंद्रजी अयोध्यापुरीसे चले उसीसमय पूर्ण मनोरथ होकर श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ पुत्र-कलत्र-और बन्धुवर्गोंकरके

सहित सम्पूर्ण अयोध्यावासी इसप्रकार चलदिये, जिसप्रकार कोई मोक्षके द्वारको जाता है ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीयुक्त श्रीरामचंद्रजीको जाताहुआ देखकर रणवास-अपने सेवक अपनी स्त्री-और शत्रुघ्नकरके सहित भरतजी भी चलदिए, और बालक तथा वृद्धोंकरके सहित सम्पूर्ण प्रजाके पुरुष, ब्राह्मण, मंत्रीयोंके समूह, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा परमप्रसन्न और जो सुग्रीव आदि वानर थे सो सब स्नानकरके शुद्ध शरीर होकर मंगल शब्दोंको उच्चारण करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चलदिये, उनमें कोई संसारके दुःख करके युक्त और दीन, तथा बाह्यविषयोंमें आसक्त नहीं था ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ और आनन्दरूप जो श्रीरामचंद्रजी तिनके पीछे जानेवाले सब पुरुष विरक्त होकर अपने पशु और सेवकोंकरके सहित श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ जातेहुए और जो अदृश्य (जो देखनेमें न आवैं) प्राणी, और स्थावर तथा जङ्गम थे, सो सब विरक्त होकर अनन्तशक्ति, मायासे पर, ईश्वर, साक्षात्परमात्मारूप श्रीरामचंद्रजीके पीछे चलदिये, उससमय अयोध्यानगरीमें कोई ऐसा न रहा जिसका श्रीरामचन्द्रजीके विषे मनन लगा होय. और जो श्रीरामचंद्रजीके संग न गया होय ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके निजधामको जानेके निमित्त चलनेपर वह सम्पूर्ण अयोध्यानगरी खाली होगई, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी नगरसे कुछ दूर जाकर हरिके नेत्रोंसे उत्पन्न हुई जो सरयूनदी तिसका दर्शन करतेहुए ॥ ४८ ॥ परमप्रसन्न श्रीरामचन्द्रजीने तदनन्तर अपने परमपवित्र विराट्स्वरूपका स्मरण करके सम्पूर्ण जगत्को अपने हृदयके विषे स्थित देखा, सो इसी समय पितामह ब्रह्माजी, और देवता, ऋषि, तथा सिद्ध आगए ॥ ४९ ॥ जिनमें देवता, बैठेहुए हैं ऐसे सूर्य्यकी समान प्रकाशवान् करोड़ों विमानोंकरके अपरंपारभी आकाश भर गया, तिन विमानोंकी कान्तियोंसे आकाश प्रकाशमय होगया ॥ ५० ॥ जो बड़े बड़े पुण्यवान् इस लोकसे ऊपरके लोकोंको गए थे, तिनके भी स्वयं प्रकाशरूप विमानोंकरके आकाश ढकगया, उससमय सुगंधयुक्त पवन चलने लगे, और पुष्पोंकी अतिवर्षा हुई ॥ ५१ ॥

देवता मृदंगोंके शब्द करनेलगे, विद्याधर और किन्नर गान करने लगे, उससमय अनंतशक्ति श्रीरामचंद्रजी थोड़े थोड़े सरयूके जलमें जाकर फिर जलके ऊपर इसप्रकार चलने लगे जैसे कोई पृथ्वीपर चलै ॥ ५२ ॥ उससमय ब्रह्माजी हाथ जोड़कर तिन श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगे, कि—हे परमात्मन् ! आप साक्षात् ईश्वर हो, सदा आनन्दमय परिपूर्णरूप हो और अपने वास्तविक अद्वितीय ऐश्वर्य्यरूपको यथार्थ रीतिसें तुमही जानते हो ॥ ५३ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! तथापि आपने मुझदासकी प्रार्थनाको पूर्ण करा, सो ठीकही है, क्योंकि हे विद्वन् ! आप भक्तवत्सल हैं, सो अब आप भ्राताओंकरके सहित सबके कारणरूप अपने विष्णुशरीरके विषे प्रवेशकरके देवताओंकी रक्षा करिये ॥ ५४ ॥ अथवा और कोई दूसरा शरीर आपको अभीष्ट हो तौ उसके ही विषे प्रवेश करके आप हमारी रक्षा करिये, हे भगवन् ! देवताओंके अधिपति विष्णु आपही हैं, और मेरे सिवाय दूसरा आपको नहीं जानता है ॥ ५५ ॥ हे देवेश ! आपके अर्थ वारंवार नमस्कार है, मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये, मैं आपको औरभी अधिक नमस्कार करताहूँ, देवताओंके देखतेहुए ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे परमप्रकाशस्वरूप श्रीरामचंद्रजी सबके नेत्रोंको चुरातेहुए उससमय चक्रादि धारण करेहुए चतुर्भुजमूर्ति होगए, और लक्ष्मणजी अतिअद्भुत शरीरधारी शेषरूप धारण करेहुए भगवान्की शय्यारूप होगए ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ कैकेयीके पुत्र भरतजी दिव्य चक्ररूप होकर और शत्रुघ्न दिव्य चक्ररूप होकर भगवान्के हाथोंमें विराजमान होगए, सीताजी तौ पहिलेही लक्ष्मीरूप होगईथीं और श्रीरामचंद्रजी इससमय भ्राताओंकरके सहित पूर्वरूपकरके तेजःस्वरूप दिव्यमूर्ति, पुराणपुरुष विष्णुरूप होगए, तब विष्णुरूप श्रीरामचंद्रजीको प्राप्त होकर इन्द्रादि देवता, सिद्धसमूह, मुनिगण, यक्षसमूह, और ब्रह्मादि प्रजापति चारों ओर सर्वशक्तिमान् परमात्माकी स्तुति और पूजन करनेलगे, और मनोरथ पूर्ण होनेके कारण उन सबके चित्त आनन्दमें मग्न होगए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उस समय सर्वव्यापी विष्णु भगवान्

ब्रह्माजीसे कहने लगे, कि मेरे विषे प्रेम करनेवाले यह मेरे भक्त स्वर्गलोकको जातेहुए भी मेरे साथ गमन करनेकी इच्छासे आएहैं. इनमें जो तिर्यक्शरीर (कुक्कुर आदि) हैं, वहभी पुण्यात्मा हैं ॥ ६१ ॥ सो तुम मेरी आज्ञासे इन सबको वैकुण्ठकी समान जो लोक हैं तहां पहुँचादो, इसप्रकार विष्णु भगवान्के कथनको सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे, कि-नाना प्रकारके भोगों करके युक्त जो सान्तानिक नामवाले लोक हैं, तहाँ यह सब प्राप्त होयँगे ॥ ॥ ६२ ॥ और मेरे लोकभी ऊपर जो प्रकाशवान् लोक हैं, तहाँ यह सब प्राप्त होयँगे, क्योंकि यह सब अनेक पुण्य करनेवाले और आपकी भक्ति करके युक्त हैं, और हे भगवन् ! और भी जो पुरुष आपके पवित्र रामनामका कीर्त्तन करैंगे वहभी सब अन्तकालमें इनही लोकोंको प्राप्त होयँगे ॥ ६३ ॥ और जो पुरुष विनाजानेभी परमपवित्र रामनामका कीर्त्तन करैंगे वह पुरुषभी योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य लोकोंको प्राप्त होयँगे, जब इसप्रकार ब्रह्माजीने कहा, तबतो अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए जो वानर और राक्षस आदि तिन्होंने जलका आचमन करके शरीरका त्याग कर दिया ॥ ६४ ॥ और जिस जिस देवताओंके अंशसे रीछ और वानररूप धारण करा था, उस उसही देवताके स्वरूपको प्राप्त होते भये; सूर्यके वीर्य्यसे उत्पन्न होनेके कारण वानरराज सुग्रीव सूर्यके रूपमें लीन होगये ॥ ६५ ॥ तदनन्तर और जो अयोध्यापुरीके निवास करनेवाले मनुष्य थे सो सरयूके जलमें स्नान करतेही मनुष्यदेहको त्यागकर दिव्य आभूषणोंको धारण करके विमानोंपै बैठकर सान्तानिक नामक लोकोंको प्राप्त होगये ॥ ६६ ॥ तिर्य्यक्योनि (पशुपक्षी आदि) के विषे उत्पन्न हुये प्राणीभी श्रीरामचन्द्रजीकी कृपादृष्टिसे सरयूके जलमें गोता लगातेही स्वर्गलोकको चलेगये, उस निर्य्याणको देखनेकी इच्छासे और जो देशके लोग आये थे, सो भी उस निर्य्याणको देखकर शीघ्रही सम्पूर्ण गृहादिकी प्रीतिको त्यागकर, और त्रिलोकीनाथ साक्षात् विष्णुरूप परमात्माका ध्यान करके सरयूके जलमें गोता लगातेही तत्काल स्वर्गलोकको प्राप्त होगये, श्रीमहादेवजीने श्रीरामचन्द्रजीका

कथाका बचाहुआ इतना वृत्तान्तही उत्तर काण्डमें पार्वतीजीके अर्थ वर्णन करा है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ जो पुरुष इस अध्यात्मरामायणमेंके चौथाई श्लोकका भी पाठ करता है, वह हजारों जन्मोंमें करेहुए भी पापोंसे छूट जाता है, और प्रतिदिन इस रामायणके एक श्लोकका भी जो पुरुष भक्तिपूर्वक पाठ करै, वह पुरुष नित्य करेहुए पापोंसे छूट जाताहै ॥ ६९ ॥ और जब सम्पूर्ण पाप छूट जातेहैं तब शुद्धान्तःकरण होकर भक्तिहीन पुरुषको जो प्राप्त न होसकें ऐसे श्रीरामचन्द्रजीके सायुज्य (मुक्ति) को प्राप्त होताहै, यह श्रीरामचन्द्रजीका भविष्यदर्थ कहिये आगेको होनेवाले चरित्रकरके युक्त भूत और वर्तमान सम्पूर्ण चरित्र, अर्थात् यह अध्यात्म-रामायणकी कथा, श्रीमहादेवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेरणासे वर्णन करा है इसका श्रवण करनेसे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं, यह अनन्त पुण्य-दायक रामायणरूप काव्य श्रीमहादेवजीने पार्वतीके अर्थ वर्णन कराहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥ जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करताहै, अथवा श्रवण करता है, वह सैंकड़ों जन्मोंमें करेहुए पापोंसे मुक्त होजाताहै, जो पुरुष नित्य अध्यात्मरामायणको पढ़ता है, श्रवण करता है, अथवा लिखता है, उस पुरुषको सीतासहित श्रीरामचन्द्रजी अतिप्रसन्न होकर अपने समीप रखता हैं, और अन्तमें मोक्षरूपी लक्ष्मी देते हैं. अथवा उस पुरुषके हृदयके विषे श्रीरामचन्द्रजी सीताकरके सहित निवास करते हैं, और उसको लक्ष्मी कभी नहीं त्यागती है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ जिसकी ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताभी प्रशंसा करतेहैं, तिस पुरुषोंके मनको हरण करनेवाले इस आदि-काव्य रामायणका जो पुरुष नित्य श्रद्धायुक्त होकर श्रवण करता है अथवा पाठ करता है, वह शुद्ध शरीर होकर विष्णु भगवान्‌के धाम (वैकुण्ठलोक) को प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥ प्रकाशकानुवादकाभ्यां लक्ष्मीं वितरतु श्रीजन-कजाजानी रामचन्द्रः ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तर-काण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादनगरनिवासिगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलाना-थात्मजभारद्वाजपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः समाप्तः ॥

नेत्र बाण अरु ग्रह शशी, संवत् विक्रमभूप ॥
पौषकृष्ण दशमी सुबुध, प्रथमप्रहर शुभरूप ॥ १ ॥
रामकृपा पूरण कस्यो, यह व्याख्यान अनूप ॥
रामचरण चित सायकै, पण्डित रामस्वरूप ॥ २ ॥
होयँ चिरायू जगत्में, पण्डित हरिप्रसाद ॥
लक्ष्मी अरु यशको लहैं, कबहुँ न होय विषाद ॥ ३ ॥
हैं यद्यपि जगमें बहुत, रामचरितके ग्रन्थ ॥
पर विशेष यामें कयो, ज्ञानकाण्डको मन्थ ॥ ४ ॥
पश्चिमोत्तर देशमध, रामगंग सुगँभीर ॥
नगर मुरादाबाद है, बुध-कवि-युत तातीर ॥ ५ ॥
तहँवसि रामस्वरूपने, रामरूप चित धार ॥
अध्यातमभाषा रची, निजमतिके अनुसार ॥ ६ ॥
उमा शंकर सुनी कहीं, रामकथा सुखदान ॥
जो याको चितमें लहैं, होयँ ज्ञानकी खान ॥ ७ ॥

इत्यध्यात्मरामायणभाषा समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

हरिप्रसाद भगीरथजी,

कालिकादेवीरोड-रामवाडी-मुंबई.

श्रीमद्भागवत.

(सुललितसरल हिंदुस्तानी) भाषाटीकासहित.

यह श्रीमद्भागवतका भाषांतर श्रीधरी टीकाके आशयको लेकर सविस्तर योधपुरनिवासी पं० बलदेवात्मज रामकर्णजीद्वारा शुद्ध सरल हिंदीभाषामें रचना करवाया है. यद्यपि श्रीमद्भागवतके भाषांतर बहुत छप चुके हैं परंतु उनमें ठौर ठौर व्यतिक्रम पाया जाता है. अर्थात् कहीं तो अपनी मनमानी कथा दीखपडती है और कहीं कठिन विषय देखकर छोडभी दिये हैं और कहीं कहीं गोलमालभी है, इसीलिये उनसे यथार्थ अर्थ जाननहीं आ सकता. इस असुविधाको देखकर हमने यह भाषांतर बडे परिश्रमसे करवाके प्रथमावृत्ति छापी सो तो हथोहाथ बिकगई. अब हमने इस पुस्तककी द्वितीयावृत्ति छापी है. सो इसमें सुमेरपुरनिवासी देवकीनंदनात्मज पं० रामभद्रजीसे बहुशः शुद्ध करवाय तथा आप्त लोगोंके विनोदार्थ षष्ठाध्यायी माहात्म्य, अनुक्रमणिका, अष्टादशसहस्रसंख्यागणनाप्रकार, वृत्तलक्षण, उवाचगणना, स्तुतिसंख्या और शंकासमाधान, अति रमणीक मनोरंजक चमत्कारिक कथाप्रसंगके संमिलित, श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणप्रमाण और वार्तिक इतिहास जोकि पुराणोंमें मिलते हैं वे सब नीचे बारीक अक्षरोंमें टिप्पणरूपसे लिखवा दिये हैं. और हे महाशयो ! आप लोगोंके आनन्दार्थ दोहा, चौपाई, छन्द, सोरठा, कवित, होली, ध्रुवपद, ठुमरी आदि रागरागिनियां तथा ६०० दृष्टान्त जोकि—श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी सुखमय लीलाके साथ संबंध रखते हैं उन्हेंभी टिप्पणोंमें लगवा दिये हैं और पूतना, बकासुर आदि सम्पूर्ण राक्षस [illegible] शिवाय अन्यभी जो भगवतके हस्ततीर्थमें गति पाये हैं. उन्होंके [illegible]जन्मक शाप, उद्धार, आदिकीभी कथायें लगादी हैं, और इसमें प्रथमावृत्तिकी अपेक्षा कागद चिकना, अक्षर बडा है, संचीभी अतिमनोहर है, इससे पढ़ाने पढ़ने तथा सप्ताहपारायणकरनेवालोंको अतिउपयोगी है. मूल्यभी स्वल्पही रक्खा है. कि० रु० १२ ट० रु० २॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

हरिप्रसाद भगीरथजी कालकादेवीरोड़—रामवाड़ी मुंबई.